THE BOOK WAS DRENCHED

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186142
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

17 JUN 1989

OUP--556 --13-7-71 --4,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 349.5 Accession No H 1 0'6

Author J'45V

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

24 FEB 1981

14 JUN 1983

इस ग्रन्थ की सरकारी नियमानुसार रजिस्ट्री कराई गई है।

सचित्र

वाल्मीकि रामायण

भाषा

सातों काण्ड सम्पूर्ण

जिसको

हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक—

कविराज पं० जयगोपाल विद्या भण्डार

ने

बड़े परिश्रम से भक्त जनों के लिए रचा

और

शामदास "वधवा" पुस्तकोंवाला

शहालमी दरवाजा, लाहौर

ने

पं० छज्जूराम शर्मा, अध्यक्ष—भारद्वाज प्रिण्टिङ्ग प्रेस,

मैदमिट्ठा बाजार लाहौर, द्वारा छपवाकर प्रकाशित किया।

प्रथमवार १५००	विक्रमी सं० १९८५ March 1928	मूल्य ४)

Checked 1963

CHECKED 1950
By SL. & Sons

सर्वाधिकार स्वाधीन हैं

(OUR PICTURES ARE PROTECTED BY COPY RIGHT)

इस श्रीवाल्मीकि-रामायण ग्रन्थ के सब चित्रों सहित प्रकाशक ने सर्वाधिकार अपने स्वाधीन रक्खे हैं, इसलिये कोई सज्जन न ही चित्रों की नकल करे, और न ही इस ग्रन्थ का किसी भी भाषा में उल्था करे नहीं तो लाभ के स्थान में हानि होगी।

निवेदक—शामदास "वधवा"

यह श्रीवाल्मीकि-रामायण और सर्व प्रकार के पुस्तक नीचे लिखे पते से पत्र भेजकर मंगावें, और अपना पता पूरा २ और साफ २ लिखें।

मिलने का पता—

शामदास "वधवा" पुस्तकोंवाला शहालमी दरवाज़ा,
लाहौर।

हिन्दी बाल्मीकि रामायण के रचयिता

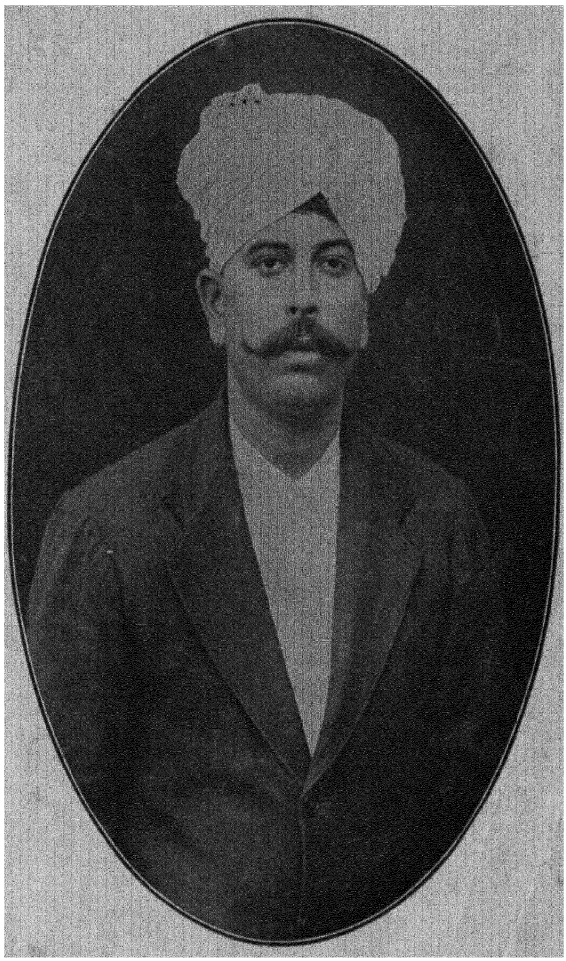

कविराज पण्डित जयगोपाल

Bhardawaj Press Lahore.

भूमिका

हिन्दु जाति का विशाल भवन रामायण और महाभारत इन दो खंभों के आश्रय पर खड़ा है। संसार में सहस्त्रों जातियां बनीं और और काल के थपेड़ों से नष्ट हो गईं, अब उन का नाम लेवा भी संसार में कोई नहीं रहा, केवल इतिहास के पत्रों पर उन का नाम शेष है परन्तु हिन्दु जाति अथवा आर्य्य जाति पर ऐसे ऐसे संकट आए ऐसी २ विपत्तियां आईं, कि यदि प्रकाश मय दिन पर भी पड़तीं तो वह भी अन्धेरा हो जाता। इस भारतवर्ष पर संसार की सब जातियों ने राज्य किया है और सहस्त्रों वर्ष से यह देश पराधीनता की चक्की में पिस रहा है, जो विदेशी आया उस ने भारतीय सभ्यता के नाश करने और अपनी सभ्यता का जूआ भारत के गले में डालने के लिए घोर परिश्रम किया, संस्कृत साहित्य को जला जला कर हम्माम गर्म किये गये, तलवार के बल से हिन्दुओं को विधर्मी बनाया गया, धन और स्त्रियों के प्रलोभन में फंसाया गया परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी भारत और हिन्दु जाति अभिमान से सिर ऊंचा कर के कह सकती है, कि हम इन परीक्षाओं में से सफल होकर निकले और भट्टी में पड़ कर स्वर्ण का कुन्दन बन गए। विदेशी और विधर्मी सभ्यता की लहरें गंभीर गर्जना करती हुई भारत को टकराईं परन्तु हिमालय के समान अडोल हिन्दु जाति से टकरा टकरा कर स्वयं टुकड़े टुकड़े हो गईं। प्यारे पाठक! इस में कौनसा रहस्य था? किस बल के भरोसे पर हिन्दु जाति अभी तक जीवित और जागृत है? इस का उत्तर है रामायण और महाभारत। आज मैं आप के सन्मुख रामायण रख रहा हूं। रामायण में दशरथ नंदन महाराज रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र है। श्री रामचन्द्रजी को मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। अर्थात् उन का जीवन भटके हुए मनुष्यों को सन्मार्ग सिखलाता है और बतलाता है, कि मनुष्य को

इस मर्य्यादा के अन्दर रहना चाहिए। इस घोर कलियुग में तो रामायण एक ऐसा जहाज है जिस पर चढ़ कर मनुष्य इस भव सागर को सुख से पार कर सकता है। इसमें धर्म नीति, राज नीति, समाज नीति, भाई भाई का प्रेम, पति पत्नी की प्रीति, माता पिता के प्रति सन्तान का कर्तव्य, नारी धर्म, मित्रों का परस्पर व्यवहार आदिक विषयों पर कथा के प्रसंग से गंभीर विचार किया गया है। रामायण को पढ़ कर यदि इस की शिक्षाओं पर हम चलें और अपने जीवन को उस के अनुसार बना लेवें तो निस्संन्देह भारत आज स्वर्ग बन जाए और यहां का एक एक मनुष्य एक एक देवता माना जाए। आप रामायण की घटनाओं पर विचार करें तो आपको मालूम हो जाएगा कि हमारी जाति सभ्यता की कितनी ऊंची चोटी पर थी—

राम वनवास।

तनिक श्री रामचन्द्रजी के वनवास ही को लीजिए, कैकेयी महाराज दशरथ से वह दो वर मांगती है जो उस ने देवासुर संग्राम में उनसे प्राप्त किए थे, अब एक ओर पुत्र का प्रेम और दूसरी ओर सत्य है उन का हृदय उस समय व्याकुल हो जाता है, पुत्र प्रेम से मूर्छित हो जाते हैं परन्तु सत्य का पलड़ा भारी रहता है। उन्होंने पुत्र को चौदह वर्ष के लिए घोर वन में भेज दिया स्वयं भी उसके वियोग में काल वश हो गए, परन्तु सत्य को हाथ से नहीं जाने दिया और अपने प्रण को पूरा किया। अब भरत पिता की आज्ञा से राजा बन चुका है, परन्तु नहीं, ज्यूंही उस ने सुना, वह मूर्छित हो कर गिर पड़ता है, और नंगे पाओं नंगे सिर वन में जाकर बड़े भाई के चरणों में पड़ता है और दीन होकर प्रार्थना करता है, कि आप वापस चलिए और अयोध्या का राज्य संभालिए, परन्तु वह यह उत्तर देते हैं, कि पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर के मैं अयोध्या तो क्या स्वर्ग का राज्य भी मिले तो अंगीकार न करूंगा। उस समय भरत बारंबार उन्हें राज्य लेने की

प्रार्थना करता है परन्तु वह उसे बारंबार ठुकरा देते हैं। यह है आदर्श, यह है भाई भाई का प्रेम और यह है सत्य की धारणा। युरोपियन स्कालर रामायण को एक बनावटी कहानी कहते हैं, परन्तु सच तो यह है, कि धन और राज्य की लालसा से एक दूसरे का गला काटने पर तय्यार रहने वाले लोग, झूट बोल कर अपना काम निकालने को नीति चातुर्य्य कहने वाले लोग, इतने ऊंचे आदर्श को समझ ही नहीं सकते। उन के विचार में मनुष्य का हृदय और आचार इतना ऊंचा हो ही नहीं सकता।

पातिव्रत धर्म।

तनिक महारानी सीता का पातिव्रत धर्म देखिए। पति को बनवास मिलता है परन्तु राज महलों के सुख को छोड़ कर वह उन के साथ बन के दुख उठाती है। राम कहते हैं कि हे सीते! तू घर में रह, बन में प्रचण्ड धूप, कठोर शीत और भयानक वृष्टियां, बृक्षों के नीचे सोना कटीले मार्ग, सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु, भूख प्यास थकान आदि विपत्तियां भरी पड़ी हैं परन्तु वह उत्तर देती है, हे नाथ! आप के साथ रह कर मुझे यह दुख स्वर्ग सुख के समान होंगे, मैं अपने केशों से मार्ग के कंटक साफ़ करूंगी और आपके चरणों में रहूंगी। अहह! कैसा स्वर्गीय दृष्य है, इसे पढ़ते पढ़ते कठोर से कठोर चित्त मनुष्य के नेत्रों से भी अश्रु धारा वह निकलती है। सती साध्वी सीता काम से अन्धे हुए हुए रावण के वश में पड़ जाती है, वह उसे अनेक प्रकार के दुख देता है, तलवार लेकर उस को मारने दौड़ता है; परन्तु वह राम की मूर्ति को हृदय में धारण करती है और उसकी ओर देखती तक नहीं। रामायण हमें पातिव्रत धर्म की उच्च शिक्षा देती है।

भाई भाई का प्रेम।

लक्ष्मण का राम के प्रति अगाध प्रेम पढ़ कर किस के नेत्रों से आनंद के आंसु नहीं निकल पड़ते। बड़े भाई को बनवास मिलता है

परन्तु छोटा भाई साथ जाता है। चौदह वर्ष तक सिपाहियों का सा जीवन व्यतीत करता है और इतना लंबा समय बन में भाई की सेवा में लगा देता है। चौदह वर्ष में एक दिन भी सोता नहीं और भाई की अपने प्राणों को होम कर सेवा करता ह।

इसी प्रकार सुग्रीव और राम की मैत्री की बात है वह वानर जाति का राजा असंख्य सैनिकों के साथ लंका पार जाता है और अपने मित्र के लिए लाखों जीवों को कटवा देता है।

सीता वनवास।

सब से ऊँचा आदर्श जो रामायण दिखाती है वह राजा का प्रजा के साथ प्रेम है। राम की प्रजा में न कोई चोर था न जुआड़ी था, न व्यभिचारी और मद्यपायी था; झूठ बोलने वाला और न नास्तिक था; न गो घाती था और न कोई निंदक था। अग्नि होत्र के धूम से अयोध्या पर सदैव बादल छाए रहते थे; वेद मन्त्रों की ध्वनि उठती थी लोग सदाचारी और धर्मात्मा थे; परन्तु यह सब कुछ क्यों था, क्योंकि राम के आचार विचार धर्म और वेद के अनुकूल थे और प्रजा को वह पुत्र के समान प्रेम करते थे, कोई भी ऐसी चेष्टा वह सहन नहीं कर सकते थे जिस से प्रजा के आचारों के विगड़ने की सम्भावना हो। इसका ज्वलंत प्रमाण सीता बनवास है। रावण पर विजय प्राप्त कर के वह सीता को लाते हैं, सीता सती है पतिव्रता है; और शुद्ध चरित्रा है; यह उन का विश्वास है; परन्तु प्रजा के लोगों में यह अपवाद फैलता है; कि रावण के घर में रही हुई सीता को राजा ने अपने घर में रख लिया है; यह बड़ा अन्धेर है अब जो भी स्त्री पराए घर में रह कर आएगी उस के स्वामी को उसे अपने घर में रखना ही पड़ेगा। यह अपवाद राम के कानों तक पहुंचता है, इस पर वह विचार करते हैं; कि यद्यपि यह अपवाद झूठा है परन्तु प्रजा में इस से बुराई फैलने की सम्भावना है। वह सीता को और निर्दोष सीता को प्रजा के

चरित्र की रक्षा के लिए बलिदान कर देते हैं और उसे बनवास दे देते हैं। यह है राजा का प्रजा से प्रेम जो रामायण दर्साती है।

राज नीति इस में कूट २ कर भरी हुई है। धर्म नीति का रामायण सर्वस्व है और समाज नीति का यह ग्रन्थ प्राण है। इस की एक एक बात स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। धन्य है ऋषि बाल्मीकि जिन्हों ने इस अद्भुत दिव्य ग्रन्थ की रचना की है और भारतीय सभ्यता की रक्षा करते हुए हिन्दु जाति को जीवित रखा है। इस पुस्तक में कई एक बातें ऐसी हैं जिन्हें पढ़ कर मनुष्य उसे असंभव समझने लगता है, जैसे पुच्छधारी वानरों का युद्ध में जाना और हनुमान का आकाश में उड़ कर समुद्र पार करना और पूंछ से लंका दग्ध करना। यह बातें वस्तुतः अलंकार रूप से मुनि ने कही हैं। मनुष्यों में वानर नामक एक जाति से वहां तात्पर्य्य है, जो रामायण के लेखों से स्पष्ट समझी जाती है। जैसे हनुमान का राम के साथ भेंट करना, वहां राम उसके वचनों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, कि बिना वेद वेदांग पढ़े ऐसा बोलना कठिन है इत्यादि अनेक स्थानों में बानरों का बोलना नाना प्रकार की कलों से पत्थर उखाड़ कर समुद्र पर सेतु बांधना; वेद मन्त्रों से बालि का दाह संस्कार करना और सुग्रीव की स्त्री तारा के केश वस्त्र और भूषणों का वर्णन करना उसका रुदन करना इत्यादि बातों से स्पष्ट है; कि वह बन्दर नहीं प्रत्युत मनुष्य थे और उनकी जाति का नाम बानर था। हनुमान का जलती हुई पूंछ से लंका का जलाना भी इन्ही असम्भव बातों में से है वस्तुतः न कोई उन की पूंछ थी और न वह बन्दर था। हां रावण ने कोई बांस आदिक की पूंछ बना कर उसे उस की कमर में बांध दिया होगा और वानर को बन्दर बना कर उन की हंसी और उन का अपमान करने के लिए ऐसी चेष्टा की होगी और उसी पुच्छ से उस ने लंका को जला डाला होगा। इस प्रकार की अनेक रोचक और भयानक बातें हैं जिन्हें पाठक पूर्वापर घटनाओं से मिला कर पढ़ें

तो पता लग सकता है। हिन्दु जाति के लिए यह ग्रन्थ सचमुच अमृत के समान है और मेरा तो यह निश्चय है कि जब तक इस अमृत का पान हमारी जाति करती रहेगी जीवित जाग्रत और सुखी रहेगी। इस पुस्तक के लिखने में मुझे बहुत से विघ्न पड़े हैं इस लिए यदि कुछ त्रुटियां रह गई हों तो आशा है पाठक क्षमा करेंगे। मैंने इसके लिखने में अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया है और भगवान् श्री रामचन्द्रजी की कृपा से सब विघ्नों को पार कर के इसे पूरा कर सका हूं। अन्त में परमात्मा से यही मांगता हूं, कि हिन्दु जाति के लोग इस ग्रन्थ को पढ़ कर इस के अनुसार चलें और उन का परस्पर भाई भाई पिता पुत्र तथा स्त्री पति का प्रेम बढ़े और उन के गृह में ईश्वर-भक्ति और लक्ष्मी का निवास हो।

बालमाता स्ट्रीट, लाहौर
तिथि १३ फाल्गुण १९८४

जयगोपाल

श्री बाल्मीकि-रामायण की चित्र-सूची।

चित्र	पृष्ठ
❀१–श्री बाल्मीकि ऋषि	१
२–मुनि विश्वामित्र का कुमारों को लेकर जाना	११
३–रामचन्द्र जी का धनुष तोड़ना	६४
❀४–गंगा पार	१७२
❀५–राजा दशरथ की मृत्यु	१९२
❀६–रामचन्द्रजी का भरत को चरण पादुकायें देना	२३९
७–अनसूया का सीता के प्रति उपदेश	२४३
❀८–शूर्पणखा का आना	२६९
❀९–मारीच वध	२९१
❀१०–सीता हरण	२९६
११–शबरी का आश्रम	३२१
❀१२–अशोक वाटिका में जानकी दर्शन	३९५
१३–मायामय सिरों को देखकर सीताका विलाप करना	४७७
❀१४–लव और कुश का रामायण गाकर सुनाना	५९६

महर्षि—

वाल्मीकिजी का जीवन-चरित्र ।

देवाधिदेव ब्रह्मा जी का वरुण नाम एक पुत्र त्रेतायुग में हुआ। उस वरुण के दस पुत्र थे। दसवें पुत्र का नाम रत्नाकर था। रत्नाकर अभी बालक ही था कि प्रयाग के निकट किसी बन में निवास करने वाली एक भीलनी उसे चुरा कर ले गई। उस भीलनी के गृह में सन्तान नहीं थी। अपनी कुटिया में ले जाकर वह रत्नाकर की बड़े प्रेम से पालना करने लगी। वह भील बड़े क्रूर कर्मी थे। भूले भटके यात्रियों को लूटना मारना ही उनका काम था, और इसी दुष्ट कर्म से वह अपनी आजीविका चलाते थे। रत्नाकर भी बड़ा होकर यही काम करने लगा। वह बड़ा बलवान पराक्रमी धनुषधारी और निर्दयी था। मनुष्यों के मारने लूटने में उसको तनिक भी दया नहीं आती थी! दिन भर वह बन के जन्तुओं को मारता शिकार खेलता और लूट खसोट में मग्न रहता था। अब उसका विवाह एक भील कन्या से हुआ। उस स्त्री से कई पुत्र और कन्यायें हुईं। जैसे जैसे परिवार बढ़ता गया तैसे तैसे उसके पाप कर्म भी बढते गये। सारे कुटुम्ब के पालन पोषण का भार उसी के कंधों पर था इस कारण वह पहले से कहीं अधिक लूट मार करने लगा, यहां तक कि अब वह एक २ पैसे के लिये, फटे पुराने वस्त्रों के लिये और लोटे थाली के लिये भी पथिकों को बध कर देता था, और उन पर तनिक भी दया नहीं करता था।

कहते हैं कि जब मनुष्य के अच्छे दिन आते हैं तो परमात्मा की ओर से ही कोई न कोई निमित्त मिल जाता है। रत्नाकर की दशा पलटने वाली थी। दैवयोग से एक दिन सात साधु उसी बन में आ निकले जहां वह यात्रियों को मारने के लिये घात लगाए बैठा रहा करता था। उस

समय वह भूख से व्याकुल हो रहा था। कई दिनों से उसे कोई शिकार न मिला था, घर में बाल बच्चे भूख से तड़प रहे थे, साधुओं को देखते ही उसने धनुष को चढाया और उनके निकट जाकर बोला " जो कुछ तुम्हारे पास है दे दो नहीं तो अभी सब के प्राण ले लूंगा।

रत्नाकर के ऐसा कहने पर वह साधु तानिक भी विचलित न हुए प्रत्युत मुस्कराते हुए बोले, हे भाई ! जो कुछ हमारे पास है वह तुम हम से ले लो, परन्तु हमारी एक बात का उत्तर दो, कि तुम यह क्रूर कर्म किस लिये करते हो ? तब रत्नाकर बोला, हे साधु लोगो मेरी मां है, पिता है, स्त्री है, पुत्र हैं कन्यायें हैं उन्हीं के पेट के लिये मैं यह नर हत्या करता हूं। आज कई दिनों से मुझे कोई शिकार हाथ नहीं लगा, सो जो कुछ तुम्हारे पास है धर दो। तब साधु बोले; हे भाई ! भला यह तो बतला, कि इस दुष्ट कर्म के फल को तू अकेला ही भोगेगा अथवा तेरे कुटुम्बी भी साथ भोगेंगे ? तू उनको पूछकर आ, यदि वह कहें, कि हां हम भी तेरे साथ इस पाप के भागी हैं और इसके फल को भोगेंगे तो तू हमारे वस्त्र और लोटे ले लीजियो और यदि वह फल के भागी न बनें तो इस कर्म का त्याग कर देना।

यह सुनकर रत्नाकर ने हंसकर कहा हे साधुओ ! क्या मैं इतना मूर्ख हूं जो तुम्हें छोड़कर घर पूंछने जाऊं ? वाह ! भागने की युक्ति तुमने अच्छी सोची है , छोड़ो इन बातों को शीघ्र अपने वस्त्रादिक मुझे दो और प्राण लेकर चले जाओ।

रत्नाकर के इस प्रकार कहने पर वह साधु बोले, हे भाई ! हमारी भागने की इच्छा नहीं है, यदि तू हमारे ऊपर विश्वास नहीं करता तो वृक्ष के साथ हमें बांध दे और फिर घर जाकर पूछ, देखो हम साधु हैं झूठ नहीं बोलते। उन साधुओ के वचनों ने रत्नाकर के हृदय में बड़ा प्रभाव किया और वह उन्हें एक वृक्ष के साथ बांधकर घर चला गया।

घर जाकर उसने सब से पहले अपनी स्त्री से पूछा, कि हे प्रिये !

भला यह तो बता कि तुम्हारे लिये जो मैं इतने क्रूर कर्म करता हूं यात्रियों को लूटता और उनके प्राण लेता हूं, इस पापकर्म का जो दण्ड मिलेगा उसको भी तू भोगेगी ?

पति के मुख से यह वचन सुनकर स्त्री ने कहा; कि भला कभी एक के कर्म का फल दूसरा भी भोगता है । तुम जो पाप करते हो उसका फल भी तुम ही भोगोगे, देखो; मैं तुझे कब कहती हूं कि तू हमारे लिये ऐसा कुकर्म कर । यदि तू इस काम को बुरा समझता है, तो छोड़ दे और मेहनत मजूरी से हमारा और अपना पेट पाल । यह उत्तर सुन कर रत्नाकर को बहुत दुःख हुआ और फिर यही प्रश्न बारी बारी पुत्रों कन्याओं और माता पिता से पूछता भया परन्तु सबने यही उत्तर दिया, कि हम तेरे दण्ड के भागी नहीं है तू अकेला ही पापों का फल भुगते गा । अब तो रत्नाकर की आंख खुल गई । उसका हृदय पश्चाताप के सागर मे डूब गया और वह रोता हुआ, घर से लौटा । बनमें जाकर उसने साधुओं को खोल दिया और नेत्रों से जल बहाता हुआ उनके पांओं पर गिर पड़ा । अब वह रत्नाकर पहला रत्नाकर नहीं था, इसी एक घटना ने उसे कुछ का कुछ बना दिया था । वह गिड़ गिड़ाकर प्रार्थना करने लगा; कि हे महात्माओ ! अब मेरी रक्षा करो, मैं बहुत भूला हुआ था, अब मैं इस भवसागर से किस प्रकार पार उतरूं, आपने मुझसे यह कुकर्म छुड़वाए हैं परन्तु अब पापों से छूटने का उपाय भी बतलाओ ।

रत्नाकर की यह दशा देख कर साधुओं ने कहा, हे भाई ! "मरा मरा" इस मंत्र का जाप कर तेरे सब पाप दूर हो जाएंगे । इतना कह कर वह साधु चले गए अब रत्नाकर तमसा नदी के निकट बनमें जाकर इस मंत्रका जप करने लगा । कई सहस्र वर्ष पर्य्यन्त वह उसी एक स्थान पर समाधि लगाए बैठा रहा । उसके अंतरात्मा में प्रकाश हो गया और उसका हृदय ब्रह्मानंद में मग्न होकर संसार को और

अपने आपको भी भूल गया। इतने लंबे समय में उसके चारों ओर मट्टी का बड़ा तोदा लग गया और कीड़ों ने उसके अंदर बांबीयां बनाली। कई सहस्र वर्ष के पश्चात् रत्नाकार बांबी अर्थात् बल्मीक से बाहर निकला और इसी से उसका नाम महर्षि बाल्मीकि प्रसिद्ध हो गया। महर्षि बाल्मीकि अब आश्रम में रह कर भगवान की भक्ति करने लगे। उनके हृदय में दया स्रोत बहने लगा। एक दिन वह अपने शिष्यों के साथ तमसा नदी में स्नान करने के लिये गये। वहां सारस पक्षियों का जोड़ा बरेते में क्रीड़ा कर रहा था। महर्षि बाल्मीकि जी प्रकृति की सुंदरता को और सारसों की क्रीड़ा को देख कर प्रसन्न हो रहे थे, कि इतने में एक व्याधने बाण से नर सारस को मार डाला। अब सारसी जो बड़े प्रेम से सारस के साथ खेल रही थी अकस्मात नरके गिर जाने पर चीखती हुई उसके आस पास घूमने लगी। उस समय महामुनि बाल्मीकि के हृदय में बड़ा दुःख हुआ और वह शाप देते भये कि—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वगमः शाश्वती समा।
मत्क्रौञ्च मिथुना देकमवधी ! काम मोहितम् ॥

अर्थ—हे निषाद! अनंत काल तुझे सुख न मिले, क्यों कि तूने कामसे मोहित हुए सारस के जोड़े में से एक को मार डाला है।

यह शाप देकर वह अपने आश्रम में आये; उन्होंने उस दुःख को भुलाने का प्रयत्न किया परन्तु वह न भूला और बारम्बार वह उपरोक्त श्लोक को पढ़कर ठंडी सांस लेने लगे। इतने में प्रजापति ब्रह्मा उन के पास आये और बोले हे महामुने यह जो शब्द तू कह रहा है यह अपने आप ही एक श्लोक के रूप में बन गये हैं सो तू श्री रामचन्द्र का जीवन चरित्र इसी प्रकार के श्लोकों में बना, इस से तेरे मन का दुःख दूर हो हो जायगा और मैं तुझे यह वर देता हूं कि जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेंगे तेरी यह कविता भी अटल रहेगी; महामुनि नारद तुझे रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र बता देंगे, उन से सुनकर तू कविता में रामायण की

रचना कर । हे महर्षे ! मैं यह वर देता हूं कि तेरी यह रचना अजर और अमर रहेगी, तेरा यश संसार में अटल रहेगा और रामचन्द्र की कीर्ति के गाने से तुझे स्वर्ग का अक्षय सुख मिलेगा । हे महामुने ! तेरी रची हुई रामायण को जो कोई सुनेगा सुनाएगा पढ़ेगा अथवा पढ़ायेगा, वह धनवान पुण्यवान और संसार के समस्त सुखों को प्राप्त करके अंत में बैकुण्ठ की प्राप्ति करेगा ।

इति ।

सचित्र

ॐ श्रीमद्भगवद्गीता ॐ

केवल भाषा १८ अध्याय महात्म सहित
श्रीस्वामी किशारदास श्रीकृष्णदासजी कृत

प्रिय सज्जनो ! गीता तो अनेक छपी है परन्तु ऐसी गीता इसके सिवाय आज तक कोई भी नहीं छपी इस की भाषा बहुत ही सरल और मीठी है यह गीता हजारों की तादाद में बिक चुकी है और दिन पर दिन मांग आ रही है हजारों ऋषी पुरुषों ने इस के पाठ से पुण्य लाभ किया है हर एक अध्याय के पीछे अध्याय का माहात्म्य है अर्थात १८ अध्याय हैं और १८ ही महात्म्य हैं गीता के बीच में दो बहुत ही सुन्दर बहुरंगे चित्र लगे हैं एक भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन का, दूसरा भगवान का विराट मूर्ति का जो बहुत ही दुर्लभ है । हर एक गृहस्थी मात्र को इस गीता का पाठ करना चाहिए स्त्री हो चाहे पुरुष इस के पाठ का फल वही जानते हैं । जो गीता का नित्य प्रति पाठ करते और सुनते हैं वही मात्र के अधिकारी हैं बाल वृद्ध स्त्रियां सब इस को पढ़ समझ सकते हैं अक्षर बहुत मोटे हैं भाषा सरल कागज मोटा चिकना सफेद ऊपर सुन्दर कपड़े की निहायत उमदा सुनहरी जिल्द बंधी है पुस्तक ४६० पृष्ठ की है मूल्य केवल १।) एक रुपया चार आने । डाकखर्च ॥) अलग, यह गीता हमारे पुस्तकालय से ही मिलेगी ।

सचित्र ।

ॐ महाभारत ॐ

सम्पूर्ण अठारह पर्व केवल भाषा ।

प्रिय सज्जनगण ! बड़े हर्ष की बात है कि हमने सम्पूर्ण महाभारत हिन्दी भाषा में छाप दिया है इसमें कौरव तथा पाण्डवों का सम्पूर्ण वृत्तान्त कौरव पाण्डवों का घोर युद्ध, द्रौपदी का पतिव्रत धर्म पालन, युधिष्ठिर के धर्म वाक्य विदुरजी की राजनीति, भीष्मपितामह जी के धर्मोपदेश, श्रीकृष्णजी का गीता उपदेश तथा और भी बड़ी २ सुन्दर कथाएं हैं जिनके पाठ मात्र से पाठकों के सब पाप दूर होजाते हैं और इस में स्थान २ पर बहुरंग और रंगीन चित्र (तस्वीरें) लगादी हैं जिनसे इस ग्रन्थ की चौगुनी शोभा होगई है इन चित्रों को देखते २ मन नहीं भरता । प्रिय पाठको ! इस महाभारत को मंगाकर इसकी कथाओं का रस लेवो और झूठे किस्से कहानियों का पढ़ना छोड़ो इस ग्रन्थ को स्त्रियें भी पढ़ सकती हैं, और स्त्रियों के लिए तो यह ग्रन्थ भूषण है ऊपर सुन्दर सुनहरी जिल्द बंधी है । छापा बहुत मोटा बम्बई टाईप का है, इस पर भी मूल्य इतना थोड़ा रक्खा है कि गरीब अमीर सब मंगा कर लाभ उठावें अर्थात मूल्य केवल ४) पांच रुपये मात्र डाक खर्च ॥=)

पता—शामदास बंधवा पुस्तकोंवाला शहालमी दरवाज़ा, लाहौर ।

विषय-सूची

मंगलाचरण १

बाल काण्ड

राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म ६
विश्वामित्र मुनिका आना और महाराज से कुमारों का मांगना ११
कामदेव का आश्रम १७
ताड़का वन १६
मुनि विश्वामित्र का रामचन्द्र को अस्त्र देना २३
मुनि विश्वामित्र का आश्रम २५
मारीच और सुबाहु का वध २७
धनुष यज्ञ ३०
गंगा की उत्पत्ति ३१
अंशुमान का घोड़े की खोज के लिये जाना ३४
अंशुमान का गंगा के लिए प्रयत्न ३६
गंगा अवतरण ३७
जनक पुरी ४०
मुनि विश्वामित्र का उपाख्यान ४१
विश्वामित्र का वसिष्ट से कामधेनु मांगना ४४
विश्वामित्र और वसिष्ट का युद्ध ४५
वसिष्ट विश्वामित्र युद्ध ४६
विश्वामित्र का ब्राह्मण पदवी की प्राप्ति के लिए तप करना ५२
विश्वामित्र का यज्ञ करना और त्रिशंकु का सदेह स्वर्ग जाना ५६
विश्वामित्र का ब्राह्मण पद प्राप्त करना ५८
पिनाक धनुष की कथा ६२
रामचन्द्र जी का धनुष तोड़ना ६४
राजा जनक का अयोध्या को दूत भेजना ६६
विवाह ७८
परशुराम का आगमन ८१
परशुराम को जीतना ८५
महाराज दशरथ का सभके साथ अयोध्या पहुंचना ८७

अयोध्या काण्ड (९१)

राजतिलक की तय्यारी ९६
मंथरा दासी का अटारी पर चढ़कर नगर की शोभा देखना १०३
कैकयी कोप भवन में १०६
दशरथ की दीनता १११
सुमंत्र का राम के महल में जाना ११७
वनवास ११६
कौशल्या का राम को विदाई देना १३२
रामचन्द्र जी का सर्वस्व दान करना १४३
पिता के अंतिम दर्शन १४५
कौशल्या का सीताको उपदेश १५७
राम का अयोध्यावासियों को उपदेश १६४
तमसा नदी पर श्री रामचन्द्र जी का पड़ाव करना १६५
पुरवासियो का जागना और विलाप करते हुए अयोध्या मे लौटना १६६
वन की यात्रा १६७
भीलराज गुह से भेंट १६६
गंगा पार १७२
चित्रकूट यात्रा १७६
सुमंत्र का अयोध्या में पहुंचना १८३
श्रवण कुमार की कथा १६०
राजा दशरथ की मृत्यु १६२
राजा की मृत्यु पर रानियों का विलाप १६६
मंत्रियो का परामर्श १६७
भरत शत्रुघ्न को बुलाने के लिये दूत का भेजना १६८
भरत का स्वप्न देखना २००
भरत का क्रोधसे माता को धिक्कारना २०६
कौशल्या के सन्मुख भरतका शपथें खाना २०८
राजा दशरथ का अन्त्येष्टी सस्कार २११
भरत का रामको लौटाने के लिए वन गमन २१३
श्री रामचन्द्र जी का जानकी को वन की शोभा दिखलाना २२१
भरत और राम का वार्तालाप २२७
श्री रामचन्द्र जी की चरणपादुका लेकर भरत का लौटना २३६

भरत का अयोध्या में लौटना २४०
अत्रि ऋषिका आश्रम २४१

अरण्य काण्ड (२४८)

दण्डक वन में ऋषियों का आश्रम २४८
विराध को मारना २४६
महर्षि शरभंग का आश्रम २५१
श्री रामचन्द्र जी का अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाना २५८
श्री रामचन्द्र जी की जटायु से भेंट २६३
श्री रामचन्द्र जी का आश्रम बनाना २६४
शूर्पणखा का नाक कान काटना २६६
अकंपन राक्षस का लंका में जाना २८२
शूर्पणखा का लंका में रावण के पास जाना २८५
मारीच वध २६१
सीता हरण २६६
जटायु वध ३००
सीता विलाप ३०१
किष्किंधा पर्वत पर जानकी का वानरों को देखना ३०२
रावण का सीताको प्रेरणा करना ३०४
सीता का रावण को धिक्कारना ३०५
श्री रामचन्द्र जी का आश्रम को लौटना ३०७
श्री रामचन्द्र जी का आश्रम में सीता को न देख कर विलाप करना ३०८
लक्ष्मण का धीरज देना ३१४
जटायु का दाह संस्कार ३१६
कबन्ध राक्षस को मारना ३१७
शबरी (भीलनी) का आश्रम ३२१

किष्किन्धा काण्ड (३२५)

पंपा की शोभा निहार कर श्री रामचन्द्र जी का विलाप करना ३२५
हनुमानका श्रीरामचन्द्र जी के पास आना ३३०
हनुमान की भेंट ३३१
श्रीरामचन्द्र जी का सुग्रीव के साथ मित्रता करना ३३४
सीता के भूषणों को देखना और श्री रामचन्द्र जी का विलाप करना ३३५
सुग्रीव का रामचन्द्र जी को धीरज देना ३३७
वालि सुग्रीव युद्ध ३४१
वालि वध ३४५
तारा विलाप ३५०
श्री रामचन्द्र जी का सुग्रीव को अभिषेक देना ३५५
प्रस्रवण पर निवास ३५७
वर्षा ऋतु का वर्णन ३५८
शरतकाल वर्णन ३६४
लक्ष्मण का किष्किन्धा में जाना ३६७
लक्ष्मण सुग्रीव संवाद ३७०
सुग्रीव का श्री रामचन्द्रजी के पास जाना ३७२
वानरों का सीता को ढूंढना ३७६
जांववान का हनुमान को समुद्र पार करने के लिए कहना ३७८

सुन्दर काण्ड (३८०)

हनुमान का समुद्र पार करना ३८०
हनुमान का अशोक वाटिका में जाना ३९२
जानकी दर्शन ३९५
रावण का अशोक वाटिका में आना ३९८
सीता का उत्तर रावण के प्रति ४०२
रावण का क्रोध में आना ४०३
रावण का जानकी पर क्रोध करना ४०५
राक्षसियों का जानकी को डराना ४०७
सीता से मिलने के लिए हनुमान का उपाय सोचना ४११
हनुमान का सीता को मुद्रिका देना ४१८
जानकी का श्री रामचन्द्र जी को संदेश देना ४२४
हनुमान का अशोकवाटिका को ध्वंस करना ४२५
हनुमान और राक्षसों में युद्ध ४२७
जंबुमाली तथा अक्षकुमार आदि का वध ४२८
मेघनाद का हनुमान को बांधना ४३२
लंका दहन ४३८
हनुमान का समुद्र के उस पार जाना ४४१

लङ्का काण्ड (४४६)

रावण का मंत्रियों के साथ विचार करना ४४४
विभीषण का रावण को सदुपदेश देना ४४७
रावण का दर्बार लगाना और युद्ध पर विचार करना ४४८

विभीषण का श्री रामचन्द्र जी के साथ मिलना ४६२
श्री रामचन्द्र जी का बिभीषण को स्वीकार करना ४६५
सेतु बंधन ४६६
शुक और सारणका रामकी सेना में आना ४७२
रावण का सीता के पास रामका छिन्न मस्तक लेकर जाना ४७५
मायामय सिरों को देख कर सीता का विलाप करना ४७७
सरमा राक्षसी का सीता को धीरज देना ४७६
वानर सेना का लंकाको घेर लेना और अंगद का दूत बन कर रावण के दर्बार में जाना ४८०
युद्ध का आरम्भ ४८३
मेघनाद का नागफांस से राम लक्ष्मण को बांधना ४८६
सीताको पुष्पकविमान पर चढ़ा कर पृथ्वी पर गिरे हुए राम लक्ष्मण दोनों भाईयों का दिखाना ४८६
गरुड़ का आना और नागफांस काटना ४६१
धूम्राक्ष का युद्ध ४६३
धूम्राक्ष का मारा जाना ४६४
वज्र दंष्ट्र नामक राक्षस का माराजाना ४६६
सेनापति अकंपन का बध ४६८
प्रहस्त का मारा जाना ५०२
रावण का कुम्भकर्ण को जगाना ५०७
कुम्भकर्ण का मारा जाना ५११
रावणका कुम्भकर्णके लिये विलाप करना ५२१
त्रिशिरा अतिकाय आदिका युद्ध में मारा जाना ५२२
मेघनाद का युद्धक्षेत्र में मायाकी सीता को मारना ५३०
लक्ष्मण का निकुम्भला में जाकर मेघनाद से युद्ध करना ५३५
रावण का विलाप करना और युद्ध के लिए चलना ५४३
लक्ष्मण का बर्च्छी लगने से मूर्छित होना ५४८
राम रावण युद्ध ५५४
लंकापति रावण का बध ५५८
राक्षसियों का विलाप और रावण का अंत्येष्टि संस्कार ५६०
विभीषण को राज देना और सीता को लंका से बाहर मंगवाना ५६२
पुष्पक विमान में चढ़कर सबका अयोध्या में जाना ५६६
भरत मिलाप ५६८
रामचन्द्र जी का सिंहासन पर बैठना ५७२

उत्तर काण्ड (५७४)

रावण की जन्म कथा ५७४
सीता वनवास ५८०
जानकी का महामुनि वाल्मीकि के आश्रम में जाना ५८७
लक्ष्मण का अयोध्या में जाना और महाराज को सीता के वन में छोड़ने की सूचना देना ५८८
राजा नृग की कथा ५८६
अश्वमेध यज्ञके लिए विचार ५६०
महामुनि बाल्मीकि का यज्ञ में पधारना ५६५
लव और कुश का जाना और रामायण गा कर सुनाना ५६६
श्री रामचन्द्र जी का बाल्मीकि के पास दूत भेजना और सीता का यज्ञ मंडप में आना और पृथिवी में समा जाना ५६६
श्री रामचन्द्र जी का व्याकुल होना ६०२
यमराज का आना और लक्ष्मण का त्याग ६०४
श्री रामचन्द्र जी का महाप्रस्थान ६०६

इति

बाल्मीकि रामायण

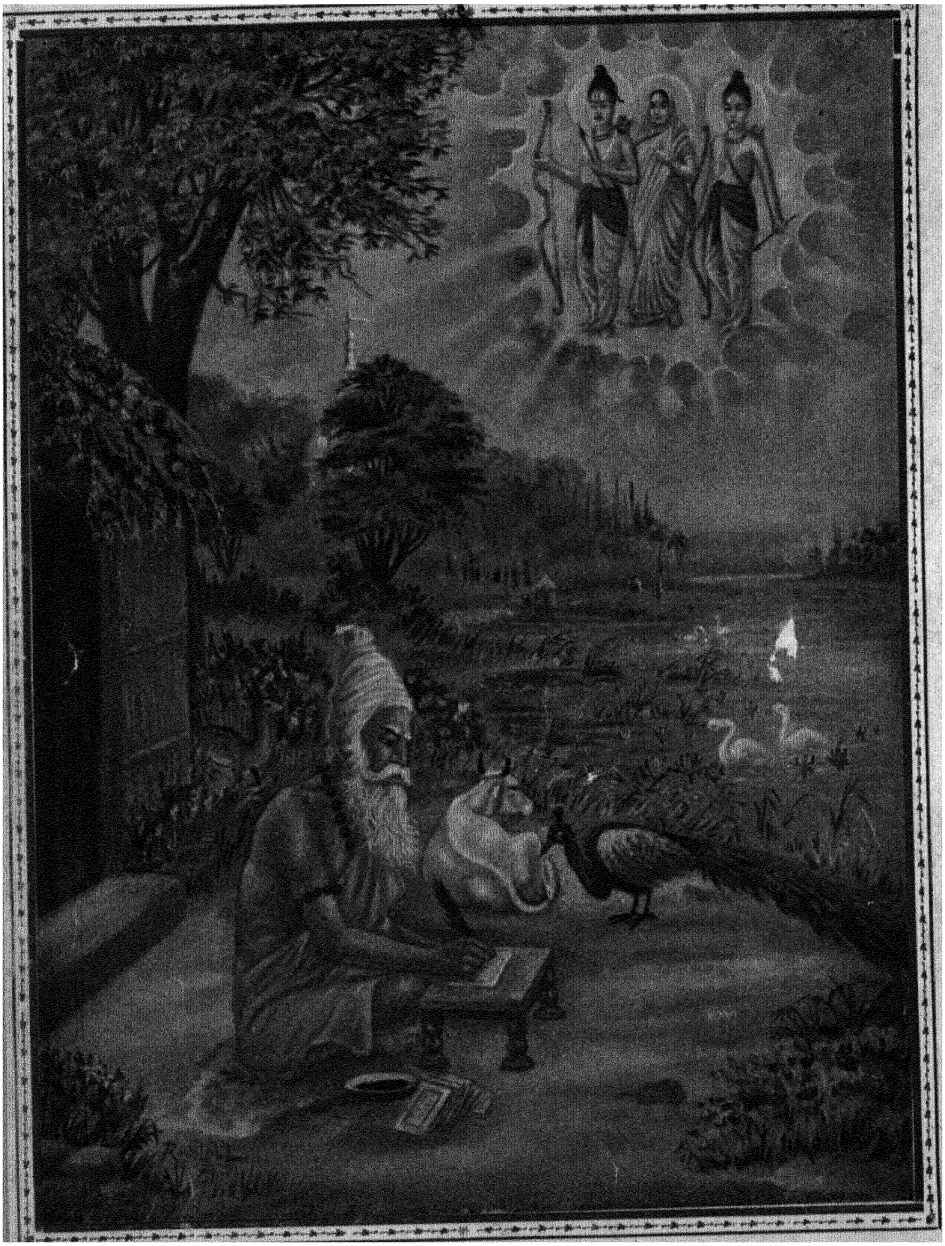

श्री बाल्मीकि ऋषि

Bhardawaj Press Lahore.

बाल्मीकि रामायण

मंगलाचरण

दोहा—मंगलायण मंगल करो, कथा समाप्त होय।
श्रीराम चरित पूरण करौं, विघ्न न लागे कोय॥ १॥

छन्द

युग त्रेता मध थित रामनौमी, जहिं जाने जग त्रैलोकी सने॥ १॥
भये प्रगट पूरण पुरुष रामा, स्वै इच्छा बुद्धि बल सने॥ २॥
कर बाल लीला सुख दयो, वर पाये थे भक्ति करी॥ ३॥
करा विश्वामित्र को यज्ञ पूर्ण, धनु तोड़ कर सीता वरी॥ ४॥
भयो परशुराम को मान खण्डन, वर कैकई सन बन गये॥ ५॥
कर सेतुपार मरोर रावण, फिर अवध मांह विशाखित भये॥ ६॥

सोरठा

पड़े जो हित चित्त लाय, राम कथा सब गुणमई।
तिसके राम सहाय, लोक सुखी परलोक यश॥ १॥

इति मंगलाचरण।

बाल काण्ड

एक दिन श्री वाल्मीक मुनि अपने आश्रम में बैठे पारब्रह्म परमेश्वर के ध्यान में मग्न और कठिन तपस्या में लीन थे, कि महर्षि नारद उनके आश्रम में पहुंचे। ऋषियों में श्रेष्ठ नारद मुनि को देखकर बाल्मीक मुनि

ने आसन पाद्य और अर्घ्य से उनकी पूजा करके पूछा, हे मुनियों में श्रेष्ठ नारद जी ! आप तीन लोक चौदह भुवन, नव खण्ड और सप्त द्वीपों में घूमने वाले तथा सारे ब्रह्माण्ड का समाचार जानते हैं, सो कृपा करके बतलाइये, कि इस समय संसार में कौनसा ऐसा पुरुष है, जो गुणों में श्रेष्ठ, बड़े पराक्रम वाला, धर्मात्मा, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़ व्रत, सदाचारी और प्राणि मात्र का हित चिंतन करने वाला है, जो विद्वान, बहुज्ञ और अपनी प्रजा को प्रसन्न रखता है, जिसका मन विकारों से रहित है, और जो सबका प्यारा है, जिसने अपने मनको वश में किया है, क्रोध पर विजय प्राप्त की है और युद्ध में जिस के क्रोध से देवता भी भयभीत होते हैं । हे नारद जी ! ऐसे महां पुरुष का वृत्तान्त मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूं, सो कृपा करके कहिये ।

वाल्मीक मुनि के इस प्रश्न को सुनकर नारद जी अति प्रसन्न होकर बोले हे परंतप वाल्मीक ! मैं आपको ऐसे महा पुरुष की कथा सुनाता हूं, जिसके सुनने से प्राणियों का कल्याण हो संसार में सुख सदाचार और धर्म की वृद्धि हो और जो कोई इस महापुरुष की कथा सुनेगा वह अमर पदवी को प्राप्त होगा, सो तू मन लगा कर सुन—

हे मुनिराज वाल्मीक ! महाराज इक्ष्वाकु की कुल का रत्न, सर्व गुणों से युक्त महात्मा राम इस समय सारे

संसार में प्रसिद्ध है । इस त्रेता युग में उसके समान धीर वीर विक्रमी इन्द्रियजित, मनस्वी, सदाचारी, सत्यवादी, प्रियवचन बोलने वाला, दयालु, शत्रुओं का नाश करने वाला, सिंह के समान ऊंचे कंधे और विशाल हृदय वाला, बलवान धनुष धारी, आजानु भुज, सुन्दर ग्रीवा वाला, जिसका मस्तक सदा हंसता रहता है, जिस के सुन्दर नेत्र कानों तक चले गये हैं, धर्मात्मा, दृढ़ व्रत, सदा अपनी प्रजा के हित में लगा रहने वाला, विद्वान, निर्मल शरीर और निर्मल हृदय वाला, वृद्धों को आदर देने वाला, प्रजापति के समान ऐश्वर्य्य शाली, प्राणि-मात्र का सहायक, क्षत्रिय धर्म में पूरा, वेद वेदांग को भली भान्ति जानने वाला, जिसकी स्मृति अति तीक्ष्ण है जिस प्रकार सारी नदीयां समुद्र का आश्रय लेती हैं उसी प्रकार सारे सद्गुणों का आधार रूप, सब पर समान दृष्टि रखने वाला, कौशल्या नंदन, समुद्र के समान उदार और हिमालय के समान स्थिर स्वभाव वाला है । शक्ति में राम विष्णु के और सुंदरता में चंद्रमा के समान है । क्रोध में उसका मुख मण्डल अग्नि के समान संसार को भयभीत कर देता है और क्षमा में वह पृथिवी के समान है । दान में वह कुवेर के समान है और सत्य बोलने में वह साक्षात धर्म है । ऐसे श्रीराम चन्द्र की कथा को जो कोई मनुष्य सुने वह परम पद को प्राप्त होवे, इतना कह कर बाल्मीक मुनि के प्रति

नारद जी ने संक्षेप से आदि से लेकर अंत तक अर्थात् भगवान रामचन्द्र के अवतार से लेकर रावण बध पर्य्यन्त सम्पूर्ण कथा वर्णन करी, जिसे सुनकर बाल्मीक मुनि जी परम प्रसन्न हुए और बड़े आदर सत्कार और पूजा करके नारद जी को विदा किया ।

महामुनि नारद के चले जाने पर बाल्मीक जी शिष्यों समेत परम पवित्र तमसा नदी के तीर पर गये। उस देव नदी की सुन्दरता को देख अत्यन्त आल्हाद को प्राप्त होकर बाल्मीक जी अपने शिष्य भरद्वाज मुनि को बोले—हे भरद्वाज ! देखो इस नदी का जल तपस्वियों के मन के समान कैसा स्वच्छ निर्मल और शान्त है, सो कलश को यहीं रखदो और पहरने के लिये वल्कल दो, हम स्नान करेंगे । भरद्वाज से वल्कल लेकर महामुनि बाल्मीक प्रकृति के सौन्दर्य्य और बन की शोभा देखने लगे, जहां हंस सारस कूज रहे थे, और बसन्त के वायु से झूमती हुई शाखाओं पर पक्षि मधुर कलरव से गा रहे थे, निर्मल जल में स्वर्ण के से पंखों वाली मछलीयां खेल रही थीं, और तीर के निकट ही क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा चुग रहा था, जिन्हे देखकर महामुनि बाल्मीक उस परमात्मा की लीलहा के दृष्य का आनन्द लेने लगे । इतने ही में एक व्याध ने उस जोड़े में से नर क्रौञ्च को ऐसा बाण मारा, कि वह बेचारा छटपटा कर भूमि पर लोटने लगा और देखते २ ठण्डा हो गया ।

अपने पति क्रौञ्च को लोहु मे भरा देख उसकी स्त्री व्याकुल हुई २ नेत्रों मे जल के विंदु गिराती उसके आस पास घूमने लगी। उस करुणा जनक हत्या को देखकर बाल्मीक जी ने क्रोध मे व्याध को शाप दिया, कि—

"हे व्याध ! काम पीड़ित इस निर्दोष पक्षि को तूने मार डाला, जा ! तू भी कभी चैन न पावेगा और अनेक वर्षों पर्य्यन्त व्याकुल रहेगा"।

इस प्रकार व्याध को शाप देकर महामुनि स्नान करके अपने आश्रम में लौटे, परन्तु क्रौञ्च के मरने और क्रौञ्ची के रुदन ने उन के हृदय पर ऐसा प्रभाव किया, कि उनका हृदय क्षण भर के लिये भी शान्त न होता, उठते बैठते टहलते वही दृश्य उनके हृदय को व्याकुल करने लगा। भगवान का ध्यान समाधि और वेद वेदांगों की कथा तथा शिष्यों के साथ ज्ञान चर्चा कोई भी बात उन के मन को शान्त न कर सकी। तब अत्यन्त शोकातुर होकर वह उस पर बिचारने लगे, कि यह क्या हो गया। चिरकाल तक वह इसी विचार में मग्न बैठे हुए तर्कना कर रहे थे, कि मुनियों के ईश ब्रह्मा उनके आश्रम में पधारे ब्रह्मा को देखकर बाल्मीक मुनि ने उनकी पूजा अर्चना की और आसन दिया परन्तु ध्यान उनका उसी क्रौंच के जोड़े की ओर लगा रहा और ब्रह्मा के साथ वार्तालाप करते हुए वह बार २ ठंडी सांस लेने लगे। उनकी यह अवस्था देखकर ब्रह्मा पूछने लगे हे महामुने ! परम

तपस्वी और शान्त स्वभाव होते हुए भी आज आप के चित्त को मैं स्थिर नहीं देखता, हे मुनि श्रेष्ठ ! इस का क्या कारण है ? तब बाल्मीक जी ने ब्रह्मा को क्रौंच पक्षी की हत्या का वृतान्त सुनाकर कहा—हे मुनीश ! जिस समय से मैंने उस क्रौञ्च को मरते और विरह से व्याकुल उसकी स्त्री को देखा है, मेरा हृदय अशान्त हो उठा है, इस को स्थिर करने का मैंने बहुत यत्न किया है, परन्तु यह स्थिर नहीं होता, इस कारण हे प्रभो ! आप घटघट की जानने वाले हैं, मुझे कोई ऐसा उपाय बतलावें जिस से मन स्थिर होवे । तब ब्रह्मा बोले हे बाल्मीक ! भगवान राम की कीर्ति और यश गायन करने से तुम्हारा व्याकुल मन शान्ति को प्राप्त करेगा, इस में तनिक भी सन्देह नहीं है, सो जिस प्रकार महर्षि नारद ने तुम को रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र सुनाया है उसे तुम आदि से अन्त तक विस्तार पूर्वक रचो इस से सारे जगत का कल्याण होगा और हे बाल्मीकि जी ! मैं वर देता हूं कि इस रामचरित्र के लिखने से तुम्हारी कीर्ति अमर होगी, तुम्हारा यश संसार में अटल होगा और तुम्हारा नाम जब तक सूर्य और चन्द्रमा है कभी न मिटेगा ।

श्री ब्रह्मा जी के चले जाने पर महामुनि बाल्मीकि जी ने भगवान् रामचन्द्र के चरित्र को इस प्रकार रचा ।

——:-❀-:——

❀ कथा-आरम्भ ❀

सरयू नदी के तट पर कोशल नामक एक बड़ा रमणीक देश है, अन्न और धन से परिपूर्ण इस देश की अयोध्या नाम की प्रसिद्ध राजधानी है, जिसको महाराज मनु ने बनाया था।

इन्द्रपुरी के समान इस विशाल और सुन्दर नगरी में सूर्य्य कुल के अवतंस महाराज दशरथ राज्य करते थे। महाराज दशरथ चारों वेदों के जानने वाले, शूर-वीर परमेश्वर के भक्त और सदा प्रजा को प्रसन्न रखते थे। इन के राज्य में कोई चोर, शराबी जुआ खेलने वाला, झूठ बोलने वाला और नास्तिक न था, एक दिन महाराज दशरथ ने सन्ध्या, स्नान और भोजन से निबट कर दर्पण में अपना मुंह देखा तो उनको अपने भौंरे के समान काले केशों में एक श्वेत केश दिखाई दिया। यह देख उन्होंने एक ठंडी सांस भरी और बोले—हा! यौवन अवस्था मेरा साथ छोड़ गई, अब मैं वृद्ध हुआ और यह श्वेत केश मानों काल भगवान ने मुझे मृत्यु का संदेश भेज दिया है. हा दैव! क्या सूर्य्य कुल का चिन्ह इस संसार से मिट जायेगा? मेरे मरण के पश्चात् कौन इस बड़े राज्य को संभालेगा? महाराज मनु, इक्ष्वाकु, दलीप और अज का नाम मेरी मृत्यु के साथ

ही मिट जायेगा ? हा ! पुत्र के बिना यह राज्य, ऐश्वर्य सुख और सम्पत्ति बिच्छु के समान मेरे हृदय को डंक मारती हैं। वह मनुष्य जो निर्धन हैं परन्तु जिन के आंगनों में सन्तान खेलती है, जिन के वस्त्र, मट्टी में खेलते हुए पुत्रों को गोद में उठाने से मैले हो गये हैं, मुझ से सहस्र गुना अच्छे हैं, अब मुझे इस राज्य से क्या काम ?

इन विचारों में मग्न हुए महाराज दशरथ घोर चिंता में डूब गये, तब एकाएक उनके मन में संकल्प उठा, कि पुत्र के लिये क्यों न अश्वमेध यज्ञ करूं, कदाचित् परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों।

तब उस धर्मात्मा ने गुरु वसिष्ठ को बुला कर कहा हे गुरो ! पुत्र के न होने से मेरा हृदय बहुत दुःखी है इस लिये अश्वमेध यज्ञ करके मनोवांच्छित सन्तान को प्राप्त करना चाहता हूं, आप गुरु हैं, भवसागर के तारने वाले हैं आप मुझे सम्मति देवें। तब वसिष्ठजी प्रसन्न होकर बोले हे राजन् ! तुम्हारी मनोकामना पूरी हो, यज्ञ की सामग्री जोड़ो सरयू नदी के उत्तर तीर पर यज्ञ-भूमि बने और शीघ्र ही श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ दो। गुरु वसिष्ठ के मुख से यह वचन सुनकर परम प्रसन्न होकर महाराज दशरथ ने सब मन्त्रियों को यज्ञ-सामग्री तैयार करने की आज्ञा दी और स्वयं महल में जा कर अपनी परम-प्रिय राणियों को बोले, कि तुम यज्ञ की दीक्षा लो, मैं पुत्र

के लिये यज्ञ करूंगा । महाराज के वचन सुनकर रानियों के उदास हुए हुए मुख ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे सूर्य्य के उदय होने पर मुरझाए हुए कमल खिल उठते हैं ।

राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म ।

महाराज की आज्ञा से थोड़े ही दिनों में यज्ञ की सारी सामग्री तैय्यार हो गई, बहुमूल्य-रत्नों और अनेक प्रकार की मणियों से यज्ञशाला सजाई गई, देश देशान्तर से बड़े २ विद्वान् पण्डित ऋषि और मुनि यज्ञ करवाने के लिये आ गये । जब सब तय्यारी हो चुकी तो वसिष्ठ आदि राज—गुरु तथा सारे मन्त्रियों के साथ महाराज दशरथ अपने परम मित्र अंगदेश के राजा लोमपाद के जमाई ऋष्य शृंग को आगे करके यज्ञ-शाला के अन्दर प्रविष्ट हुए और वेदादि शास्त्रों के अनुसार विधिपूर्वक यज्ञ करने लगे ।

यज्ञ समाप्त होने पर पुत्र की इच्छा वाले महाराज दशरथ ने ऋत्विजों को कहा हे ऋत्विज-गण ! आपने बड़े परिश्रम और विधि से इस महान् यज्ञ को पूर्ण किया है, इस लिये जितनी भूमि चाहो मैं दान देता हूं । तब ऋत्विज बोले हे राजन् ! आप इस सारी पृथिवी के राजा हैं, और आप ही इसकी रक्षा कर सकते हैं, हमें इसके पालन करने की समर्थ नहीं, क्योंकि हम सदा वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय में लगे रहते हैं । यह

सुन महाराज ने उनकी इच्छानुसार स्वर्ण, चांदी और बहुतसा धन तथा गौएं दान दीं और फिर यज्ञ-अग्नि के प्रसाद चरु को अपनी रानियों में बांट दिया, जिसे खा कर वह तत्काल गर्भवती हुईं।

यज्ञ समाप्ति के पश्चात् बारी २ से छः ऋतुएं व्यतीत होगईं। बारहवां चैत्र मास आने पर नवमी तिथि के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में सूर्य्य, मंगल, शनि, बृहस्पति और शुक्र जब अपने २ ऊंचे स्थानों में आ गये तब कर्क लग्न के उदय होने पर श्री भगवान् रामचन्द्र जी का जन्म हुआ। उस समय बड़े तेजस्वी और रूपवान पुत्र को पाकर माता कौशल्या की ऐसी शोभा हुई जैसे बाल सूर्य्य के उदय होने पर पूर्व दिशा शोभायमान होती है. उस के अनंतर केकयी के गर्भ से शुभ लक्षणों वाले भरत का जन्म हुआ और फिर सुमित्रा ने बड़े तेजस्वी लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया।

चारों पुत्रों के जन्म का समाचार पाते ही महाराज दशरथ गद्गद प्रसन्न हुए। गंधर्व लोग मधुर स्वरों से गाने लगे, अप्सराएं नृत्य करने लगीं। सारी अयोध्या में मंगला चार होने लगे, और देवता लोग विमानों में बैठ कर आकाश से पुष्प बर्साने लगे। महाराज दशरथ का द्वार भाट ढाढी और दान लेने वाले ब्राह्मणों से भर गया जिन को हीरे मोती स्वर्ण चांदी और गौएं दे कर महाराज ने सन्तुष्ट किया। इन चारों पुत्रों का नाम

*

बाल्मीकि रामायण

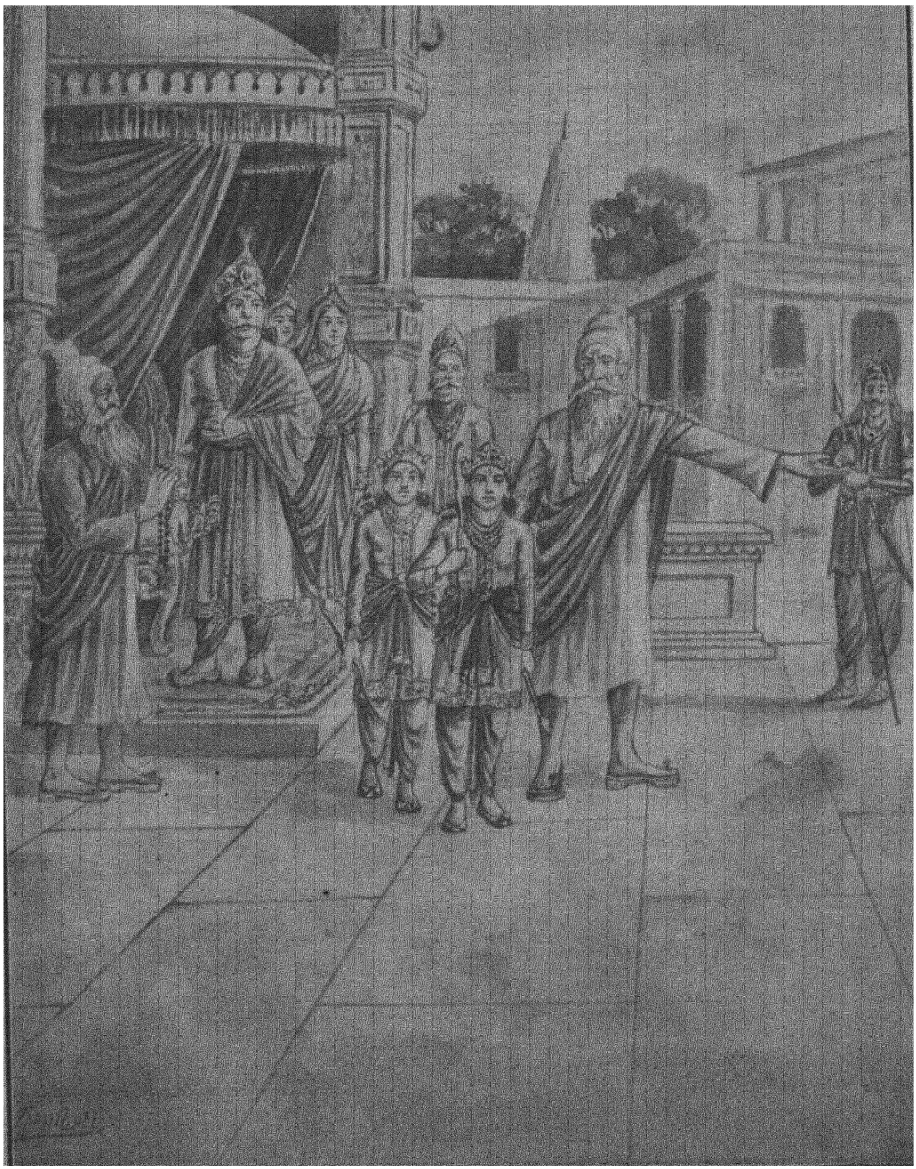

मुनि विश्वामित्र का कुमारों को लेकर जाना। (पृष्ठ ११)

Bharadwaj Press Lahore.

वेद-विधि से गुरु वसिष्ठ ने राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न रखा ।

इनमें रामचन्द्र जैसे आयु में बड़े थे वैसे ही गुणों में भी बड़े हुए, चन्द्रमा के समान यह अपनी प्रजा के प्यारे थे । हाथी घोड़े और रथ के चलाने में यह बड़े प्रवीण और सदा अपने पिता की सेवा में लगे रहते थे । चारों पुत्रों में से इन के साथ महाराज का अत्यन्त स्नेह था । जब यह चारों राजकुमार महाराज के पास बैठते तो दशरथ ऐसे शोभायमान होते जैसे चारों दिक्पालों से ब्रह्मा शोभा पाते हैं ।

——:०:——

विश्वामित्र मुनि का आना और महाराज से कुमारों का मांगना ।

एक दिन दर्बार में बैठे हुए महाराज दशरथ ने महामंत्री वसिष्ठ से कहा हे गुरो ! मैं अब वृद्ध हो गया हूं और राजकुमार भी किशोर अवस्था को प्राप्त हो गये हैं, मनुष्य का जीवन जल में बुदबुद के समान क्षण भंगुर है, इसका कोई भरोसा नहीं, इस लिये मेरी लालसा है कि मैं कुमारों का विवाह अपनी आंखों देखूं इस लिये हे गुरो ! कुमारों के योग्य कन्याओं से इन के विवाह का प्रबन्ध करो । तब महाराज और वसिष्ठ इस विषय पर विचार करने लगे । इसी समय महामुनि विश्वामित्र महाराज से मिलने के लिये आये और द्वार-पाल से कहा. कि शीघ्र अन्दर जा कर राजा से मेरे

आने का समाचार कहो । द्वारपाल से सूचना पा कर महाराज दशरथ बड़े आदर के साथ मुनि को अन्दर ले गये और आसन पाद्य अर्घ्य से उनकी पूजा की । तब अति प्रसन्न हो कर मुनि ने महाराज दशरथ, गुरु वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मंत्रियों से कुशल पूछी । इस प्रकार जब यथा विधि आदर सत्कार की बातें हो चुकीं तो महाराज सिंहासन पर बैठकर बोले हे महामुनि विश्वामित्र ! आप के दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ, आप के चरणों की रज से आज मेरा गृह, दर्बार तथा सारी नगरी पवित्र हुई । हे महर्षे ! आप के आगमन से आज मैं ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पुत्र जन्म के दिन हुआ था. हे भगवन् ! कहिये ! आपका आना कैसे हुआ, मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूं । यह सुनकर विश्वामित्र बोले हे राजन् ! सूर्य्य कुलके राजाओं की ऋषि मुनि और विप्रों में सदा ही से अटल भक्ति रही है, इसलिये आपने मेरे विषयमें जो वचन कहे हैं आप के योग्य ही हैं । हे नरश्रेष्ठ ! मैं आप के पास कुछ मांगने आया हूं, परन्तु यदि आप मेरे वचन को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करें तो मैं कहूं । तब दशरथ बोले हे ब्रह्मर्षि ! आप के लिये मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं, यह राज पाट तो क्या ? आप निश्शंक हो कर कहिये मैं आप के वचनों पर फूल चढ़ाऊंगा । महाराज के इस उत्तर से प्रसन्न हो कर विश्वामित्र ने कहा, राजन् ! मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया है, परन्तु जिस समय

वह समाप्त होने पर आता है, उसी समय मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस वहां आकर यज्ञ की वेदी में लहु हड्डी और मांस फेंक देते हैं, और इस प्रकार उस बड़े यज्ञ को जिस के लिये मैं कई मास से यत्न कर रहा हूं नष्ट-भ्रष्ट करदेते हैं। हे राजन्! यदि मैं चाहूं तो उन दोनों को क्षण-मात्र में मार डालूं, परन्तु यज्ञमें क्रोध करने से यज्ञ नष्ट हो जाएगा, इस विचार से मैं उन पर हाथ नहीं उठा सकता। बारम्बार किये गये उनके उपद्रवों से दुखी होकर मैं आपके पास आया हूं, आप राजा हैं, क्षत्रिय हैं, ऋषि मुनि ब्राह्मण तथा सारी प्रजा की रक्षा करना आप का धर्म है, सो हे नर शार्दूल इस उपद्रव को निवारण करने के लिये आप मुझे अपने बड़े पुत्र को देवें, यही मांगने के लिये मैं आप के पास आया हूं। इन के हाथ से उनकी मृत्यु होगी, यह निश्चय जानिये। हे राजन्! वह दोनों राक्षस राम के सामने खड़े भी नहीं हो सकते, लड़ना तो कहां? आप राम को बालक न समझें, बाल सूर्य भी अन्धकार का नाश कर डालता है। यज्ञ की दस रात्रियां कमल नयन राम की आवश्यकता है, इस लिये ऐसा कीजिये जिससे यज्ञ काल व्यतीत न हो जाय। इतना कहकर सूर्य्य के समान तेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये।

महामुनि विश्वामित्र के वचन सुन राजा दशरथ कुछ काल के लिये मूर्च्छित से हो गये, बिजली कड़कने

से जैसे मनुष्य का हृदय डोल जाता है, इसी प्रकार महाराज दशरथ तकिये के सहारे लेट गये, उनका मस्तिष्क शून्य सा हो गया, परन्तु फिर होश में आकर बोले—हे विश्वामित्र ! मैं स्वयं तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करुंगा, मेरी सारी सेना जो तीनों लोक को जीतने में समर्थ है, तुम्हारे यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त करने में सहायता देगी, राम अभी बालक है, राक्षसों की माया को नहीं जानता, उस ने कभी युद्ध नहीं देखा, वह क्या लड़ेगा और हे मुनि श्रेष्ठ ! राम के वियोग में मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता, सो आप उसको न ले जाएं, और यदि आप उसको अवश्य ले जाना चाहते हैं तो मेरी चतुरंगिणी सेना और मैं स्वयं राम के साथ साथ जाऊंगा, आप अकेले राम को न ले जायें।

विश्वामित्र ने देखा कि पुत्र मोह मे राजा अपनी प्रतिज्ञा से फिसल रहा है, उसने क्रोध मे भ्रकुटी चढा कर कहा, हे राजन् पहिले वचन देकर अब प्रतिज्ञा भंग करते हो, यह रघुकुल की रीति नहीं है. यदि आप अपनी बात से फिरते हैं तो मैं राम को नहीं मांगता और जैसे आया हूं वैसे ही लौट जाऊंगा। यदि मुझे पहिले पता होता कि सूर्य कुल के वंशधर अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर नहीं रहते तो मैं यहां न आता।

इतना कहते कहते उस समय विश्वामित्र के नेत्र क्रोध से अंगारों के समान जलने लगे, रोष से मुंह लाल हो गया और सारा शरीर कांपने लगा।

तब महर्षि को ऐसी क्रुद्ध अवस्था में देखकर पृथिवी कांप उठी, देवता गण भयभीत हो गये, और राजसभा में बैठे हुए मन्त्रियों का हृदय डोलने लगा। यह अवस्था देखकर मंत्री वसिष्ठ महाराज दशरथ से बोले—हे राजन्! रघु की कुल धर्मात्मा है, धीर है, सत्य बोलने वाली और वचन का पालन करने वाली है, यह बात सारे जगत में प्रसिद्ध है, आप अपने धर्म का परित्याग न करें, हे नरशार्दूल! 'मैं अमुक काम करूंगा' ऐसा कह कर जो नहीं करता उस के यज्ञ होम तप और सारे शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं इस लिये राम को मुनि के साथ भेज दें, राम चाहे बालक है अस्त्र विद्या में निपुण नहीं है, परन्तु विश्वामित्र से रक्षा किए जाने पर राक्षस इसको हानि नहीं पहुंचा सकते। महामुनि विश्वामित्र धर्म की मूर्ति, साक्षात शक्तिरूप और सब प्रकार की विद्याओं को जानने वाले हैं। इनके साथ रहने से राम शस्त्रविद्या में निपुण होंगे। हे राजन्! तीन लोक चौदह भुवन में इनके समान शस्त्र विद्या का जानने वाला दूसरा नहीं है। धर्म के जानने वाला, और नये २ अस्त्रों का आविष्कार करने वाला यह संसार में एक ही है। यह कुशिक का पुत्र स्वयं राक्षसों का नाश कर सकता है, राम के कल्याण के लिये विधिना ने इसे तेरे पास भेजा है, इस लिये निश्शंक होकर पुत्र को इस के साथ भेज।

वसिष्ठ के वचन सुन राजा को धीरज हुआ और

उस ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण और राम को बुलाया। माता पिता गुरु वसिष्ठ ने स्वस्तिवाचन और मंगलाचार किया। इस के पश्चात् प्रसन्न हो कर पिता ने पुत्रों का मस्तक सूंघा और दोनों की भुजाएं विश्वामित्र के हाथ में सौंप दीं। जब राम और लक्ष्मण को संग लेकर मुनि चले तो शंख दुंदुभि बजने लगे शीतल मंद और सुगंधित वायु बहने लगे।

रास्ते में आगे आगे विश्वामित्र और पीछे पीछे कंधों पर धनुष रखे राम और लक्ष्मण दोनों भाई चले जाते थे। मुनि के पीछे पीछे चलते हुए यह दोनों छोटे छोटे धनुषधारी ऐसी शोभा देते थे जैसे ब्रह्मा के पीछे अश्वनी कुमार चलते हों। उस समय दोनों भ्राता हाथों में धनुष लिये हुए बड़ी कांति वाले, गोह की त्वचा के दस्ताने पहने हुए, कमर में छोटी छोटी तलवारें लटकाए, मुनि के पीछे पीछे चलते हुए अद्वितीय शोभा दे रहे थे।

जब वह तीनों छः कोस तक चलते चलते सरयू नदी के दक्षिण तीर पर पहुंचे तो मधुर वाणी से मुनि विश्वामित्र बोले हे पुत्र राम! जल लेकर आचमन करो और नदी में स्नान करके मन की थकावट दूर करो, यह समय व्यर्थ गवाने का नहीं है। आज मैं तुझे बला और अतिबला नाम की विद्याएं सिखाता हूं, हे वत्स! इन दोनों विद्याओं का जानने वाला पुरुष संसार में सब से श्रेष्ठ होता है, यह विद्याएं सब विद्याओं की माता हैं। हे रघुनंदन! इन

विद्याओं के जानने से तुझे भूख और प्यास कभी दुख न देगी, और सारे संसार में तेरा यश फैलेगा, ब्रह्मा की उत्पन्न की हुई यह दोनों विद्याएं बड़ी तेज वाली हैं। हे सूर्य्य कुलमणि ! सर्वगुण सम्पन्न होने से तुही इन विद्याओं के ग्रहण करने योग्य है, तेरे लिये यह बहुत फल देंगी। तब सरयू में स्नान करके रामचन्द्र ने शुद्ध मन होकर विश्वामित्र से बला और अति बला दोनों विद्याओं को ग्रहण किया। विद्या ग्रहण करते ही रामचन्द्र का मुख मण्डल ऐसा कान्तिवान हो गया जैसे शरद ऋतु में सूर्य्य चमकता है। इसके पश्चात् उस रात्रि उन तीनों ने सरयू के तट पर वहीं निवास किया और दोनों भाईयों ने गुरु के समान विश्वामित्र की सेवा करते हुए तृण शय्या पर रात्रि व्यतीत की।

——:०:——

कामदेव का आश्रम।

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में तृण-शय्या पर शयन करते हुए दोनों भाईयों से मुनि विश्वामित्र बोले, हे राघव ! रात्रि बीत गई, और सवेरा हो गया । सहस्रों राक्षसों का नाश करके सूर्य्य भगवान उदय होने वाले हैं, यह समय देवताओं को बहुत प्यारा है, हे पुत्रो ! उठो, शौच स्नान और दतौन से निबट कर संध्योपासन करो, अग्नि होत्र से देवताओं को प्रसन्न करो, यह समय सोने के योग्य नहीं है। तब मुनि के कथन से दोनों भाई

तृण-शय्या से उठे और स्नान संध्या आदि कर्म्म से निवृत्त होकर मुनि के पीछे २ चलने लगे। तब उनको सग लेकर मुनि गंगा की ओर चलते २ वहां पहुंचे जहां गंगा और सरयू का संगम होता था। वहां तीर के निकट ही गहवर बन में तपस्वियों के सुन्दर आश्रम थे जिन्हें देखकर रामचन्द्र बोले हे मुनीश ! यह परम रमणीय आश्रम किसका है ? और इसमें कौन निवास करता है, तब विश्वामित्र ने कहा, कि हे राघव ! एक समय इस स्थान पर कैलाश पति महादेव ने घोर तपस्या की थी, उनके तप से भयभीत होकर इन्द्र ने कामदेव को तप भंग करने के लिये भेजा कामदेव ने शिवजी को अपने बाणों से बहुत दुख दिया तब क्रुद्ध होकर महादेव ने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया, तब से वह अंग रहित हुआ और उसका नाम अनंग पड़ा, और इस देश का नाम अंग देश हुआ। सो यह आश्रम शिव का है और उसके भक्त यहां निवास करते हैं। कामदेव को भस्म करने से इसको काम-आश्रम भी कहते हैं। हे राम ! आज की रात्रि यहीं निवास करो। तब गुरु की आज्ञा पाकर परम प्रसन्न हो दोनों भाईयों ने वहां स्नान और संध्योपासना की। इसके अनंतर रात्रि होने पर विश्वामित्र ने अनेक प्रकार की कथाएं कहकर दोनों भाईयों के हृदयों को प्रसन्न किया और फिर गायत्री का जप करके तृणों की सेजा पर सो गये।

ताड़का बन ।

फिर प्रातःकाल उठकर मुनि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को साथ ले नदी के तट पर आए। महर्षि और राजकुमारों को देख बनवासी मुनि एक सुंदर नौका ला कर बोले, हे महामुने ! राजकुमारों सहित आप नौका पर विराजमान होकर निर्विघ्न पार हो। तब विश्वामित्र उन मुनियों का पूजन करके राजपुत्रों सहित नौका पर सवार हुए, और थोड़े ही समय में उस वेगवती नदी के पार हुए जो समुद्र को मिलने के लिये भागी जारही थी। नदी के उस पार एक भयानक बन था, जिसे देखकर राम बोले, हे गुरो ! यह बन बड़ा दुर्गम है, जिसमें झिल्लीयों का शोर कानोंको फाड़े डालता है, सिंह बाघ और जंगली जंतुओं की भयानक दारुण ध्वनि क्षण क्षणमें उठती है, इसके अंदर जहां तहां भालु भैंसे शूकर और हाथियों के झुंड फिरते दिखाई देते हैं। धावे, अश्वकर्ण, ककुभ, बिल्व, तिदुक और कंटक मय बेरके वृक्षों से यह ऐसा सट गया है, कि चारों ओर प्रकाश होने पर भी इसके अंदर अंधकार है हे महर्षे ! यह कौन सा बन है और इसका क्या नाम है ? रामचंद्र के ऐसे पूछने पर विश्वामित्र बोले हे शत्रुओं के नाश करने वाले ! पूर्व काल में यहां मलदा और करुष नामक दो बड़े समृद्ध देश थे ! धन धान्य मनुष्य पशु और सुंदर भवनों वाले इन देशों के साथ सारे भारत का व्यापार था। परन्तु कुछ समय से ताड़का नाम की

एक यक्ष कन्या यहां से दो कोस तक यात्रियों का मार्ग रोक रही है। यह यक्षिणी सुंद राक्षस की स्त्री और मारीच राक्षस की माता बड़े पराक्रम वाली हज़ार हाथियों का बल रखने वाली है। उसने अपने महा तेजस्वी बड़े शरीर वाले पुत्र मारीच के साथ मिलकर इन दोनों देशों का नाश कर डाला है । अनेक मनुष्योंको मार मार कर इन्होंने खा लिया है, जिससे भयभीत होकर लोग भाग गये हैं, और जहां कभी किसी समय लक्ष्मी का निवास था आज यह शेर बाघ और हिंस्र जंतुओं का घर बना हुआ है। हे राघव इस बन में चलकर उस राक्षसी का बध करो, क्योंकि इसके भयसे कोई मनुष्य इधर नहीं आता और यदि कोई भूला भटका बटोही आ निकले तो इन राक्षसों के हाथों मारा जाता है, सो हे रिपुदमन मेरी आज्ञा से उसे मारो तुम्हें इसमें कोई पाप नहीं।

यह सुनकर रामचंद्र बोले हे महामुनि ! इस यक्ष कन्या में हज़ार हाथियों का बल कैसे आया, स्त्रीयां तो स्वभाव ही से निर्बल और भीरु होती हैं, इसका रहस्य मैं आप से सुना चाहता हूं ? विश्वामित्र बोले-हे राघव ! सकेतु नामक एक बड़ा बलवान् यक्ष था। उसके कोई संतान न थी। सन्तान के लिये उसने उग्र तप किया। तब ब्रह्मा की प्रसन्नता से उसके घर में ताड़का नाम कन्याका जन्म हुआ। ब्रह्मा जी ने उस कन्या को एक हज़ार हाथी का बल दिया । जब यह कन्या युवावस्था

को प्राप्त हुई तब सुकेतु ने सुन्द नामक राक्षस के साथ विवाह कर दिया ताड़का के गर्भ से मारीच नामक अति बलवान् पुत्र का जन्म हुआ। हे राघव ! एक दिन मारीच के उपद्रवों से दुखी होकर अगस्त्य ने शाप दिया कि " तू राक्षस होवे, अपने पुत्रकी यह गति देख सुंद को क्रोध आया और वह अगस्त्य के मारने को दौड़ा। तब महर्षि अगस्त ने शाप देकर उस को भी भस्म कर दिया इस पर क्रोध से आग बगूला हुई ताड़का ऋषि पर झपटी ! तब ऋषि ने उसको भी शाप दिया, कि हे ताड़के ! तेरा सुन्दर शरीर अति कुरूप होवे। तब से वह विरूप हुई हुई राक्षसी इस अगस्त्य मुनि के स्थान को नाश किये डालती है, सो हे रघुनन्दन ! इसको मारकर पृथिवी का भार हलका कर ! तेरे सिवा संसार भर में अन्य कोई मनुष्य भी इसे मारने में समर्थ नहीं है।

यह सुनकर रामचन्द्र बोले हे ब्रह्मवादी ! आपकी आज्ञा मेरे सिर मस्तक पर धारण करने योग्य है, सो मनुष्य-मात्र की रक्षा के लिये मैं इसका बध करूंगा। इतना कह कर शत्रुओं को दबाने वाले राम ने धनुष के मध्य में मुट्ठी बांधकर चिल्ले को कान तक खेंचकर तीव्र टंकार की। मेघ की गर्ज के समान उस धनुष-टंकार को सुनकर बन के सब जीव-जन्तु भयभीत हुए हुए चारों ओर भागने लगे। उस शब्द को सुनकर क्रोध से मतवाली हुई हुई वह राक्षसी उसी ओर दौड़ी

जिधर राम धनुष ताने उसकी राह देख रहे थे। उस विकराल मुख वाली और ताड़-वृक्ष के समान लंबी डील वाली राक्षसी को मुंह खोले अपनी ओर देख कर राम लक्ष्मण से बोले, हे सुमित्रा नंदन ! देख इस नरभक्षिणी राक्षसी की देह कैसी भयंकर है, जिसे देखते ही सामान्य मनुष्यों के हृदय दहल जाते हैं सो तू सावधान हो कर खड़ा रह मैं इसे मारूंगा। इतने में वह विकराल-रूप राक्षसी भुजाओं को पसारे आंधी के समान धूल उड़ाती हुई बिजली की तरह गर्जती हुई राम लक्ष्मण पर टूट पड़ी। तब राम ने विद्युत-वेग से धनुष चढ़ाया और तीक्ष्ण बाणों से उसकी छाती को बींध दिया, जिनकी पीड़ा से चीखती हुई वह चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ी और मर गई। ताड़का के मरने से महा मुनि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर राम का मस्तक चूमा और हृदय से लगाकर बोले हे राघव ! आज की रात्रि यहीं विश्राम करें, कल सवेरे मेरे आश्रम की ओर प्रस्थान करना।

मुनि की आज्ञा से रामचन्द्र वह रात्रि उसी स्थान पर रहे। ताड़का के मरने से शाप से रहित हुआ हुआ वह बन ऐसा रमणीक हो गया, जैसा कुबेर का चैत्ररथ नामक बन। इस प्रकार उस नरभक्षिणी विकराल यक्ष-कन्या का बध करके प्रभात होते ही देवताओं से पूजित हुए हुए राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ वहां से चले।

विश्वामित्र का रामचन्द्र को अस्त्र देना ।

ताड़का बन से आगे चलते समय विश्वामित्र स्नेह भरे वचनों से बोले हे दाशरथि ! ताड़का के मारने से मैं तुम पर अति प्रसन्न हुआ हूं और उन अस्त्रों को तुझे देता हूं, जिनके ग्रहण करने से तू देवता असुर दैत्य राक्षस यक्ष और नागादिक शत्रुओं को सहज ही में जीत सकेगा, हे राघव ! दण्डचक्र, धर्मचक्र और कालचक्र राक्षसों का नाश करने वाला इन्द्रचक्र तुझे देता हूं जिनको धारण करके देवताओं में तू सब से बड़ा होगा और हे राम ! बिजली का बना हुआ वज्रास्त्र तथा महादेव का शूल और ब्रह्मशिर, ऐषीक और सब अस्त्रों से बड़ा ब्रह्म अस्त्र तुझे देता हूं जिसके प्राप्त करने से तीन लोक चौदह भुवन तेरे आगे नमस्कार करेंगे । इनके अतिरिक्त हे सूर्य्य कुलावतंस ! बड़ी प्रचंड दोगदाएं मोदकी व शिखरी तुझे देता हूं । हे राम अस्त्रों में उत्तम अस्त्र धर्म पाश और काल पाश और वरुण पाश यह तीनों तुम्हें देता हूं । हे आजानुभुज ! सूखी और गीली दो प्रकार की बिजली, पिनाक अस्त्र नारायण अस्त्र और आग्नेय अस्त्र वायव्यास्त्र, हयशिर अस्त्र तथा क्रौञ्च अस्त्र तुझे देता हूं और हे कौशल्या नन्दन ! कंकाल, मुसल, घोर कपाल तथा किंकणी जिनको असुर चलाते हैं, यह सब तुझे देता हूं और नन्दन नामक विद्याधरों का अस्त्र, खड्ग, मोहन, प्रस्वावन, प्रशमन, सौम्य, वर्वण, संतापन, विलापन, मदा-

नास्त्र गंधर्वास्त्र मानवास्त्र पैशाचास्त्र, तामस और अद्भुत बल रखने वाला सौमनास्त्र यह सब तेरे लिये हैं, इनको ग्रहण कर और हे महाबाहो ! मौसलास्त्र सत्यास्त्र और राक्षसों का मायामय अस्त्र तथा सूर्य्यदेव का तेज ! प्रभ अस्त्र जिसको दिखाने मात्र से निस्तेज हो कर शत्रु का नाश हो जाता है मैं तुझे देता हूं इनके अतिरिक्त सोम और त्वष्टा का शिशर व सुदारुण नामक दो भयानक अस्त्र तुझे देता हूं जिनके छोड़ने से शत्रुदल शीतसे अकड़ जाएं अथवा गर्मी के मारे मूर्छित हो जाएं, सो हे नर शार्दूल ! इन बड़ी शक्ति वाले और समस्त कामनाओं के पूरा करने वाले अस्त्रों को ग्रहण कर ।

इतना कह कर महामुनि विश्वामित्रने पूर्वकी ओर मुख करके वह सब अस्त्र रामचन्द्र को दे दिये जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ हैं । अस्त्रोंको पाकर रामचन्द्र अतिप्रसन्न हो मुनिके पीछे पीछे चलपड़े । कुछ दूर चलते चलते रामचन्द्र बोले, हे महामुनि ! आपके दिये हुए अस्त्रोंको पाकर में अतिप्रसन्न हुआ हूं अब देवता भी मुझसे जीत नहीं सकते मनुष्यों और राक्षसों की गणना ही क्या है, परन्तु कृपाकरके ऐसे अस्त्र भी बतलाएं जो इन अस्त्रोंकी रोक थामकर सकें और इन अस्त्रोंको चला कर वापस लानेकी विधि भी बतलाएं । तब प्रसन्न होकर मुनि बोले हे काकुत्स्थ ! तेरे कथनानुसार अब मैं तुझे वह संहार अस्त्र देताहूं सोतूं ग्रहण कर, यह कहकर मुनि

ने सत्यवान सत्यकीर्ति प्रतिहार तर पराङ्मुख अवाङ्मुख लक्ष्य अलक्ष्य आदि अनेक प्रकार के अस्त्र रामको दिये और उनके वापस लौटाने की विधि सिखलाई।

इस प्रकार सब अस्त्रोंको पाकर राम लक्ष्मण मुनि के पीछे पीछे चले। बहुत दूर चलते चलते रामने मुनिको पूछा हे महामुनि! अब हम बनके अंधकार में से निकल आये हैं और सामने पर्वतकी उपत्यका में वृक्षोंकी सुंदर पंक्ति दीखने लगी है। हे ब्रह्मर्षि! वह कौनसा स्थान है जो दूरसे आश्रम सा प्रतीत होता है और जहां वृक्षोंके शिखर पर पक्षियोंके झुंड उड़ते दिखाई देते हैं।

—:०:—

मुनि विश्वामित्र का आश्रम।

विश्वामित्र बोले हे राम! इस बनको सिद्धाश्रम कहते हैं। इस बनकी ओर पूर्वकाल में एक बार बलि नामक राक्षसने सब देवताओं को परास्त करके एक बृहत्यज्ञ आरम्भ किया था। बलिकी बढ़ती हुई शक्तिको देख कर सब देवता घबरा कर इन्द्र के पास गये। तब इन्द्रने सब देवताओं को साथ ले भगवान् विष्णुके पास जा हाथ जोड़कर प्रार्थना की, कि हे देवताओं के स्वामी! राजा बलि सब देवताओं को जीतकर सिद्धाश्रम में यज्ञ कर रहा है, जो कोई उसके पास जाकर कुछ मांगता है, वह निस्संकोच होकर उसे देता है। उसके तप तेजदान और यज्ञादि कर्मोंसे सारा देवलोक डोल गया है, हे

नाथ ! आप देवताओं के रक्षक हैं सो जिस प्रकार हो सके उसके यज्ञको अधूरा रखने में शीघ्रता करें। इतना कह कर देवताओं ने अनेक वचनोंसे विष्णुकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर विष्णु बोले हे देवतागण ! ऐसे ही होगा तुम सुख पूर्वक जाओ।

इस प्रकार देवताओं को धीरज देकर भगवान् विष्णु वामन अर्थात् बालक ब्राह्मणका रूप धारण करके सिद्धाश्रम में बलि राजाके पास आये। राजा बलिने सूर्य्यके समान देखने में छोटे परन्तु तेजमें महां तेजस्वी इस ब्राह्मणको देख कर कहा हे विप्र ! कहो मैं तुम्हारी क्या सेवा करसकता हूं। तब उस वामन रूप विष्णुने कहा हे राजन् मैं अढ़ाई चरण पृथिवी दान मांगता हूं जहां बैठकर मैं ईश्वरका भजन करूंगा। वचनके पूरे राजा बलिने उसे स्वीकार किया। परन्तु मापनेके समय दो चरणों में विष्णुने सारे आकाश पातालको अपने विराट स्वरूप से माप लिया और आधे चरणमें राजा बलिको बांधलिया। हे राम ! इस सिद्धआश्रम में अनेक ऋषि मुनि और महात्मा तप करते हैं, और मेरा आश्रम भी जो जैसे मेरा है वैसे तेरा भी है, इसी स्थान पर है। यहीं पर मैंने यज्ञका आरम्भ करना है जहां राक्षसोंके उपद्रवों से दुखी होकर मैं अनेकवार असफल रहा हूं। हे रघुनाथ! यहीं पर तुमने राक्षसों से मेरे यज्ञकी रक्षा करनी है।

इतना कहकर अति प्रसन्न हुआ विश्वामित्र राम

और लक्ष्मण सहित सिद्ध आश्रम में पहुंचा। उनको देखकर आश्रम निवासी सारे ऋषि मुनियों ने विश्वामित्र और राजकुमारों की पूजा अर्चना की। आश्रम में पहुंच कर रामचंद्र ने हाथ जोड़ कर कहा हे महामुनि ! आज ही यज्ञ की दीक्षा लो, आप के कथनाऽनुसार यज्ञ की रक्षा करता हुआ मैं इस बनको राक्षसों मे रहित करूंगा तब प्रसन्न होकर विश्वामित्र मुनि ने दीक्षा ली और दोनों राजकुमार रात्रि भर उसी स्थान पर सुख से सोए।

—:०:—

मारीच और सुबाहु का बध

प्रातःकाल होते ही स्नानादिक नित्य क्रिया से निवृत्त होकर शत्रुओं का नाश करने वाले बड़े तेजस्वी राम और लक्ष्मण मुनि से बोले हे परंतप ! वह विघ्न करने वाले राक्षस किस समय उपद्रव करते हैं, किस समय हमने यज्ञ की रक्षा करनी होगी, हे ब्रह्मर्षि ! समय न टल जाए, इस लिये हम आप से पूछते हैं।

जब सूर्य्य वंशी राजकुमारों ने बड़े उत्साह से ऐसे बचन कहे तो गद्गद प्रसन्न होकर सारे मुनियों ने कहा हे क्षत्रिय कुल के अलंकारो ! आज से छः रात्रियां तक तुम दोनों रक्षा करो मुनि विश्वामित्र छः रात्रियां मौनी रहेंगे क्योंकि इन्हों ने दीक्षा ली हुई है।

मुनियों के यह बचन सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई सब प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित होकर यज्ञ

की रक्षा के लिये खड़े होगए ।

पांच दिन और पांच रात्रि बिना सोए कुशल से व्यतीत होगये, जब छठा दिन आया, तो श्री रामचंद्र लक्ष्मण से बोले हे सुमित्रा नंदन ! सावधान होकर खड़े रहना, यज्ञ का अंतिम दिन होने के कारण आज बड़े उत्पात की संभावना है । इस प्रकार कहते ही ऋषि और पुरोहित आदि यज्ञ करने वालों के देखते ही देखते यज्ञ सामग्री तथा स्रुवा चमस आदि अपने आप अकस्मात् भबककर जलने लगे, और थोड़े ही समय के पश्चात् गगन मंडल मे ऐसे भयानक शब्द सुनाई देने लगे मानों वर्षा ऋतु में दामिनी दमकती हो । इसके अनन्तर यज्ञों के विध्वंस करने वाले मायावी मारीच सुबाहु और उनकी राक्षसी सेना मांस रुधिर और हड्डीयों की वर्षा करने लगे. जिन से क्षणमात्र में यज्ञ की वेदी लहु से भर गई । वेदी पर धारा प्रपात रक्त गिरते देख रामचन्द्र दौड़ कर वृक्षों के झुंड से बाहर हुए और आकाश में मायावी राक्षसों की सेना देख बोले हे लक्ष्मण ! तुम धनुष तान कर खड़े रहो मैं इन रुधिर पीने वाले. महापापी, आकाश में विचरने वाले राक्षसों को मानव अस्त्र से क्षणमात्र में उड़ाये देता हूं, इतना कहकर रामचन्द्र ने आंधी के समान वेग से उड़ने वाला मानव अस्त्र उन पर छोड़ा, जो राक्षसी सेना के नायक मारीच की छाती में लगा, और वह उसके धक्के से एक सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस दूर समुद्र

में जा गिरा। इसके अनन्तर आग्नेयास्त्र को आकाश में फैंका जिसके अन्दर से निकलती हुई ज्वालाएं सारे गगन मण्डल में दौड़ती हुईं सुबाहु के शरीर में चिमट गईं जिनसे जलकर वह महापापी, नर मांस भक्षक पृथिवी पर गिर पड़ा। उसके गिरने से पृथिवी पर बड़े ज़ोर का धमाका हुआ। अनेक वृक्ष टूट कर भूमि पर गिर गये और सारे बन की भूमि थरथराने लगी। इस प्रकार मारीच और सुबाहु का नाश करके रामचन्द्र ने शेष राक्षसों को मारने के लिये वायव्य नामक अस्त्र छोड़ा, जिससे राक्षसी सेना के सुभट मर मर कर ओलों के समान भूमि पर गिरने लगे और थोड़े ही समय में राक्षसों की भयानक सेना अपने नायकों मारीच और सुबाहु सहित नाश को प्राप्त हुई। तब देवता लोग आकाश से पुष्पों की वर्षा करने लगे और ऋषि-मुनि जयजय-कार करते हुए शंखों की ध्वनि से सारे बन को गुंजाने लगे। फिर कुशल-पूर्वक यज्ञ समाप्त हुआ और विश्वा-मित्र वेदी से उठे। सब राक्षसों को मरा हुआ देखकर महामुनि विश्वामित्र बोले हे सूर्य्य-कुल प्रदीप! तुम्हारे भुजबल से मेरा यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। तुमने गुरुका वचन पूरा किया और उत्पाती राक्षसों को निर्बीज करके सिद्धाश्रम को कृतार्थ किया।

———:०:———

धनुष–यज्ञ ।

दूसरे दिन प्रभात होते ही नित्य क्रिया से निवृत हो कर राम लक्ष्मण विश्वामित्र से हाथ जोड़ कर बोले। हे महामुनि ! हम आपके दास उपस्थित हैं, आपकी जैसी आज्ञा हो सो करें ।

यह सुनकर आश्रम वासी तपस्वी, मुनि विश्वामित्र को आगे करके बोले, हे राघव ! मिथिलापुरी में राजा जनक ने धनुष–यज्ञ रचा है। पूर्व काल में देवारात नामी जनक के यज्ञ में देवताओं ने प्रसन्न हो कर वह धनुष उसे दिया था । सुनाभ नामक यह देवताओं का धनुष देखने योग्य है। यह धनुष बहुत भारी और अद्वितीय बल रखता है। बड़े २ बलवान पराक्रमी, तेजस्वी राजे और राजकुमार बहुत बल लगाने पर भी इसे नहीं उठा सके। हे राम ! सारी पृथिवी के राजे उस यज्ञ में सम्मिलित हुए हैं, जो कोई उस धनुष को तोड़ेगा जनक की परम रूपवती कन्या जानकी को प्राप्त करेगा, सो हम सब मिथिला में जाएंगे तुम भी हमारे साथ चलो ।

तब विश्वामित्र सहित दोनों भाई ऋषियों के साथ मिथिलापुरी को चले । उत्तर की ओर चलते २ सायं-काल को शोणा नदी के पवित्र तट पर पहुंचे। वहां पहुंच दोनों भाईयों ने सब तपस्वियों के साथ नदी में स्नान किया और फिर सन्ध्या व हवन करके रात्रि भर सुख से वहीं विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर मुनि

विश्वामित्र राजकुमारों समेत आश्रम-वासी तपस्वियों को लेकर वहां से आगे चले और मध्याह्न काल में गंगा नदी के तट पर पहुंचे। हंस सारस और अनेक जल जंतुओं से शोभित, वक मालाओं से घिरी हुई, निर्मल जल वाली गंगा को देखकर रामचन्द्र अति प्रसन्न हो मुनि से बोले हे भगवन्! गंगा के दर्शन-मात्र ही से मेरे हृदय को परम शान्ति प्राप्त हुई, इस नदी की उत्पत्ति कैसे हुई, सो मैं आपके मुख से सुनाचाहता हूं, यह सुनकर कौशिक मुनि विश्वामित्र जी बोले, हे राघव! त्रिविध ताप हारिणी गंगा का जन्म वृत्तान्त बड़ा मनोरंजक है, सो मैं तुझे सुनाता हूं तू मन लगाकर सुन—

गंगा की उत्पत्ति ।

विश्वामित्र बोले हे रघुनंदन! अयोध्या के सगर नामक बड़े धर्मात्मा राजा थे। उनकी दो स्त्रियां थीं, परन्तु संतान के विना बड़े दुखी थे। संतान की कामना से राजा सगर अपनी दोनों स्त्रियों के साथ हिमवान् पर्वत पर कठिन तपस्या करने लगे। सौ वर्ष घोर तपस्या करने के पश्चात् राजा को भृगुमुनि ने वर दिया कि, हे राजन्! तुम अपने देश में जाओ तुम्हारे हां संतान होगी। तब राजा प्रसन्न होकर अपने गृह में आया। समय पाकर राजा की जेठी स्त्री केशनी के गर्भ से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम ज्योतिषियों ने असमंजस रखा और छोटी स्त्री सुमति के गर्भ से एक तूंबा निकला जिसके फटने से

साठ सहस्र बालक उत्पन्न हुए । उन बालकों को घृत के कुण्डों में रखकर धायों ने पालन पोषण किया । वह बालक किशोर अवस्था को प्राप्त होकर बड़े सुन्दर रूपवान और बलवान हुए । हे रामचन्द्र ! सगर का ज्येष्ठ पुत्र यथा नाम तथा गुणः ! के अनुसार महा उद्दंड और अत्याचारी था । प्रजा के छोटे छोटे बालकों को नदी पर लेजाकर डुबा देता, अनेक बालकों को नौकाओं में बैठा कर उसने मंझधार में डुवा दिया। असमंजस के इन अत्याचारों से सारी प्रजा में हाहाकार मच गया । तब राजा ने क्रुद्ध होकर उसे देश से निकाल दिया ।

कुछ काल के पश्चात् राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ करनेका विचार किया। हे रघुनाथ ! उस यज्ञकी पूर्तिके लिये सारी पृथिवी का विजय चिन्ह श्याम कर्ण घोड़ा छोड़ दिया और उसकी रक्षाका भार असमंजस के पुत्र अंशुमान के हाथमें सौंपा। जब वह घोड़ा सारे भूमंडल पर घूम चुका तो यज्ञमें विघ्न करनेके लिये इन्द्रने उस घोड़ेको चुरा लिया । तब बहुत ढूंढने पर भी घोड़ेके न मिलनेसे अंशुमानने सब समाचार राजा सगरको कह सुनाया । अपने यज्ञमें इस प्रकार विघ्न पड़नेसे सगरने अपने साठ हज़ार पुत्रोंको घोड़ेकी तालाशमें भेजा और उनको आज्ञा दी, कि हे वीर कुमारो ! तुम वीरों की संतान हो, देवता राक्षस यक्ष अथवा मनुष्य जिसने यह घोड़ा चुराया हो उसको मार कर घोड़ा लेआओ

जिससे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो।

पिताकी आज्ञा पाकर वह बड़े डील वाले साठ हज़ार राजकुमार पृथिवी को कंपाते हुए दशो दिशाओंमें घोड़े की खोज करने लगे। परंतु सारा भूतल छान मारने पर भी जब घोड़ा कहीं न मिला तो क्रोध से उन राजकुमारों ने पृथिवी को खोदना आरंभ किया। पृथिवी के खोदने से लाखों जीव जन्तु मारे गये। परन्तु घोड़े को कहीं न पाकर वह सब राजकुमार सगर के पास आ हाथ जोड़कर बोले, हे पिता जी! हमने बहुत दूर तक भूमि खोद डाली, और सारा ब्रह्माण्ड देख लिया, परन्तु घोड़े का कहीं पता नहीं मिला, अब जैसी आप आज्ञा करें सो किया जाए। यह सुनकर सगर क्रुद्ध होकर बोले हे कुमारो! पृथिवी की दशों दिशाएं खोद डालो और घोड़े को ढूंढ कर यहां लाओ। पिता की आज्ञा पाकर वह सब पूर्व दिशा में भूमि को खोदने लगे। तब रसातल में पहुंचकर उन्होंने पर्वत के समान डील वाले दिग्गज को देखा, जो पृथिवी को थाम कर खड़ा हुआ था। उसे देख राजकुमारों ने प्रणाम किया और वहां से चलकर दक्षिण दिशा को खोदने लगे। रसातलमें पहुंच कर उन्होंने वहां भी उसी प्रकार दिग्गज को देखा। इस प्रकार सब दिशाओं को खोदते खोदते जब उन्होंने ईशान कोण को खोदा तो वहां महर्षि कपिल को आंखें मूंदे घोर तपस्या में लीन देखा जिनके पास ही वह यज्ञका घोड़ा

बंधा था, जिसे इन्द्र इस स्थान पर बांध गया था। यह देख राजपुत्र क्रोध से दुर्वचन कहते हुए अनेक प्रकार से महर्षि का अपमान करने लगे। परन्तु ब्रह्मानंद में मग्न हुए भगवान् कपिल पूर्व वत् समाधि अवस्था में बैठे रहे। तब राजपुत्र पत्थर और ढेले मार मार कर बोले हे दुष्ट! यज्ञ का घोड़ा चुराकर बगुले के समान यहां आंख मूंदे बैठा है, ठैहर! अभी तेरे प्राण लिये लेते हैं। पत्थरों की मार से भगवान् कपिल की समाधि टूट गई। क्रोध से उनके नेत्र प्रलय-काल की अग्नि बरसाने लगे, जिन के तेज को न सहन करते हुए वह सब राजकुमार वहीं पर भस्म के ढेर हो गये।

—:○०○:—

अंशुमान का घोड़े की खोज के लिये जाना।

विश्वामित्र बोले, हे रामचन्द्र! जब बहुत काल व्यतीत होने पर भी राजकुमार लौटकर न आए तो राजा सगर ने असमंजस के पुत्र अंशुमान को आज्ञा दी, कि हे राजकुमार! तुम्हारे चचाओं और यज्ञ के घोड़े का कोई समाचार नहीं मिला, सो तुम शस्त्र बांधकर उनकी तलाश को जाओ, मुझे बहुत चिन्ता हो रही है।

दादा की आज्ञा पाकर अंशुमान अपने चचाओं के मार्ग पर चलता चलता अन्त में भगवान् कपिल के आश्रम में पहुंचा। वहां भस्म के ढेरों और यज्ञ के घोड़े को देख रोता हुआ वह भगवान् कपिल के पांओं से

लिपट गया। तब कपिल ने प्यार से उठाकर उनसे कहा हे असमंजस के पुत्र ! यह तेरे चचा अपने कर्मों के अनुसार मृत्यु को प्राप्त हुए, अब आप रुदन न करो और घोड़े को ले जाकर अश्वमेध यज्ञ को सफल करो। तब बहुत विलाप करता हुआ अंशुमान बोला हे भगवन् ! मेरे चचा आपके क्रोध से भस्म हुए हुए अकाल-मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, सो इनकी सद्गति के लिये उपाय कहो। तब कपिल बोले हे अंशुमान् ! भगवान् विष्णु के चरणों से निकली हुई पवित्र नदी देव-गंगा यदि इनकी अस्थियों को बहा ले जावे तो तेरे चचा स्वर्ग लोक को प्राप्त करेंगे, सो तू उसके लिये यत्न कर जिससे संसार के सब प्राणियोंका भला होगा और तू भी अमर कीर्ति को प्राप्त होवेगा।

तब घोड़ा लेकर अंशुमान महाराज सगर के पास आया और अपने पितृव्यों का सब वृत्तान्त सुनाकर रुदन करने लगा। राजा सगर यह शोक समाचार सुनकर अति दुखित हुआ और यज्ञ को समाप्त करके गंगा के लाने का उपाय सोचने लगा। परन्तु अनेक वर्षों तक विचार करते हुए भी उसे कोई उपाय न मिला जिससे उसके पुत्रों की सद्गति होती और इसी विचार को हृदय में रखकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

——:०:——

अंशुमान का गंगा के लिये प्रयत्न।

राजा सगर के मरने पर राज-मन्त्रियों ने अंशुमान को सिंहासन पर बैठाया। कुछ काल पश्चात् अंशुमान के हां पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम ब्राह्मणों ने दिलीप रखा। दिलीप जब युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसे राज्य देकर अंशुमान गंगा के लाने के लिये हिमालय पर्वत पर घोर तपस्या करने लगा। बत्तीस सहस्र वर्ष पर्य्यन्त कठिन तपस्या करने के पश्चात् उसका परलोक वास हुआ. परन्तु उसका भी गंगा लाने का प्रयत्न फलीभूत न हुआ! हे रामचन्द्र! अंशुमान के पश्चात दिलीप के मन में यह चिन्ता हुई. कि किस प्रकार गंगा को मर्त्य-लोक में लाऊं और अपने पूर्वजों की सद्गति करूं। इन्हीं विचारों में पड़ा हुआ वह सदा दुखी रहने लगा। भगवान् की कृपा से दिलीप के हां भगीरथ नामक एक पुत्र हुआ। राजा दिलीप ने सैंकड़ों यज्ञ किये और अन्त में तीस महस्र वर्ष की आयु भोग कर वह भी काल वश हुए।

दिलीप की मृत्यु होने पर उनके स्थान पर भगीरथ सिंहासन पर बैठा। इनके कोई सन्तान न थी। पूर्वजों को स्वर्ग में पहुंचाने के लिए इन के मन में भी गंगा के लाने की इच्छा हुई। तब मन्त्रियों को राज्य का भार देकर भगीरथ गोकर्ण तीर्थ पर चले गये और वहां कठिन तपस्या करने लगे। वह ब्रह्मचारी फलाहारी रह

कर पंचाग्नि तपते हुए खड़े २ घोर तप को तपने लगे । हे रामचन्द्र ! एक हज़ार वर्ष के पश्चात् ब्रह्मा प्रसन्न होकर उसके पास आए और बोले हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हुआ, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो कहो, मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूंगा । तब भगीरथ ने प्रजापति की बहुत स्तुति की और कहा हे सृष्टि के रचने वाले ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो भगवान विष्णु का चरणोदक श्री गंगा जी इस मर्त्य लोक में आवे और मेरे पिता पितामह उस जल को प्राप्त करके स्वर्ग में जावें और दूसरा वर मैं यह मांगता हूं, कि धर्मात्मा इक्ष्वाकु का वंश नष्ट नां होवे । तब ब्रह्मा ने कहा हे राजन् ! ऐसा ही होवेगा परन्तु आकाश से गिरती हुई महानदी गंगा को शिव से बिना धारण को कोई समर्थ नहीं, सो तू तपस्या करके महादेव को प्रसन्न कर । इस प्रकार भगीरथ को वर देकर प्रजापति ब्रह्मा अंतर्ध्यान हो गये ।

·—:०:—·

गंगा अवतरण ।

विश्वामित्र बोले हे राघव ! प्रजापति से वर पाकर भगीरथ हिमालय पर्वत पर एक अंगूठे के भार खड़े हो कैलाश पति महादेव की आराधना करने लगे । जब एक वर्ष भगीरथ को तप करते व्यतीत हो गया तो प्रसन्न हो कर शिव ने कहा हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या सफल हुई, मैं गंगा को अपने मस्तक पर धारण करूंगा । तब एका-

एक बड़े वेग से आकाश से गंगा का अवतरण होने लगा। प्रलय काल के मेघों की गर्ज के समान गर्जती हुई गंग धारा कैलाश पति के मस्तक पर गिरने लगी।

हे रामचन्द्र ! आकाश से उतरते समय गंगा के हृदय में अभिमान हुआ, कि मैं अपने वेग से कैलाश पति समेत सब कुछ बहा कर ले जाऊंगी। इस गर्व की भावना को समझकर महादेव ने अपनी जटाओं का इतना विस्तार किया, कि गंगा अनेक वर्षों तक उन्ही के अंदर घूमती रही और किसी प्रकार उनकी उलझन से बाहर न निकल सकी। यह देखकर भगीरथ ने महादेव की बहुत स्तुति की, जिससे प्रसन्न हो महादेव ने सात धाराओं में गंगा को बाहर निकाला जिनमें से छः धारा पश्चिम और पूर्व की ओर बहने लगीं और एक धारा भगीरथ की रथ के पीछे २ चली । हे रामचन्द्र ! गंगा के इस अद्भुत और अत्यंत मनोरंजक दृष्य को देखने के लिए आकाश में विमानों पर बैठकर देवता लोग आए। तब सहस्रों विमानों पर बैठे हुए देवताओं के मणि जटित मुकुटों की कान्ति से आकाश जगमगाने लगा। गंगा की धारा के दोनों ओर अनेक ऋषि मुनि महात्मा तपस्वी राजे और महाराजे इस अद्भुत दृष्य को

यह कथा वास्तव में अलंकार रूप से कही गई है । कैलाश पति से यहां कैलाश पर्वत से तात्पर्य्य है और जटाओं से अभिप्राय बन वृक्षों का है, उन्ही में एक वर्ष पर्य्यन्त गंगा घूमती रही ।

देख गंगा की स्तुति और भगीरथ की जय जयकार करने लगे। असंख्य जल जंतु उसकी धारा में गिर २ कर तैरने लगे, हंस सारस और कारण्डव उसके तटों पर उड़ते हुए देखने वालों के मन को मोहने लगे।

हे रामचन्द्र! बड़े वेग से बहती हुई, स्वच्छ निर्मल और हिम के समान शीतल जल वाली गंगा भगीरथ के पीछे २ सीधी तिरछी ऊंची नीची जलों को उड़ाती हुई और पत्थरों को धकेलती भूलोक में से होती हुई रसातल में उस स्थान पर पहुंची जहां सगर के साठ हज़ार पुत्र भस्मी भूत हुए पड़े थे। उन सबको बहा कर गंगा का वेग सागर की ओर चला।

हे रामचन्द्र! कपिल आश्रम में जाकर सगर के पुत्रों की सद्गति करती हुई गंगा जब सागर की ओर चली तो ब्रह्मा प्रसन्न होकर बोले हे भगीरथ! तू ने अपने तपोबल से वह काम किया जो तेरे पूर्व पुरुषों से न हो सका था। अब तेरे पितर स्वर्ग में गये और मैं वर देता हूं, कि जो कोई मनुष्य इस गंगा में स्नान करेगा वह सब दुःखों से रहित होकर स्वर्ग लोक को प्राप्त करेगा। आज से गंगा का नाम भागीरथी होगा और जब तक यह देव नदी भूलोक में बहती रहेगी तब तक तेरा नाम और यश अटल रहेगा। इतना कहकर ब्रह्मा अपने लोक में चले गये और राजा भगीरथ ने गंगा जल से अपने पितरों को जलाञ्जलि दी, जिससे वह सब के सब स्वर्ग

लोक में चले गए ।

—:०:—

जनक पुरी ।

राम और लक्ष्मण को गंगा के अवतरण की कथा सुनाकर उस रात मुनि ने वहीं विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर चलते २ विशाला नगरी से होते हुए जनक पुरी में पहुंचे । वहां यज्ञ शाला में जाकर उन्होंने नाना देशों से आए हुए सहस्रों ब्राह्मणों को मधुर ध्वनि से वेद पाठ करते देखा। उस यज्ञ मण्डप की शोभा को देखकर रामचन्द्र बोले हे महामुनि जी ! देखिये यह यज्ञ शाला कैसी शोभा दे रही है। चित्र विचित्र पुष्पों से मंडित और अनेक ऋषि मुनियों करके पवित्र की गई वेदी को देखकर मेरा चित्त अति प्रसन्न हुआ है, सो हे भगवन् ! अपने रहने का उत्तम स्थान नियत कर लीजिये। उधर राजा जनक को विश्वामित्र के आगमन का समाचार मिला तो वह राज पुरोहित शतानंद को आगे करके मुनि के दर्शनों के लिये आया और पाद्य अर्घादि से पूजन करके हाथ जोड़कर बोला, हे भगवन् ! आपके आने से मेरी नगरी पवित्र हुई, और मेरा हृदय ऐसे खिल गया है जैसे सूर्य्य के दर्शनों से कमल खिल जाता है। हे ब्रह्मर्षि ! यह दोनों देवताओं के तुल्य पराक्रमी, सूर्य्य के समान तेजस्वी सिंह के समान कंधों वाले राजकुमार

कौन हैं और किसके पुत्र हैं। हे महामुनि ! वृषभ के समान बलवान, अश्वनी कुमार के समान सुन्दर इन राजपुत्रोंकी छबि से मेरी यज्ञ शाला ऐसी शोभायमान हो रही है जैसे सूर्य्य और चंद्रमा से नीला आकाश चमकने लगता है। हे विश्वामित्र! कद रूप रंग और कटाक्षोंमें एक समान सुंदर केशों वाले इन वीर पुत्रोंके वृत्तान्तको मैं आपके मुखसे सुना चाहता हूं।

राजा जनक के मुखसे यह वचन सुन कर विश्वामित्र बोले हे मिथिला नरेश! यह दोनों अयोध्या पति महा राज दशरथ के पुत्र हैं। मरीच सुबाहु ताड़का तथा अन्य बहुतसे राक्षसों को मार कर अब धनुप यज्ञ देखनेकी इच्छासे मेरे साथ आए हैं

—:०:—

विश्वामित्र का उपाख्यान।

दोनों राजकुमारोंको देख कर अति प्रसन्न हो गौतम के पुत्र शतानन्द पुरोहित बोले हे राघव! आप जो ब्रह्म ऋषि विश्वामित्रके साथ आये हैं सो आपके अहो भाग्य हैं। विश्वामित्र बड़े प्रतापी और तेजस्वी हैं इनसे शिक्षा प्राप्त करके तुम बड़े यशके भागी बनोगे। हे रघुनन्दन! इनकी कथा बड़ी विचित्र और आनंद देने वाली है, तुम ध्यान देकर सुनो

हे रामचंद्र ! विश्वामित्र पहले एक बड़े बलवान तेजस्वी राजा थे। अपने शत्रुओं का नाश करके चिर

काल तक यह धर्म पूर्वक प्रजा पर शासन करते रहे। हे सूर्य्य कुल सूर्य्य! प्रजापतिका पुत्र कुश नामक एक बड़ा धर्मात्मा राजा था। कुशका पुत्र कुशनाभ चिर काल तक बड़े पराक्रम और न्यायसे राज्य करता रहा। फिर कुशनाभ के हां गाधि नामक पुत्रका जन्म हुआ। गाधि बड़ा धर्म परायण और ईश्वर भक्त था। उसीके पुत्र विश्वा मित्र हैं जिन्होंने सारी पृथिवी पर राज्य किया है। हे कौशल्यानंदन! एक दिन राजा विश्वामित्र अक्षौहिणी सेना साथ लिये बनों पर्वतों नदीयों और नगरों को देखते हुए ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के आश्रममें पहुंचे। उस आश्रममें बसंत ऋतु में शोभा देने वाले नाना प्रकारके रंग बिरंगे फूलों वाले पोधे शोभा दे रहे थे. फलोंके भारसे झुके हुए वृक्ष एक दूसरे पर छाये हुए झूम रहे थे और जिन पर शुक मैनां और अनेक प्रकार के पक्षि मधुर कलरव कर रहे थे। आश्रम के निकट मृग आदि जन्तु खेलते हुए प्रकृतिकी शोभाको द्विगुणित कर रहे थे। हे राजन्! सिद्ध चारण गंधर्व और किन्नरों से सुशोभित उस आश्रममें बैठे हुए वसिष्ठ. भगवानकी भक्तिमें लीन होम कर रहे थे, जिसका सुगंधित धूम आकाशमें लहराता हुआ सारे बन को सुगंधित कर रहा था।

राजा विश्वामित्र उस अतुल तेजवाले वसिष्ठ मुनि को देख और उनको प्रणाम करके आसन पर बैठ गये। तब अति प्रसन्न होकर वसिष्ठने शिष्टाचार करते हुए राजा

से कहा हे राजन्! तुम्हारे दर्शनों से मैं प्रसन्न हुआ, कहो कुशल तो है? तुम्हारे सेवक और प्रजाजन सुखी हैं? तब विश्वामित्र ने अपना सब कुशल क्षेम कहते हुए वसिष्ठ की कुशल पूछी। इस प्रकार कुछ देर तक वह दोनों परस्पर प्रेम वार्तालाप करते रहे। हे रघुनंदन! बात चीत से तृप्त हो कर वसिष्ठने फल फूल दूध और अनेक प्रकार के रसों से राजा का सत्कार किया, जिसे खा पी कर विश्वामित्र अति प्रसन्न हुए। राजाको प्रसन्न देख कर वसिष्ठने कहा, कि आप बहुत दिनों से बनों और पर्वतों में घूम रहे हैं, इस लिये कुछ दिन अपनी सेना सहित यहां ठहर कर मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। परन्तु विश्वामित्र ने मन में यह विचार करके कि इस बनवासी को जिस के पास खान पान की यही थोड़ीसी सामग्री है, मेरे यहां ठहरने से बहुत कष्ट होगा, उत्तर दिया, कि भगवन्! आप की अनुग्रह का मैं अनुगृहीत हूं, अब मुझे जाने की आज्ञा दें। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ उन्हें अपने यहां ठहराने के लिये बारंबार आग्रह करने लगे। तब गाधि पुत्र विश्वामित्र ने कहा, बहुत अच्छा भगवन्! आप की आज्ञानुसार मैं यहां कुछ दिन ठहरूंगा। विश्वामित्र के इस प्रकार कहने पर वसिष्ठ ने कामधेनु गौ को आवाहन करके कहा, हे सवला! मैं इस राजर्षि को सेना सहित आतिथ्य करना चाहता हूं इसलिये हे स्वर्ग निवासिनी माता! छः प्रकार के रसों से युक्त सुन्दर खाने और जिस

वस्तु की इन को आवश्यकता हो में इन के लिये तुम से मांगता हूं ।

हे रामचन्द्र ! वसिष्ठ के यह वचन सुनते ही कामधेनु गौ ने, अप्रमेय दूध दहि मक्खन शहद, उबले हुए चावल अनेक प्रकार के पदरम व्यञ्जन, बहुमूल्य और दुष्प्राप्य रस उत्पन्न किये जिन को खाकर विश्वामित्र और उनकी सेना के बलवान् सैनिक तृप्त हो गए ।

विश्वामित्र का वसिष्ठ से कामधेनु मांगना ।

शतानंद बोले हे रामचन्द्र ! उस अद्भुत गौ को देख कर विश्वामित्र प्रसन्न होकर वसिष्ठ से बोले हे महात्मन् ! तुम्हारे अतिथि-सत्कार से मैं प्रसन्न हुआ अब में एक वस्तु तुम से मांगता हूं, और वह यह कामधेनु गौ है, जिस के गुणों पर मैं मुग्ध हो गया हूं हे मुनिश्रेष्ठ ! यह गौ तुम मुझे देदो इसके बदले में मैं तुम्हें सहस्रों स्वर्ण मुद्राएं देता हूं । निस्सन्देह यह गौ एक रत्न है और रत्नों पर राजाओं का ही अधिकार होता है । तब मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ ने उत्तर दिया हे राजन्! सहस्रों क्या करोड़ों मुद्राएं और चांदी का पर्वत भी यदि तुम मुझे दो तो भी मैं इस गौ को न दूंगा । हे शत्रुओं के दमन करने वाले ! जब तक मैं जीता हूं यह गौ मुझ से अलग नहीं हो सकती । मेरे यज्ञ हवन देव कर्म पितृ कर्म सब कुछ इस गौ के साथ हैं । यह गौ मेरा सर्वस्व है और मेरा जीवन इस के साथ है इस लिये मैं इसे नहीं दूंगा । यह सुन

कर विश्वामित्र बोले हे वसिष्ठ ! इस गौ के बदले में तुझे स्वर्ण की ज़ंजीरों स्वर्ण की हेंकलों और स्वर्ण के हौदों से सजे हुए चौदह हज़ार हाथी देता हूं, और आठ सौ सोने की गाड़ियां जो घंटियों से सजी हुई और चार श्वेत घोड़ों से जुती होंगी दूंगा । हे ब्रह्मर्षि ! एक हज़ार आठ उत्तम वंश के घोड़े एक करोड़ सोने की मोहरें असंख्य हीरे मोती और जितना चाहो धन देता हूं तुम यह गौ मुझे देदो ।

विश्वामित्र के बारंबार ऐसा कहने पर वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया हे गाधि सुत ! मैं इस गौ को किसी मूल्य पर भी नहीं दे सकता । यह मेरा रत्न है, यह मेरी संपत्ति है, यही मेरा सर्वस्व है यही मेरा धर्म है यही मेरा पौर्ण मास है यही मेरा यज्ञ है, हे राजन् ! मैं अधिक क्या कहूं इस के विना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता, इस लिये मैं इसे न दूंगा ।

विश्वामित्र और वसिष्ठ का युद्ध ।

शतानंद बोले हे रामचन्द्र ! बारंबार मांगने से भी जब वसिष्ठ ने गौ देना स्वीकार न किया तो विश्वामित्र ने गौ को बलसे पकड़ लिया और बांध कर लेचला । तब हृदय से न चाहती हुई परन्तु डंडोंकी मार से धकेली हुई वह शबला गौ रोने लगी, परन्तु विश्वामित्र के सैनिकों ने जब उसको फिर भी न छोड़ा तो वह क्रोधसे फुंकारती और शृंगों से अनेक मनुष्यों के पेट फाड़ती

रस्से को छुड़ा कर आंधी के समान दौड़ती हुई वसिष्ठ के पास चली आई, ऋषिके चरणों में गिर कर रोती हुई बोली, हे ब्राह्मण सुत ! किस कारण तुम मुझे अपने चरणों से वियुक्त करते हो ? हे ब्रह्मर्षि ! आपकी आंखों सामने यह क्षत्रिय राजा मुझे बांधकर बलसे लिये जाता है। शवला के यह करुणा जनक शब्द सुन वसिष्ठ आंखों में आंसु भरकर बोला मैं तुझे वियुक्त नहीं करता और नाहीं तूने कोई अपराध किया है परन्तु हे शवले ! यह शक्तिशाली राजा जिसे अपने बल का बहुत बड़ा अभिमान है तुझे बलसे लिये जा रहा है, निस्संदेह शक्ति में मैं उसके तुल्य नहीं हूं, और आज मैं उसे मार भी नहीं सकता क्योंकि एकतो वह मेरा अतिथि है और दूसरा हाथी घोड़े रथ और पदाति महित अक्षौहिणी सेना का स्वामी है जिसे परास्त करने की मुझमें शक्ति नहीं है। वसिष्ठ के ऐसा कहने पर गौ बोली हे ब्रह्मर्षि ! क्षत्रिय का बल इतना बड़ा नहीं होता जितना एक ब्राह्मण का। हे ब्राह्मण ! तुममें अनंत बल है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारे सामने विश्वामित्र खड़ा नहीं हो सकता, परम शक्तिवान विप्र ! तुम मुझे आज्ञा दो मैं अभी इस क्षत्रिय की सेना और बलका नाश कर डालूंगी। यह सुनकर वसिष्ठ ने उसे आज्ञा देदी। हे रामचन्द्र ! आज्ञा पाते ही उस कामधेनु ने मेघ के समान हुंकार किया और क्षण मात्र में ही सहस्रों पल्हव जातिके म्लेछ शस्त्र हाथ में

लिये उत्पन्न हो गये और वह विश्वामित्र की सेना का नाश करने लगे। यह देख विश्वामित्र के नेत्र क्रोधसे लाल होगये और वह अग्निके समान तीक्ष्ण बाणों से उनका विध्वंस करने लगे। पल्हवों के मरने पर सबला ने शक हूण यवन बर्बट और काम्बोजों को सहस्त्रों की संख्या में उत्पन्न किया जो अनेक प्रकार के शस्त्र हाथों में लिये विश्वामित्र की सेनाको काटने लगे। अपनी सेना को नाश होते देख विश्वामित्र ने अग्नि के समान बाणों से उनको भी अत्यंत पीड़ित करके मार डाला।

विश्वामित्र के बाणों से मारी सेनाको कटा हुआ देख वसिष्ठ बोले हे कामधेनु! अपने योग बल से नई सेना उत्पन्न कर जिससे इस अभिमानी राजा का शीघ्र नाश हो। वसिष्ठ की आज्ञा पाकर धेनुने मेघके समान हुंकार किया. और उसकी देहके अनेक स्थानों से अनेक जातियों के सुभट उत्पन्न हुए जिनके मुख मण्डल सूर्य के समान देदीप्यमान थे। वह सब जो जाति के शक हूण हारीत किरात बर्बर और काम्बोज थे अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का प्रहार करते हुए विश्वामित्र की सेनाको ऐसे काटने लगे जैसे किसान खेतीको। हे रामचन्द्र! उन्हों ने थोड़ेही समय में शत्रु के हाथी घोड़े रथ और पैदल सेना का नाश कर डाला। तब विश्वामित्र के सौ पुत्र क्रोध से दांत पीसते हुए शस्त्र हाथों में लिये वसिष्ठ पर टूट पड़े। उन्हें आते देख उस ब्रह्मर्षि ने जोर से

हुंकार का शब्द किया जिससे वह वहीं पर भस्म हो गए, उनमें से केवल एक पुत्र बच गया और शेष सबके सब सेना सहित रण भूमि में मर गये। तब विश्वामित्र लज्जा के मारे सिर झुकाए खड़ा खड़ा गहरे विचारों में डूबगया । उसकी अवस्था उस समय ऐसी हो गई मानों बड़े तूफान के पश्चात् समुद्र शान्त हो गया हो अथवा उस सर्पके समान जिसके दांत तोड़ दिये गये हों अथवा सूर्य्य के समान जिसको राहुने ग्रसा हो, अथवा उस पक्षिके समान जिसके पंख नोचलिये गये हों। हे राजन् ! सेना और पुत्रों के मारे जाने से उसका हृदय टूट गया. तब उसने अपने बचे हुए एक पुत्र के सिर पर मुकुट रखकर कहा, हे पुत्र ! क्षत्रिय धर्म को पूरा करते हुए तू राज्य कर और आप बन को चला गया। हे रामचन्द्र ! हिमालय पर्वत के एक देश में जहां किन्नर और सर्प लोगों का निवास था, इस शक्तिशाली विश्वामित्र ने महादेव की कठिन तपस्या करनी आरंभ की ! तब तपस्या से प्रसन्न होकर महा देव जी ने दर्शन दिये और बोले, हे राजन् ! मैं प्रसन्न हुआ, कहो, किस कारण तू ने इतना कष्ट उठाया है ? मैं तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करूंगा। तब विश्वामित्र ने महा देव के चरणों में झुक कर प्रार्थना की, हे देवाधि देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे धनुष विद्या का पूरा ज्ञान दीजिये और हे नाथ देव दानव यक्ष किन्नर राक्षस और मनुष्यों

के सब शस्त्र और उनके चलानेकी विधि मंत्रों सहित मुझे दीजिये यही मेरी कामना है। तब महादेव ने कहा हे गाधि सुत "ऐसा ही होगा" और वह अंतर्ध्यान होगए। हे राघव! महादेव से सब अस्त्र शस्त्र प्राप्त करके विश्वामित्र जो स्वभाव ही से अग्नि के समान था ऐसे समझने लगा मानों वसिष्ठ मारा ही गया हो, पूर्णमासीकी रात्रिमें जिस प्रकार समुद्र आकाश की ओर उछलता है, इसी प्रकार अपनी छाती को उभारे हुए वह फिर वसिष्ठ के आश्रम की ओर चला।

—:०:—

वसिष्ठ विश्वामित्र युद्ध

शतानंद बोले हे राघव! वसिष्ठके आश्रमके निकट पहुंच कर अहंकार से वसिष्ठको ललकारते हुए विश्वामित्र ने अग्नि के समान बाणोंको छोड़ना आरंभ किया। उन बाणोंसे आश्रम में आग लग गई, और सैंकड़ों ऋषि मुनि हाहाकार करते हुए भाग निकले। उनके पीछे पीछे वसिष्ठके शिष्य और पालतु जीव जंतु भी भयभीत हुए चारों ओर भागने लगे। उस तेजस्वी ऋषिका आश्रम जो मनुष्यों पशुओं और पक्षियों से भरा हुआ था क्षण मात्र में निर्जन वनके समान हो गया। उन भागते हुओं को वसिष्ठने पुकार पुकार कर कहा, कि मत डरो मैं अभी इसका नाश करता हूं परंतु किसीने कुछ न सुना और बिना पीछे मुंह किये वह भाग गए। यह देख कर

वसिष्ठने धनुष को उठाते हुए गर्ज कर कहा, आज मैं गाधि सुतका इस प्रकार नाश करूंगा जैसे सूर्य्य अंधकार का । यह कह कर वसिष्ठ विश्वामित्र को ललकार कर बोले रे मूर्ख! तूने बहुत देरमे बनाए हुए मेरे आश्रम का नाश कर डाला, अब तू जीवित नहीं रह सकता, इतना कहते कहते क्रोध मे उसके नेत्रोंमें से आग बर्सने लगी और यमके समान उसने धनुषको तान लिया।

वसिष्ठके ऐसा कहने पर विश्वामित्र आग्नेय-अस्त्र को तान कर बोले, ठहर ठहर !!

महात्मा वसिष्ठ भी कालके समान ब्रह्म अस्त्रको संभालते हुए बोले रे क्षत्रिय कुल कलंक! यह में खड़ा हूं तू अपने अस्त्रका वार कर। हे गाधि पुत्र! आज मैं तेरे अभिमान को चूरचूर करूंगा, और तूं देखेगा, कि क्षात्र बल और ब्रह्म बल में क्या और कितना भेद है, और तब अपने अस्त्र से आग्नेय अस्त्रको इस प्रकार शान्त कर दिया जैसे अग्नि जलमें ठंडा हो जाता है। तब क्रोध से जलते हुए विश्वामित्रने वारुणास्त्र रुद्रास्त्र ऐन्द्रास्त्र और पाशुपतास्त्र को वसिष्ठ पर छोड़ा । परतु ब्रह्मास्त्रसे नाश को प्राप्त हुए वह सब रास्ते ही में नष्ट हो गए। यह देख कर गाधि पुत्रने मानव, मोहन, गांधर्व, जृंभण, दारुण, वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, पिनाक, दण्ड, पैशाच, क्रौञ्च, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्य और मथन, कंकाल, मुशल, विद्याधर और भयानक

कालास्त्र तथा भयंकर त्रिशूल और कंकाल आदि अस्त्रों को वसिष्ठ पर छोड़ा, परंतु हे राघव ! वसिष्ठने उन सब को क्षण भरमें काट दिया और ब्रह्मास्त्रको छोड़ने के लिये उद्यत हुए. हे रामचंद्र ! जिस समय ब्रह्मास्त्र को छोड़ने के लिये वसिष्ठ उद्यत हुए, देवता, देवर्षि, गंधर्व और शक्ति शाली सर्प भयके मारे अत्यन्त पीड़ित हुए, और जब उस ब्रह्मास्त्रको वसिष्ठने छोड़ा तो तीनों लोकों के अंदर एक भयानक शब्द हुआ। उस समय वसिष्ठ का मुख मंडल बड़ा भयानक हो गया, और प्रतीत हुआ मानों यह सारे ब्रह्माण्ड को भस्म कर डालेगा. उसके शरीर के रोमकूपोंमे बड़े वेगसे धूआं निकलने लगा। जब वह ब्रह्मास्त्र वसिष्ठके हाथों से निकला तो धूएं के विना जलते हुए अग्निके समान सारे गगन मंडलको ज्योतिर्मय करता देवता यक्ष मनुष्य और संसारके जीवों को तड़पाने लगा। तब व्याकुल होकर सब ऋषि मुनि हाथ जोड़ वसिष्ठसे प्रार्थना करने लगे, कि हे नाथ! आप के समान बलवान तीनों लोकमें कोई नहीं है. रक्षा करो रक्षा करो, विश्वामित्र सब प्रकारसे हार गया है। हे ब्रह्मर्षि! जलते हुए संसारको शान्त करो। ऋषि मुनियोंकी इस प्रकार प्रार्थना करने पर महात्मा वसिष्ठने अपने छोड़े हुए उग्र ब्रह्मास्त्रको वापस बुलाया और मंत्रोंसे उसे शान्त किया।

विश्वामित्र उस समय पूर्ण रूपसे उत्साह हीन होकर

पृथिवी पर बैठ गये और ठंडी सांस भरते हुए बोले "धिक्कार है क्षात्र बलको, ब्रह्म तेजका बल ही सबसे बड़ा बल है आज मेरे सबके सब अस्त्र इस मुनिने एक ही ब्रह्मास्त्रसे नष्ट कर दिये। अब मैं जितेन्द्रिय रहकर यम नियमोंका पालन करते हुए घोर तपके द्वारा ब्राह्मण पदवीको प्राप्त करूंगा"

इतना कहते कहते लज्जा से सिर झुकाये वहां से चले गये।

—:०:—

विश्वामित्रका ब्राह्मण पदवी की प्राप्तिके लिये तप करना।

शतानंद बोले हे राघव! अपनी पराजय को याद करके बार बार ठंडी सांस भरता, जलते हुए हृदय वाला विश्वामित्र वसिष्ठाश्रमसे चल कर अपनी स्त्री के साथ दक्षिण दिशामें चला गया, जहां वह घोर तपस्या में मग्न हो गया। अन्नको त्याग कर फल फूल पर निर्वाह करते हुए, उस जितेन्द्रियने कठिन तपस्या आरंभ की। इस अंतरमें उसके हां हविष्यद, मधुष्यद, दृढ़ नेत्र और महोदर नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, और जब एक हज़ार वर्ष तपस्या करते हुए व्यतीत हो गए तो प्रजापति ब्रह्मा प्रसन्न हो कर स्नेहसे सनी हुई वाणीसे बोले हे कुशिक के पुत्र! तुम्हारी भक्ति और तपस्याने राजर्षियों की पदवी पर विजय प्राप्त करली है, इस लिये मैं तुम्हे राजर्षि-पद प्रदान करता हूं। इतना कह कर सब देवताओं के सहित

प्रजापति अपने लोकको चले गये। ब्रह्माके यह वचन सुनकर विश्वामित्रने लज्जासे अपना सिर झुका लिया और दुखित हुआ बोला, मैंने इतना कठिन तप किया, परंतु प्रजापतिने मुझे केवल राजर्षि की पदवी प्रदानकी, निस्संदेह मेरी तपस्या फली भूत नहीं हुई, अपने मनमें इस प्रकार विचार करते हुए वह फिर तप करने लगा।

हे राघव! इस अंतरमें दैव योगसे इक्ष्वाकु वंशके प्रसिद्ध सत्यवादी त्रिशंकु नामक राजा ने यह विचार किया, कि मैं एक ऐसा यज्ञ करूं जिसके फलसे इस देह के साथ स्वर्गमें जा पहुंचूं। इस विचारको पूरा करनेके लिये त्रिशंकुने महात्मा वसिष्ठके पास जाकर प्रार्थनाकी। परंतु वसिष्ठने उत्तर दिया कि किसी मनुष्यको देह सहित स्वर्गमें भेजने की मुझमें समर्थ नहीं है। तब निराश हो कर राजा दक्षिण दिशामें वसिष्ठके सौ पुत्रोंके पास गया जो घोर तपस्या में लगे हुए थे। वहां जाकर वह उनके चरणों में मस्तक निवाय कर बोला हे गुरु पुत्रो! मैं तुम्हारी शरण में आया हूं, आप के पिता ने मेरा यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया, इस लिये आप ऐसा यत्न करें। जिस से मैं सदेह स्वर्ग को जाऊं। वसिष्ठ से त्यागे जाने पर अब मुझे आप के बिना और कोई दिखाई नहीं देता, क्योंकि इक्ष्वाकु वंश के आप ही पुरोहित हैं।

हे राघव! त्रिशंकु के इन वचनों को सुनकर वसिष्ठ के सौ पुत्र क्रोध से लाल होकर बोले, रे मूर्ख! हमारे सत्य-

वादी पिता से त्यागा हुआ तू दूसरे की सहायता चाहता है। यह काम असंभव है इसी लिये उन्हों ने स्वीकार नहीं किया है. असंभव काम को हम कैसे कर सकते हैं. हे राजन्! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, तू हमारे पिता का अपमान करने आया है यहां से चला जा।

ऋषि पुत्रों के ऐसा कहने पर त्रिशंकु बोला. गुरु ने मुझे छोड़ दिया और गुरु पुत्रों ने भी मेरा कहना स्वीकार नहीं किया अब मैं विवश होकर किसी अन्य पुरुष के पास जाऊंगा और अपने विचार को पूरा करूंगा।

यह सुनकर वसिष्ठ पुत्रों ने कहा, तू ने गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं किया, और असंभव को संभव बनाने की कामना से बारंबार उस सत्यवादी पर दोषारोपण करता है इस लिये हम तुझे शाप देते हैं कि "तू चाण्डाल हो जा" इतना कहकर वह सब अपने अपने स्थानों के अंदर चले गये।

हे राघव! रात्रि व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल उठते ही त्रिशंकु ने देखा, कि उसका शरीर काला हो गया है, सिर के बाल छोटे छोटे और पैने हो गये हैं गले में हड्डियों का हार है और लोहे के आभूषण हाथों और पांओं में पड़े हैं और चाण्डाल रूप होगया है। ऐसे भयानक और पातकी रूप को देखकर उसके मंत्री और नौकर चाकर उसे छोड़कर चले गये। हे काकुत्स्थ! बहुत दिन तक राजा त्रिशंकु अकेला बैठा अपने हृदय

में जलता रहा और अन्त में विश्वामित्र मुनि के पास आया। उस की इस दुर्गति को सुनकर मुनि को बड़ी दया आई। उस ने राजा को धीरज देते हुए कहा हे इक्ष्वाकु कुल प्रदीप ! डरो मत, मैं तुझे शरण देता हूं। मैं सब ऋषियों को बुलाकर तेरे लिये यज्ञ करूंगा जिस से तू अपने मनोरथ को प्राप्त करेगा अर्थात इस मनुष्य देह के साथ ही स्वर्ग को जाएगा। इतना कहकर राजर्षि विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को यज्ञ की सामग्री एकत्र करने के लिये आज्ञा दी और अपनी शिष्य मंडली को बुलाकर कहा कि वन में रहने वाले जितने ऋषि मुनि महात्मा और तपस्वी हैं उन सब को तथा वसिष्ठ के पुत्रों को मेरी ओर से यज्ञ में आने के लिये निमंत्रण दो। गुरु की आज्ञा पाकर वह सब शिष्य चारों ओर निमंत्रण देने के लिए चले गये।

हे राघव ! कुछ दिन पश्चात वह सब लौट कर आ गये और विश्वामित्र से बोले हे गुरो ! हम सब वनों और गाओं में प्रत्येक ब्रह्मवादी मुनि को निमंत्रण दे आए हैं। उन में से कुछ तो यहां आगए हैं और शेष ने आने का वचन दिया है. परन्तु वसिष्ठ के पुत्रों ने यह कहकर निमंत्रण अस्वीकार कर दिया है कि देवता लोग इस यज्ञ का भाग कैसे स्वीकार कर सकते हैं जिसमें यजमान चाण्डाल और पुरोहित क्षत्रिय है और ब्राह्मण किस प्रकार चाण्डाल के यज्ञ का भाग स्वीकार कर सकते

हैं ? हे गुरो ! वसिष्ठ के पुत्रों ने यह शब्द बड़ी घृणा और क्रोध से कहे हैं।

शिष्यों के मुख से यह वचन सुनकर विश्वामित्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उस ने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा ।

" मैंने उनका कोई अपराध नहीं किया परन्तु फिर भी उन्हों ने मेरा अपमान किया है. उन को अपनी तपस्या का इतना अभिमान हो गया है. इस लिये मैं शाप देता हूं कि उन सब का नाश होवे और आज ही कालपाश से बंध कर यम पुरी को जाएं और सात सौ जन्म पर्यन्त चाण्डाल योनी को प्राप्त होवें. उन को खाने के लिये केवल कुत्ते का मांस मिले और बड़े कुरूप होकर संसार में विचरण करें ।"

इतना कहकर विश्वामित्र चुप हो गए और यज्ञ की तैय्यारी करने लगे ।

———:०:———

विश्वामित्र का यज्ञ करना और त्रिशंकुका सदेह स्वर्ग जाना ।

शतानंद बोले हे रामचद्र ! सब ऋषि मुनि और तपस्वियों के आने पर विश्वामित्र ने योग बल से देखा कि शाप के बल से वसिष्ठ के पुत्रों का नाश होगया है और वह सब यम पुरि में चले गये हैं । तब प्रसन्न होकर उस राजर्षि ने कहा हे मुनि जन ! इक्ष्वाकु वंश के महात्मा सत्यवादी राजा त्रिशंकु यज्ञ की इच्छा से

यहां आए हैं इस लिये आप सब इस पवित्र कर्म में महायता दें ।

तब सब तपस्वियों ने जो वसिष्ठ के पुत्रों की दशा देख चुके थे भय से यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया, और विधि पूर्वक यज्ञ कर्म में प्रवृत्त होगए । जब यज्ञ समाप्त हुआ तो विश्वामित्र ने सब देवताओं के नाम आहुतियां देकर उनका आवाहन किया, परन्तु कोई भी देवता उस यज्ञ में अपना भाग लेने न आया । यह देख कर विश्वामित्र ने क्रोध से संतप्त हो जलका अर्घा हाथ में लेकर कहा हे त्रिशंकु ! मैं अपने तपोबल से तुझे शरीर सहितस्वर्गमें भेजता हूं । इतना कह कर मंत्र पढ़ते हुए विश्वामित्र ने आकाश में जल छिड़का और उसी समय राजा त्रिशंकु देह सहित गगन पर चढ़ता हुआ स्वर्ग में जा पहुंचा ।

हे राघव ! त्रिशंकु को स्वर्ग में आते देख सब देवताओं सहित इन्द्र ने कहा, हे मूर्ख ! तेरे गुरुने तुझे शाप दिया है, तू स्वर्ग में रहने के योग्य नहीं है, इस कारण सिर के बल तेरा मर्त्यलोक में पतन होवे । इन्द्र के ऐसा कहते ही त्रिशंकु सिरके बल भूमि की ओर गिरने लगा और भयके मारे "विश्वामित्र ! रक्षा करो, रक्षा करो" इस प्रकार दुहाई देने लगा । तब विश्वामित्र उसके दुःख की पुकार सुन क्रोध से खड़ा होकर बोला "वहीं ठहर, वहीं ठहर" ऋषिके तपोबल से त्रिशंकु भूमि और स्वर्ग

के मध्यवर्ती आकाश में सिरके बल लटकने लगा। उसको वहीं लटकते देख विश्वामित्र ने अपने तपोबल से उसी स्थान पर स्वर्गकी रचना करदी और दक्षिण दिशा में नया सप्तर्षि मंडल रच दिया और नवीन तारे बना दिये। जब स्वर्गके समान संपूर्ण तारा मंडल रचा गया तो ऋषि ने नये इन्द्र की रचना करने का विचार किया। हे रामचन्द्र! ऋषि के इस विचार को जानकर इन्द्रादि देवता व्याकुल हो कर मुनिके पास आये और अनेक प्रकार से स्तुति करके बोले हे महात्मन्! त्रिशंकु को गुरु का शाप है सो वह स्वर्ग में रहने के योग्य नहीं है।

तब विश्वामित्र बोले, हे देवता गण! मैंने इसे इसी शरीर में स्वर्ग भेजने का वचन दिया है, मैं अपने वचन को भंग नहीं कर सकता, इस लिये मेरा रचा हुआ यह स्वर्ग मंडल सदाके लिये बना रहेगा, और यह राजा अमर हुआ हुआ सदा इस नक्षत्र मंडल में राज्य करेगा। तब सब देवता लोग 'तथास्तु' ऐसा कह कर देवलोक को चले गए हे रामचन्द्र! इस प्रकार यज्ञ समाप्त हुआ और सब ऋषि मुनि महात्मा अपने अपने स्थानों को चले गए।

—:o:—

विश्वामित्र का ब्राह्मण पद प्राप्त करना।

शतानंद बोले हे रामचन्द्र! यज्ञ समाप्त करके जब सब तपस्वी अपने अपने स्थानों को चले गए तो विश्वामित्र

भी वहां से चलकर पूर्व दिशा में आकर कठिन तप करने लगे। बिना अन्न जल के एक हज़ार वर्ष तक तप करते करते उन की देह सूख कर लकड़ी के समान हो गई। उस अवस्था में उन की तपस्या में बहुत से विघ्न आए, परन्तु उन सब विघ्नों को बिना क्रोध किये शान्त रह कर उन्होंने दूर कर दिया। जब तपस्या की अवधि पूरी हो गई तो उन्होंने अन्न ग्रहण करनेका विचार किया जिस समय भोजन बन कर तैय्यार हुआ और वह खाने के लिये आसन पर बैठ गये, उसी समय देवराज इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर वहां आये और मुनि से भोजन की याचना की। तब विश्वामित्र ने सब का सब भोजन उसे दे दिया और स्वयं निराहार बैठे रहे। इस घटना से मुनि के हृदय में विचार हुआ, कि दीक्षा समाप्त हो गई है, यह जानकर मैंने अन्न खाने का विचार किया था, परंतु इस ब्राह्मण के आने से और पके पकाए भोजन के ले जाने से प्रतीत होता है, कि अभी खाने का समय नहीं आया और अभी मेरी तपस्या पूरी नहीं हुई। इस विचार से उन्होंने एक हज़ार वर्ष तक मौन रहकर फिर तप करने के लिये दीक्षा ली। अब की बार उन्हों ने सब इन्द्रिय स्रोतों को बंद करके श्वास रोक लिया और महादारुण तप करने में प्रवृत्त हुए।

हे रामचन्द्र! श्वासों को रोकने से मुनि के मस्तक में से धूआँ निकल कर चारों दिशाओं में फैलने लगा: जिससे

तीनों लोक के जीव जंतु व्याकुल हो उठे । ऋषि मुनि देवता गंधर्व यक्ष और किन्नर सब उस धूएं से मूर्च्छित हुए हुए त्राहि माम् त्राहि माम् करते हुए ब्रह्मा के पास जाकर बोले—हे प्रजापति ! महामुनि विश्वामित्र की तपस्या पराकाष्ठा को पहुंच गई, अनेक प्रकार से लुभाये जाने पर भी वह क्रोध और मोह में नहीं फंसे, अब यह तपे हुए स्वर्ण के समान निर्दोष हैं । हे संसार के उत्पन्न करने वाले! इनके तेजसे दशों दिशाएं चमक रहीं हैं, सूर्य्य और चन्द्रमा सहित सारा नक्षत्रमंडल इनके तेजके सामने फीका पड़ गया है, इनकी इच्छा शीघ्र पूरी करो अन्यथा थोड़े ही समय में सारा जगत भस्मीभूत हो जाएगा । देखिये इनके मस्तकसे निकले हुए धूंए के प्रसार से समुद्र क्षोभमें आगये हैं, तारे टूटने लगे हैं पर्वतों सहित पृथिवी बारं बार डोलती है, इस लिए हे देवताओं के स्वामी! इनकी इच्छा शीघ्र पूर्ण कीजिये ।

इस प्रकार देवताओं की प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा सब देवताओं सहित मुनि विश्वामित्र के निकट आकर बोले हे गाधिसुत! तुम्हारी कठिन तपस्यासे हम प्रसन्न हुए, और हमने सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण पदवी तुम्हे प्रदान की, तुम संसार में बड़े यशके साथ चिर काल तक सुख भोगो गे अब तुम अपने देशमें जाओ तब महामुनि विश्वामित्र बोले, हे देव! यदि आपने मुझे ब्राह्मण पद दिया है तो ओंकार, वषट्कार और चारों वेद भी प्रदान कीजिये, और इसके साथ ही

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ भी मुझे ब्राह्मण कह कर पुकारें तब मेरी कामना सिद्ध होगी और तब मैं अपनी तपस्या को चरितार्थ समझूंगा।

हे राघव! विश्वामित्रका यह वचन सुनकर सब देवताओं समेत प्रजापति ब्रह्मा ने वसिष्ठ के पास जाकर सब बात कही। तब ब्रह्मर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रको कंठ से लगा कर कहा, हे कौशिक! तुम्हें मैं ब्राह्मण स्वीकार करता हूं। तब ब्राह्मण पद को प्राप्त करके विश्वामित्रने बड़े आदर से वसिष्ठ की पूजा अर्चना की, और सब देवता अपने अपने लोक को चले गये।

हे रघुनंदन! इस प्रकार बड़े दारुण तप द्वारा इस मुनि ने ब्राह्मण पदको प्राप्त किया है। यह बड़े धर्मात्मा तपस्वी तेजस्वी सर्व शास्त्रों के जानने वाले और सब विद्याओं में प्रवीण हैं।

जब इस प्रकार राम और लक्ष्मणको शतानंद सुना चुके तो राजा जनक बोले—

हे महामुनि विश्वामित्र! आपके और राजकुमारों के दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ। हे महात्मन्! मेरे अहो भाग्य हुए जो आपके चरण मेरी नगरी में पड़े हैं। हे ब्रह्मर्षि! अब सूर्य्य अस्त होने वाला है और संध्योपासन का समय हो गया है, सो मुझे छुट्टी दीजिये, प्रातः काल फिर आपके दर्शनों से अपने नेत्रोंको कृतार्थ करूंगा। तब मुनि ने उन सबको जाने की आज्ञा दी, और राजा

जनक अपने मंत्रियों सहित मुनि की परिक्रमा करके वहां से विदा हुए और विश्वामित्र भी राजकुमारों समेत अपने नियत स्थान पर चले गए ।

—:०:—

पिनाक धनुष की कथा

दूसरे दिन प्रातः काल स्नान संध्या आदि से निवृत्त हो महामुनि विश्वामित्र अपने आसन पर विराजमान हुए । तब महाराज जनक अपने मंत्रियों सहित आकर बोले, हे ब्रह्मर्षि! मेरे योग्य कोई सेवा बताईये । जनकके इस प्रकार कहने पर विश्वामित्र बोले, हे निष्पाप! यह दोनों राजकुमार क्षत्रिय कुलके रत्न, तीनों लोकमें प्रख्यात महाराज दशरथके पुत्र हैं। आपके यज्ञ और पिनाक धनुष के देखने के लिये यहां आए हैं, हे महाभाग! उस धनुष को इन्हे दिखला कर प्रसन्न कीजिये । ब्रह्मर्षि की ऐसी आज्ञा पाकर राजा जनक बोले हे विश्वामित्र! किस प्रकार यह धनुष मेरे पास आया, उसका वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूं । राजा निमिका बड़ा भाई देवराज था । दक्ष यज्ञमें पतिका भाग न पाकर सती के योगअग्नि से भस्म हो जाने पर महाकाल शिवको बड़ा कोप हुआ । उन्होंने सारे यज्ञका नाश करके इसी पिनाक नामक धनुषको चढ़ा कर देवताओं से कहा, हे देव गण.! यज्ञमें मेरे भाग के होने परभी तुमने मेरा भाग नहीं दिया, इसलिए मैं तुम्हारे सिर काटता हूं । तब भयभीत हो कर सब देवता बड़ी

दीनता से महादेवकी स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न हो कर महादेवने यह धनुष देवताओं को दे दिया।

देवताओंने इस धनुषको देवराजके पास रख दिया। हे मुनीश! तबसे यह धनुष वंश परंपरा से हमारे हां पड़ा है। एक समय मेरे देशमें वृष्टि न होने से घोर अकाल पड़ गया। अन्नके लिए सारी प्रजा हाहाकार करने लगी। तब मैंने एक बड़ा यज्ञ किया और अपने हाथ से खेतोंमें हल चलाने लगा। हलसे भूमि खोदते खोदते देव इच्छा से एक कन्या भूमि में से निकली। उस परम सुन्दरी कन्या सीता को मैं अपने अंतः पुरमें ले आया। और पुत्री के समान पालन करने लगा। सीता जब किशोर अवस्थाको प्राप्त हुई तो उसके रूप और गुणों की ख्याति संसारमें होने लगी, और देश देशान्तर के राजकुमार आकर मुझसे उसकी याचना करने लगे। परन्तु मैंने सबको अपनी प्रतिज्ञा सुना दी, कि जो कोई इस धनुषको चढ़ाएगा वही सीता का पति होगा। इस पर सहस्रों राजकुमार और राजे महाराजे क्रम क्रम से यहां आए परंतु धनुषका चढ़ाना तो क्या तिल भर भी भूमिसे न हटा सके। वह सब दुष्टात्मा लज्जित हो कर मेरे देशमें उत्पात करने लगे। अपनी सेनाओं से सुसज्जित हो चारों ओरसे घेरा डाल कर मेरे देशकी सीमाओं पर उपद्रव करने और लूट मार करने लगे। एक वर्ष पर्यन्त मैं उनसे युद्ध करता रहा, परंतु

अंतमें बहुत सी शक्ति के नष्ट हो जाने पर मैंने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया । मेरी तपस्या से प्रसन्न हो देवताओं ने मुझे चतुरंगिणी सेना प्रदानकी जिसके द्वारा घोर युद्ध करके मैंने उन सब उपद्रवी राजकुमारों को मार भगाया । हे महामुनि ! अब सीता स्यानी होगई है. इसके व्याह के लिए मैंने यह यज्ञ रचाया है, सो जो कोई माहदेवके पिनाक नामक इस धनुपको जो कि वज्र के समान महा कठोर है. चढ़ाएगा वही सीता को प्राप्त करेगा। हे महर्षि! वह धनुप अभी यज्ञस्थलीमें आएगा यदि इनमें कोई भी दशरथ कुमार उसको चढ़ा कर मेरी प्रतिज्ञा को पूरा करदे तो जानकी निस्सन्देह उसी को प्राप्त होगी ।

रामचन्द्र जी का धनुप को तोड़ना ।

राजा जनक के मुख से धनुप की कथा सुन महा मुनि विश्वामित्र दोनों कुमारों को साथ लेकर यज्ञ मंडप में पहुंचे जो देवराज इन्द्र के दर्बार के सामान शोभा पा रहा था । मंडप के ऊपर सुंदर मखमल का वितान सहस्रों मणियों और सुनहरी झालरों से जगमगाता हुआ ऐसे शोभा दे रहा था मानों शरद रात्रि में पूर्णिमा की चांदनी में सुनील आकाश तारा मंडल जगमगा रहा है । सहस्रों ध्वजाएं आकाश में लहराती हुई जनक की कीर्ति का विस्तार कर रही थीं. मणि जड़ित सहस्रों खंभों वाला वह मंडप दर्शकों के हृदय को मुग्ध कर

क था। देश देशान्तर के नरेश और राजकुमार स्वर्ण मं चांदी के उज्वल आसनों पर अर्द्ध चन्द्राकार क ति में बैठे हुए ऐसे शोभा देते थे, मानों सारे संसार का ऐश्वर्य्य और यौवन इसी स्थान पर इकट्ठा हो गया बो। चारों ओर खिड़कियों में बैठी हुई जनक पुरी की महिलाएं तृपित नेत्रों मे मंडप की छवि को द्विगुणित करती हुई ऐसी प्रतीत होती थीं मानों अप्सराओं की मूर्तियां सजावट के लिए खड़ी की गई हों। एक ओर विप्रगण और तपस्वी लोग अपने शान्त और समुज्वल तेज मे शान्ति की वर्षा कर रहे थे। मीठे और सुरीले बाजों की ध्वनि ने घोर बांधी हुई थी। इतने में महा देव का पिनाक धनुप बड़ी गर्जना करता हुआ मंडप में लाया गया, जिसे पांच हज़ार मनुष्य सहस्रों पहियों वाले ठेले पर खींच कर लाये, उस धनुप को चढ़ाना तो क्या देख कर ही बड़े बड़े बलवानों के साहस टूट गये। धनुप के आजाने पर जनक का ज्येष्ट पुत्र अपनी अशेष बहनों के साथ जानकी को आगे कर धनुष के निकट आया और भुजा को उठाकर ऊंचे स्वर से बोला—

हे हे भूमंडल के राजाओ और राजकुमारो! महादेव के इस धनुप को जो कोई चढ़ाएगा, वही जानकी का पाणिग्रहण करेगा।

इसके अनंतर सीता जयमाला हाथ में लिए एक

सुन्दर स्थली पर अपनी सखियों के साथ खड़ी र[illegible] गई । राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनकर बारी २ से रा[illegible] कुमार अपने २ आसनों से उठकर धनुष को चढ़ाने के उद्योग करने लगे, परन्तु कोई भी उस को हिल न सका । तब अति लज्जित होकर अपने २ स्थानों पर हो गये । जब सब राजे महाराजे और राजकुमार बल लगा कर हार गये तो राजा जनक निराश होकर उच्च स्वर से खड़े होकर बोले, सारे भूमंडल के योद्धा क्षत्रिय यहां आए हुए हैं, परन्तु कोई भी धनुष को न उठा सका आज पृथिवी क्षत्रियों से रहित हो गई है, ऐसा प्रतीत होता है । यदि मुझे पहले पता होता तो मैं ऐसी प्रतिज्ञा न करता परन्तु अब अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता । सीता आयु भर कुंवारी रहेगी, विधाता की इच्छा ऐसी प्रतीत होती है, इस लिए तुम सब अपने अपने घर जाओ ।

राजा जनक के इन वचनों से सारा नृपति मंडल लज्जित होगया, परंतु सूर्य्यकुल के अवतंस लक्ष्मण को जनक के यह वचन पसंद न आए । वह क्रोध से उठा और भ्रुकुटि चढ़ाकर बोला, हे मिथिला नरेश ! तुम्हारे यह वचन सूर्य्य कुल का अपमान करने वाले हैं, जहां सूर्य्य कुल का सामान्य सा भी मनुष्य बैठा हो वहां ऐसे बचन कहने का किसी को साहस भी नहीं होता, और यहां तो साक्षात रामचन्द्र जी स्वयं विराजमान हैं । यह महादेव

का धनुष क्या है, यदि मैं चाहूं तो अपने भुज बल से महा देव सहित सुमेरू पर्वत को हिला दूं, और पृथिवी को रसातल में ले जाऊं.....इतना कहते कहते लक्ष्मण का शरीर क्रोध से थरथराने लगा। नेत्र अग्नि के अंगारे बर्साने लगे।

लक्ष्मण की ऐसी दशा देखकर रामचन्द्र ने सैनि से उसे बैठ जाने की आज्ञा दी। और विश्वामित्र की आज्ञा पाकर स्वयं अपने आसन से उठ धीर गति से धनुष की ओर चले। उस सिंह के समान चलते हुए राम को देख जानकी और उस की सखियां पहले तो अति प्रसन्न हुई परन्तु पश्चात उन की छोटी अवस्था और सुकुमारपन को देखकर व्याकुल हुई २ मन ही मन परमात्मा की प्रार्थना करने लगी, कि हे दीन दयाल दीन बंधू! मेरी लज्जा तेरे हाथ है, हे सर्वशक्तिमान विभो! अपनी दया से मेरे दुख को दूर करो और धनुष को इतना हल्का कर दो, कि इस कुमार के स्पर्श करते ही धनुष अपने आप ऊपर उठ आवे। इधर रामचन्द्र धनुष के निकट जा पहले मृदु मुस्कान से जानकी की ने ओर देखा और फिर धनुष को सहज ही में पकड़ कर ऐसे उठा लिया मानों गरुड़ ने सर्प उठा लिया हो और क्षण मात्र में अपनी लंबी भुजाओं से उस की प्रत्यंचा को इतने बल से खींचा, कि वह गोलाकार होकर बीच में से दो टूक हो गया। उस समय ऐसा भयानक और तड़ाके

का शब्द हुआ, मानों एक साथ सैंकड़ों बिजलियां गिरी हों, भूकंप होने के समय पर्वतों के टकराने से जिस प्रकार पृथिवी डोलती हो, उसी प्रकार धरती जोर से थरथराने लगी, जिस से भयभीत हुए राजे महाराजे और तपस्वी लोग तथा स्त्रियां चीख़ती हुई इधर उधर भागने लगीं। केवल राम लक्ष्मण विश्वामित्र जनक और सीता अचल अपने २ स्थानों पर खड़े रह सके। जब पृथिवी का डोलना बंद हुआ और सब प्रकार से शान्ति हो गई, तो यज्ञ मंडप में सब के सन्मुख खड़े होकर राजा जनक बोले, हे महामुनि विश्वामित्र ! मैं रघुकुल के सूर्य्य राजकुमार रामचन्द्र के बल को मान गया हूं, उनके बल और पराक्रम को देखकर मैं आश्चर्य्य रह गया हूं, इन्हों ने आज वह काम किया है, जो संसार में असंभव था, और हे महामुनि ! मेरी पुत्री सीता आज से रामचन्द्र की पत्नी हुई, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई धनुष को चढ़ाएगा सीता उसी की होगी, सो इसने प्रतिज्ञा को पूरा कर दिया है। हे विश्वामित्र ! सीता मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है, और वह इस राजकुमार रामचन्द्र के लिए देता हूं।

इस प्रकार जनक के कह चुकने पर बीणा के समान मधुर कंठ से मंगल गीत गाती हुई सखियां सीता को लिए हुए वहां आईं जहां धनुष को तोड़ कर राम खड़े थे। और लज्जा संकोच और हर्ष के भावों से भरे हुए हृदय

से सीता ने राम के कंठ में विजय माला डाल दी।

उस समय चारों ओर जय जयकार की ध्वनि होने लगी जिस से बाजों की ध्वनि भी मंद पड़ गई, चारों ओर फूलों की वर्षा से यज्ञ मंडप की भूमि ढंप गई और ब्राह्मण लोग मंगल श्लोक पढ़ने लगे।

——:०:——

राजा जनक का अयोध्या को दूत भेजना।

जब सीता रामचंद्र के कण्ठ में जय माला डाल चुकी तो जनक ने अपने दूतों को अयोध्या में राजा दशरथ के पास संदेश देकर भेजा, जो रथ पर सवार होकर वायु वेग से उड़ते हुए तीन रात्रि रास्ते में व्यतीत करके चौथे दिन अयोध्या में पहुंचे। रास्ते के परिश्रम से थके हुए वह कुछ समय विश्राम लेकर राज मन्दिर में प्रविष्ट हुए, वहां उन्हों ने महाराज दशरथ के दर्शन किये जो साक्षात देवता के समान सिंहासन पर विराज मान थे। राजा को देखकर वह हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से बोले हे राजन्! महाराज जनक ने बड़े आदर सहित आप की आप के परिवार और मंत्री मंडल की कुशल पूछ कर विश्वामित्र की आज्ञा से यह संदेश दिया है, कि मेरी कन्या सीता का मूल्य पराक्रम है, यह बात सारा संसार जानता है, सो हे राजन्! महर्षि विश्वामित्र के साथ आए तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र ने अपने पराक्रम से उसे विजय किया है। महादेव के उस वज्र समान

धनुष को जिस से हार कर अनेक राजे घरों को लौट गये हैं, उस ने अपने भुजबल से सब के सामने मध्य में से तोड़कर दो खंड कर दिया है। इसलिये सीता प्रतिज्ञा के अनुसार उस की हो चुकी है इस लिये राजन् अपने परिजनों और मंत्रियों तथा गुरु वसिष्ठ के साथ शीघ्र मिथिलापुरी में आईये जिस से वेद-विधि से विवाह करके आप स्नुषा वाले हों और मैं अपने ऋण से उऋण हो जाऊं।

दूत के मुख से राजा जनक का संदेश सुनकर दशरथ अति प्रसन्न हो मंत्रियों से बोले. कल मिथिलापुरी की यात्रा होगी. इस कारण बहुत सा धन और ऊंट हाथी घोड़े तथा पैदल सैनिकों से सुसज्जित एक बृहत चतुरंगिणी सेना को प्रातःकाल यात्रा के लिये आज्ञा दीजिये विलंब न हो, क्योंकि समधि ने शीघ्र पहुंचने के लिये कहला भेजा है। कल बड़ी भोरही वसिष्ठ वामदेव जाबाल, काश्यप, मार्कण्डेय और महर्षि कात्यायन मुझ से पहले चलें।

दूसरे दिन भोर होते ही महाराज दशरथ अयोध्या से सेना सहित मिथिला की ओर चले और चार दिन के पश्चात जनक की नगरी में बड़ी धूम धाम के साथ पहुंचे।

ऋषियों और मुनियों सहित राजा दशरथ के आने का समाचार पाकर राजा जनक ने नगर के द्वार पर

बड़े समारोह के साथ उन सब का आदर सत्कार किया और फिर हाथ जोड़ कर दशरथ से बोला, हे राजन्! आप के आगमन से मेरा देश पवित्र हुआ, आज मेरे भाग्य उदय हुए जो बड़े तेजस्वी ब्रह्मऋषि वसिष्ठ के दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ, और भाग्य ही से मेरी कुल का आप ने सन्मान बढ़ाया है, आज मैं अपने भाग्य की सराहना किये बिना नहीं रह सकता जो आप जैसे पराक्रमी शक्तिशाली उच्च कुल के राजा से मेरा संबंध हुआ है। इस प्रकार शिष्टाचार हो जाने के पश्चात् राजा दशरथ अपनी सारी सेना और मंत्री मंडल सहित जनवासे में गये और राम लक्ष्मण सहित बड़े सुख से रात भर विश्राम किया, और राजा जनक भी विवाह की सब सामग्री विधि पूर्वक रखवा कर शयनागार को चले गए। दूसरे दिन प्रातःकाल जनक का छोटा भाई कुशध्वज भी सांकाश्यपुरी से आ गया और अपने धर्मात्मा भाई जनक को मिला और शतानंद व राजा को प्रणाम करके दिव्य आसन पर बैठा। तब राजा जनक ने सुदामा नामक अपने मंत्री को कहा—कि हे महाप्राज्ञ! जिसके आने की बाट देख रहा था, वह भाई कुशध्वज आ गए हैं, अब आप शीघ्र जाकर इक्ष्वाकु कुल सूर्य्य महाराज दशरथ को दोनों कुमारों सहित यहां लिवा लाईये। राजा की आज्ञा पाकर मंत्री ने हाथ जोड़कर दशरथ को कहा, हे महाराजाधिराज! मिथिला

नरेश महाराज जनक उनके उपाध्याय और पुरोहित आपके दर्शनों की इच्छा से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इस संदेश को पाकर गुरु वसिष्ठ और मंत्रियों समेत राजा दशरथ वहां पहुंचे जहां जनक उनकी राह देख रहे थे। उन्हें देखकर जनक ने मंत्रियों समेत उठे कर दशरथ का स्वागत किया। जब सब अपने अपने नियत आसनों पर बैठ गए तो इक्ष्वाकु वंश के देवता महर्षि वसिष्ठ राम और लक्ष्मण का गोत्र पढ़ते हुए इस प्रकार वंश का वर्णन करने लगे—

हे मिथिलापति जनक! इस वंश में सबसे पहला राजा मनु हुआ। मनु का पुत्र इक्ष्वाकु हुआ जो अयोध्या का सबसे पहला राजा था। इक्ष्वाकु का पुत्र बड़े तेज वाला कुक्षि हुआ। कुक्षि का पुत्र बड़े पराक्रम वाला विकुक्षि हुआ। विकुक्षि का पुत्र बड़े प्रताप वाला बाण हुआ। बाण का पुत्र बड़े यश वाला अनरण्य हुआ। अनरण्य का पुत्र राजा पृथु हुआ जिसने सब पर्वतों को और सारी पृथिवी को रमणीक और बडी शोभा वाली बनाकर अपनी कीर्ति को अमर कर दिया। पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ। त्रिशंकु का पुत्र धुंधुमार हुआ। धुंधुमार का पुत्र युवनाश्व हुआ, जिसके तेज से सारा ब्रह्मांड कांपता था। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता हुआ। मान्धाता का पुत्र बडे यशवाला सुसंधि हुआ। सुसंधि के दो पुत्र हुए, ध्रुव संधि और प्रसेनजित, इनमें से ध्रुव संधि का

पुत्र भरत नामक बड़ा तेजस्वी हुआ। भरतका पुत्र असित हुआ। हे विदेह! असितका हैहय, ताल जंघ और शशबिंदु नामक तीन राजाओं से घोर युद्ध हुआ। युद्धमें उनसे परास्त हो कर राजा असित अपनी दो पत्नीयों सहित हिमालयमें चला गया और वहीं मृत्युको प्राप्त हुआ। उस समय उसकी दोनों स्त्रीयां गर्भवती थीं. उनमें से एक ने ईर्षा से दूसरीको विष दे दिया। विषसे पीड़ित हुई हुई वह कालिंदी नामकी राज पत्नी महर्षि च्यवनके पास आई जो उनके निकट ही एक सुंदर आश्रम में रहता था। कालिंदी ने अपनी कथा बड़ी दीनता के साथ उसे सुनाई। तब करुणासे भरे हुए हृदय वाले च्यवनने उसे औषधि दी और कहा, कि सुभगे! तेरे गर्भसे बड़ा प्रतापी तीनों लोक को जीतने वाला पुत्र उत्पन्न होगा, तेरी सौतिनने तुझे गर अर्थात विष दिया है, इस कारण उस पुत्र का नाम सगर होगा। महर्षि च्यवनके इस वचन से प्रसन्न हो कर कालिंदी ने उसे प्रणाम किया और कुछ दिन पश्चात् सगर नामक पुत्र को जन्म दिया। सगरका पुत्र असमंजस हुआ, असमंजसका पुत्र दलीप हुआ, जिसके यश से सारा संसार आज तक परिचित है, दिलीपका भगीरथ नामक पुत्र हुआ. जिसके गुणोंका आज तक यह भागीरथी गंगा अपने निर्मल प्रवाह से दशों दिशाओं में गान कर रही है। भगीरथ का पुत्र ककुत्स्थ हुआ। ककुत्स्थ का पुत्र रघु हुआ जो पुत्र की इच्छा से चिर

काल तक गौ की सेवा करता रहा। रघुका पुत्र बड़े तेजवाला प्रवृद्ध हुआ, जिसको पुरुपादक और कलमाष पाद भी कहते हैं। प्रवृद्धका शंखन नामक पुत्र हुआ। शंखनका सुदर्शन और सुदर्शनका पुत्र अग्नि वर्ण हुआ। अग्नि वर्ण का पुत्र शीघ्रग हुआ और शीघ्रगका मरु नामक पुत्र हुआ। मरुका प्रशुश्रक नामक पुत्र हुआ और प्रशुश्रक का पुत्र अंबरीप नामक बड़ा महात्मा पुत्र हुआ। अंबरीपका पुत्र राजा नहुप हुआ। नहुप का पुत्र राजा ययाति हुआ। ययाति का पुत्र नाभाग हुआ। नभाग का पुत्र राजा अज हुआ जिस ने अपने तेज मे सारे ब्रह्माण्ड पर राज्य किया। अज का पुत्र दशरथ और महाराज दशरथ के चार पुत्र राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न हैं। हे विदेह ! राम और लक्ष्मण के लिए आप की दोनों कन्याएं देने योग्य हैं जो इन के वंश रूप यौवन और योग्यता में दोनों राजकुमारों के सदृश हैं।

इस प्रकार राम लक्ष्मण की वंशावलि कहकर महा मुनि वसिष्ठ चुप हो गए।

उसके पश्चात् राजा जनक बोले हे महर्षि ! कन्या दान के समय कुलीन पुरुप अपनी वंश का सदा से वर्णन करते आये हैं, सो मैं भी अपनी वंशावलि कहता हूं सुनिये—

तीनों लोक में प्रसिद्ध, बड़े महात्मा सत्यवादी निमि नामक राजा हमारी कुल के प्रथम राजा थे।

निमि के पुत्र मिथि हुए। मिथि के पुत्र राजा जनक हुए। जनक के पुत्र उदावसु राजा हुए। उदावसु के पुत्र नंदि वर्द्धन हुए। नंदि वर्धन के सुकेतु नामक बड़े प्रतापी राजा हुए। सुकेतु के पुत्र देवरात हुए। देवरात के बृहद्रथ और बृहद्रथ के पुत्र महावीर नामक हुए जिन की वीरता सारे संसार में प्रसिद्ध है। महावीर के पुत्र सुधृति हुए जो हिमालय पर्वत के समान बड़े धैर्य्य वाले थे। सुधृति के पुत्र धृष्टकेतु और धृष्टकेतु के मरू नामक पुत्र हुए। राजा मरू के प्रतीन्धक हुए और प्रतीन्धक के पुत्र कीर्तिरथ हुए। कीर्तिरथ के देवमीढ़ नामक पुत्र हुए और देवमीढ़ के पुत्र विबुध हुए। विबुध के पुत्र महीध्रक हुए और महीध्रक के के कीर्तिरात नामक पुत्र हुए जो बड़े यश वाले थे। कीर्तिरात के पुत्र महारोमा और महारोमा के स्वर्णरोमा नामक पुत्र थे। स्वर्णरोमा के ह्रस्वरोमा हुए और अब ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हैं. जिन में से बड़ा मैं और छोटे कुशध्वज बृद्ध होने पर मेरे पिता मुझे राज्य सौंप कर और कुशध्वज को मेरे अधीन करके स्वयं बन को चले गए। उनकी मृत्यु होने पर मैं राज्य का कार्य्य करने लगा। हे ब्रह्मर्षि! एक दिन सांकाश्य पुरि के राजा सुधन्वाने अकस्मात् अपनी सेनाओं से मिथिला पुरी को घेर लिया और दूत के हाथ यह संदेश भेजा, कि महा देव का पिनाक धनुष जो देवताओं का धरोहर तुम्हारे पास है वह हमें दे दो और उस के साथ मृगनयनी सीता को भी हमारे अर्पण

करो। परन्तु मैंने उस की इन याचनाओं को स्वीकार न किया, जिस से हम दोनों में बड़ा भारी युद्ध हुआ। युद्ध में सुधन्वा मारा गया।

हे ब्रह्मर्षि ! सुधन्वा के मारे जाने पर मैंने अपने छोटे भाई कुशध्वज को सांकाश्य पुरि का राजा बना दिया। सो यह जो आप के सन्मुख बैठे हैं मेरे छोटे भाई सांकाश्य पुरि के राजा कुशध्वज हैं। अब मैं अपनी दोनों पुत्रियों को राम और लक्ष्मण के लिए देता हूं और तीन बार कहता हूं कि सीता राम के लिए और उर्मिला लक्ष्मण के लिए देता हूं।

राजा के इस प्रकार कहने पर विश्वामित्र और वसिष्ठ प्रसन्न होकर बोले, हे महाराज ! आप और महाराज दशरथ दोनों ही उत्तम कुलों में से हैं, सचमुच यह संबंध बड़ा ही उत्तम हुआ है, परन्तु राजन् ! जिस प्रकार आप के साथ सूर्य्य कुल रत्न महाराज दशरथ का संबंध हुआ है, उसी प्रकार आप के छोटे भाई कुशध्वज से भी होना चाहिये, और इसके लिये हम उस की दोनों कन्याएं जो परम रूपवती हैं भरत और शत्रुघ्न के लिये मांगते हैं। हे विदेह ! महाराज दशरथ के चारों राजकुमार बड़े धर्मात्मा सत्यवादी सुंदर और दिव्यगुणों वाले हैं और आपकी तथा आपके भाई की चारों कन्याएं भी रूप और शीलता में उनके समान ही हैं, इस कारण उनका विवाह सम्बंध भी इस उत्तम कुल

में कर दीजिये। तब जनक ने मुनियों के वचन को स्वीकार करते हुए कहा, आपने मेरी और मेरे कुल की प्रशंसा करके मेरा बड़ा सम्मान बढ़ाया है, इससे अधिक मुझे और क्या चाहिये, मैं अपने भाई की कन्याओं को भी भरत और शत्रुघ्न के लिये देता हूं, इस प्रकार कह कर जनक खड़े हो गए और दोनों हाथ जोड़ कर सीस झुका कर बोले, मैंने चारों कन्याओं को देदेने का आपसे धर्म कर लिया इसमें तनिक भी संदेह नहीं है अब आप जैसा उचित समझें कीजिए। तब महाराज दशरथ अति प्रसन्न होकर बोले हे मिथिला नरेश! आप जैसे ऊंची कुल के और शुभ गुणों वाले भूपति से सम्बन्ध होने पर मैं कृत्य कृत्य हुआ हूं, आपका कल्याण हो, आपने मेरा बहुत आदर किया है, सो मेरे अहो भाग्य हैं। अब मैं आपसे विदा हो गृह में जाकर विवाह की तैय्यारी करूंगा। इतनी बड़ी प्रसन्नता के साथ दोनों मुनियों के संग वहां से विदा हुए। रात्रि के समय सब विवाह सामग्री तय्यार करके उन्हों ने विश्राम किया और प्रातः काल उठ कर गो दान के निमित्त स्वर्ण के पत्रों से जटित सहस्रों गऊएं ब्राह्मणों के लिये दान दी गईं। उस समय चारों पुत्रों के मध्य में बैठे हुए राजा दशरथ बड़ी शोभा को प्राप्त हुए।

—:०:—

विवाह

गो दान से निवृत्त हो कर जिस समय राजा दशरथ समधी के राजभवन में चलने को तय्यार हुए उस समय केकय राजा के पुत्र भरत के मामा युधाजित वहीं आन पहुंचे, और राजा दशरथ से कुशल मंगल पूछ कर बोले, हे राजन् ! मेरे पिता ने आपका कुशल समाचार पूछा है, वह भी सब प्रकार से कुशल हैं, उन्हों ने संदेशा दिया है, कि भरत को देखे बहुत दिन हो गए हैं, सो उसे थोड़े समय के लिए भेज दीजिए। महाराज! यह संदेश लेकर पहले मैं अयोध्या में गया, परन्तु वहां से यह सूचना मिली, कि आप राजकुमारों सहित जनक पुरिमें गये हैं, सो मैं यहां आया हूं। महाराज दशरथ ने युधाजित का अच्छी प्रकार से सत्कार किया और उसको संग लेकर सारे ऋषियों और मंत्रियों सहित यज्ञ शाला के द्वार पर आया। इसके अनन्तर रामचंद्र भी शुभ मुहूर्त में भूषणों से अलंकृत होकर लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न सहित वहां आकर पिता के समीप खड़े हो गये। तब महर्षि वसिष्ठ यज्ञशाला के अंदर जाकर महाराज राजा जनक से बोले, हे विदेह ! हे मिथिलाधिपति पुरुष श्रेष्ठ ! महाराज दशरथ पुत्रों सहित अंदर आने की आज्ञा मांगते हैं। यह सुन कर राजा जनक ने उत्तर दिया, हे महात्मन् ! इस गृह का राजा दशरथ के बिना दूसरा कौन स्वामी है, गृह स्वामी

अपने सेवक की आज्ञा चाहता है, यह आश्चर्य है, किसने उनको रोका है, कौन द्वारपाल है, वह किसकी प्रतीक्षा में बाहर खड़े हैं, हे महात्मन्! अग्नि की देदीप्यमान शिखाओं के समान चारों कन्याएं वेदी के निकट खड़ी हैं, और मैं महाराज को देख रहा हूं, आप विलम्ब न करें, और शीघ्र कार्य करें, क्योंकि शुभ लग्न ज्योतिषियों ने नियत कर रखा है। महाराज जनक का यह उत्तर पा कर दशरथ मंत्रियों सहित चारों पुत्रो को आगे करके यज्ञ स्थान में आए। उनके आने पर बड़े आदर के साथ जनक ने उन सबकी पूजा की और स्वर्ण और मोतियों से जटित आसनों पर उनको बैठा कर वसिष्ठ को कहा, हे महर्षि! इन ऋषियों और महात्माओं के साथ आप ही इस शुभ कर्म को कराईये, क्योंकि आप ही इसके योग्य हैं।

जनक की इस प्रार्थना को स्वीकार करते हुए वसिष्ठ ने महर्षि विश्वामित्र और शतानंद के साथ कार्य आरंभ किया। वैदिक विधि से वेदी बनाई गई, उस वेदी को अनेक प्रकार के गेंदा, गुलाब, मोतिया, चंपा, केतकी आदि मनोहर सुगंधि वाले पुष्पों से अलंकृत किया गया, अनेक प्रकार के सुंदर फूलों वाले गमलों ने उस वेदी की शोभा को दुगना कर दिया, स्थान २ पर धूप स्रुवे शंख केशर चावल अक्षत दधि घृत शहद

तथा और सामग्री रख दी गई। भूमि पर कुशा के आसन विछा दिये गये। जब सब प्रकार से वेदी सज गई और सब वस्तुएं उचित स्थान पर रख दी गईं तो वेद मंत्रों से अग्नि को प्रज्वलित करके महर्षि वसिष्ठ हवन करने लगे। फिर नख से सिख तक सारे भूषणों से विभूषित बाल सूर्य्य की किरण के समान जनक-नंदिनी सीता को लाकर होम की अग्नि के समीप राम-चंद्र के सामने खड़ा करके मिथिला पति महाराज जनक बोले, हे कौशल्या नंदन ! यह मेरी कन्या सीता तेरी अर्धाङ्गिनी, छाया के समान सदा तेरे पीछे चलने वाली सहृद में चारिणी हो, इसको स्वीकार करो, हे महा-बाहो ! आज से यह तेरी हुई, यह कह कर उसने मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल अंजलि में से छोड़ दिया।

उस समय स्त्रियां वीणा के समान कंठों से मंगल गीत गाने लगीं, देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की, ऋषियों ने साधु साधु कहा, ढोल नफीरी, दुंदभि और अनेक प्रकार के बाजों की घोर उठने लगी।

इस के अनंतर राजा जनक लक्ष्मण को बोले, हे सुमित्रा नंदन ! इधर आओ, यह मैं अपनी दूसरी कन्या उर्मिला तुम्हें देता हूं, यह तुम्हारी सहचारिणी हुई। तब उर्मिला को अग्नि के निकट लक्ष्मण के सन्मुख खड़ा करके जनक ने जल की अंजलि भरी और विधि पूर्वक मंत्र पढ़कर जल छोड़ दिया। उर्मिला को प्रदान करके

फिर उसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न के लिए मांडवी और श्रुतकीर्ति को देकर राजा जनक ने बड़ी प्रसन्नता और स्नेह और आंसुओं से भरे हुए नेत्रों के साथ चारों पुत्रियों के हाथ चारों राज कुमारों के हाथों में देते हुए कहा, हे सूर्य्य वंशी राजकुमारो ! आप सारे ही ब्रह्मचारी सौम्य सुशील वेदवित् तथा सद्गुणों से अलंकृत हो, यह तुम्हारी पत्नियां तुम्हारे अनुकूल हों, अब तुम इन को ग्रहण करो ।

जनक के इस प्रकार कहने पर महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से चारों राज कुमारों ने पत्नियों सहित अग्नि की परिक्रमा की । इस समय वेदी पर पुष्पों की वर्षा हुई । तब चारों दशरथ कुमार विवाहित होकर पत्नियों सहित वहां से अपने निवास स्थानों को चले, उनके पीछे राजादशरथ ऋषि मुनि तथा सारा मंत्रि मंडल चला ।

—:०:—

परशुराम का आगमन ।

रात भर सुख से शयन करके प्रातःकाल महामुनि विश्वामित्र, महाराज दशरथ और राजा जनक से आज्ञा लेकर उत्तरा खंड की ओर चले गए । इस के पश्चात् महाराज दशरथ भी जनक से आज्ञा लेकर राजकुमारों सहित अयोध्या की ओर चले । विदाई के समय राजा जनक ने हाथी घोड़े रथ दास दासियां स्वर्ण चांदी हीरे मोती गौएं आदिक बहुत सी सामग्री दहेज में दी, और

फिर राजा दशरथ के साथ २ चलता हुआ नगर के द्वार पर खड़ा हो हाथ जोड़ कर बोला हे अयोध्योपति ! मैं आप का दास हूं, आप के साथ संबंध होने से मेरी कुल का सम्मान बढ़ गया। राजन् ! आपका कल्याण हो, और मेरी कन्याएं आपके पुत्रोंके अनुकूल चलने वालीं और आपके आशीर्वाद से सदा प्रसन्न रहने वाली हों। इसके अनंतर सीता उर्मिला और कुशध्वज की दोनों पुत्रियोंसे मिल कर दशरथसे आज्ञा ले वियोग के आंसूओं को पोंछता हुआ मिथिलाधिपति जनक वापस लौटा।

जनक के चले जाने पर बड़े हर्षसे महाराज दशरथ अयोध्याकी ओर चले। परंतु अभी वह थोड़ी दूरही आगे गये थे, कि राजा ने बड़े उग्र रूप भयानक मुख वाले लंबी जटाएं फैलाए, परशु राम को देखा जिसने सूर्य्यके समान चमकते हुए बड़े कुल्हाड़े को अपने ऊंचे कंधे पर रखा था और हाथों में धनुष बाण चढ़ाये नेत्रों से इस प्रकार अग्नि की वर्षा कर रहा था, मानों त्रिपुर नाम दैत्यको मारने के लिए साक्षात् महादेव खड़े हैं। क्षत्रियों के लिए यम रूप अग्निके समान जलते हुए भीमाकार उस जमदग्नि के पुत्रको खड़े देख सबकी आंखें इस प्रकार बंद हो गईं जैसे ज्येष्ठ आषाढ़के संतप्त सूर्य्यको मध्यान्ह कालमें कोई देख नहीं सकता। उसे देख कर वसिष्ठ वामदेव आदि महर्षि आपसमें झुक कर

बातें करने लगे, कि कहीं पितृवध का बदला लेनेके लिए तो यहां नहीं आया, पहले क्षत्रिय राजाओं के प्राण लेकर इस का मन संताप रहित हो चुका था, अब फिर क्षत्रियों का मारना उचित नहीं है, इस प्रकार विचार करके उन सब ऋषि मुनियोंने हाथों में अर्घ्य ले ले कर कहा हे राम! हे परशुराम! हे जमदग्नि सुत!! तब अर्घ्य द्वारा सत्कार किये जाने पर परशुराम कौशल्या नंदन राम से बोला हे राम! इस समय सारे संसारमें तेरे जैसा बलवान कोई नहीं है, तेरी भुजाओं के बल का यश तीन लोकमें फैला हुआ है यह मैं जानता हूं, और मेरे गुरु के धनुषको भी तूने ही तोड़ा है, यह भी मैं सुन चुका हूं. यह काम करके तूने अपने अद्भुत और अचिंत्य बलका प्रमाण दिया है, अब मैं दूसरा धनुष लाया हूं, सो हे राघव! वज्रके तुल्य कठोर इस भयंकर धनुष को, जिसे मैंने अपने पिता से पाया है तू चढ़ा और अपनी भुजाओं का बल दिखा, यदि इसे तूने खैंच लिया तो निस्संदेह तू मेरे साथ मल्ल युद्ध करने के योग्य होगा।

परशुरामके ऐसे वचन सुन कर भय से व्याकुल हुआ हुआ राजा दशरथ बोला, हे नरशार्दूल! अनेक बार क्षत्रियों का बध करके तू अपने पिताकी हत्याके प्रतिकार की प्यास बुझा चुका है, तेरे बल और पराक्रमको कौन नहीं जानता, कौन वीर तेरे सामने युद्धमें ठहर सकता है, अब

तूं मेरे इन बालकोंको अभय दान दे, क्योंकि ब्राह्मण होने से तुम्हें क्षमा करनी उचित है।

परंतु क्रोधसे जलते हूए जमदग्नि सुतने दशरथकी बातों पर ध्यान न दिया और फिर राम ही से बोला, हे राम! शत्रुओंके दुर्गको तोड़ने वाले सारे ब्रह्माण्डमें प्रसिद्ध दो धनुष विश्वकर्माने बनवाए थे, उनमें से एक धनुषसे शिवजीने त्रिपुर नामक दैत्य को मारा, उसे तूने तोड़ डाला। यह दूसरा भी उसी के तुल्य है। यह देवताओं ने भगवान विष्णु के लिये दिया था। एक दिन देवताओं ने चतुर्भुज ब्रह्मा से पूछा, कि हे प्रजापते! इन दोनोंमें से कौनसा धनुष मज़बूत है, इस पर शिव और विष्णुमें घोर युद्ध हुआ। उस युद्धमें लड़ते २ महादेव का धनुष ढीला हो गया, और यह निश्चय हुआ कि शिव के धनुष से यह धनुष अधिक मज़बूत है। इस पर कैलाशपति शिवने वह धनुष देवराज के हाथ सौंप दिया और विष्णुने अपने धनुष को भृगु वंशी ऋचीक को दिया। ऋचीकने जमदग्निको दिया। जब तपकी इच्छासे मेरे पिता जमदग्निने सब शस्त्रास्त्रों को त्याग दिया, तो कायर सहस्त्रबाहुने मेरे पिताको मार डाला। मेरे पिताके निर्दोष मारे जाने पर मेरे क्रोध और दुख की कोई थाह न रही, प्रतिकार की अग्निसे मेरा हृदय जलने लगा, और उस अग्निको मैंने अनेक बार असंख्य क्षत्रियोंके प्राण लेकर शान्त किया, और सारी पृथिवी को जीत कर यज्ञमें उसे दान देदिया,

और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर तप करने की इच्छासे गया। अब गुरुके धनुषके टूटनेका समाचार पाकर यहां आया हूं, सो हे राघव! इस धनुष को चढा कर अपने क्षत्रिय धर्मको पूरा कर, क्षत्रिय युद्धसे कभी विमुख नहीं होता, यदि तूने इस धनुषको पूर दिया, तो फिर मैं जानूंगा कि तू मेरे साथ द्वंद्व युद्ध भी कर सकेगा, और फिर तेरा मेरा द्वंद्व युद्ध होगा।

—:०:—

परशु राम को जीतना।

परशुराम के यह वचन सुनकर दशरथ सुत श्रीराम चन्द्र अपने पिता के सन्मुख खड़े होने के कारण बड़ी नम्रता से बोले हे भृगुसुत! अपने पिता का बदला चुकाने के विचार से जो जो काम तुम ने किये हैं, मैंने सुने हैं, मैं तुम्हारे पराक्रम को मानता हूं, परन्तु क्षात्र धर्म से बंधा हुआ मैं तुझ ब्राह्मण पर किसी प्रकार भी हाथ नहीं उठा सकता परन्तु फिर भी तू मेरा और मेरे क्षत्रियत्व का अपमान करता है इसे मैं सहन नहीं कर सकता इस कारण हे परशुराम! आज तू मेरे साहस और पराक्रम को अपनी आंखों देख। यह कहकर क्रोध से जलते हुए नेत्रों वाले रामचन्द्र ने परशुराम से उसके धनुष को ले लिया और उस पर डोरी डालकर बाण को रखा। इस के पश्चात् क्रोध से भरे हुए राम जमदग्नि के पुत्र से बोले, हे ब्राह्मण! तुम विश्वामित्र के भगिनि

पौत्र हो और जातिके ब्राह्मण हो, इस कारण मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा, परंतु डोरी पर चढाया हुआ यह बाण निष्फल नहीं जा सकता, इस लिए कहो तो मैं इससे तुम्हारे चरणों को काट कर तुम्हारी गतिको रोक दूं, अथवा तुम्हारे उन सब लोकों को भस्म कर दूं जिन्हें तुमने बड़ी कठिन तपस्यासे प्राप्त किया है, हे जमदग्नि सुत! शत्रुओं के बलको नाश करने वाला यह बाण अब किस दिशा मे छोड़ूं।

रामचंद्रके हाथमें धनुष धारण किया हुआ है। उन के मस्तकसे सूर्य्यके समान तेज बर्स रहा है, लोग आश्चर्य्यसे उंगलीयां मुंहमें डाले देख रहे हैं, और परशु राम निस्तेज हुआ हुआ राम चंद्रको देख रहा है। राम चंद्रके वचनको सुन कर हतवीर्य्य सा हुआ हुआ परशुराम शनैः शनैः बोला—हे दशरथ सुत! मारे क्षत्रियोंको मार कर जब मैंने पृथिवी को जीत लिया, तो मैंने उस भूमि को कश्यप ऋषि के लिये दान दे दिया। तब कश्यप ऋषिने कहा, कि धर्मानुसार तुमने मुझे सारी पृथिवी दान दे दी, इस पर अब तुम्हारा कोई अधिकार नहीं हैं, इस लिये मैं आज्ञा देता हूं, कि मेरी भूमि में तुम न रहो। हे राम! गुरुके वचनको स्वीकार करते हुए मैंने रात्रिमें भूमि पर विश्राम करना त्याग दिया, इस लिये हे वीर! तुम मेरी गतिका नाश मत करो, और मेरे तप से जीते हुए लोकों पर बाण छोड़ कर उनका

नाश करो। हे रघुनंदन! इस धनुषके चढाने से में तुमको विष्णुका अवतार मानता हूं, यह देखिये सब देवता लोग आपकी ओर देख रहे हैं, अब बाण छोड़िये, निस्संदेह आप विष्णु के रूप हैं, आपसे हार जाने में भी मैं अपनी प्रतिष्ठा समझता हूं, मैं यदि हार गया, तो इसी समय महेन्द्र पर्वत पर चला जाऊंगा, आप बाण छोड़ें।

यह सुन कर श्री रामचंद्र ने धनुष की टंकार करते हुए बाण छोड़ा, और परशुराम के सब लोक नाश कर दिये। तब परशुराम ने रामचंद्र की बहुत स्तुतिकी, और वहां से तुरंत महेन्द्र पर्वत की ओर चले गए

—:o:—

महाराज दशरथका सबके साथ अयोध्या पहुंचना।

परशुरामके हार कर चले जानेके पश्चात, श्री रामचंद्र जी ने वह धनुष वरुणको दे दिया, और अपने पिताके समीप जाकर जो परशुराम के भयसे आंखे बंद किये हत ज्ञान हुए २ खड़े थे, बोले, हे तात! आंखे खोलो, परशुराम चला गया। पुत्रकी वाणी सुन कर दशरथने रामको इस प्रकार ज़ोर से हृदयसे लगा लिया मानो वह यम पुरि से लौट आया हो। तब ऋषियोंने दशरथके सामने रामके बलकी बहुत प्रशंसा की और चतुरंगिणी सेना के साथ अयोध्याकी ओर चले।

चार दिन की यात्रा करके पांचवें दिन वह सब अयोध्या पहुंचे। राजा और राजकुमारों के विवाह का

समाचार पाकर सारी अयोध्या नगरी को उनके स्वागत के लिये सजाया गया। सड़कों पर गुलाब और अनेक प्रकार के सुगंधित जलों से छिड़काव किया गया सारी नगरी पर सूर्य्य के चिन्ह वाली ध्वजाएं लहराने लगीं, हाट बाजार अनेक प्रकार के सुंदर चित्रों फूलों और तरह तरह की मांगलिक सामग्री से अलंकृत किये गये। नगर के राज–द्वार पर सुंदर वस्त्रों और भूषणों से भूषित कुमारियां आरतीयां लिये खड़ी हो गईं, और सारी अयोध्या मे अनेक प्रकार के सुरीले बाजे बजने लगे।

जब महाराज और राजकुमार सुनहरी झूलों और स्वर्ण के हौदों से सजे हुए हाथियों पर नगर में प्रविष्ट हुए तो चारों ओर से फूलों की वर्षा और जयजयकार होने लगी। महारानी सीता उर्मिला और दूसरी दुलहिनों को देखने के लिये अयोध्याकी नारीयां मकानोंकी खिड़कीयों में खड़ी हुईं पुष्प मालाओं से उनका स्वागत करने लगीं। उस आनंद मय दृष्यको देख कर देवता लोग भी विमानों से पुष्प बर्साने लगे। जब सवारी हिमालय के समान ऊंचे राज भवन पर पहुंची तो कौशल्या सुमित्रा और केकयी ने आकर सीता उर्मिला और कुशध्वज की दोनों कन्याओं को कण्ठ से लगाया तथा बहुत सा स्वर्ण चांदी आदिक द्रव्य निछावर कर के उनको राज भवनमें लाईं, फिर राजकुमारों ने मंगला-

चारके गीतों से महलके अंदर प्रवेश किया । महाराज दशरथने इस समय पुरवासी ब्राह्मणों को सोना चांदी गौएं और बहुत सी भूमि प्रदान की । इस प्रकार चारों राजकुमार विवाह करके बड़े प्रेमसे पिता की सेवा करने लगे ।

जब कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये तो एक दिन महाराज दशरथ बोले हे भरत ! यह तेरे मामा युधाजित तेरे लिये बहुत दिनों से यहां टिके हुए हैं, सो अब तुम कुछ दिन सुख से अपने नाना के हां रहो। पिता की आज्ञा पा कर भरत ने अपने बड़े भाई महात्मा राम को नमस्कार किया और उन से आज्ञा लेकर शत्रुघ्न सहित चला गया। भरत और शत्रुघ्न के चले जाने पर राम और लक्ष्मण पिता की सेवा करने लगे । रामका स्वभाव सज्जनता उदारता और बर्ताओ देख सब लोग अति प्रसन्न हुए। वह गुरुओं, माताओं तथा मंत्रियों के साथ बड़ी नम्रता का बर्ताओ करता हुआ सब को प्रसन्न करने लगा ! पिता उसकी सेवा से, गुरु जन उसकी विनय से, मंत्रि मंडल उसकी नीति निपुणता से, भृत्य गण उसकी उदारता से और प्रजा उसके शील-स्वभाव से अति प्रसन्न थी, जनक नंदनी सीता भी ऐसे सुंदर रूप और गुणों वाले पतिको प्राप्त करके ऐसी मुग्ध हुई, कि वह सारे संसार को मानों भूल सी गई। उसका

हृदय राम के प्रेम के रंग से रंगा गया और चकवी के समान एक क्षण भी अपने प्राण पति को आंखों से ओझल न करना चाहती ।

इति श्री कविराज जयगोपाल विरचित
बाल्मीकीय रामायणे
प्रथमो बालकाण्डः
समाप्तः ।

❀ अयोध्या काण्ड ❀

जब भरत अपने मामा के घर चले तो अपने प्यारे भाई शत्रुघ्न को भी साथ लेते गये। वहां वह दोनों भाई बड़े ही आनंद में रहने लगे। उनके मामा अश्वपति उन से दशरथ के समान प्रेम करते थे। उनकी प्रत्येक इच्छा तत्काल पूरी की जाती। इस प्रकार के स्नेह और प्यार से उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अयोध्या में अपने गृह में ही रहते हैं। परंतु फिर भी दोनों भाई अपने वृद्ध पिता को कभी न भूलते थे। उधर महाराज दशरथ भी जिस दिन से दोनों भाई जो इंद्र और वरुण के समान थे, अपने मामा के घर गये प्रति क्षण उनके देखने के लिये तड़पते थे। यद्यपि महाराज दशरथ को चारों पुत्र इस प्रकार प्यारे थे जैसे अपने शरीर से निकले हुई भुजाएं, परंतु उन सब में से राम उनको विशेष प्रिय था। वह साक्षात मनु के समान गुणों में सर्वोतम था। साक्षात विष्णु के अवतार राम की देवता लोग रावण को मारने के लिए भक्ति करते थे। उस अनंत गुणों वाले पुत्र के साथ कौशल्या ऐसे शोभा देती थी जैसे इन्द्र के साथ अदिति। राम दया के भूषण से भूषित और सर्वगुण सम्पन्न तीनों लोक में अद्वितीय पुरुष अपने पिता दशरथ के समान था। सब कामों में चतुर, सदा प्रसन्न रहने वाला, मधुर भाषी, वृद्धों को आदर

देने वाला, कभी कठोर न बोलने वाला, शान्त स्वभाव, तरुण और सुन्दर रूप वाला दशरथ और कौशल्या का परम प्यारा था, अद्भुत बल और पराक्रम रखते हुए भी उस के अन्दर अभिमान का लेश न था। सांगो पांग चारों वेदों के जानने वाला नीति से प्रजा का पालन करने वाला, संयमी, दीनों पर दया करने वाला धर्मात्मा दुष्टों को दमन करने वाला, बोलने में बृहस्पति के समान देश और काल को जानने वाला राम सद्गुणों की खान था। वह प्रजा को प्राणों के समान प्यारा था। दयालु परन्तु शत्रुओं और अत्याचारियों का नाश करने वाला, धनुर्विद्या में पिता से भी बढ़ा हुआ था. उस ने क्रोध पर विजय प्राप्त की हुई थी। वह सदा ब्राह्मणों और वृद्धों का आदर करता था। क्षात्र-धर्म का पालन करने में सदैव उद्यत राम का विश्वास था. कि इसी धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। मंत्रियों में बैठकर युक्ति युक्त बातें करता वह साक्षात् बृहस्पति प्रतीत होता था। उसका चरित्र शुद्ध और कार्य्य अति पवित्र थे। उसकी स्मृति अति तीक्ष्ण थी, और वह सब देशों और समाजों की रीतियों को भली भान्ति जानता था। वह प्रजा से धन लेना जानता था और उसे प्रजा के हित के लिये समय पर व्यय भी कर देता था। आलस्य और प्रमाद से रहित वह सब प्राणधारियों को अपने समान समझता था। वह कृतज्ञ था और दूसरों के हृदय पर लिखे हुए विचारों

को ज्ञान के नेत्रों से पढ़ लेता था। वह संस्कृत आदि अनेक भाषाओं का पण्डित था। वह सदाचारी सदा धर्म का पालन करता था। वह घुड़सवारी में तथा घोड़ों और हाथियों के पालन करने में अतीव निपुण था। युद्धकला में महारथी राम शत्रुओं के विरुद्ध अपनी सेनाओंका संचालन करता और वीरता से उनको परास्त करता था, देवता और असुर दोनों युद्ध में उसको दबाने की सामर्थ्य नहीं रखते थे। उचित समय पर कार्य्य करने वाला वह समय का दास नहीं था। क्षमा में राम पृथिवी के समान, बुद्धि में बृहस्पति और शक्ति में साक्षात देवराज इन्द्र के समान था। ऐसे गुणवान राज कुमार रामचन्द्र को पृथ्वी अपना पति बनाने के लिये दिन देख रही थी।

इतने गुणों से भूषित राम को देखकर शत्रुओं के नाश करने वाले वृद्ध महाराज दशरथ ने अपने हृदय में विचार किया—

किस प्रकार राम राजा बने, अपने जीते जी इन आंखों से किस प्रकार यह सुखमय दिवस देखूं, कब मैं अपने प्यारे पुत्र को इस सिंहासन पर विराजमान देखूंगा। वह सदा प्रजा की भलाई में लगा रहता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। बरसते हुए मेघ के समान राम पर अयोध्या निवासी मयूर के समान दृष्टि लगाए प्रसन्न हो रहे हैं। शक्ति में यम और इन्द्र के तुल्य और बुद्धि में बृहस्पति के समान तथा सहनशीलता में

पर्वत के समान रामचन्द्र गुणों में मुझसे बहुत बढ़ा हुआ है। इस लिये राम को अपने हाथों राज्य देकर मुझे परलोक के लिये तप करना चाहिये।

इस प्रकार मन में विचार करके दशरथ ने मंत्रियों को बुलाया। उस समय अकस्मात बड़े २ उत्पात होने लगे। आकाशमें एकाएक बड़े वेगसे आंधी चलने लगी और झक्खड़ से पृथिवी मिट्टी और अंधकार से भर गई। प्रकृति के इस भारी क्षोभ की परवा न करते हुए दशरथ मंत्रि मंडल से बोले, कि मैं अब बहुत वृद्ध हो गया हूं, संसार के सब सुखों को मैंने देख लिया है, अब केवल एक अभिलाषा है, कि अपने प्यारे ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रवदन रामचन्द्र को सिंहासन पर बैठा देखूं, मुझे विश्वास है कि प्रजा मेरी इस बात को सुन कर अति प्रसन्न होगी। इस लिये नगर में घोषणा कर दो और देश देशान्तर के राजाओं को राज्य-तिलक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण पत्र भेज दो।

मंत्रियों ने प्रसन्न हो कर राजा की इस आज्ञा का पालन किया और थोड़े दिनों के पश्चात देश देशान्तर के राजा महाराजा महात्मा ऋषि और तपस्वी लोग अयोध्या में पहुंच गये। उन सब अतिथियों के स्वागत के लिये महाराज दशरथ प्रजापति के समान स्वयं राज-भवन के द्वार पर आये। यथोचित स्वागत के पश्चात उनके पदों के अनुसार सब को उत्तमोत्तम

मंदिरों में ठहराया गया, जो नाना प्रकार की सुंदर वस्तुओं से सजाए गये थे। यह सब हो गया परन्तु जल्दी में महाराज दशरथ ने राजा जनक और केकय राज को निमंत्रण न भेजा, परंतु इस विचार से निश्चिन्त रहे कि वह तो अपने घर के ही हैं, थोड़े दिन पश्चात् यह शुभ समाचार उन को भेज देंगे।

—:०:—

दूसरे दिन नियत समय पर देशदेशान्तर के भूपतियों से दर्बार सज गया। सब नरेशों को यथोचित आसनों पर बैठे देख कर महाराज दशरथ सिंहासन से उठ कर स्निग्ध गंभीर और मीठे स्वर से यूं बोले—

आर्य्य राजकुमारो ! आप सब को विदित है, कि यह राज्य जिस पर आज मैं शासन कर रहा हूं, मेरे पूर्व पुरुषों से मुझे मिला है जिसे उन्हों ने पुत्रों के समान पाला है। अब मेरा विचार है, कि इस पृथ्वी को जो इक्ष्वाकु से उत्तरोत्तर चल कर मेरे हाथों में आई है अपने योग्य पुत्र रामचन्द्र को सौंप दूं, मेरे पूर्वज जिस मार्ग पर चलते आए हैं, आज मैंने भी उन्हीं के पथ पर चलने का संकल्प किया है। मैंने अपने शासन काल में सदा जाग कर अपनी पूरी शक्ति से प्रजा के हित करने का यत्न किया है। इसी श्वेत छत्र के नीचे सारी पृथ्वी पर शासन करते हुए मेरे केश सफेद हो गये हैं और मैं बूढ़ा हो गया हूं। सहस्रों वर्ष तक राज्य का

भार उठाते उठाते अब मैं थक गया हूं और विश्राम करना चाहता हूं। इतने बड़े प्रजा के हित के काम को करते हुए जिसे अजितेन्द्रिय पुरुष नहीं कर सकता, अब मैं निभाने की सामर्थ्य नहीं रखता। इसलिये विश्राम की इच्छा से मैं इस राज्य-भार को राम के कंधों पर रखने का विचार करता हूं, जिस की स्वीकृति मैंने इन ब्राह्मणों से लेली है जो मेरे मंत्री हैं, मेरा योग्य पुत्र राम जिस ने शत्रुओं के देशों को विजय किया है, राजा के सब गुणों से संपन्न है। लक्ष्मण का बड़ा भाई निस्संदेह तुम्हारा ही नहीं प्रत्युत तीनों लोकों का राजा होने योग्य है। उस के द्वारा मैं सारे संसार का भला करूंगा, और सिंहासन को त्याग कर अपने स्थान पर उसे राज्य कार्य्य में नियुक्त करूंगा। हे राजाओ! जो कुछ मैंने विचार किया है, यदि यह ठीक है तो तुम सब अपनी स्वीकृति दो। और यदि तुम मेरे इस प्रस्ताव में भलाई नहीं देखते तो कोई दूसरा उपाय बतलाओ जो प्रजा के कल्याण के लिए हो, क्योंकि अलग अलग विचारों वाले पुरुषों के वाद विवाद से कोई अच्छा ही फल निकलता है।

महाराज दशरथ के इस प्रस्ताव को सुनकर सब के सब नरेश इस प्रकार प्रसन्न हुए जैसे बर्सने वाले मेघ को देखकर मोर। उनके जयकारों के शब्द से सभा-मंडप भर गया। तब उन में से एक अपने आसन से उठकर बोला—

राजन्! बड़ी बुद्धि वाले मंत्रियों ब्राह्मणों क्षत्रिय सैनिकों और सारी प्रजा के लोगों ने आप के विचार पर हृदय से प्रसन्नता प्रकट की है, हे राजन्! कई हज़ार वर्ष निरंतर राज करते करते आप बूढ़े हो गये हैं, इसलिए हम सब की भी यही सम्मति है, कि आप राम के सिर पर मुकट रखें। हम राघवों में बड़े शक्तिशाली राम को अपना सम्राट् बनाने में सहमत हैं, और श्वेत छत्र की छाया में हाथी पर बैठे उसके दर्शन करना चाहते हैं। राजाओं के मुख से यह शुभ वचन सुन दशरथ फिर बोले, हे नृपति वृन्द! मेरा भाषण सुनते ही आप ने राम को राजा बनाना स्वीकार कर लिया, इस से जान पड़ता कि आप मुझ से प्रसन्न नहीं थे, इस लिये मैं ठीक ठीक जानना चाहता हूं, कि किन कारणों से आप राम को यौवराज्य पद से विभूषित करना चाहते हैं।

महाराज दशरथ के इन वचनों को सुनकर सब राजाओं ने उत्तर दिया हे राजन्! सुनिये, आज हम आपके प्रति राम के वह गुण कथन करते हैं, जो देवताओं में भी नहीं हैं, और जिन गुणों से शत्रु भी उस की प्रशंसा करते हैं। हे राजन्! बल में राम साक्षात् इन्द्र और स्वयं इक्ष्वाकु से भी बढ़ कर है। राम संसार के सब मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। सदाचार, वैभवकी मूर्ति राम कभी झूठ नहीं बोलता। सुंदरता में चन्द्रमा और क्षमा में राम पृथिवी के समान है। वह अपने कर्त्तव्य में कभी

आलस्य नहीं करता और सदा प्रतिज्ञा को निभाने वाला है। वह सुशील, धर्मात्मा, बृहस्पति के समान बुद्धिमान, इन्द्रियजित, मीठा बोलने वाला कृतज्ञ और दूरदर्शी है। वह सदा वृद्धों और ब्राह्मणों की सम्मति पर चलता है, यही कारण है कि उसकी कीर्ति तीनों लोकों में फैल रही है। देवता राक्षस और मनुष्यों के चलाने वाले सब प्रकार के अस्त्रों में वह सिद्ध हस्त है। चारों वेदों को अंगोपांग सहित जानने वाला भरत का बड़ा भाई गान-विद्या में बड़ा प्रवीण है। राम सद्गुणों का घर, साधु स्वभाव, अपने से बड़ों के साथ नम्रता से वर्ताव करने वाला निस्सन्देह तीनों लोकों का राजा होने योग्य है। और जब कभी सुमित्रा नंदन लक्ष्मण के साथ राम किसी नगर प्रान्त व देश की रक्षा के लिए शत्रुओं के साथ युद्ध करने जाता है, बिना उन्हें विजय किये कभी नहीं लौटता, और युद्ध से लौट कर जब वह घोड़े अथवा हाथी पर से उतरता है, तो पिता के समान दास दासियों, भाईयों तथा स्वजनों से उनकी कुशल पूछता है। जब कभी किसी मनुष्य पर अथवा प्रजा पर विपत्ति पड़ती है तो राम उसके दुख से दुखी होता है, और उनके उत्सवों में वह बड़े हर्ष से सम्मिलित होता है। वह एक बलवान धनुपधारी है। वह बात करने से पहले मृदु मुस्कान से दूसरे को धीरज देता है। उसकी आंखों में दया का निवास है, वह कमल के समान नेत्रों

वाला साक्षात् विष्णु है । हे राजन् ! एक राज्य क्या राम तो तीनों लोकों का राजा बनने योग्य है । वह अवध्य को कभी नहीं मारता और वध्य का वध करता है । वह जिस पर प्रसन्न हो उसे निहाल कर देता है । सचमुच राम सूर्य्य के समान बड़े तेज वाला है । हे राजन् ! यह हमारा सौभाग्य है, कि राम हमारा सम्राट् बनाया जाने वाला है, जो पहले ही हमारे हृदयों का सम्राट है, और यह आपका भी सौभाग्य है, कि आप ने ऐसे गुणों वाले साक्षात् इन्द्र के समान पुत्र को परमेश्वर से पाया है । हे राजन् ! देवता असुर, मनुष्य, गंधर्व, उर्ग, नगर निवासी तथा गांओं के लोग सब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं, कि राम दीर्घायु हो और उसका स्वास्थ्य सदा बना रहे । और हम सब प्रातः और सायं दोनों काल की संध्याओं में ईश्वर से यही मांगते हैं, कि राम हमारे राजा बनें ।

राजतिलक की तय्यारी ।

सब राजों और राजकुमारों के वचन सुन कर महाराज दशरथ बोले—

आपके वचनों से मुझे असीम आनंद प्राप्त हुआ निस्सन्देह मैं अपने आपको बड़ा प्रतापी समझता हूँ, जो आप मेरे प्यारे पुत्र को राजा बनाने की अभिलाषा करते हैं, इस लिये इस चैत्र मास में ही जबके वसन्त

के सुखद वायु और फूले हुए वन अपनी सुगन्धि से मुग्ध कर रहे हैं, राज-तिलक का उत्सव होना चाहिये। हे मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ ! राम के तिलक के लिए जिस २ वस्तु की आवश्यकता है, वह सब एकट्ठी करने की आज्ञा दीजिये।

तब राजा की आज्ञा पाकर वसिष्ठ ने अधिकारी-वर्ग को आज्ञा दी, कि स्वर्ण चांदी आदि धातु, उज्वल माणि माणिक आदि रत्न, सुगंधित औषधियां सफेद मालाएं फुल्लियां (लाजा) घृत और मधु, उत्तमोत्तम वस्त्र सब प्रकार के शस्त्र और अस्त्र, चतुरंगिणी सेना, सजे हुए हाथी, दो सफेद चंवर, सूर्य्य के चिन्ह वाली ध्वजा और परंपरा से चला हुआ श्वेत छत्र, स्वर्ण के सौ घड़े, स्वर्ण की सिंगोटीयों वाला सांड, सिंह की छाल जो खण्डित न हो और वेदी के उपयुक्त सब प्रकार की सजावट की सामग्री प्रातःकाल यज्ञ-शाला में रखवा दो। रणवास के द्वार और नगर के सारे द्वार चंदन और चंपक-मालाओं तथा सुगन्धित धूप से अलंकृत कर दो। सूर्य्य उदय होने से पूर्व ब्रह्म-मुहूर्त में स्वस्ति वाचन और साम गान होगा। उस के लिये वेद-वित् और कर्म काण्डी ब्राह्मणों को निमंत्रण भेज दो। देश देश के आए हुए राजे और राजकुमार अपनी अपनी सेनाओं के सर्दारों सहित सुन्दर और समान पोशाकें पहर कर ढाल तलवार और कवचों से सुसज्जित होकर उत्सव के मंडप में प्रवेश करें।

इसके अनंतर महाराज दशरथ सुमंत्र से बोले—आप धर्म धुरंधर रामको शीघ्र यहां ले आईये। महाराज की आज्ञा पा सुमंत्र तुरंत वहां से चला गया और महारथी राम को रथ पर बैठाकर ले आया। राज महल पर बैठे हुए महाराज दशरथ ने जब रथ पर स्थित रामको आते देखा तो उनके आनंद का वार पार न रहा। महल के द्वार पर रथ से उतर रामचन्द्र पिता के निकट चला उस महातेजस्वी सिंह की सी चाल वाले किशोर राज कुमार के पीछे सुमंत्र दोनों हाथ जोड़े हुए चला। हिमालय के शिखर के समान ऊंचे प्रासाद पर चढ़कर राम दोनों हाथ जोड़े पिता के सामने झुक कर खड़ा हो गया। पुत्रको सामने देख दशरथ ने उसे कलाई से अपनी ओर खेंचकर कंठ से लगा लिया, और फिर सुन्दर आसन पर बैठाया। प्राणों से प्यारे पुत्र को अपने सन्मुख बैठे देख राजा ऐसे प्रसन्न हुआ, मानों वह दर्पण में अपना ही रूप देख रहा हो। उस समय मंत्रियों के मध्य में बैठे हुए राम की ऐसी शोभा हुई मानों नक्षत्र मंडल में चन्द्रमा जगमगा रहा हो। तब वह भूमंडल का स्वामी दशरथ मुस्कराता हुआ बोला, हे राम ! गुण कर्म और स्वभाव में मेरे समान मेरी बड़ी रानी के उदर से तूने जन्म लिया है, और अपने गुणों से तूने सारी प्रजा को प्रसन्न किया है, सो मैं कल तुझे राज्य-तिलक दूंगा। हे तात ! यद्यपि तू गुणवान सुशील बुद्धिमान पराक्रमी

और विनीत है, परंतु फिर भी जो बातें मैंने अनुभव से प्राप्त की हैं, वह तुम्हारे हित के लिये कहता हूं सो तू ध्यान लगाकर सुन। हे वयस्य! विनय को कभी न छोड़ना, इन्द्रियों को वश में रखना, सब प्रकार के व्यसनों से अलग रहना। प्रत्यक्ष रूप से और गुप्त-चरों द्वारा गुप्त रूप से मंत्रियों और अपनी प्रजा के हृदय के विचारों को सदा जानते रहना, अन्न, धन और शस्त्रों को बढ़ाते रहना। हे तात! यदि तू इन मेरे कहे हुए वचनों पर चलेगा तो सदा आनंद रहेगा और शान्ति तथा सुख से राज्य करेगा। देखो! जो राजा अपनी प्रजा को सदा प्रसन्न रखने का यत्न करता है, उसका संसार में कोई शत्रु नहीं रहता और उसके मित्र ऐसे प्रसन्न होते हैं, जैसे देवता अमृत पान करके प्रसन्न होते हैं।

महाराज दशरथ के मुख से यह वचन सुनकर रामचन्द्र ने विनय पूर्वक अपना सिर झुका दिया, और उस के मित्रों ने तुरंत ही यह शुभ-समाचार कौशल्या को जाकर सुनाया, जिसे सुनकर उसका रोम रोम प्रसन्न हुआ, उसने उस समाचार सुनाने वालों को बहुत सा स्वर्ण गौएं और नाना प्रकार के रत्न दान दिये। इसके अनंतर राम पिता के चरणों में दण्डवत करके वहां से विदा हुए और रथ पर चढ़कर अपने मंदिर में चले गये।

मंथरादासी का अटारी पर चढ़कर नगर की शोभा देखना।

कल राम को राज-तिलक मिलेगा, इस शुभ समाचार से अयोध्या के घर घर में मंगलाचार होने लगा। लोग सूर्य्योदय से पहले ही घरों दुकानों बाज़ारों और मंदिरों को सजाने लगे, लाखों ध्वजाएं अयोध्या के आकाश में फहराने लगीं; पुष्प मालाओं से सजे हुए बाज़ार सुगन्धित वायु से महकने लगे। नगर की सड़कें गुलाब जल से सिंचन की गईं। नट नर्तक और गवैय्ये, सुन्दर गीतों से लोगों के मन मुग्ध करने लगे। राज पथ पर केले के खंभों के सैंकड़ों द्वार बनाकर उन्हें पुष्पों से चुन दिया गया। अयोध्या का प्रत्येक मनुष्य राम के अभिषेक की तैय्यारी में लगा हुआ बड़ी जल्दी में था। थोड़े ही समय में सारी नगरी सब अलंकारों से अलंकृत होकर नव वधु के समान राम रूप दूल्हा की सवारी की बाट देखने लगी। मनुष्यों के झुंडों के झुंड राज पथ के दोनों ओर खड़े होने लगे, और नारियां नव पल्लव के समान कोमल और अरुण हाथों में आरतियां लिये खिड़कियों में राम की प्रतीक्षा करने लगीं। उस समय इन्द्रपुरी के समान उस नगरी में एकट्ठे हुए लाखों मनुष्यों से नगरी ऐसी शोभा देने लगी जैसे असंख्य जल जंतुओं से विक्षुब्ध सागर शोभा देता है।

इसी समय कैकेयी की मंथरा नामक दासी दैवयोग से महल की ऊंची अटारी पर चढ़कर नगर की शोभा

देखने लगी । सारे नगर को सजा हुआ देख और अनेक प्रकार के बाजों के शब्द को सुनकर उसने निकट खड़ी हुई धात्री से जो राजतिलक के उत्सव को सुनकर सुंदर पट्ट के वस्त्र पहरे हुए थी, पूछा, कि आज यह कैसा उत्सव है, अयोध्या नगरी में इस धूम धाम का क्या कारण है, यदि तू कुछ जानती हो तो कह ।

मंथरा दासी की यह बात सुन धात्री ने कहा, हे मंथरा ! कल महाराज दशरथ कौशल्यानंदन श्री रामचन्द्र को राज-तिलक देंगे, इस लिये आज ही से सारी नगरी को सजाया जा रहा है । यह देख सहस्रों मनुष्य राज पथ के दोनों ओर अभी से श्री राम की सवारी देखने की लालसा से खड़े हो रहे हैं । धात्री के मुख से यह समाचार सुनकर उस दुष्ट कुब्जा के हृदय पर एकाएक बड़ी चोट लगी । उसने सोचा, कि कौशल्या का पुत्र राजा होगा, कौशल्या राज-माता कहलाएगी, उस की दासियां जो आज मेरे समान हैं कल मुझे अपनी निगाहों में न लाएंगी । आज राजा कैकेयी का रानियों में सब से अधिक मान करता है, इससे दासियों में मेरा सब से अधिक मान है, कल मेरी रानी कौशल्या से हल्की हो जाएगी, और निस्सन्देह दासियों में मेरा दर्जा वह न रहेगा, अहह! उस गिरावट को, उस अपमान को, कौशल्या की दासियों की उन अहंकार भरी आंखों को मैं कैसे सहन कर सकूंगी, नहीं यह नहीं हो सकेगा ।

इन विचारों से मंथरा मन ही मन जलती हुई कैलाश के समान उस ऊंची अटारी से उतरी और सोती हुई कैकेयी से बोली, महारानी ! उठ ! यह समय सोने का नहीं, तेरे भाग्य का पांसा पलटने वाला है, अभी समय है, कुछ उपाय कर, क्या तूने नहीं सुना कि राजा कल राम को तिलक देगा, कल से तेरी सौत का पुत्र राम राज्य का स्वामी होगा। हे भोली! राजा तुझे बहुत प्यार करता है, आज तेरा यह विचार झूठा निकला, कल तेरा तेज इस प्रकार क्षीण हो जाएगा जैसे ग्रीष्म ऋतु में नदी का वेग। हे भोली ! तू आने वाले भय को नहीं देखती, परन्तु मैं जो जन्म से ही तेरा हित चाहने वाली हूं इस महाशोक में डूबी जा रही हूं, हे सुन्दरि ! राजा की पुत्री होकर तू उस भयंकर परिणाम को नहीं समझती जो राम के राजा होने से होगा। निस्सन्देह राजा ने मनमें कपट रखकर ही राज-तिलक के लिये यह अवसर नियत किया है जब कि तेरे पुत्र भरत को नाना के यहां निकाल दिया गया है। हे मुग्धे ! शीघ्र ऐसा उपाय कर, जिससे तेरी तेरे पुत्र की और मेरी रक्षा हो।

मंथरा के वचनों को सुनकर चंद्रमुखी कैकेयी उठ बैठी और धवल दांतों से मुस्कराती हुई बोली—

हे मंथरा ! राम को राज्य तिलक मिलेगा, यह शुभ समाचार सुनकर मेरा रोम रोम प्रसन्न हुआ, राम जैसा कौशल्या का पुत्र है वैसा ही मेरा भी है। राम

धर्मात्मा सुशील और वृद्धों की सेवा करने वाला है, मैं उसे भरत से अधिक प्यार करती हूं। यह कह कर उसने अपने कण्ठ से एक बहुमूल्य मोतियों की माला उतार कर मंथरा को दी परंतु कैकेयी का यह उत्तर मंथरा को अच्छा न लगा। वह उस माला को फेंक कर कोप से बोली, हे भोली ! किस लिये तू इस शोक समय में हर्ष से फूल रही है। हे देवी ! साम दाम दंड और भेद की नीति को न जानती हुई अपने पुत्र के प्रति आने वाले भय को तू नहीं समझती, इसी लिये तेरी बुद्धि पर मुझे हंसी आती है। निस्संदेह कौशल्या बड़ी भाग्यवती है जिसका पुत्र कल देश का स्वामी बनेगा और तू चेरी के समान हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ी होगी और तेरा पुत्र भरत उसका दास होगा। यद्यपि मंथरा ने बड़े क्रोध से यह वचन कहे परंतु राम में अत्यंत प्रीति वाली कैकेयी फिर भी राम की प्रशंसा करती हुई बोली—हे मंथरे ! राम भाईयों में सब से बड़ा है, धर्मात्मा है, गुणवान्, कृतज्ञ, सत्य बोलने वाला और पवित्र है, इस कारण वही युवराज बनने योग्य है, उसके राजा होने पर मैं अपने लिये, तेरे लिये, भरत के लिये और सारी प्रजा के लिये कोई भय नहीं देखती हूं, किस लिये तू इतनी शोकातुर हो रही है। राम कौशल्या से अधिक मेरी सेवा करता है राज्य यदि राम का है तो भरत का ही है, क्योंकि राम

भाईयों से अपने आपको ऊंचा नहीं समझता ।

कैकेयी के यह वचन सुन कर सर्पिणी के समान फुंकारें मारती हुई मंथरा बोली—

हे मूढ़े ! तेरे पिता ने मुझे तेरे दहेज में इस लिये दिया था, कि तुझे किसी प्रकार का दुख न हो, परंतु तू न तो मेरी बात समझती है न सुनती है । राम के राजा होने से उसके पश्चात् उसी का पुत्र राज्य का स्वामी होगा, इस प्रकार इस बड़े राज्य से सदा के लिये भरत और उसकी वंश वंचित रह जाएगी । राम के राज्य प्राप्त कर लेने पर तेरा पुत्र अनाथ के समान सदा के लिए अलग फैंक दिया जायगा, अथवा उसे बनवास की आज्ञा भेज दी जायगी । लक्ष्मण राम का प्यारा है, वह उसकी रक्षा करेगा राम का हृदय भरत के विषय में निर्मल नहीं है, यह मैं लक्षणों से देख रही हूं, इस लिए यदि तू अपना और अपने पुत्र का हित चाहती है तो आज ही अपने पुत्र के लिये राज्य प्राप्ति का और शत्रु के निकालने का प्रयत्न कर । मैं तो अब भी दासी हूं और फिर भी दासी ही रहूंगी मेरे लिये कोई राजा हो, मुझे क्या हानि है परंतु तेरे हित में अपना हित समझती हूं इस लिये शोक से पीड़ित हूं ।

मंथरा के इन वचनों ने कैकेयी के हृदय को कलुषित कर दिया "राम के राजा बनने पर भरत को बनवास मिलेगा" इस विचार ने उसे कंपायमान कर दिया।

उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये भ्रुकुटी टेढ़ी हो गई और वह कोप से कांपती हुई बोली—

अभी मैं राम को बन में भिजवाती हूं और शीघ्र ही भरत को यौवराज्य में अभिषेक करवाती हूं। हे मंथरे! तेरी बात मेरी समझ में आगई, परंतु अब कोई ऐसा उपाय बतला जिससे मेरी कामना सिद्ध होवे। तब वह कुटिला दासी प्रसन्न होकर बोली, हे कैकेयी! यदि तू मुझ से ही सुनना चाहती है तो सुन, देवता और राक्षसों के युद्ध में तू अपने पति के साथ गई थी। वहां तेरे पति ने असुरों के साथ घोर संग्राम किया था। उस युद्ध में असुरों के शस्त्रों से तेरा पति घायल होकर मूर्छित हो गया था, यह तुझे स्मरण होगा। उस समय तूने अपने पति को युद्ध क्षेत्र से निकाल कर उसके प्राण बचाये थे जिस से प्रसन्न हो कर राजा ने तुझे दो वरदान दिये। हे देवी! उस समय तूने कहा था कि जब मैं चाहूं तब मुझे दो वर मिलें। सो तू आज भूषण उतार कर उदासीन मुख बना कोप भवन में प्रवेश कर और राजा के पूछने पर उस से अपनी कामना सिद्धि के लिये दो वर मांग अर्थात् एक से भरत का राज्य-तिलक और दूसरे से राम के लिए चौदह वर्ष बनवास। हे सुन्दरि! अपने हृदय को स्थिर रखना और राजा की सैकड़ों प्रार्थनाओं पर भी अपनी बात से न टलना। यह तुम्हारे भाग्य की परीक्षा का समय है। ऐसा करने पर

तेरा तेरे पुत्र का और तेरी ज्ञाति का भला होगा ।

—:०:—

कैकेयी कोप भवन में ।

मंथरा का मनोरथ पूरा हुआ । राजा दशरथ बड़े हर्ष से कैकेयी के भवन में प्रविष्ट हुए जो सुन्दर फूलों वाले पौधों, चित्रों, हाथी दांत स्वर्ण और चांदी की चौकियों से सुसज्जित और निर्मल जलों वाले छोटे छोटे जलाशयों से अत्यन्त शोभायमान् है । महाराज मन ही मन अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए उस ड्योढ़ी पर पहुंचे जहां उनकी प्रिया कैकेयी उनके आने पर स्वागत के लिये खड़ी रहा करती है । परंतु आज राजा ने अन्दर जाकर भी कैकेयी को न देखा । तब उन्होंने उदासीन हो कर दासी को पूछा, कि प्रिया कहां है ? तब दासी हाथ जोड़ कर भय से कांपती हुई बोली, हे जगत के आश्रय ! न जाने क्यों, देवी अत्यंत क्रोध से कोप भवन में चली गई है । दासी के मुख से यह बात सुन कर राजा विस्मितसा होकर सोचने लगा उसकी उदासीनता और घबराहट और भी बढ़ गई । कोप भवन में शीघ्र ही पहुंच कर उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा को मलिन वस्त्रों से खुले केश बेहाल लेटे पाया । तब उस वृद्ध परंतु कामी राजा ने डरते डरते दोनों हाथों से स्पर्श करते हुए कहा, हे कमलनयनि ! मैंने कोई ऐसी चेष्टा नहीं की, जो तेरे क्रोध का कारण

हो सके । हे महारानी ! किसने तुझे कठोर वचन कहा है, किसने तेरा निरादर किया है । हे सुन्दरि ! पुष्प-शय्या पर विश्राम करने योग्य तेरी देह को धूल में लेटते देख मेरे हृदय में अगाध दुःख होता है । हे मृग-नयनि ! तू अपने मन की बात कह । मैं अपने पुण्य कर्मों की सौगंध खाकर प्रण करता हूं कि तू निश्शंक हो कर अपनी हृदय की वेदना कह दे ।

राजा के इस प्रकार सौगंध खाने पर कैकेयी ने तनिक सिर ऊंचा करके कहा, हे राजन् ! मेरा किसी ने अपमान नहीं किया और नाहीं मेरा कुछ अनिष्ट हुआ है, परंतु मेरी एक कामना है आप उसे पूरी करें परंतु यदि आप वचन दें कि "हां पूरी करेंगे" तब मैं कहूं । कैकेयी के ऐसा कहने पर दशरथ मुस्करा कर बोले, हे चंपक वर्ण वाली ! राम से उतर कर संसार में तू मुझे सब से प्यारी है, हे चारुहसिनि ! उस राम की सौगंध खाकर कहता हूं, कि तेरी कामना पूरी करूंगा ।

राजा के इस वाक्य से संतोष पाकर कैकेयी बोली हे नाथ ! सुनो ! पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में जब आप घायल होकर मूर्छित हो गये थे, उस समय युद्ध क्षेत्र में से मैं आप को बचा कर ले आई थी । तब आपने मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी कदाचित् आप इसे भूले न होंगे । वही दो वर मैं मांगती हूं । सो पहले वर से मैं चाहती हूं कि राम के स्थान में मेरे पुत्र

भरत को तिलक मिले और दूसरा यह कि राम को चौदह वर्ष के लिये बन-वास की आज्ञा दी जाय। हे राजन्! आप सूर्य कुल में उत्पन्न हुए क्षत्रिय हैं, अब आप अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करें। मैं आज ही राम को वल्कल पहरे जटा जूट बांधे तपस्वियों के वेष में बन को जाते हुए देखने की इच्छा करती हूं।

——:०:——

दशरथ की दीनता।

कैकेयी के मुख मे निकले हुए यह शब्द राजा के हृदय पर वज्र के समान गिरे और वह मूर्छा खाकर वहीं पर गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात जब उन्हें होश आया तो विलाप करने लगा और फिर मूर्छित हो गया इस प्रकार अनेक बार मूर्छित हो कर अंत में रोता हुआ क्रोध से बोला—हे कुल घातिनि! हे दुष्टे! हे पापीयसि! मैंने तेरा कौनसा अपराध किया है? राम तो तुझ में कौशल्या से अधिक प्रेम रखता है फिर किस कारण तू उस के नाश की कामना करती है। धिक्कार है मुझ पर, जो मैंने तुझ सर्पिणी के साथ प्रेम किया। हे कूटे! सारा संसार राम की स्तुति करता है फिर किस अपराध से मैं उसे देश से निकाल दूं। मैं अपने प्राणों को त्याग सकता हूं, परंतु राम के बिना एक घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता, इस लिए हे पापीयसि! इस महा दारुण अपराध के विचार को अपने मन से

दूर कर। हे सुलोचने ! तूने आज तक मेरा कभी अप्रिय नहीं किया, इस लिये मुझे तेरे इन वचनों पर विश्वास नहीं होता, रामचन्द्र भरत से अधिक प्यारा है, ऐसा तू प्रायः कहा करती है, परंतु आज उसी के लिए तू १४ वर्ष पर्यन्त वनवास की इच्छा करती है यह मेरी समझ में नहीं आता। हे कैकेयी ! मेरे केश श्वेत हो गये हैं न जाने किस समय यमराज मुझे मृत्यु का संदेश भेज दें। जीवन के अंतिम दिनों में मेरी लज्जा रखले, और मुझ दीन पर दया कर। संसार के सब पदार्थ और जो तू मांगे मैं तुझे देता हूं तू राम से मुझे वियुक्त करके मेरी मृत्यु का उपाय न कर, मैं तेरे पांओं पर गिरता हूं, हाथ जोड़ता हूं, राम को शरण दे।

इतना कह कर दशरथ ने अपने मुकुट को कैकेयी के चरणों में रख दिया और फिर व्याकुल होकर विलाप करने लगा।

परंतु पाषाण-हृदय कैकेयी का मन नहीं पसीजा और वह कठोरता से बोली—

राजन् ! पहले वर देकर अब तुम पश्चाताप करते हो, इक्ष्वाकु की कुल को कलंक न लगाओ जब लोग सुनेंगे कि राजा अपनी प्रतिज्ञा से गिर गया तो लोक में आपकी और आपके कुल की निंदा होगी, इसे विचारो। चाहे सत्य हो अथवा झूठ, उचित हो व अनुचित बुरा हो व भला जो प्रतिज्ञा आपने मुझ से की है इसे यदि आप पूरा न करेंगे

तो मैं आपके सामने ही हालाहल विष खाकर प्राण दे दूंगी परंतु अपनी आंखों सौत और उसके पुत्र का ऐश्वर्य्य और अपना व अपने पुत्र का अपमान न देखूंगी ।

इतना कहकर कैकेयी चुप हो गई । तब निराश होकर महा शोक मे विदीर्ण हृदय वाले राजा ने ठंडी सांस ली और "हा राम" कहते हुए मूर्छित हो कर कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ा । उस समय उस का मस्तिष्क ज्ञान शून्य हो गया, पागलों के समान उस के नेत्र पथरा गए और दीवारों की ओर देखने लगा, जब कुछ सुधि आई तो फिर रोता हुआ बोला, हे कैकेयी ! आज तेरी बुद्धि को क्या हो गया जो तू ऐसा अनर्थ करने वाला वर मांगती है । यदि मेरा और भरत का प्रिय चाहती है तो इस हठ को त्याग दे, मेरा तो यह निश्चय है कि राम के बिना भरत भी राज्य को स्वीकार न करेगा । हे सर्पिणि ! जब मैं राम को कहूंगा कि "तुम बन को जाओ" उस समय उसके मुख का रंग एकाएक कमल के समान मुरझा जायगा । यह राजे महाराजे जो राज्य-तिलक में सम्मिलित होने के लिए आये हैं, जब सुनेंगे तो क्या कहेंगे । सारे संसार में मेरा अपयश होगा और मैं कहीं का न रहूंगा ! हे कैकेयी ! अपने पति का अपमान तू किस प्रकार सहन

करेगी और अपने पुत्र का बनवास सुन कर कौशल्या मुझे क्या कहेगी। सारे रणवास के अंदर और मंत्रि मंडल में तथा प्रजा के लोगों में मेरा विश्वास उठ जायगा और वह कहेंगे कि दशरथ सा मूर्ख राजा इक्ष्वाकु कुल में कोई नहीं हुआ जो स्त्री के वश में हो कर अपने पुत्र को राज्य के स्थान में बनवास देता है। हे राक्षसी ! राम के बिना मेरा मरण है और निर्दोष जनक-नंदनी अपने प्राण पति के बिना जल हीन मछली के समान तड़प तड़प कर मर जाएगी और भरत भी जब देखेंगे कि उसका पिता मर गया है, भाई बन में चला गया है, भावज ने प्राण त्याग दिया है कौशल्या और सुमित्रा रो रो कर अंधी हो गई हैं उस समय उसकी क्या दशा होगी इस का तू विचार कर। मैं तुझे पतिव्रता समझता था परंतु तेरे इस काम से मैं समझता हूं, कि तू कुलटा है।

हे पापिनि ! हवन की अग्नि के सन्मुख मैंने जो तेरा हाथ पकड़ा था, उस तेरे हाथ को छोड़ता हूं।

अब रात्रि व्यतीत हो गई है, थोड़ी देर में पुरोहित और मंत्री यहां आकर राम के अभिषेक के लिये जल्दी करने को कहेंगे। हा ! पुत्र के अभिषेक के लिये एकट्ठी की हुई यह सारी सामग्री मेरे मरण पर लगेगी। हे दुष्टे ! राम को बनवास देकर मेरी मृत्यु का कारण तू ही होगी इस लिये तू और तेरा पुत्र मुझे जलाञ्जलि न देना।

इस प्रकार राजा के विलाप करते करते तारों से पटी हुई वह दुखदायिनी रात्रि व्यतीत हो गई और उषा काल की सफेदी आकाश में छा गई। तब क्रुद्ध होकर कैकेयी फिर बोली—हे राजन्! बारंबार विष से बुझे हुए बाणों के समान शब्दों से व्यर्थ ही मुझे आप घायल करते हो, राम को इसी समय बुलाओ और उसे बन में भेज कर तथा भरत को राज्य दे कर अपने वचन को सच्चा करो। कैकेयी के बारंबार अनुरोध करने पर राजा की दशा उस घोड़े की नांई हो गई जिसे तीक्ष्ण कोड़ों से मार मार कर अधमुआ कर दिया गया हो और वह ठंडी सांस भर कर बोला, मैं वचन की पाश में बंध गया, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई अब मैं अपने प्यारे राम को देखना चाहता हूं।

सूर्य्य उदय हो चुका था, इतने में भगवान् वसिष्ठ मंत्रियों को साथ ले ध्वजा पताका और पुष्पों से सजे हुए बाजारों में से होते हुए महल के द्वार पर पहुंचे। वहां उन्हों ने सुमंत्र नामक सारथि को अंदर से निकलते देखकर कहा राजमंत्रिन्! शीघ्र जाकर महाराज को हमारे आने की सूचना दो और कहो कि सागर और सब तीर्थों के जल से भरे हुए स्वर्ण कलश तथा शहद चंदन कुशा, फल फूल आदि अभिषेक की सब सामग्री तय्यार है, आप बाहर आकर दर्शन दें और शुभलग्न में राजकुमार राम को राज-तिलक करें।

वसिष्ठ का संदेश लेकर वृद्ध मंत्री सुमंत्र महाराज के पास गया और दोनों हाथ जोड़ इस प्रकार कहने लगा—

हे राजन् ! गंभीर समुद्र सूर्य्य के उदय होने से जैसे प्रसन्न होता है उसी प्रकार आप अपने दर्शनों से हमें प्रसन्न करें । हे अयोध्यानाथ ! सब ब्रह्मविद्याएं जैसे वेद को जगाती हैं उसी प्रकार मैं भी आप को जगाता हूं देखिये यह शुभ रात्रि व्यतीत होगई और भगवान भास्कर निकल आए । महामुनि वसिष्ठ मंत्रि मंडल सहित द्वार पर आप के दर्शनों के लिए खड़े हैं आज अभिषेक का दिन होने से बहुत काम है राम के अभिषेक की शीघ्र तय्यारी कीजिए ।

सुमंत्र के यह वचन सुन कर राजा अत्यंत शोक से पीड़ित हुए इस प्रकार व्याकुल हुए जैसे मणि को खो कर सर्प होता है और बिना कुछ उत्तर दिए फिर मूर्छित हो गये ।

राजा की इस दीन अवस्था को देख कर सुमंत्र सहम गया और पीछे हट कर खड़ा हो गया । तब कैकेयी बोली हे सुमंत्र ! राम के राज्य-तिलक के आनंद में राजा रात भर जागते रहे, इस लिए अब शयन कर रहे हैं तू राम को जाकर शीघ्र यहां ले आ । यह सुन कर सुमंत्र ने कहा हे महारानी ! महाराज से बिना आदेश पाये मैं राम को कैसे बुला सकता हूं । तब राजा

दशरथ ने नेत्रों में आंसू भर कर कहा हे सचिव ! तू शीघ्र राम को यहां ले आ, मैं उसे इसी समय देखना चाहता हूं। महाराज की ऐसी आज्ञा पाकर सुमंत्र महल में से निकल कर बाहर आया और रथ पर सवार हो राम के महल की ओर चला।

—:०:—

सुमंत्र का राम के महल में जाना।

ध्वजा पताका और पुष्प मालाओं से सजे हुए तथा असंख्य मनुष्यों की भीड़ से खचाखच भरे हुए बाजारों को पार करता हुआ सुमंत्र राम के महल में पहुंचा जो कैलाश के समान ऊंचा और स्वर्ण तथा मणि मुक्ताओं से जटित अनेक प्रकार के सुन्दर मृग पक्षि तथा चित्र विचित्र हिरनों से भरा हुआ था। सब ड्योढ़ियों को जहां सुनील मेघ के समान हाथी झूल रहे थे और जिनकी सोने की झूलों से सूर्य्य के समान किरणें निकल रही थीं लंघन करके सुमंत्र वहां पहुंचा जहां राज्य-अभिषेक का शुभ समाचार पाने के लिए राम अकेले विराजमान थे। सूत ने अंदर जाकर राम को प्रणाम किया जो स्वर्ण के पलंग पर कुबेर के समान सुंदर भूषण धारण किये बैठे थे और जानकी चंवर डुला रही थी। सूर्य्य के समान तेजस्वी राजकुमार के सन्मुख खड़े हो सुमंत्र बोला—हे कौशल्या नंदन ! महारानी कैकेयी के प्रासाद में महाराज दशरथ तुम्हारी बाट देख

रहें हैं सो शीघ्र वहां चलिए। सुमंत्र के मुख से पिता का संदेश पाकर अति प्रसन्न हुए राम सीता से बोले हे प्राणेश्वरी ! माता कैकेयी और पिता मेरे अभिषेक के विषय में कुछ सलाह कर रहें होंगे। कैकेयी मुझे भरत से भी अधिक स्नेह करती है इस लिए वह मेरी भलाई के विषय में उनसे कुछ प्रेरणा करती होगी। राजा आज ही मुझे तिलक देंगे ऐसा प्रतीत होता है इस लिए उन की आज्ञानुसार मैं उन के दर्शनों को जाता हूं। इतना कह कर राम सुमंत्र के साथ रथ पर सवार हो कैकेयी के प्रासाद की ओर चले । उन के पीछे लक्ष्मण खड्ग धारण किये संरक्षक के स्थान में खड़ा हुआ। उस रथ के पीछे अभिषेक के नाना प्रकार के स्वर्ण और चांदी के भूषणों से शृंगार किये हुए सहस्रों रथ हाथी घोड़े चले, उस समय उत्सुक नेत्रों से देखते हुए सहस्रों मनुष्य जय जयकार करने लगे। सड़क के दोनों ओर खड़े हुए दर्शक फूलों की वर्षा करने लगे और अटारीयां व झरोखों में बैठी हुई नारियां कौशल्या व राम की स्तुति करने लगीं। प्रजा की अपने में इस प्रकार भक्ति देख कर राम फूले २ कैकेयी के प्रासाद में पहुंचे। इन्द्र भवन के समान उस प्रासाद में पहुंच कर राम अंतःपुर में गये जहां कैकेयी और दशरथ उसकी राह देख रहे थे। राम को अंदर जाते देख कर सहस्रों मनुष्य महल के बाहर खड़े हो गये

और अपने भावी राजा के लौटने की इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगे जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की समुद्र प्रतीक्षा करता है ।

—:०:—

वनवास ।

श्री राम चन्द्र जी ने वहां जाकर माता कैकेयी और राजा के चरण स्पर्श किये । राज्य-तिलक के विचारों मे उनका हृदय प्रसन्न और मुख मण्डल कमल के समान खिला हुआ था । राम को देख कर राजा ने एक ठंडी सांस ली और नेत्रों मे आंसु भर कर बोले- "राम....." इसके आगे वह कुछ भी न कह सके उनका गला आंसुओं मे रुक गया और नेत्रों से बलात् अश्रुधारा वह निकली । राम ने पिता की यह दशा देखी तो सन्न से हो गये । जिसकी मणि खो गई हो उस सर्प के समान बारंबार भूमि पर सिर पटकते अथवा जल से बाहर निकाली गई मछली के समान तड़पते । बारंबार घोर दुःख से लंबी सांस लेते हुए पिता को देख कर राम के हृदय में समुद्र के समान क्षोभ होने लगा । बारंबार उन के मन में यह विचार उठने लगा, कि क्या कारण तात आज न तो मुझ से बोलते ही हैं और न देखते ही हैं । उन के हृदय में दुख शोक और संताप की प्रचंड ज्वालाएं उठने लगीं और वह भयभीत और विस्मित हो कर इस पर विचार करने

लगे । परंतु इस पर जितना ही गहरा विचार करते उतना ही अधिक अंधकार पाते । अंत में दीन हो कर राम कैकेयी के चरण छू कर बोले, माता ! बहुत सोचने पर भी मुझे अपना कोई अपराध स्मरण नहीं आता, फिर किस कारण आज पिता मुझ से नहीं बोलते, क्या किसी रोग अथवा चिन्ता से तो ऐसे पीड़ित नहीं हो रहे, हे माता ! पिता को अप्रसन्न करके मैं संसार में एक क्षण के लिये भी जीना नहीं चाहता, मैं तो पिता को प्रत्यक्ष देवता समझता हूं, सो तुम ठीक ठीक इस का कारण कहो ।

रामचन्द्र के वचन सुन कर कैकेयी बोली, हे राम ! राजा न तो कुपित हैं और ना हीं इन्हें कोई रोग है परंतु इन के हृदय में एक बात है और वह तुम से कहते डरते हैं, क्योंकि वह तुम्हारे विरुद्ध है और तुम्हारे अहित का वचन कहने में सकुचाते हैं । हे राम सुनो ! पूर्व समय में देवासुर संग्राम हुआ, मैं राजा के साथ गई थी उस समय मेरी सेवा से प्रसन्न हो कर राजा ने मुझ से दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी । आज मैंने वही दोनों वर इन से मांग लिये और मांगने से पहले राजा ने मुझे वचन दिया और कहा कि "हां हम जो कुछ तू मांगेगी देंगे" परंतु अब उन प्रतिज्ञाओं को पूरा करते डरते हैं, सो हे राम ! तुम प्रतिज्ञा पूर्ण करने में पिता को सहायता दो क्योंकि सत्य के लिए ही सूर्य्य कुल

संसार में प्रसिद्ध है, सो जो कुछ मैं कहूं उसे पालन कर के यदि तुम पिता को ऋण से मुक्त कराने की प्रतिज्ञा करो तो मैं कहूं ।

कैकेयी के इन वचनों को सुन कर बाण से घायल हुए पक्षि के समान पीड़ित हुआ राम बोला—

हा धिक ! हे माता ! "यदि" का शब्द कहकर तूने मेरी पितृ-भक्ति पर शंका की है, जो नहीं करने योग्य थी । हे देवी ! मैं पिता की आज्ञा से अग्नि में कूद सकता हूं, हालाहल विष खाकर प्राण दे सकता हूं समुद्र में डूब सकता हूं, यदि पिता गुरु और राजा जो मेरे हित चाहने वाले हैं मुझे आज्ञा दें तो मैं अपने प्राण देकर भी उन के वचन का पालन करूंगा । हे माता ! राम दो बार नहीं कहा करता मैं सौगंध खाकर तेरे सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि जो कुछ तू कहेगी उसे पूरा करूंगा ।

राम के इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चुकने पर कैकेयी ने अपना विषैला मुख खोला और यूं बोली—

हे कौशल्या नंदन ! राजा से मैंने दो वर मांगे हैं । उन में एक से मैंने "भरत के लिये राज्य" और दूसरे से तेरे लिए "चौदह वर्ष का बनवास" मांगा है सो हे रघुकुल प्रदीप ! यदि तुम अपने पिता को और अपने आप को सत्यवादी बनाना चाहते हो तो अभी इसी समय बनवास के वस्त्र पहर कर बन में चले

जाओ । इस अभिषेक के वस्त्रों को त्याग कर जटाओं को धारण करो और भरत अयोध्या के सिंहासन पर बैठ कर शासन करे । हे राम ! मोह में फंसा हुआ राजा तेरे वियोग के विचार से दीन हो रहा है और इस का मुख मुरझाया हुआ है । हे सत्यवादी ! प्रतिज्ञा-भंग के पापरूपी अथाह सागर से राजा को निकाल ।

कैकेयी के मुख से यह वचन सुन कर राम मुस्कराते हुए ज्यों के त्यों खड़े रहे । उन्हें दुख हुआ न शोक उनका मुख-मण्डल प्रभात काल के सूर्य्य के समान इस प्रकार दमकने लगा मानों कोई घटना हुई ही नहीं सत्य है सूर्य्य जैसे उदय और अस्त दोनों समय लाल होता है इसी प्रकार महा पुरुष संपत्ति और विपत्ति में एक समान ही रहते हैं । राम ने कैकेयी के मृत्यु के समान इन वचनों को सुन कर उत्तर दिया. हे माता ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अभी वन को चला जाऊंगा, यह कौनसी बड़ी बात है जिस के लिए पिता रो रहे हैं, पिता और गुरु जनों के लिए अयोध्या तो क्या तीन लोक का राज्य भी मैं छोड़ सकता हूं, मुझे शोक तो इस बात का है, कि स्वयं राजा ने मुझे भरत का अभिषेक करने की आज्ञा क्यों नहीं दी, अच्छा अभी दूतों को आज्ञा दो कि तेज घोड़ों पर सवार होकर काश्मीर जाएं और भरत को मामा के यहां से ले आवें । राम के इन वाक्यों से कैकेयी प्रसन्न होकर बोली "बहुत अच्छा"

अभी में राजा की आज्ञा से दूतों को भेजती हूं, परंतु तुम्हारा अब यहां विलंब करना उचित नहीं इस लिये जल्दी बन जाने की तय्यारी करो। हे राम ! जब तक तुम अयोध्या को पार करके राजा की आंखों से ओझल नहीं होते तब तक मोह में फंसा हुआ राजा न स्नान करेगा न भोजन .....कैकेयी के इतना कहते कहते दशरथ ने ठंडी सांस ली और मूर्छित होकर पलंग पर गिर पड़ा।

तब मूर्छित हुए राजा और कैकेयी के चरणों में मस्तक निवा कर राम अंतःपुर से बाहर निकला। उस समय राज्य के चले जाने से राम के मुख मण्डल पर तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ। उसे देखते ही बाहर खड़े हुए लोगों ने हर्ष से जयकारे लगाये और वह उन जयकारों में मुस्कराता हुआ माता कौशल्या के अंतः-पुर में पहुंचा। कई एक ड्योढ़ियों को पार करता और वृद्धों तथा ब्राह्मणों से आशीर्वाद तथा वधाईयां लेता हुआ राम कौशल्या के पास पहुंचा जो रेशमी वस्त्र पहरे व्रत परायणा अग्निहोत्र कर रही थी। राम को चिर काल के पश्चात् देख कर कौशल्या ने स्नेह से उसे हृदय से लगाया जैसे गाय बछड़े को। राम ने माता के चरणों को स्पर्श किया और कौशल्या ने उस के मस्तक को चूमते हुए कहा हे राघव ! अपने पिता के पास शीघ्र जाओ आज तुम्हारे अभिषेक का दिन है

वहां राजा तुम्हारी राह देख रहे होंगे। यह कह कर माता ने उसे बैठने के लिए आसन दिया और भोजन जीमने को कहा, तब आसन को हाथ से स्पर्श कर के राम दोनों हाथ जोड़ कर बोला, हे माता ! कैकेयी के दो वरों से बंधे हुए राजा ने मुझे चौदह वर्ष के लिए बनवास और भरत को राज्य दिया है, सो अब मैं मणि जटित आसन को त्याग कर मुनियों के वेश में कुशा के आसन पर बैठ कर दण्डकारण्य में तप करूंगा हे माता ! तेरे और जानकी के लिए यह बड़ा भय आया है। राम के मुख से यह वचन सुन कर कौशल्या कुल्हाड़े से कटी हुई लकड़ी के समान मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ी। माता को गिरा हुआ देख कर राम ने उसे उठाया। तब विलाप करती हुई कौशल्या बोली, हे पुत्र ! बछड़े से वियुक्त की गई गैय्या के दुख को तू नहीं जानता, यदि तू मेरी कोख से जन्म न लेता और मैं बांझ रहती तो आज इतना दुख न होता हे बेटा ! पति के राज्य में जो सुख मैंने नहीं देखा वह पुत्र के राज्य में देखूंगी, इसी आशा पर मैं आज तक जीती थी। अब बड़ी होकर भी छोटी सौतिन के हृदय को छेदने वाले वाक्य मुझे सहन करने पड़ेंगे, संसार में स्त्रियों के लिए इस से बढ़कर और कोई दुख नहीं। हे राम ! तेरे चन्द्रमा के समान मुख को बिना देखे मैं अब कैसे जीवित रहूंगी। हाय ! बरसों व्रत और उपवास

रख कर मैंने क्या तुझे इसी दिन के लिए पाला था मेरा हृदय निस्संदेह पत्थर का है जो अभी तक फट नहीं गया । निस्संदेह मुझ से बढ़ कर अभागिन स्त्री संसार में दूसरी नहीं है, संतान के लिए मेरे व्रत दान उपवास और तप सब निष्फल हो गए, हे राम ! यदि मृत्यु बुलाने पर आ जाए तो आज मैं पुत्र वियोग से दुखी हुई यमलोक को चली गई होती ।

कौशल्या को इस प्रकार विलाप करते देख कर लक्ष्मण क्रोध से बोले हे माता ! राम में मैं कोई दोष नहीं देखता । सरल और वृद्धों को आदर देने वाले देवताओं के समान राम को किस अपराध से यह दण्ड दिया गया है, राजा की बुद्धि बुढ़ापे के कारण नाश हो गई है, सो उसकी परवाह न करके राम राज्य पर शासन करे । मैं उस के शत्रुओं को अपने तीक्ष्ण बाणों से नाश कर डालूंगा । हे माता ! सहन शील मनुष्य को संसार दबाता है । राम की नम्रता ही आज अपराध के रूप में सामने आई है, परंतु मैं सत्य की, धनुष की, यज्ञ की, दान की और अपने किये हुए पुण्य कर्मों की शपथ खाकर कहता हूं, कि भरत व उस के पक्ष का कोई भी मनुष्य जो हमारे पक्ष में बाधक होगा मेरे हाथ से मारा जायगा । हे देवि ! तू विलाप न कर, मैं अपनी भुजाओं से तेरे दुखों को ऐसे दूर कर दूंगा जैसे रात्रि के अंधकार को सूरज नाश कर डालता है ।

लक्ष्मण के इन वचनों को सुन कर नेत्रों को पोंछती हुई कौशल्या बोली, हे राघव ! अपने छोटे भाई के वचनों को तूने सुन लिया, तू इन पर विचार कर। परंतु कुररी के समान रोती हुई अपनी माता को छोड़ कर जाना तुझे उचित नहीं है, निस्सन्देह पिता की आज्ञा का पालन करना तेरा धर्म है परंतु माता की आज्ञा न मानना भी अधर्म है, इस लिये तू यहीं रह कर माता की सेवा करते हुए धर्म का आचरण कर जैसे कश्यप ने किया था, सो माता होने से मैं तुझे आज्ञा देती हूं कि तुम बन को मत जाओ और यदि तू मुझे इस प्रकार रोती हुई छोड़ कर चला जाएगा तो मैं बिना अन्न जल पान किये दीवारों से सिर टकरा टकरा कर पागलों की तरह प्राण देदूंगी ।

कौशल्या के इस प्रकार दीनता से कहने पर राम धर्म से युक्त वचन बोला, हे माता ! सूर्य्य टल जाए चन्द्रमा टल जाए, पृथिवी अपने धर्म को त्याग दे, परंतु मैं अपने पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर सकता, मैं संसार में कोई अपूर्व कर्म नहीं कर रहा, पिता की आज्ञा सभी मनुष्य मानते हैं, इस में कोई हीनता की बात नहीं है, और तू जो यह कहती है कि माता के नाते मुझे तेरी आज्ञा भी वैसे ही पालन करने योग्य है जैसे पिता की, सो यह सत्य है, परंतु जिस प्रकार माता के नाते मुझे तेरी आज्ञा पालने योग्य है

इसी प्रकार पत्नी के नाते तुझे भी पति की आज्ञा में बाधा डालना उचित नहीं है, सो मैं हाथ जोड़ कर तुझे प्रसन्न करता हूं, अब मैं बन को जाऊंगा। माता को इतना कह कर फिर लक्ष्मण से यूं बोले—हे लक्ष्मण! तेरा पराक्रम वीरता साहस अगाध है और तेरा जो मेरे साथ स्नेह है मैं भली भान्ति जानता हूं परंतु धर्म ही संसार में सब से उत्तम पदार्थ है। यह ब्रह्माण्ड धर्म के आश्रय पर खड़ा है। हे भाई! पिता की यह आज्ञा धर्म के अनुसार है, अब उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन करके मैं अपने आप को और पिता को नरक में धकेलना नहीं चाहता। हे वीर! रोष को परित्याग कर के नीति पथ पर चल। इस प्रकार भाई को धीरज देकर राम ने फिर माता को कहा हे माता! तुझे मेरी शपथ है, अब तू शोक को छोड़ कर मुझे बन जाने की अनुज्ञा दे और प्रसन्न हो कर मेरा स्वस्त्ययन कर, क्योंकि तेरी कुक्षि से उत्पन्न हुआ पुत्र आज धर्म पर संसार के सुखों का बलिदान करता है। पिता की आज्ञा का पालन कर के मैं बन से लौटूंगा। हे माता! मुझे तुझे सीता को और सुमित्रा को पिता की आज्ञा में रहना उचित है। राजा मेरा गुरु है, पिता है, वृद्ध है, वह क्रोध से हर्ष से अथवा काम से जो भी आज्ञा देवे, धर्म के अनुसार मैं उस का उल्लंघन नहीं कर सकता, इस लिये मैं अब यहां न रह कर बन को जाने की अनुज्ञा मांगता हूं,

में राज्य की लालसा में बड़े यश वाले कार्य्य को नहीं छोड़ सकता । हे देवी ! इस क्षण भंगुर जीवन के लिए पाप से उपार्जित की हुई पृथिवी को मैं कभी ग्रहण नहीं करूंगा । इस प्रकार माता को धर्म का तत्त्व समझा कर राम लक्ष्मण से जो इस समय क्रोध से संतप्त हाथी की तरह सांस ले रहा था, कहा, हे वीर ! क्रोध को छोड़ कर धीरज के साथ उस सारी सामग्री को यहां से परे हटा जो अभिषेक के लिए एकट्ठी की गई है । हे सौमित्र ! मेरे अभिषेक के लिए जिस उत्साह से तूने कार्य्य किया है, उसी उत्साह से अब मुझे बनवास के लिए तय्यार कर । मेरे अभिषेक का समाचार पाकर जिस का हृदय संतप्त हो रहा है उस मेरी माता कैकेयी की शंका दूर करने के लिए जल्दी कर । मैंने कभी स्वप्न में भी उस के मन को नहीं दुखाया, इस लिए जल्दी उस के दुख को दूर करने में मेरी सहायता कर । हे लक्ष्मण ! मेरा पिता सत्यवादी, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, प्रतिज्ञा भंग के भय से भयभीत है, उसे निर्भय करने के लिए मुझे मुहूर्त भी ठहरना उचित नहीं इस लिए मैं अभी इस नगर को छोड़ कर बन में जाऊंगा ।

हे वीर ! कैकेयी व राजा दोनों ही निर्दोष हैं, दैव ही इस में कारण है । मेरे बनवास में और दिए हुए राज्य को लौटाने में दैव का हाथ काम कर रहा है । कैकेयी मुझे भरत से अधिक चाहती थी, फिर भी वह

मुझे बन में भेजने के लिए तुली बैठी है, निस्संदेह दैव ही उसे प्रेरणा कर रहा है। हे लक्ष्मण ! दैव के साथ युद्ध करने की किस में सामर्थ्य है। यही विचार कर के मैं सिंहासन पर बैठने पर उद्यत परंतु अकस्मात् बन में धकेला गया भी प्रसन्न हूं, सो तू भी क्रोध और शोक को छोड़ कर मेरे अनुकूल चल और जल्दी इस अभिषेक की सामग्री को दूर कर।

राम के मुख से ऐसे धैर्य्य युक्त वचन सुन कर लक्ष्मण ने सिर नीचे झुका कर सोचा और फिर एकाएक क्रुद्ध विषधर के समान फुंकारता हुआ बोला—हे महाबाहो ! आप जैसे कर्म वीर मनुष्य दैव की स्तुति करते हैं, यह देख कर मैं आश्चर्य्य में हूं। कैकेयी के वशीभूत हुए पिता की यह आज्ञा जो धर्म के अनुसार नहीं है, आप कैसे पालन करेंगे ? हे राम ! जो निर्बल आलसी और भीरु है वही दैव दैव पुकारता है, आत्म सम्मान वाला पुरुष दैव के पीछे नहीं चलता। जो अपने पुरुषार्थ से दैव के हाथ तोड़ सकता है वह दैव के भरोसे पर अपनी हानि कर के दुखी नहीं होता। हे राम ! जिन्हों ने तुम्हारे राज्य-तिलक में विघ्न डाला है आज वह लोग मेरे पौरुष से दैव का विनाश होते देखेंगे, दैव और पुरुषार्थ का आज युद्ध होगा। आज मैं अपने भुज बल से दैव को चूर चूर कर डालूंगा। मैं पिता की और कैकेयी की उस आशा को जला कर

राख कर दूंगा जो उन्हों ने तुम्हारे स्थान में भरत को सिंहासन पर बैठाने की कर रखी है। हे राम! जैसे समुद्र मर्य्यादा का पालन करता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारे राज्य की रखवाली करूंगा। आप अपने अभिषेक के मंगलकार्य्य का आरंभ करें और मैं आप के इन शत्रुओं का संहार करूंगा। मेरे यह बाहु दण्ड केवल शोभा के लिए नहीं है, खड्ग केवल दिखावा नहीं है और धनुष भूषण मात्र नहीं है, यह सब शस्त्र शत्रुओं के विध्वंस करने के लिए हैं, जो मेरा शत्रु है वह संसार में जीवित नहीं रह सकता। हे राम! तुम अपने शत्रुओं को यमराज की दाढ़ में समझो जहां से वह कभी निकल नहीं सकते और मुझे अपना दास समझ कर आज्ञा दो..... इतना कहते कहते क्रोध से कांपते हुए लक्ष्मण के नेत्रों से आंसू निकल पड़े।

तब अपने हाथ से लक्ष्मण के आंसुओं को पोंछ कर राम ने कहा हे वीर! धीरज धर, पिता की आज्ञा का पालन करना धर्मों में सब से बड़ा धर्म है और मुझे अपने धर्म पर अटल जान, यही सौम्य पुरुषों का मार्ग है। राम का ऐसा दृढ़ निश्चय देख कर कौशल्या ने आंखो में आंसू भर कहा हे पुत्र! बन के भयानक दुखों को तू कैसे सहन करेगा, किस प्रकार लाड़ प्यार से पला हुआ राजा का पुत्र हो कर तू दाना दाना एकट्ठा करके उदर पूर्ति करेगा, यह सोच कर मेरा कलेजा मुंह को

आ रहा है। हे पुत्र! तेरे वियोग की अग्नि मुझ क्षण मात्र में दग्ध कर देगी। गौ जैसे मोह से अपने बछड़े के पीछे पीछे चलती है इसी प्रकार जहां जहां तू जाएगा मैं तेरे पीछे चलूंगी।

माता के मुख से ऐसे दीन वचन सुन कर राम का हृदय भर आया परंतु उसने अपने आप को संभाल कर फिर कहा, हे मातः! कैकेयी ने राजा को छल से बांध लिया है, उस पर तू भी यदि उसे छोड़ कर चली जाएगी तो उस की मृत्यु में कोई संशय नहीं है। इस लिए पति को त्याग कर घोर पाप की भागिनी न बन हे देवी! जब तक राजा जीवित है उस की सेवा करना तेरा धर्म है, सो अब तू मोह का त्याग कर, मैं चौदह वर्ष बन में व्यतीत करूंगा और फिर तेरे दर्शन करूंगा। हे मातः! पति ही स्त्री का देवता है, पति ही ईश्वर है, पति के होते हुए तू अपने आप को अनाथ न समझ और राजा की तन और मन से एक चित्त हो कर ऐसी सेवा कर, कि वह मेरे वियोग के दारुण दुख को भूल जाए। हे मातः! जो स्त्री व्रत उपवास आदि तो करती है परन्तु पति के अनुकूल नहीं चलती उसके संपूर्ण पुण्य कर्म निष्फल होते हैं और उसका वास नरक में होताहै। जो स्त्री व्रत उपवास दान पुण्य देव-पूजन आदि तो नहीं करती परंतु अपने भर्ता को सदा प्रसन्न रखती है वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करती है। स्त्री अपने पति का

सदा चिंतन करे यह वेद और शास्त्र पुकार पुकार कर कहते हैं। हे मातः! चौदह वर्ष के पश्चात् मेरे लौटने पर तू अपनी मनोवाञ्छित कामना को प्राप्त करेगी।

———:०:———

कौशल्या का राम को विदाई देना।

राम के मुख से ऐसे युक्ति युक्त धर्म परायण और शास्त्रोक्त वचन सुन कर कौशल्या जल से भरे हुए नेत्रों को पोंछ कर बोली, जा, हे पुत्र! परमात्मा तेरा कल्याण करे, अपने पिता के ऋणों को उतार कर तू बन से वापस आ। हे वत्स! तेरी पितृ-भक्ति और धर्म परायणता अटल है, तू रुक नहीं सकता। हे रघुनंदन! जिस धर्म के पालन में तू भयानक विपत्तियों के मुख में जाता है, वह धर्म तेरी रक्षा करे। हे काकुत्स्थ्य! महर्षि विश्वामित्र ने जो अस्त्र तुझे दिये हैं, वह अस्त्र शस्त्र तेरी रक्षा करें। हे पुत्र! माता कैकेयी और पिता की सेवा तेरी बन में रक्षा करे। अष्ट लोकपाल छः ऋतुएं पक्ष, बारह महीने, वर्ष और रात्रियां दिन और मुहूर्त सदा तेरा कल्याण करें। रास्ते तेरे लिए हे राम! कल्याणकारी हों। हे पुत्र! जा सत्पथ पर चल कर तू बड़े यश का भागी होवे।

इस प्रकार पुत्र को अनुज्ञा दे कर माता कौशल्या ने ब्राह्मणों से हवन करवाया और स्वस्तिवाचन की ध्वनि से सब मंगल कार्य्य करवा कर पुत्र को कण्ठ से

लगा मस्तक चूम, विदा करती हुई बोली, हे वत्स ! ईश्वर तेरी कामनाएं पूरी करे ।

माता की अनुज्ञा प्राप्त कर के राम ने अपने शीश को उस के चरणों पर रखा और फिर वहां से विदा हो जानकी के महल में गया ।

जानकी राज्य-तिलक के विचार से प्रसन्न चित्त हुई उत्सुक नयनों से पति की राह देख रही थी, कि राम उस शोभायमान भवन में लज्जा से सिर झुकाए प्रविष्ट हुए । राज्य चिन्हों से रहित अपने प्राण प्रिय पति को आते देख कर सीता का हृदय एकाएक कांप उठा, उधर राम भी सीता की भावी विपत्ति को सोचते हुए अपने हृदय के भावों को गुप्त न रख सका और जानकी राम के चिन्तातुर मुखको जिस पर रौनककी छाया मात्र शेष रह गई थी और मस्तक पर पसीने बह रहे थे, देखते ही अधीर सी होकर बोली हे प्राणनाथ ! यह मैं क्या देख रही हूं आपका सिर समुद्र फेन के समान श्वेत छत्र से शून्य क्यों है ? चन्द्रमा और हंस के समान दो सफेद चंवर आप के सुंदर मुख पर क्यों डुल नहीं रहे ? अभिषेक का शुभ दिन होने पर भी दर्बारी और नगर के मुख्य लोग आप के पीछे पीछे क्यों नहीं चल रहे । वायु के समान वेग रखने वाले चार घोड़ों से जुता हुआ स्वर्ण का रथ तुम्हारे आगे आगे क्यों नहीं चल रहा । हे आर्य्य पुत्र आज स्वर्ण जटित भद्रासन को थामे हुए सेवकों को तेरे

आगे क्यों नहीं देख पाती । हे नाथ ! राज्य-तिलक के दिन तुम्हारा मुख सूर्य्य के समान दमकता हुआ होना चाहिए था, परंतु तुम्हारे मुख पर दुख की रेखा है, कहो कहो हे प्राण वल्लभ ! न जाने मेरा हृदय इस समय अकारण ही क्यों व्याकुल हो उठा है, इस प्रकार कहते कहते जानकी के नेत्रों से जल की धारा बह निकली ।

तब रोती हुई जानकी को राम बोले हे प्रिये ! पिता ने मुझे १४ वर्ष के के लिए बनवास दिया है । हे मृदुभाषिणी हृदय को दृढ़ करके सुन, पिता ने मेरी माता कैकेयी से देवासुरसंग्राम में दो वर देने के लिए प्रतिज्ञा की थी, सो आज उसने अवसर पाकर एक से भरत के लिए राज्य और दूसरे से मुझे बन में जाने की आज्ञा दी है । अब मैंने चौदह वर्ष बन में निवास करना है और आज ही जाने के विचार से तुझे मिलने आया हूं । हे प्राणेश्वरी तू भरत को सदा प्रसन्न रखना और राजा की सेवा करते रहना मेरी वृद्ध माता की सेवा कौशल्या को जिसका हृदय मेरे वियोग से छलनी हो गया है, सदा धीरज देते रहना, और सुमित्रा व कैकेयी की भी वैसे ही पूजा करना क्यों कि मेरी सारी माताएं एक समान आदर के योग्य हैं । हे सीते ! भरत मेरे बनवास का कारण है, इस झूठे विचार से कभी उस की अवज्ञा न करना क्योंकि वह देश का राजा और मेरा प्राणों से भी अधिक प्यारा भाई है । हे ऊंचे कुल वाली ! मैं

मुनियों से सेवित महा बन में जाऊंगा, तुम यहीं निवास करो। और जिस प्रकार तूने आज मेरे कथन के विरुद्ध कभी नहीं किया इसी प्रकार आज भी यहां रह कर मेरे वचन का पालन कर।

अकस्मात वज्र के समान यह भयंकर वचन सुन कर जानकी ने क्रोध से उत्तर दिया, हे आर्य्य-पुत्र आप के मुख से इस प्रकार के हलके और जगत में निंदा कराने वाले वचन सुन कर मुझे हंसी आती है। हे राम! माता पिता भाई बहन बेटा बेटी और पुत्र वधु यह सब अपने अपने पुण्यों और अपने भोगों को भोगते हैं परंतु स्त्री केवल अपने पति के किए हुए कर्म्मों का फल भोगती है स्त्री पुरुष का आधा अंग है शास्त्रों ने ऐसा कहा है इस लिए आप के साथ ही राजा ने मुझे भी बनवास दे दिया। हे राम! पिता पुत्र भाई बहन माता और सखियां यह सब इस संसार में स्त्री के लिए गति नहीं है पत्नि के लिए पति ही उस की परम गति है, इस लिए आज ही मैं आप के साथ बन में जाऊंगी, आप निश्शंक हो कर मुझे साथ ले चलिये। हे प्यारे! पति के चरणों की सेवा से स्त्री को जो सुख प्राप्त होता है उस के सामने भूलोक और स्वर्ग के दिव्य सुख भी तुच्छ हैं। जो जो मेरे करने योग्य है उस की मुझे माता पिता ने शिक्षा दी हुई है, आप मुझे अधिक शिक्षा देने का यत्न न करें। मैं आप के साथ महाबन में अवश्य

जाऊंगी । हे प्राणनाथ । मैं तुम्हारे चरणों में उसी प्रकार सुख से रहूंगी जैसे पिता के गृह में रहा करती थी । मुझे केवल पति-व्रत धर्म की चिन्ता है । हे नाथ ! नित्य-नियम से ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके मैं आप के साथ बनैले जन्तुओं से भरे हुए महाबन में विहार करूंगी, आप मुझे मना न करें । फल मूल से उदर पूर्ति करती हुई मैं आप को किसी प्रकार का कष्ट न दूंगी । आप के आगे आगे चलूंगी आप के भोजन कर चुकने पर खाऊंगी हे राम ! नदी पर्बत और सरोवर में आप के साथ निर्भय हो कर विहार करूंगी । आप के संग संग रहती हुई कमल फूलों हंस और कारूवों से शोभित सरोवरों में नित्य स्नान करने को मेरा मन चाहता है । आप के बिना यदि मुझे स्वर्ग का सुख भी मिले तो कभी मुझे अभिष्ट नहीं है । हे नाथ ! यदि तुम मुझे यहां छोड़ जाओगे तो मैं अपने प्राण दे दूंगी आप मुझे साथ ले चलें ।

सीता बन जाने के लिए हठ कर रही थी, परंतु राम महाबन के दुखों का विचार करके उसे साथ ले जाना नहीं चाहते थे, इस लिए उन्हों ने रोती हुई सीता के कण्ठ में भुजा डाल कर कहा हे प्रिये ! मैं जैसे तुम्हें कहता हूं तू वैसे ही कर और बनवास की इच्छा त्याग कर यहीं गृह में रह । हे कल्याणि ! पर्वतों की कंदराओं में रहने वाले सिंहों की गर्जना तुझे भयभीत कर देगी

उजाड़ बनों में मनुष्यों को मार देने वाले जन्तुओं का निवास है और कच्छ मच्छ मकर आदि हिंसक जल जीवों से परिपूर्ण दलदलों वाली नदियां पार करना महा कठिन है, मतवाले हाथी जहां तहां खेलते रहते हैं इस लिए बन बड़े दुखदायी हैं। बन की पग-डंडियां कांटों से पटी हुई पाओं को छलनी कर देती हैं इस लिए बन का विचार छोड़। हे प्राण प्यारी ! सूर्य्य की प्रचण्ड धूप, शीत-काल की प्राण घातक सर्दी और वर्षा के तूफ़ान वृक्षों के नीचे काटना महा दुखदायी हैं। पत्तों की शय्या पर शयन करना और अपने आप से गिरे हुए फलों पर चौदह वर्ष पर्य्यंत निर्वाह करना महा क्लेश कारी है इस लिए बन में बड़े दुख हैं। बनों और पर्वतों को कंपायमान करने वाला वायु, घोर अंधकार, और भूख प्यास की व्याकुलता असह्य है। कंटीले वृक्ष और झाड़ियां कुशा के अग्रभागों में इस प्रकार जकड़ी रहतीं हैं कि चलते चलते मनुष्य घायल हो जाता है, इस लिए हे प्रिये ! बन में तू जाने योग्य नहीं है मैं वहां भय देखता हूं।

राम के इन वचनों को सुन कर सीता रोती हुई बोली, हे नाथ ! बन के सिंह चीते सूअर आदिक हिंसक जीव आप को देखते ही भयभीत होकर भाग जाएंगे। "छाया के समान सदा भर्ता के पीछे चलना" यह शिक्षा मेरे माता पिता ने मुझे दी है, इस लिए धर्मानु-

सार मुझे आप के साथ चलना उचित है। बन दुखों और भय से भरा हुआ है, यह मैं जानती हूं, परंतु इन्द्रियों के वशीभूत मनुष्यों को ही वह दुख ग्रसते हैं, जितेन्द्रिय को नहीं। हे शूरवीर ! बन में चल कर आप की सेवा करना चाहती हूं स्वामी ही मेरा सर्वस्व है, उस के बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। हे नाथ ! भक्ति वाली, पतिव्रता, सुख दुख में सेवा करने वाली मुझ को आप साथ ले चलना क्यों नहीं चाहते। यदि आप मुझे छोड़ कर जाएंगे तो मैं जल में डूब कर, अग्नि में जल कर अथवा विष खाकर प्राण दे दूंगी। इस प्रकार रो रो कर दीनता से प्रार्थना करती हुई सीता को भी जब राम ने फिर बन जाने से रोका तो उस का आत्माभिमान जाग उठा और वह प्रेम से और दावे से बोली—हे विशाल हृदय ! संसार कहता है, कि राम सूर्य्य के समान तेज वाला है, परंतु आज मैं इस कथन को झूठा होते देखती हूं। आप क्या सोच कर दुखी हो रहे हैं, किस से आप को भय है जो मुझ दुखिया को यहां छोड़ जाना चाहते हो। हे वीर ! सत्यवान के पीछे चलने वाली सावित्री के समान मुझे आप समझें। बन व नगर स्वर्ग व वैकुण्ठ दुख व सुख मेरा सब कुछ आप के साथ है। कंटीले वृक्ष और नुकीली कुशा मेरे लिए रेशम से भी अधिक मुलायम होगी, यदि मैं आप के साथ हूंगी। हे प्यारे ! झक्खड़ और आंधी से उठी हुई धूलि जो मेरे ऊपर

गिरेगी वही मेरे लिए चंदन का लेप होगा, यदि मैं आप का साथ दूंगी। हरे हरे घास की शय्या मेरे लिये महल के पलंगों पर बिछे हुए रेशमी वस्त्रों से अधिक सुख दायिनी होगी यदि मैं आप के साथ दूंगी। फल मूल और कंद जो कुछ भी आप मुझे देंगे वह छप्पन प्रकार के पदार्थों से अधिक स्वादिष्ट होगा यदि मैं आप के साथ दूंगी। हे नाथ! आप की छाया में रह कर वन के फूलों से जी बहलाती हुई मैं माता पिता और सखियों को याद न करूंगी, हे राम! मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती. क्या फिर चौदह वर्ष। इतना कह कर वह रोती हुई राम के कण्ठ का हार हो गई, और उस के नेत्रों से मोतियों के समान आंसू निकल निकल कर इस प्रकार कपोलों पर बहने लगे जैसे गुलाब के पुष्प पर ओस के बिन्दु।

सीता को ऐसी दुखित अवस्थामें देख कर राम ने उसे प्यार से हृदय से लगा लिया और फिर धीरज देता हुआ बोला—हे सुंदरि! मैं बन में तेरी रक्षा करने में असमर्थ नहीं हूं परंतु तेरे हृदय के भावों को जानने के लिए ऐसा कहता था, तू निस्संदेह मेरे साथ चलने योग्य है। हे प्रिये! मैं तुझे छोड़ कर बन में न जाऊंगा हे जनक नंदिनि! यदि तू यह चाहे, कि मैं बन को न जाऊं तो यह असंभव है, क्यों कि पिता की आज्ञा से मैं बंधा हुआ हूं। हे प्रिये! न सत्य न दान न मान और न

यज्ञ इतना बल देने वाले हैं, जितना कि माता पिता की सेवा । संसार में माता पिता और गुरु जनों की सेवा और उनके अनुसार चलने से स्वर्ग व धन धान्य विद्या संतान और जगत का यश व सुख सब कुछ प्राप्त हो जाता है । हे जानकी ! माता पिता की आज्ञा मानने वाला मनुष्य देवलोक, गोलोक, पितरलोक, और ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है इस लिए जो मुझे पिता की आज्ञा है वही मुझे करना उचित है, यही सनातन धर्म है । हे मृगनयनि ! तू मेरे साथ बन में चलने योग्य है तेरा निश्चय बड़ा सुंदर है इस लिए अब बनवास की तैय्यारी कर, अब तेरे बिना मुझे स्वर्ग भी पसंद नहीं । हे जानकी ! ब्राह्मणों को अपने भूषण और रत्न दान करके भिखारियों को भोजन दे, और जो कुछ भी तेरी खेल कूद की सामग्री, अच्छे अच्छे पहरने वाले वस्त्र, सुंदर पलंग और जो मेरी वस्तुएं हैं वह भी सब दास दासियों को शीघ्र दे दे, जल्दी कर ।

पति के मुख से यह वचन सुन कर सीता का हृदय गद्गद प्रसन्न हो गया और वह अपने दास दासियों को एकट्ठा कर के जल्दी जल्दी उन सब में महल का सामान बांटने लगी ।

जानकी और राम की वन जाने के लिए तैय्यारी देख कर रोता हुआ लक्ष्मण भाई के चरणों में गिर कर यूं बोला—हे वीर यदि आप ने भयानक बन में जाने

का निश्चय कर लिया है तो मुझे भी साथ चलने की आज्ञा दें, मैं आप की रक्षा करता हुआ सिपाहियों की तरह धनुष चढ़ाए आप के आगे आगे चलूंगा। हे वीर ! सिंह चीते शूकर और हाथियों से भरे हुए महावन में मैं आपके साथ अनेक बनों में विचरण करूंगा। आपके विना मुझे यह महल खाने को दौड़ता है, हे वीर! आप के बिना मैं अयोध्या तो क्या, स्वर्ग वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक में भी नहीं जाना चाहता हूं। लक्ष्मण के मुख से यह नम्र वचन सुनकर सूर्य्य के समान तेजस्वी राम ने उत्तर दिया, हे वीर ! तू मेरा प्राणों से भी अधिक प्यारा भाई है, परन्तु मेरे साथ जाने से माता सुमित्रा की कौन सेवा करेगा, इस लिये हे लक्ष्मण ! माता कौशल्या और सुमित्रा को धैर्य्य देने के लिये तू यहीं रह। ऐसा करने से तेरी गुरु जनों में अचल भक्ति होगी। हे राघव लक्ष्मण ! हम दोनों से विछड़ी हुई हमारी माताएं महा दुख को प्राप्त करेंगी।

राम के मुख से ऐसा स्पष्ट उत्तर सुनकर लक्ष्मण ने नेत्रों में आंसु भर कहा हे सत्यवादिन् ! कौशल्या और सुमित्रा की कैकेयी सुत भरत तन मन से सेवा करेगा, इस में कुछ भी संदेह नहीं, और माता कौशल्या मेरे जैसे लाखों का पालन कर सकती है, जिसने दासों और सेवकों को सहस्रों गौएं दान दे रखी हैं। वह आर्य्या अपना मेरी माता का और मेरे जैसे हज़ारों का पालन

कर सकती है ।

इसलिए हे रघुनंदन ! मुझे आप अपना सेवक बना कर साथ चलने की आज्ञा दें । हे वीर ! मैं खनित्र और टोकरी लिए आप के आगे २ चलूंगा, प्रति दिन आपके लिए कंद मूल फल फूल और हवन के लिए लकड़ियां तथा अन्य सामग्री लाया करूंगा । आप जानकी के साथ पर्वत के शिखरों पर रमण करेंगे, मैं सदैव आप के सोते और जागते चौकसी करूंगा ।

लक्ष्मण के मुख से यह वचन सुनकर राम ने प्रसन्न होकर कहा, हे वीर ! जा और माता सुमित्रा, कौशल्या वा राजा से तथा अन्य गुरु जनों से आज्ञा ले आ, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा, और हे आर्य्य ! वह दोनों वज्र धनुष जो वरुण से दिये हुए महाराज जनक के पास थे, और दोनों कवच जो कभी टूट नहीं सकते, और वह भत्थे जिन के बाण कभी समाप्त नहीं होते, बिजली के समान चमकने वाले वह दोनों खड्ग जिनकी मुट्ठियां स्वर्ण की हैं, यह सब आचार्य्य के गृह से ले आ । हे लक्ष्मण अब देर न कर क्योंकि यहां ठहरना अब मेरे लिए उचित नहीं है ।

राम की आज्ञा पाकर अति प्रसन्न हुआ हुआ लक्ष्मण जल्दी से माताओं और राजा की आज्ञा ले कर पुरोहित के पास गया और वहां से सब शस्त्रों को लेकर राम के सन्मुख उपस्थित हुआ । शस्त्रों को देख कर राम

लक्ष्मण से बोले, हे बीर ! गुरु वशिष्ट के आर्य्य पुत्र को यहां ले आ, क्योंकि बन जाने से पहले मैं अपना और तेरा सारा धन दास दासियों और ब्राह्मणों में वितरित करना चाहता हूं।

—:०:—

रामचन्द्र जी का सर्वस्व दान करना।

लक्ष्मण जब गुरु पुत्र सुयज्ञ को लेकर आया, तो रामचंद्र जी ने दोनों हाथ जोड़ कर जानकी सहित उसकी प्रदक्षिणा की और फिर अपने पहरने के स्वर्ण के कुंडल बाजूबंद कड़े मालाएं और बहुत से रत्न उसकी भेंट किये। इसके अनंतर जानकी के सारे भूषण उसे देकर बोले हे मित्र ! यह सीता मेरे साथ बन को जाती हुई तेरी स्त्री के लिये अपने बाजूबंद, कंकण, मोतियों की माला और किंकणी तथा हीरे मोती और बहुत से रत्न देती है तू उसे जाकर पहना। सुंदर रत्न जटित यह पलंग भी लेजा और हे द्विज कुल अवतंस ! यह हाथी जो मेरे मामा ने दिया है एक सहस्र दीनारों सहित तुझे देता हूं।

राम के ऐसा कहने पर गुरुपुत्र सुयज्ञ ने सजल नेत्रों से उन वस्तुओं को ग्रहण किया और आशीर्वाद दिया, हे राम ! तुम चिरंजीव रहो और चौदह वर्ष निष्कंटक व्यतीत करके फिर अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान होवो। गुरुपुत्र को विदा करके राम ने

सामने खड़े हुए रुदन करते हुए भृत्य जनों को बहुत सा धन दे कर कहा, कि तुम सब यहां रहते हुए माता कौशल्या सुमित्रा कैकेयी भरत और राजा की सेवा करो। इसके अनंतर राम ने अपना खजाना मंगवाया उस खजाने को सीता ने अपने हाथों से दीन दुखिया दरिद्र और ब्राह्मणों में वितरित किया। इस प्रकार राम का यश सारे नगर में छा गया।

उन दिनों अयोध्या के निकट एक गांव में गर्ग गोत्री त्रिजट नाम का तपस्वी ब्राह्मण निवास करता था उसके यहां संतान बहुत थी, परंतु अत्यन्त निर्धन होने के कारण बड़ी कठिनता से अपना गृहस्थ चलाता था। रामचन्द्र जी के दान की चर्चा सुन कर त्रिजट की स्त्री ने अपने पति से कहा, स्वामिन् ! दीन दयाल श्री रामचन्द्र जी इस समय सर्वस्व दान कर रहे हैं, सो तुम भी वहां जाकर याचना करो, कदाचित वह निराश्रयों के आश्रय कौशल्या नंदन हमें भी निर्धनता के अथाह सागर से उबार लें।

पत्नि से बार बार प्रेरणा किया हुआ वह भूरे रंग का ब्राह्मण हृदय से न चाहता हुआ भी रामचन्द्र के महल में पहुंचा और बिना पूछे पांचों ड्योढ़ियों को पार करता हुआ राम के निकट पहुंच गया। उसके स्वाभाविक तेज और ब्रह्म वर्चस् को देख कर रामचन्द्र जी ने कहा हे ब्राह्मन् ! दूर से आने के कारण तुझे बहुत कष्ट

हुआ, मैं तुम्हें देख कर प्रसन्न हुआ हूं। हे विप्र! तू अपने इस बड़े दण्ड को ऊंचे स्थान पर खड़े होकर फेंक, जितनी दूर यह दण्ड जा गिरेगा उतने स्थान में जितनी गौएं खड़ी हो सकेंगी तुम्हें दी जाएंगी। तब उस ब्राह्मण ने उतने बल से दण्ड को फेंका कि वह सरयू नदी के पार दूर जा गिरा। तब रामने उस की बहुत प्रशंसा की और सहस्रों गौएं तथा स्वर्ण और मोती आदिक दे कर उसे विदा किया।

—:०:—

पिता के अंतिम दर्शन।

राम ने अपना लक्ष्मण का और जानकी का सारा धन दान कर के संपूर्ण ब्राह्मणों याचकों तथा अन्य भिखारियों को तृप्त कर दिया। इस प्रकार संपूर्ण धन को वितरित कर के राम जानकी और लक्ष्मण सहित पिता के अंतिम दर्शनों को चले। राम के वनवास का समाचार वन के अग्नि के समान सारी अयोध्या में फैल चुका था। असंख्य मनुष्यों की भीड़ से रास्ते भरे पड़े थे। अपने प्यारे राजकुमार के दर्शनों के लिए लाखों पुरुष राज पथ के दोनों ओर खड़े हुए रो रहे थे। राम महल से निकल कर कैकेयी के महल की ओर पैदल चले। उन के पीछे पीछे पतिव्रता जानकी और उन के पीछे वीर लक्ष्मण कंधे पर धनुष उठाए चलने लगा। हा देव! स्वर्ण के रथ पर विराजमान जिस राम के पीछे

चतुरंगिणी सेना चलती थी, जिस कोमलांगी जानकी के पांवों को मखमली गद्दे भी चुभते थे और मनुष्य तो क्या जिस के मुख को सूर्य्य भी देखने में असमर्थ था जिस लक्ष्मण की भृकुटि टेढ़ी हो जाने पर सारा ब्रह्माण्ड डोल जाता था, आज वह तीनों नंगे पाओं सिर झुकाए हुए दीनों की नाईं अयोध्या के बाजारों में चल रहे हैं। उन को देख कर दर्शक मनुष्यों के नेत्रों से आंसुओं की धारा वह निकली। खिड़कियों चबूतरों और झरोखों में खड़ी हुई स्त्रियां रो रो कर कहने लगीं हाय विधाता ! अंगराग के योग्य चंदन का सेवन करने वाली चंपक वर्णी जानकी का रंग वन की धूप वर्षा और सर्दी से बदल जाएगा। इस के पाओं कांटों से छिल जाएंगे। उस समय अहिंसा दया और क्षमा के रूप राम को पीड़ित देख कर सारी प्रजा इस प्रकार पीड़ित हुई जैसे मूल पर प्रहार करने से शाखा और पत्तों सहित सारा वृक्ष कांपने लगता है। राम को जाते देख सब के सब अयोध्या निवासी उन के पीछे पीछे चलते हुए इस प्रकार कहने लगे, कि राम के बिना हम यहां न रहेंगे, हम भी इस लोकपति के साथ अपनी स्त्रियों और बाल बच्चों सहित बन में जाएंगे। रामने अयोध्या निवासियों को रोते हुए देखा, परंतु उस के मन में तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ और पर्वत के समान अचल हृदय वाला वह मुस्कराता हुआ कैकेयी के महल में पहुंचा। वहां द्वार पर

राजमंत्री सुमंत्र को देखकर रामने कहा हे सचिव ! पिता को मेरे आने की सूचना दो। राम से आज्ञा दिया हुआ सुमंत्र जल्दी से वहां पहुंचा जहां राजा पुत्र वियोग की अग्नि से जलता हुआ जल हीन मछली की नाईं तड़प रहा था। दोनों हाथ जोड़ कर सुमंत्र ने राजा की ओर लक्ष्य कर के कहा हे महाराज ! आप का ज्येष्ठ पुत्र धर्मात्मा राम जानकी और लक्ष्मण सहित आप के दर्शनों की आज्ञा चाहता हुआ बाहर खड़ा है। हे पृथिवी पति ! अपने, लक्ष्मण के और जानकी के सारे धन को दान कर के वह बड़े धैर्य्य वाला राजकुमार माताओं और सुहृद मित्रों के दर्शन कर के आपके दर्शन चाहता है। सुमंत्र के मुख से यह वचन सुन कर सत्यवादी धर्म-निष्ठ समुद्र के समान गंभीर हृदय वाला और आकाश के सामान लेप से रहित राजा दशरथ बोला, हे राज मंत्रिन् ! राम के अंदर लाने से पहले मेरी स्त्रियों तथा अन्य संबंधियों को यहां लेआ, राम महावन को जायेगा और मेरी मृत्यु भी अवश्य होगी, इस लिए मैं अपने सारे परिवार सहित राम को देखना चाहता हूं। राजा की आज्ञा से जब अन्तःपुर से सब स्त्रियां आ गईं तो उस ने सुमंत्र को आज्ञा दी, कि जाओ अब राम को ले आओ। तब सुमंत्र राम लक्ष्मण और जानकी को ले कर राजा की ओर चला।

पिता और माताओं को दूर से देख कर राम

सिर झुकाए दोनों हाथ जोड़े उन के सन्मुख पहुंचा। तब दशरथ अपने धर्मात्मा वशवर्ती और सुन्दर पुत्र को हाथ जोड़े हुए अपने पास आते देखकर अत्यंत दुखी हो स्त्रियों सहित आसन छोड़ कर खड़ा हो गया, और उसे हृदय से लगाने के लिए आगे बढ़ा परंतु शोक से अत्यंत पीड़ित हुआ मूर्छा खा कर पृथिवी पर गिर पड़ा । राजा को इस प्रकार गिरते देख राम और लक्ष्मण ने जल्दी से उसे सहारा दे कर पलंग पर लिटा दिया। उस समय राम लक्ष्मण और जानकी भी विलख विलख कर रोने लगे, सब स्त्रियां विलाप करने लगीं। और सारे महल में हाहाकार मच गया। थोड़े समय के पश्चात् जब राजा सचेत हुए तो राम उस से बोले, हे तात! आप ही हम सब के स्वामी हैं, अब मैं आप से आज्ञा मांगता हूं बन जाते हुए आप हम सब को आशीर्वाद दें। हे पिता जी! लक्ष्मण और जानकी को भी अनुज्ञा दें, क्योंकि बहुत रोकने पर मुझ से अगाध प्रेम रखने वाले यह नहीं रुकते और बन जाने का निश्चय किये हुए हैं। हे पृथिवी नाथ! चौदह वर्ष निरंतर बनों पर्वतों और नदियों में विहार कर के मैं फिर आप के चरणों के दर्शन करूंगा। राम के मुख से यह वचन सुन कर कैकयी के वचन पाश में बंधा हुआ अयोध्यापति दशरथ रोता हुआ बोला, हे पुत्र! न चाहता हुआ भी तुझे भेज रहा हूं तू जा! तेरे रास्ते कल्याणकारी

हों ! भगवान तेरे अंग संग हों !! और ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं। कि वापस आने पर तेरे प्यारे मुखड़े को देखूं परंतु पुत्र ! दिन अधिक चला गया है, इस लिये आज की रात्रि तू यहीं ठहर, कल चले जाना, हे पुत्र ! अपनी माताओं की ओर देख जो घोर दुख मे रो रो कर अंधी हो रहीं हैं आज की रात्रि यहां ठहर कर इन के और मुझ वृद्ध के संताप को ठण्डा कर। हे राम ! इस दुराचारिणी कैकेयी ने मुझे धोखे से वचन की पाश में फंसा लिया है, जिससे तू मेरे गले को निकाला चाहता है। हे पुत्र ! तू मेरा ज्येष्ठ पुत्र है, पिता को नरक मे निकालना ही तेरा धर्म है। पिता के इन वाक्यों को सुन दोनों हाथ जोड़ कर राम ने कहा, हे पृथवी नाथ ! जान से व अजान से आपने मेरी माता कैकेयी को वचन दिया है, वह आज ही पूरा होना उचित है। हे तात ! आज ही मुझे वन में भेज कर अपने वचन को सच्चा करें। आप दुखी न हों मैं आप की आज्ञा से चौदह वर्ष बन में निवास करूंगा। हे नाथ ! राज्य भरत को दे दीजिये, मैं आप की आज्ञा के सामने तीनों लोकों का राज्य भी तुच्छ समझता हूं। हे प्रभो ! आप रोते क्यों हैं, नदियों का पति गंभीर समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता। हे रघु नंदन ! सब देवताओं में बड़ा पिता है, इस लिये न मुझे राज्य चाहिए न स्वर्ग चाहिए, न सुख चाहिए, मुझे तो आप की आज्ञा का पालन करना

है । हे नरोत्तम ! मैं आप के सन्मुख अपने पुण्यों की शपथ खाता हूं, कि आप की आज्ञा को मैं सब कर्मों से बड़ा समझता हूं और आप को सच्चा बनाने के लिए आज ही बन को जाता हूं । हे प्रभो ! आप हमारे लिए चिन्ता न करें, हम फल फूलों से उदर पूर्ति करते हुए हिरनों से भरपूर अनेक प्रकार के पक्षियों के मीठे स्वरों को सुनते हुए चौदह वर्ष बन में शान्ति और सुख से विहार करेंगे । हे पिता ! आप शोक न करें मैं चौदह वर्ष पश्चात् आप के दर्शन करूंगा । हे नाथ ! आप के रोने से यह सब संबंधी भी रो रहे हैं, आप इन को धीरज देने योग्य हैं । तब रोते हुए दशरथ ने राम को गले से लगाया परंतु दारुण दुख से पीड़ित हुआ हुआ मूर्छित हो कर गिर पड़ा और फिर न उठ सका । राजा की यह दशा देख कर कैकेयी के बिना सब रानियां रोने लगीं, सुमंत्र भी बिलख बिलख कर रोता हुआ कैकेयी को बोला—

हे रघुकुल सर्पिणि ! इस से बढ़ कर संसार में और कौनसा पाप किसी ने किया होगा, तू पति घातिनी और कुल घातिनी निकली । हे पापीयसि ! इन्द्र के समान अजेय, हिमालय के समान अचल अडोल और समुद्र के समान गंभीर राजा को तू अपने पाप कर्म से दुख दे रही है । हे मूर्खे ! पुत्र से सौ करोड़ गुना बढ़कर पति होता है, इस हठ को त्याग और रघुकुल को नष्ट होने

से बचा । हे जड़ बुद्धि वाली ! तेरा पुत्र भरत सिंहासन पर बैठ कर राज्य कर ले परंतु राम को बन में क्यों भेजती है । यदि तू अपने हठ पर तुली रहेगी तो हम सब भी वहां जायेंगे जहां राम रहेंगे तेरे पुत्र के पाप से कमाये हुए राज्य में कोई ब्राह्मण निवास नहीं करेगा, आश्चर्य है कि ऐसे पाप कर्म के बोझ से पृथिवी फट क्यों नहीं जाती । हे कैकेयी ! इस घोर अन्याय से सारा संसार तेरी निन्दा करेगा । इस प्रकार तीक्ष्ण वचनों से सुमंत्र ने कैकेयी को बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने सुमंत्र की बातों को सुना अनसुना कर दिया और अपने विचार पर तुली रही । तब राजा दशरथ ने ठंडी सांस भर कर आंसु भरे नेत्रों से सुमंत्र को कहा हे राज मंत्रिन ! चतुरंगिणी सेना को राम के पीछे २ चलने की आज्ञा दो और जो इसके संग रक्षक तथा सुहृद मित्र हैं उनको भी मुंह मांगा धन देकर राम के साथ चलने के लिये प्रेरणा करो । हे सुमंत्र अन्न और धन के कोष भी राम के साथ चलें और यह सच्ची प्रतिज्ञा वाला निर्जन बनों में रहने वाले तपस्वियों में यज्ञ और दान करता हुआ सुख से बन में रहे । राजा के मुख से यह वचन सुन कर कैकेयी का मुख सूख गया आंखें तेज हीन हो गईं और कंठ रुक गया । वह राजा ही को अभिमुख करके बोली—हे अयोध्यापति ! यह आप कैसे वचन कहते हो, अन्न और धन के साथ ले

जाने से मेरे मांगे हुए वरों का अभिप्राय नष्ट हो गया । विना अन्न और धन के भरत के लिये दिया हुआ राज्य उस वृक्ष के समान है जिसके सम्पूर्ण फल तोड़ लिये हों, हे पृथिवीनाथ ! आप ही के पूर्वज राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को जिस प्रकार विना एक कौड़ी दिये निकाल दिया था, उसी प्रकार राम भी बन को जाए । कैकेयी के मुख से ऐसे निठुर वचन सुनकर दशरथ के नेत्र क्रोध से लाल हो गये, उस ने उसे शतशः धिक्कार दी । तब वहां खड़े हुए सिद्धार्थ नामक नगर के प्रधान ने कैकेयी को अभिमुख करके कहा—हे सूर्य कुल घातिनि ! सगर का पुत्र असमंजस बड़ा पापी था, उसने अपने जी बहलावे के लिये निर्दोष ब्राह्मण पुत्रों को सरयु में डुबा दिया । उस के ऐसे भयंकर और नीच कर्म से सारे नगर मे हाहाकार मच गया और वह सब राजा के पास जा कर दुहाई देने लगे । तब राजा ने अपने प्यारे पुत्र को प्रजा के हित के लिये देश से निकाल दिया और उसी समय स्त्री सहित उसे टोकरी और फाला देकर सीमा से बाहर कर दिया, और वह असमंजस सारी आयु बनों और पर्वतों में दुःख उठाता हुआ अपने कर्मों का फल भोगता रहा । हे मनोरमे ! राम ने कौन सा पाप किया है, जो तू उसे ऐसा दुःख देने पर तुली हुई है । राम निर्दोष है, प्रजा का प्यारा श्रेष्ठ बुद्धिवाला है, और तू यदि उसमें कुछ दोष देखती

है, तो प्रगट कर, जिस से धर्मानुसार वह अपने कर्मों का फल पावे।

प्रधान के इस प्रकार कह चुकने पर राम ने दोनों हाथ जोड़ कर पिता से कहा, हे तात ! माता कैकेयी सत्य कहती हैं, जब बन में निवास करना है तो फिर सब भोगों का त्याग कर के मुझे बनवासियों के समान तपस्वियों के धर्म का पालन करना उचित है। हे राजन् ! जो गौ तो दान करे परंतु उस के रस्से का लोभ करे उस के गोदान का क्या माहात्म्य है, इस लिये हे भूपति ! तपस्वी धर्म में प्रवृत हुए मेरे लिये चतुरंगिणी सेना और अन्न व धन के छकड़े किस काम के, इस लिये हे तात ! मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे लिए वल्कल चीर खनित्र और टोकरी लाओ मैं माता की आज्ञानुसार बन में तप करूंगा।

राम के मुख से यह वचन सुन कर कैकेयी मन में अति प्रसन्न हुई और उसी समय वल्कल चीर ला कर बोली, लो यह पहनों और शीघ्र बन में जाकर पिता को सच्चा बनाओ। माता कैकेयी से वह चीर ले कर राम ने अपने रेशमी वस्त्र उतार दिए और उन वल्कलों को धारण कर लिया। इस के पश्चात वीर लक्ष्मण ने भी अपने सुन्दर वस्त्रों को उतार कर वल्कलों को पहन लिया। तब कैकेयी ने उसी प्रकार के दो चीर सीता के सन्मुख रख दिए और कहा हे पति की प्यारी ! यह चीर

तुम्हारे लिये हैं इन्हें पहन कर पति की अनुगामिनी बन, वनवासियों के योग्य उन चीरों को देख कर जानकी इस प्रकार डर गई जैसे अबोध हिरनी व्याध की पाश को, उन चीरों को ले कर लज्जा से लाल हुए मुख वाली सजल नयना सीता इधर उधर देखने लगी, क्यों कि वह नहीं जानती थी कि यह चीर कैसे ओढ़े जाते हैं, तब वह अपने इन्द्र के समान तेजस्वी पति राम को अभिमुख कर के बोली हे नाथ ! तपस्वी लोग किस प्रकार इन चीरों को धारण करते हैं, इतना कह कर वह अंजान बारंबार उन चीरों को देखने लगी । तब राम ने उस के हाथ से उन चीरों को ले लिया और उस के रेशमी वस्त्रों के ऊपर उन को बांध दिया । भोली भाली सीता को चीर बांधते देख जितनी स्त्रियां वहां खड़ीं थीं सब के नेत्रों से आंसू बहने लगे, और वह रोती हुई राम से बोलीं, हे सूर्य्यकुल भूषण ! आप तो पिता की आज्ञा से बन को जाते हैं परंतु यह किस अपराध से बन को भेजी जाती है । पुष्पों की शय्या पर बैठने वाली यह सुकुमारी बन में रहने के योग्य नहीं है । फिर गुरु वसिष्ठ ने सीता को न जाने के लिये आग्रह किया और कैकेयी से बोले, हे पापीयसि ! सीता के जाने पर सारे सूर्य्यकुल की जगत में घोर निंदा होगी, इस लिए सीता के चीर उतार दे । राम के जाने पर सीता ही धर्मानुसार राज्य करेगी क्योंकि पति की अनुपस्थिति

में पत्नी ही धर्मानुसार उस की संपति की स्वामिनी होती है । हे दुःश्शीले ! यदि तू हठ कर के इसे भी भेजना चाहती है तो हमारे लिये भी वल्कल चीर ला हम सब भी राम के साथ बन में जाएंगे, यह सब स्त्रियां और राजा भी चलेंगे और भरत तथा शत्रुघ्न भी बड़े भाई का अनुगमन करेंगे क्योंकि वह बड़े धर्मात्मा और नीति के जानने वाले हैं तब तू निर्जन उजाड़ अयोध्या पर शासन करना । हे कुलघातिनि ! भरत तेरे कहने पर कभी भी राज्य न करेगा क्योंकि वह सूर्य्य वंश के चरित्र को कभी न छोड़ेगा । हे मूर्खे ! हित के विचार से तूने पुत्र का बड़ा भारी अहित किया है, इस लिए चीरों को उतार कर जानकी को सुन्दर वस्त्रों और भूषणों में भूषित कर ।

गुरु वशिष्ठ के ऐसा कहने पर भी जानकी ने उन्ही चीरों को ओढ़े रखा क्योंकि वह पातिव्रता पति के सदृश ही वस्त्रों को पहरना चाहती थी । यह देख कर सब लोग राजा को बारंबार धिक्कारते हुए बोले, किस लिए यह त्रैलोक्य सुन्दरी बिना अपराध के इन चीरों को धारण करने पर बाध्य है । हे राजन् ! कैकेयी ने जब यह बात वर में नहीं मांगी फिर किस कारण आप उसे नहीं रोकते । राजा इन तिरस्कार भरे वचनों को सुन कर अति दुखित हुआ और आंसूओं से निरुद्ध कण्ठ से बोला, निस्सन्देह यह कोमल अंगोंवाली राजपुत्री

जिसने कभी दुखों को नहीं देखा, बन जाने के योग्य नहीं है। जनक नंदनी चीरों को उतार कर सारे भूषणों और उत्तम वस्त्रों को धारण कर के बन को जावे। परंतु जानकी ने अपनी इच्छा से बारंबार राजा के कहने पर भी उन्हें नहीं उतारा। जब राम लक्ष्मण और सीता तीनों ने तपस्वियों के चीर पहन लिए तो चलने के लिए तय्यार राम ने राजा को कहा, हे तात ! यह मेरी माता कौशल्या वृद्ध ओर उदार चरित्र वाली है अब मेरे जाने से अत्यन्त शोक से पीड़ित है, इसने पहले कभी दुख नहीं देखा इस लिए अब इस के साथ पहले से अधिक आदर और सन्मान का व्यवहार रखना।

तब अपने पुत्रों और स्नुषा को जाने के लिए तय्यार देख कर राजा मूर्छित हो गया। जब थोड़े समय के पश्चात् उसे कुछ सुधि आई तो रोता हुआ सुमंत्र को बोला, हे राजमंत्रिन् ! उत्तम घोड़ों से जुता हुआ रथ ले आ और इस पितृभक्त साधुपुत्र को इस देश की सीमा के उस पार छोड़ आ। इतना कह कर दशरथ बिलख बिलख कर रोने लगा। सुमंत्र राजा की आज्ञा से रथ को जोड़ कर ले आया। जब सीता और लक्ष्मण रथ पर चढ़ने लगे तो कौशल्या ने अपनी स्नुषा जानकी को कण्ठ से लगा और उस का मस्तक चूम कर कहा—

कौशल्या का सीता को उपदेश ।

हे जानकी ! पतिव्रता स्त्रियां सदा पति के अनूकूल चलती हैं। स्त्रियों के लिए पति ही सब देवताओं से बड़ा देवता है। जो स्त्रियां शास्त्र की मर्य्यादा को जानती हैं, वह कभी पति से विमुख नहीं होतीं चाहे वह राजा हो व रंक। हे जनक नंदनी ! मेरे पुत्र को बनवास दिया गया है, इस लिये वह तेरा देवता है।

सास के मुख से यह वचन सुन हाथ जोड़ कर सीता ने उत्तर दिया, हे माता ! आप जैसा मुझे आज्ञा देती हैं मैं वैसा ही करूंगी। मैंने शास्त्र पढ़ा है और उसे अच्छी तरह जानती हूं। हे आर्य्ये ! जनक की पुत्री असज्जनता का व्यवहार कभी नहीं करेगी, मैं पति के पीछे सदैव छाया की तरह चलूंगी। चन्द्रमा से जैसे चांदनी अलग नहीं होती उसी प्रकार मैं अपने धर्म से कभी अलग नहीं हूंगी। हे मातः ! जैसे तार के बिना वीणा नहीं बज सकती, बिना पहिये के रथ नहीं चल सकता इसी प्रकार पति के बिना स्त्री कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकती चाहे उस के सौ पुत्र और अनेक बन्धु हों। संसार में पिता मिल कर देता है भाई मिल कर देता है, माता मिल कर देती है और वह भी संसार को दिखा कर, परंतु पति स्त्री के लिए अमित देता है और दूसरे को दिखाना तो क्या सुनाता तक नहीं, ऐसे पति से बिना स्त्री की गति कहां है। जानकी के मुख से ऐसे

प्रिय वचनों को सुन कर कौशल्या के नेत्रों से आंसु बह निकले । तब राम ने हाथ जोड़ कर माता के चरणों का स्पर्श किया और गद्गद कण्ठ से बोला हे मातः ! मेरे बन में जाने से पिता जी बहुत दुखी होंगे इस लिए उनको धीरज देते रहना, यह बनवास की घड़ियां शीघ्र ही व्यतीत हो जाएंगी । हे आर्य्ये ! धैर्य रखने से यह समय ऐसे व्यतीत हो जाएगा और फिर तू मुझे बंधु बांधवों से घिरे हुए ऐसे देखेगी, मानों तू सोई हुई उठी है और कोई घटना हुई ही नहीं । इस के पश्चात् राम लक्ष्मण और जानकी राजा के चरणों को छू कर उसकी प्रदक्षिणा करते भये । पिता से आज्ञा ले कर फिर राम सीता सहित माता कौशल्या के चरणों का स्पर्श करता भया फिर लक्ष्मण ने माता सुमित्रा को अभिवादन किया । अपने पुत्र को बन जाने के लिए उद्यत देख कर सुमित्रा ने नेत्रों मे आंसु भर कर कहा, हे पुत्र ! तू अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के साथ बन को जाता है, तेरे रास्ते कल्याण कारी हों । हे वीर ! बिना प्रमाद के तू अपने बड़े भाई की सेवा में रहना सुख में दुख में निर्धनता में ऐश्वर्य में भीड़ में एकान्त में शान्ति में और युद्ध में हे पुत्र ! तू इन के पीछे चलने योग्य है । बड़ों की आज्ञाऽनुसार चलना इस कुल का सनातन धर्म है । हे आर्य्य ! राम के लिए अपने प्राण दे देना परंतु सदा उसकी रक्षा में तत्पर रहना । आज से राम तेरा पिता और जानकी

तेरी माता है, हे लक्ष्मण ! बन में माता पिता के समान सदा चौकसी से इन की सेवा करते रहना ।

इस के पश्चात् सब गुरु जनों को अभिवादन करके राम लक्ष्मण और जानकी सूर्य के समान चमकते हुए रथ पर सवार हुए । सुमंत्र से हांका हुआ वह रथ जिस समय वहां से चला तो अयोध्या के लाखों पुरवासी रोते हुए हा राम ! हा राम ! करते इस तरह उनके पीछे २ चले, जैसे गर्मी से घबराया हुआ मनुष्य सरोवर की ओर दौड़ता है। चारों ओर दौड़ते हुए अयोध्यावासी सुमंत्र को ज़ोर २ से पुकारने लगे, ठहराओ ठहराओ हम राम के दर्शन करेंगे, न जाने विधाता फिर कब इनका मुख दिखाएंगे । आज सीता और लक्ष्मण के धन्य भाग हैं जो राम के साथ जा रहे हैं । इधर राजा दशरथ भी स्त्रियों से निकल कर "हाय राम हाय राम" कहता हुआ रथ के पीछे पागलों के समान दौड़ा मनुष्यों की भीड़ से रथ के रुक जाने पर राम सूत को कहता है "चलो" परंतु पहियों को पकड़े हुए लोग कहते हैं "ठहरो"

राम के प्रति प्रजा की इतनी श्रद्धा देख कर राजा दशरथ अपने आप को बारंबार धिक्कारता हुआ मूर्छा खाकर कुल्हाड़े से काटे हुए वृक्ष के समान गिर पड़ा राजा के पृथिवी पर गिरने से अनगिनत मनुष्यों की उस भीड़ में बड़ा हाहाकार होने लगा । उस समय

ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रशान्त समुद्र में तूफ़ान से भारी उथल पुथल हो रहा है । इस शोर को सुन कर राम चन्द्र ने मुड़ कर देखा, कि राजा और माताएं बावलों के समान नंगे पांओं पीछे २ आरहे हैं । माता पिता की ऐसी शोक जनक अवस्था को देख कर बड़े धीरज वाले राम के नेत्रों में भी आंसु आ गए. परंतु अपने आप को संभाल कर उसने सारथि को कहा, कि रथ को शीघ्र चलाओ । राम की आज्ञा से सारथि रथ को वेग से हांकने लगा । तब सहस्रों मनुष्य उस के पीछे दौड़ने लगे उनके पीछे २ वृद्ध राजा समेत राम की माता जो मखमल के गद्दों पर चलने योग्य थी इस प्रकार दौड़ी जैसे बंधे हुए बछड़े के पास ममता की मारी गौ दौड़ कर आती है । परंतु जब सूत ने रथ को ठहराया तो राजा पुकार २ कर कहने लगा " ठहरो २ " परंतु राम बारंबार कहता "चलोचलो" इस प्रकार सांसारिक मोह को बल से तोड़ कर राम इस प्रकार दूर चला गया जैसे नयी ब्याई हुई गौ बच्चे की ओर बल से रस्सा तोड़ कर भाग जाती है । तब राजा को हांपते देख कर मंत्री ने कहा, हे पृथिवि नाथ । ठहर जाईये, जिसके पुनरागमन की इच्छा हो उसके पीछे दौड़ना शास्त्रों ने दोष माना है, राम आप की आज्ञा से बन को जारहा है इस लिये उसे जाते हुए रोकना उचित नहीं । मंत्री के कथन से राजा वहीं ठहर गया । उसके

दोनों नेत्र दौड़ते हुए रथ की ओर लग गये और जब तक धूलि उड़ती दिखलाई देती रही वह दीवार पर लिखे हुए चित्र के समान अचल नेत्रों से उधर ही देखते रहे, परंतु जब रथ बहुत दूर निकल गया और धूलि भी दिखाई न दी तो वह 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कहता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। उस धूलि से भरे हुए वस्त्रों वाले बेहाल राजा को कौशल्या ने मंत्रियों की सहायता से उठाया। तब राम के वियोग में विलाप करता हुआ राजा मरते हुए मनुष्य के समान धीरे २ बोला—अब मेरा जीना व्यर्थ है, मुझसा अभागा आज संसार में दूसरा कोई नहीं। मुझे राम की माता कौशल्या के महल में ले चलो, क्योंकि उसके सिवा मुझे कहीं शांति न मिलेगी। राजा के ऐसा कहने पर मंत्री उसे कौशल्या-भुवन में ले गये, और विलाप करते हुए उसे पलंग पर लेटाया गया।

अब जल से बाहर निकाली हुई मछली के समान पुत्रों के वियोग से व्याकुल हुआ हुआ राजा बारबार ठंडी सांस भर कर करवटें बदल रहा है। राम लक्ष्मण और चन्द्रमुखी जानकी के बिना यह विशाल भवन उसे खाने दौड़ता है। पुत्रोत्पत्ति के लिए शृंगि ऋषि से यज्ञ कराना, चारों कुमारों का आंगन में खेलना, विश्वामित्र का राम और लक्ष्मण को ले जाना जानकी स्वयंवर अभिषेक उत्सव इत्यादि सारी घटनाएं एक एक कर

के उस के नेत्रों के सामने आती हैं, और हृदय पर एक गहरी चोट लगा कर लुप्त हो जाती हैं। इन चोटों की पीड़ा को न सहन करता हुआ राजा बिलख बिलख कर रोता हुआ बोला, हाय राम ! तू मुझे त्याग कर क्यों जाता है । हे पुत्र ! हे मेरे जीवन के आधार ! तू कहां है ! धन्य हैं उन के भाग्य जो तुझे चौदह वर्ष के अनंतर लौट कर आए हुए को देखेंगे । इस प्रकार विलाप करते और हा राम हा राम पुकारते राजा की चेतना लुप्त होने लगी तब वह राम की माता को बोला, हे कौशल्ये ! मेरे नेत्रों के आगे अन्धकार छा गया है सामने बैठी हुई भी तू मुझे नहीं दिखाई देती. क्या यह रात्रि काल रात्रि तो नहीं ? हे प्रिये ! पुत्र वियोग में मरते हुए मुझ अभागे की देह पर जोर जोर से हाथ फेर इतना कहते कहते दशरथ फिर मूर्छित हो गया । तब राजा को बारंबार पुकारती हुई कौशल्या विलाप करने लगी—हे भगवन्! मेरी नौका भंवर में है, तू अपनी दया से इसे निकाल । हे घट घट की जानने वाले परमेश्वर ! राजा की दशा पर दया कर और इसे धीरज दे, हा ! मैं हाथी के समान मस्त चलने वाले राम के प्यारे प्यारे मुख को फिर कब देखूंगी ! बन से लौट कर आये हुए को देख कर अयोध्या पुरी कब उत्सव मनावेगी ! हे स्वामिन् ! कदाचित यह मेरे पापों का फल है, निस्संदेह मैंने पूर्व जन्म में दुग्ध पीना चाहते

हुए बछड़ों की माताओं के स्तन काट दिये हैं जो आज में सिंह से मारे गये बछड़े वाली गौ के समान सपूती होती हुई भी क्षण मात्र में निपूती कर दी गई हूं। हाय निर्दयी दैव ने पुत्र वियोग के वज्र से मेरा हृदय चूर चूर कर डाला है.....

कौशल्या के इस प्रकार विलाप करने पर सुमित्रा उसे धीरज देती हुई बोली, हे श्रेष्ठ गुणों वाली ! तेरा पुत्र राम बड़े गुणों वाला पुरुषों में उत्तम है, वह निर्लोभी राज्य पर लात मार कर पिता को सच्चा बनाता हुआ बन को गया है। हे शुभानने ! धर्म पर चलने वाला, माता पिता की आज्ञा माननेवाला राम आंसु बहाने योग्य नहीं है। यह धर्मात्मा, पराक्रमी, सत्यवादी, तेरा पुत्र तीनों लोकों में जब तक सूर्य्य और चन्द्रमा आकाश में विद्यमान है, अपनी कीर्ति की पताका फहराएगा। हे देवी ! संसार में सब से बढ़ कर धर्म परायण राम जिस का पुत्र है वह शोक करने योग्य नहीं है, हे देवी ! वह समय दूर नहीं है जब तू अपने प्यारे पुत्र को बन से लौट कर आए देख वर्षा ऋतु की मेघ माला के समान आनंद के आंसुओं से झड़ी बांध देगी। सुमित्रा के इन वचनों से कौशल्या के मन को कुछ धीरज हुआ और वह मूर्छित राजा की सेवा सुश्रूषा करने लगीं।

राम का अयोध्या वासियों को उपदेश ।

अयोध्या के सिंह द्वार से निकल कर राम का रथ बड़े वेग से चलने लगा । अपने धर्मात्मा सत्यवादी और पराक्रमी राजकुमार के अनुराग से खिंचे हुए सहस्रों पुरवासी आंसुओं की नदी बहाते हुए रथ के पीछे २ चले। तब बहुत दूर जा कर राम ने सूत को रथ खड़ा करने का आदेश किया, और फिर पुत्र समान प्यारे प्रजा जनों को कहा, हे अयोध्या वासी लोगो ! पिता की आज्ञा से मैं चौदह वर्ष के लिए वन को जाता हूं । तुम लोग जो बार बार मुझे अयोध्या लौट चलने को कहते हो सो इस में तुम्हारी अत्यंत प्रीति ही कारण है परंतु पिता की आज्ञा भंग करने से संसार में अव्यवस्था फैल जायगी राजवंश को स्वभाव से ही अनुकरण करने वाली प्रजा का कोई मनुष्य भी पिता की आज्ञा न मानेगा इस लिए अब तुम सब लौट जाओ और जैसी प्रीति और सन्मान मेरा करते हो वैसी ही प्रीति और आदर भरत में रखो इसी में मेरी प्रसन्नता है । हे प्रजा जनों ! भरत यद्यपि बालक है परंतु फिर भी बलवान गुणवान् सुशील और पराक्रमी है वह तुम्हारी रक्षा करेगा, सो तुम सब को भरत की आज्ञा का पालन करना उचित है। बाल सूर्य्य भी जिस प्रकार रात्रि के अंधकार को नाश करने में समर्थ है । इसी प्रकार भरत यद्यपि बालक है परन्तु प्रजा के दुःख रूप अन्धकार को दूर

करने में समर्थ है । हे पुर जनों ! भरत के साथ सदैव ऐसा व्यवहार रखना कि मेरे बन जाने के बाद राजा तुम से अप्रसन्न न रहे और वह मेरे वियोग को भूल जाएं। इतना कह कर राम ने सूत को चलने की प्रेरणा की, परंतु रामचन्द्र के प्रेम की डोरी से बंधे हुए पुरवासी लौटने में असमर्थ रोते हुए पीछे पीछे चलने लगे। बहुत दूर चलने पर पुरवासियों को दूर से तमसा नदी दिखाई दी जो अपने तिरछे प्रवाह से मानो रामचन्द्र को आगे जाने से मना कर रही थी। यह देखकर सारथी सुमंत्र ने भी थके हुए घोड़ों को नदी के तट पर खोल दिया और हरी हरी घास पर चरने को छोड़ दिया।

——:०:——

तमसा नदी पर श्री रामचन्द्रजी का पड़ाव करना।

पवित्र तमसा नदी के तीर पर पहुंच कर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता रथ से उतर पड़े। उस समय सहस्रों पुरवासी शोक से आंसु बहाते हुए श्रीराम को घेर कर बैठ गए और उनको लौट चलने के लिये प्रार्थना करने लगे, तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनको अनेक प्रकार के धीरज और सन्तोष के वचन कहे। इस प्रकार पुरवासियों के साथ वार्तालाप करते रात्रि हो गई। तब दिन भर की भूख यात्रा की थकान से आतुर हुए पुरवासी लोगों ने वहीं भूमि पर शयन किया। प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के

प्रति बोले, हे वीर! देखो यह पुरवासी हमारे प्रेम की रज्जु मे बंधे हुए किस प्रकार कष्ट उठा रहें हैं। कल से भूखे और दिन भर चलते चलते थक कर ऐसे अचेत पड़े हैं कि बेचारों को अपने तन की भी सुधि नहीं है। हे सुमित्रा नंदन! जब तक यह जागते नहीं हमें यहां से चले जाना उचित है, क्योंकि इन के साथ साथ चलने से इन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है जो मेरे लिए असह्य है। इस लिए सूत को आज्ञा दो, कि अति शीघ्र रथ को तय्यार करे तब राम की आज्ञा से लक्ष्मण तुरंत रथ में घोड़े जोत कर ले आया और वह तीनों सवार हो कर पुरवासियों को वहीं छोड़ तपोवन की ओर चलने लगे।

—:०:—

पुरवासियोंका जागना और विलाप करते हुए अयोध्याको लौटना।

जब पुरवासियों की निद्रा खुली तो राम लक्ष्मण और जानकी को वहां न देख कर उन को इतना दुख हुआ मानों शरीर मे प्राण निकल गये हों, तब वह सब आंसु बहाते हुए विलाप करने लगे, कि धिक्कार है हमारी निद्रा पर जो हम ऐसे अचेत सोए। हाय! अब हम प्राणों से प्यारे उस श्याम सुंदर दशरथ नंदन के कहां दर्शन पाएंगे। अब हम अयोध्या में वापस जा कर क्या करेंगे जब कि पिता के समान स्नेह करने वाले राम ही दृष्टि से ओझल हो गए हैं, अब तो बन की लकड़ियां

एकट्ठी करके उस की आग में हम सब को जल कर मर जाना ही उचित है। इस प्रकार विलाप करते करते वह रथ के पहियों के पीछे पीछे चलने लगे परंतु कुछ दूर चलने पर पहियों के चिन्ह के नाश हो जाने से वह ऐसे पीड़ित हुए जैसे बछड़े के खो जाने से गौ पीड़ित होती है। अंत में निराश हो कर वह सब नेत्रों से आंसुओं की नदी बहाते हुए अयोध्या में वापस आए जो राम के शोक में डूबी हुई ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे चन्द्रमा के बिना आकाश अथवा जल के बिना समुद्र देख पड़ता है।

——:०:——

वनकी यात्रा

तमसा नदी पार हो कर श्रीरामचन्द्र जी आगे बढ़े। बड़े वेग से रथ दौड़ने लगा और सूर्य्य उदय होते होते वह कौशल देश की सीमा पर पहुंच गए, जहां हरे हरे खेत और फलों व फूलों से लदे हुए वन संतप्त हृदय मनुष्यों को शान्ति दे रहे थे। वहां रथ से उतर कर राम अयोध्या की तरफ मुख कर के बोले—हे सूर्य्य वंश के सत्यावादी राजों से पुत्रवत स्नेह से पली हुई अयोध्या नगरी! आज मैं तुझ से वियुक्त होता हूं। हे मेरी प्राणों से प्यारी मातृ-भूमि! तू मुझे स्वर्ग से भी अधिक प्यारी है। हे जन्म भूमि! तेरी रज मलयाचल से अधिक हृदय को शान्ति देने वाली और तेरा जल अमृत से भी अधिक

मीठा और जीवन देने वाला है, तुझे शतशः नमस्कार ! अब मैं तुझ से विदा होता हूं और पिता के ऋण को चुका कर चौदह वर्ष पश्चात् लौट कर तेरे फिर दर्शन करूंगा । इतना कहते कहते उनके नेत्रों से आंसु निकल आए और वह जननी जन्म भूमि के प्रेम को हृदय कन्दरा में रखकर रथ पर सवार हो आगे बढ़े । वहां से वायु वेग से रथ को उड़ाते हुए निर्मल जल वाली वेद श्रुति नाम सरिता को पार करके दक्षिण दिशा की ओर हुए जहां महामुनि अगस्त्य का आश्रम है । इस के पश्चात् ठंडे जलों वाली गोमती नाम नदी के जिसके दोनों तटों पर सहस्रों गौयें सदा चरती हैं पार हुए । वहां से आगे धान्य के हरे २ खेतों से मन को मोह लेने वाले, सुन्दर देव मन्दिरों से युक्त, जहां गौओं के समूह सदैव निर्भय होकर विचरते हैं, और जहां का आकाश सामवेद गान से सदा गूंजता रहता है, जहां बिना मेघ के हवन के धूम्र से गगन मण्डल मेघाच्छन्न दिखाई देता है, ऐसे कोशल देशों को पार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने स्वर्ग से उतरी हुई, अत्यन्त शीतल और स्वच्छ जलों वाली हंस कारंडव आदि जल पक्षियों से सुशोभित, ऋषि मुनियों से सेवित, बड़े वेग से बहती हुई, श्वेत फेना से मुस्कराती हुई त्रिविध ताप हारिणी अपने प्रवाह की ध्वनि से निकले हुए "ओ३म्" के अव्यक्त नाद से ऋषि मुनियों के समाहित मनों को लवलीन करने वाली अत्यन्त रमणीय परम पवित्र भागीरथी गंगा को

देखा, जिसके तटों पर पुष्पों और फलों के वृक्षों की मालायें खड़ी हैं, और कमल फूलों से जिस के तीर सुशोभित हैं, पक्षियों के मधुर कलरव से जिसका सुन्दर दृश्य और भी मनोहारी हो रहा है, उस पतित पाविनी समुद्र की रानी गंगा के दर्शन करके श्रीरामचन्द्र जी सुमन्त्र से बोले–हे सारथि! आज हम यहीं निवास करेंगे। यह देखो, गंगा के समीप ही, इंगुदी का बहुत बड़ा वृक्ष है जिसके फलों को खाकर आज की रात्रि हम यहां पर सुख से व्यतीत कर सकते हैं। श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर सुमंत्र ने उस वृक्ष के नीचे रथ को खड़ा किया, और घोड़ों को चरने के लिये नदी तीर पर छोड़ दिया।

—०—

भील राज गुह से भेंट।

गंगा के उस प्रदेश का गुह नामक राजा बड़ा बलवान और श्रीरामचन्द्र जी का परमभक्त था। उसने जब सुना तो अपने मंत्रियों ज्ञातियों और संबंधियों सहित श्रीरामचन्द्र के दर्शनों के लिये वहां आया। रामने उसे दूर से आते देख आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। तब गुह बन के वल्कल धारण किये श्रीराम लक्ष्मण और जानकी को देखकर बहुत दुखी हुआ और आर्त होकर बोला, हे राम! जिस प्रकार आप अयोध्या के स्वामी हैं, उसी प्रकार इस देश को भी आप अपना जानें। हे पितृ भक्त! मैं आप के चरणों का दास हूं, आप इस

देश के सिंहासन पर विराज कर शासन करें । हे आजानु भुज ! तुम्हारे सदृश धर्मात्मा और प्रिय अतिथि संसार में दुर्लभ है यह सारी भूमि आपकी है और हम सब आप के सेवक हैं और यह भक्ष्य पेय लेह्य तथा स्वादिष्ट फल आप की भेंट हैं, तथा विश्राम करने के लिये सब प्रकार की सामग्री और घोड़ों के लिय दाना व चारा तैय्यार रखा है इसे आप स्वीकार करें ।

भील राज गुह के यह प्रेम मे सने हुए वचन सुनकर श्रीराचन्द्र जी बोले हे निषाद राज ! आप ने हमारा सत्कार किया, जो आप पैदल चलकर यहां आए हमें आपने अपने दर्शनों मे कृतार्थ किया । इतना कहकर श्री रामचन्द्र जी ने गुह को कंठ से लगाया और फिर प्रसन्न होकर बोले, हे निषाद पति ! तुम्हें सकुशल देख मेरा हृदय आनंदित हुआ, यह जो नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पदार्थ तुम मेरे लिये लाए हो, इन्हें मैं ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि राजों के योग्य स्वादिष्ट पदार्थ तपस्वी धर्म के विरुद्ध हैं । हे गुह ! मैं तो वल्कलों के वस्त्र धारण करता फल, मूल भोजन करता और पृथिवी पर शयन करता हूं। हां घोड़ों के लिए जो चारा तुम लाये हो उसे मैं स्वीकार करूंगा क्योंकि यह घोड़े मेरे पिता के बड़े प्यारे हैं ।

तब निषाद पति ने श्रीरामचन्द्र जी के कथनाऽनुसार घोड़ों के लिये दाना डलवा दिया और गंगा में स्नान

कराकर उन्हें हरे २ खेतों में चराने के लिये भृत्यों को आज्ञा दी। उसके अनंतर श्रीरामचन्द्र चीर के दुपट्टे को उतार कर लक्ष्मण और जानकी के साथ निर्मल जल वाली गंगा में स्नान करके सायं संध्या उपासते भये। संध्योपासन करके वृक्ष के नीचे तृणों की सेजों पर राम और जानकी ने शयन किया और गुह तथा लक्ष्मण धनुप तान कर उनकी रक्षा के लिये खड़े हुए।

जब कुछ रात्रि चली गई तो गुह ने लक्ष्मण से प्रार्थना की. कि हे वीर! यह तृणों की तीसरी शय्या तुम्हारे शयन करने के लिए बनाई गई है. तुम इस पर विश्राम करो। मैं आपका दास हूं और सावधान होकर रात भर जागता रहूंगा। धनुप हाथ में लिये मैं चतुरंगिणी सेना से भी युद्ध कर सकता हूं। हे सौमित्रे! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं, कि राम से अधिक मुझे संसार में कुछ भी प्यारा नहीं है मैं बंधु बांधवों सहित जाग कर इनकी रक्षा करता रहूंगा। गुह के ऐसा कहने पर लक्ष्मण बोला. हे निपादपति! तुम्हारे प्रेम और बल पर मुझे भरोसा है। निस्संदेह तुम से रक्षा किये गये ही हम यहां रक्षित हैं परंतु जब क्षत्रिय कुल अवतंस श्रीराम चन्द्र जी जो अति उत्तम और सुकोमल शय्या पर शयन करने योग्य हैं भूमि पर सोए हैं तो मैं जो उन का दास हूं उनके बराबर क्योंकर सो सकता हूं। हे निषादपति! उन की यह अवस्था देखकर मेरा हृदय

फटा जाता है, आज इनके वियोग में सारी अयोध्या अनाथ के समान रो रही है, अब मेरे पिता दशरथ अधिक दिन नहीं जी सकते, अवश्यमेव उनका मरण होगा, और उनके मरने पर कौशल्या भी न बचेगी और सुमित्रा का भी निस्सन्देह मरण होगा ! हा विधाता ! कहां तो राजतिलक के उत्सव की तैय्यारियां और कहां यह भारी विपत्ति ! हाय ! जिस अयोध्या के रास्ते सदैव हाथी घोड़े और रथों से पटे रहते हैं, जिसके चौतरों में नट नर्तक सदैव राग रंग करते हैं, जिस के वैश्य व्यपारी लाखों करोड़ों में सदैव खेलते रहते हैं, जहां देश देशान्तर से आए हुए क्षत्रिय राजों और राज कुमारों की धूम रहती है, वह सदा के लिए बन के जन्तुओं का आवास बन जायेगी, जहां सुमधुर गान की सदैव ध्वनि गूंजती रहती है वहां अब कर्कश स्वर उल्लूक बोला करेंगे । अब तो यही इच्छा है कि दशरथ जीते रहें और चौदह वर्ष पश्चात् हम कुशल पूर्वक अयोध्या में प्रवेश करें ।

इस प्रकार दुःख जनक वर्तालाप करते करते लक्ष्मण ने खड़े खड़े वह रात्रि वहीं व्यतीत की । भीलराज गुह भी लक्ष्मण की बातों से अति दुखित होकर रुदन करने लगा ।

—:-०-:—

गंगा पार करना ।

रात्रि व्यतीत होगई, भगवान् चन्द्रदेव अस्ताचलकी

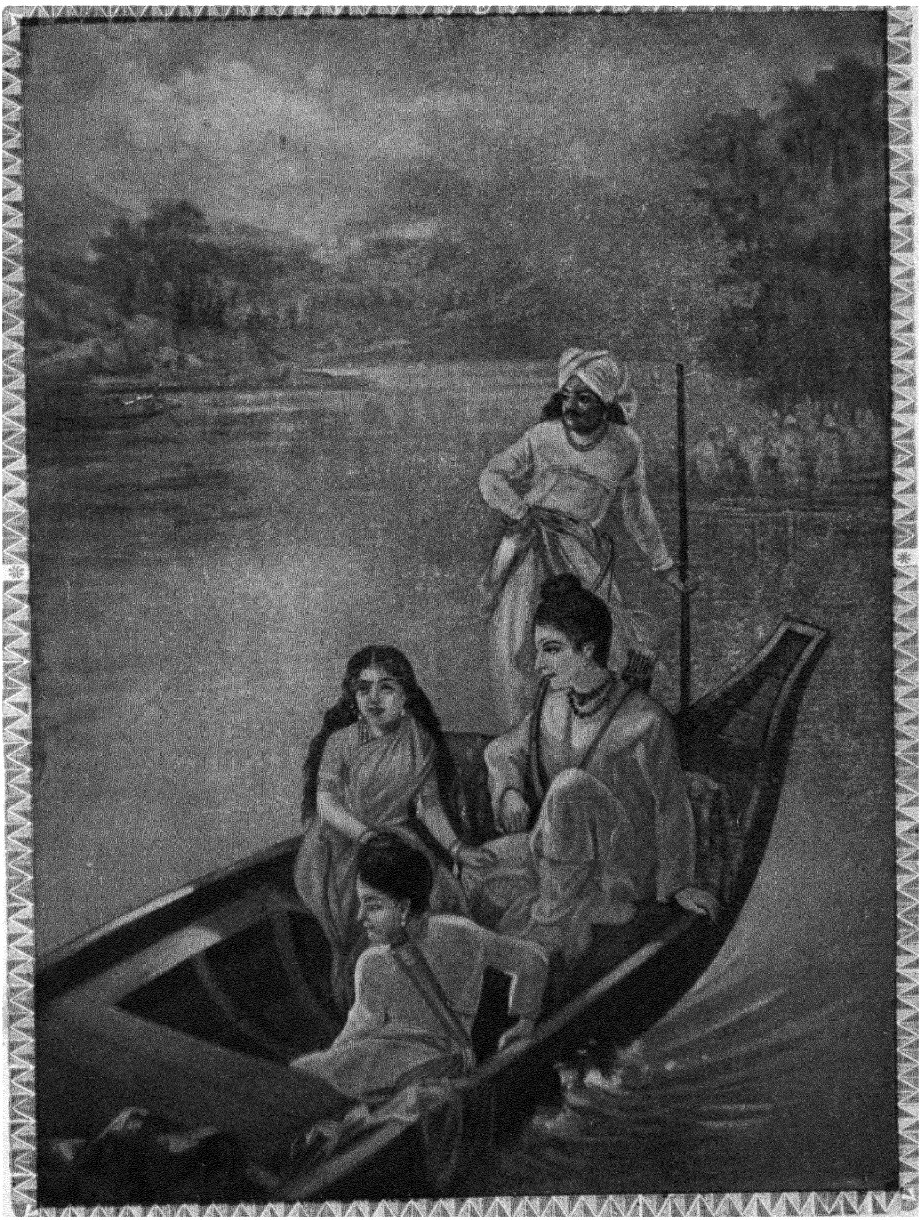

गङ्गा पार करना (पृष्ठ १७२)

Bhardwaj Press Lahore.

*

चोटी पर चले गए। उस समय विशाल हृदय वाले श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के प्रति बोले, हे वीर! रात्रिका अवसान हुआ, उषा कालकी लाली आकाश में दौड़ गई वह देखो कोयल कूक रही है, और बनमें मयूर बोल रहे हैं, समुद्रकी पटरानी गंगा के पार करने का यह उत्तम समय है। तब निषाद-राजने जो रात्रि भर लक्ष्मण के निकट ही खड़ा था अपने मंत्रियों को बुला कर आज्ञा दी, कि, सुखसे पार उतारने वाली, सुन्दर चप्पुओं वाली नौका लाओ, मैं स्वयं इनको पार करूंगा। गुहकी आज्ञा से तुरंत नौका घाट पर लगाई गई, तब वह दोनों राज कुमार सीता सहित घाटकी ओर चले। उस समय सारथि सुमंत्र दोनों हाथ जोड़ सजल नेत्रोंसे बोला, हे दशरथ नंदन! अब मुझे क्या आज्ञा है। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उसकी पीठ पर थपकी देकर कहा, तुम्हारा कार्य्य पूरा हुआ, अब तुम अयोध्या को लौट जाओ, अब हम यहां से आगे पांव प्यादा जाएंगे। हे सूत! तुम अयोध्या जा कर मेरी लक्ष्मणकी और सीताकी ओर से राजा व माताओं को चरण बंदना कहना और उन्हें धीरज देते हुए मेरे यह वचन कहना, कि मुझे व लक्ष्मण को इस बात का तनिक भी शोक नहीं, कि हमें बनवास दिया गया है, चौदह वर्षके पश्चात् हे राजन्! मैं लक्ष्मण और सीता आपके दर्शन करेंगे, आप भरतको नानाके यहां से शीघ्र मगवा लें और उन्हें राज्य देकर प्रजाके

कष्टको दूर करें, हे सुमंत्र ! भरतको भी कहना, कि सारी माताओं का एक समान आदर करते रहना ।

रामके यह वचन सुन कर सुमंत्र के नेत्रोंसे जलकी धारा वह निकली और वह निरुद्ध कण्ठसे बोला, हे तात ! आपके वियोगसे दुःखित हुई हुई अयोध्यामें मैं आपके विना कैसे जाऊँगा । इस रथको शून्य देख कर प्रजाके सहस्रों नर नारी शोकसे मूर्छित हो जाएंगे, और उनकी दशा उस सेना की सी हो जाएगी जिसका रथी ना रहे और सारथि शून्य रथको लेकर लौट आया हो । हे बड़े यशवाले ! आपके प्रवास के समय अयोध्या के पुरुष व स्त्रियों की जो दशा हुई थी, उससे सौगुणा अधिक इस रथ को आपसे विना देख कर होगी । हे तात ! माता कौशल्या को मैं क्या मुख दिखाऊँगा. इस लिये आप मुझे भी अपने साथ चलने की आज्ञा देवें । मैं वनवास के दिन पूरे होने पर इसी रथसे आपके साथ अयोध्यामें प्रवेश करना चाहता हूं ।

सुमंत्र के इस प्रकार दीन वचन सुन कर श्री रामचन्द्र जी बोले हे वीर ! मैं किस कारण तुमको अयोध्या में वापस भेजना चाहता हूं, सो सुनो । तुम्हारे जानेसे मेरी माता कैकेयी को निश्चय हो जाएगा, कि राजाने ने सचमुच अपनी प्रतिज्ञा पूरी करदी है, और राम वनको चला गया है अन्यथा कैकेयी की शंका बनी रहेगी, इस लिए तू मेरे, राजाके और कैकेयी के प्रियके लिये अयो-

ध्याको जा। इस प्रकार सूतको विदा करके श्रीरामचन्द्र जी गुहके प्रति बोले हे निषाद-पति! तपस्वी धर्म के अनुसार अब हम निर्जन बनोंमें निवास करना उचित, समझते हैं सो अब हम जटाएं बना कर महावन में प्रवेश करेंगे, तुम बड़का दूध ले आओ। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर गुह तुरंत बड़का दूध ले आया, जिससे दोनों भाईयों ने जटाएं बनाईं और नियम पूर्वक तपस्वि-धर्म को अंगीकार किया। इसके पश्चात राम लक्ष्मण और सीता तीनोंने नौका पर चढ़ कर पतित पावनी गंगा के पार उतर वहां गुहको हृदय से लगा विदा किया और फिर लक्ष्मण से बोले, हे सुमित्रा नंदन! अब हम निर्जन बनमें प्रवेश करते हैं जहां अनेक प्रकार के भय और उपद्रव हुआ करते हैं, सो तू जानकी के आगे आगे चल और मैं तुम दोनों की रक्षाके लिये पीछे २ चलूंगा। हे वीर! इन बनों में जहां कोई मनुष्य नहीं कोई खेत नहीं और जो २ बड़ खाबड़ हैं, हमें आप ही एक दूसरे की रक्षा करनी पड़ेगी। श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण कंधे पर धनुष रख कर आगे चला, उसके पीछे कोमालांगी सीता और उसके पीछे श्री रामचन्द्र जी चलने लगे। चलते चलते वह तपस्वी सुदूर देशमें पहुंच कर एक वृक्षके नीचे रात्रि भर विश्राम करने के लिए ठहरे। वहां भूखसे आतुर होकर उन्होंने वराह, ऋष्य, पृषत और महारुरु चार मृगोंको आखेट से मार कर

उनके मांसको प्राप्त किया। और उस घनी छाया वाले तरुके नीचे बैठ कर उन तीनों आर्य्य श्रेष्ठोंने सायंकाल संध्या का उपासन किया।

जब रात्रिके अंधकारने वनको अपनी चादर से ढक लिया तो महा अंधकार होनेसे श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के प्रति बोले. कि हे वीर ! आज हमको निर्जन बनमें यह पहली रात्रि आयी है. सो तुम निर्भय होकर सिंहके समान सावधान रहना क्योंकि जानकी का कुशल रहना हम दोनों पर ही निर्भर है इस गहवर वनमें नाना प्रकारके हिंस्र जंतुओं का शब्द सुनाई देरहा है. सो हे शत्रुंजय ! सोते जागते उठते बैठते चलते फिरते सदा सचेत रहना। हे लक्ष्मण ! आज महाराज बड़े दुःख में होंगे परन्तु कैकेयी अपने आपको अवश्य ही कृतार्थ मानेगी। मुझे भय है, कि पुत्रको सिंहासन पर विराजमान देखने के लिए कैकेयी कहीं पिताके भी धोखे से प्राण न लेले, क्योंकि धर्मसे पतित और लोभ-में फँसा हुआ मनुष्य क्या कुछ नहीं कर सकता. यदि ऐसा हुआ तो वृद्ध कौशल्या भी जीवित न रहेगी। हे वीर ! मैं अकेला ही अयोध्या को बाणोंसे आच्छादित कर सकता हूं धर्म मुझे ऐसा करने से रोकता है, आज मेरा हृदय बड़े शोकमें डूब रहा है, हे लक्ष्मण ! अवश्य ही कौशल्या ने किसी बच्चेकी माताके स्तन काटे हैं, जो आज वह पुत्र वियोग में पीड़ित है....इस प्रकार कहते

कहते उनके नेत्रों में आंसु भर आए और वह ठंडी सांस भर कर चुप हो गए। तब लक्ष्मण रामको आश्वासन देता हुआ बोला–हे तात! बड़े धैर्य वाले और धर्म पथ पर अविचल रूपसे चलने वाले तुझको शोक करना उचित नहीं, तुम्हारे आतुर होने से जानकी भी दुःखमें डूब जायेगी, इस लिये प्रभो! धीरज धारण करके काल की गति देखें, यह बनवासका समय शीघ्र व्यतीत हो जाएगा और हम सुखसे अयोध्या को लौटेंगे।

इस प्रकार वार्तालाप करते श्रीराम जो तृणोंकी शय्या पर सो गए और लक्ष्मण रात्रि भर सिंहके समान रखवाली के लिये उनके ओर छोर घूमता रहा।

प्रातःकाल सूर्य्य देवता के उदय होने से पहले श्री रामचन्द्र जी, जानकी व लक्ष्मण सहित स्नान तथा प्रातः संध्या से निवृत होकर निषाद–पति गुह से विदा हुए। वहां से त्रिवेणी के संगम की ओर चलते हुए उन्होंने अनेक सघन वनों को पार किया, और सायंकाल होते होते वह उस स्थानके निकट पहुंच गए जहां गंगा और यमुना दोनों नदियों का संगम होता है। उस सुहाने दृष्य को देख कर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे लक्ष्मण! हम महातीर्थ प्रयागराज के समीप पहुंच गए हैं। वह देख हवन का धूंआ जो अग्नि देवता का झंडा है किस प्रकार आकाश की ओर उठता हुआ वायु मण्डल में लहरा रहा है। सो भरद्वाज ऋषिका आश्रम निकट है ऐसा अनुमान

होता है। इस प्रकार वह दोनों राजकुमार वनोंके दृष्य देखते हुए त्रिवेणी के संगम पर पहुंच गए जहां गंगा और यमुना दो पवित्र नदियां अपने शब्द से अनहद नाद कर रही थीं। वहां पहुंच कर राम लक्ष्मण और जानकी ने आश्रम में विराजमान भरद्वाज ऋषिके दर्शन किये, जिसके चारों ओर शिष्यगण अग्निहोत्र करके ईश्वर चिंतन में मग्न बैठे थे।

श्री रामचन्द्र जी ने महामुनि को अभिवादन करते हुए कहा, हे महर्षे! अयोध्या पति महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण आपको प्रणाम करते हैं। भगवन्! पिताने मुझे वनवास दिया है परन्तु यह सुमित्रा नंदन मेरे प्रिय छोटे भाई भी मेरे साथ ही आ गये हैं, हे भगवन्! हम चौदह वर्ष पर्य्यन्त निर्जन और सघन वनमें निवास करेंगे और फल मूल खाकर तपस्वि धर्म का पालन करेंगे। तब महामुनि भरद्वाज ने श्री रामचन्द्र जी की अनेक प्रकार के फल मूल और रसोंसे पूजा करके कहा, हे रघुनंदन! चिर काल पश्चात तुम मेरे आश्रम में आये हो, तुमको बिना किसी अपराध के वनवास दिया गया है, यह मैंने सुना है, सो तुम मेरे आश्रम में सुख से निवास करो जो त्रिवेणी के पवित्र संगम पर बहुत ही रमणीक स्थान है। श्री रामचन्द्र जी बोले हे महामुने! आप की पूजा और स्वागत से मैं कृतार्थ हुआ परंतु यहां निवास करने से अयोध्या वासी

हमें देखने के लिये आते रहा करेंगे, क्योंकि यह स्थान अयोध्या से बहुत दूर नहीं है, और इससे हमारे तपस्वि धर्म में बाधा पड़ेगी, इसलिये कोई दूसरा स्थान बतला दीजिये जो एकान्त और जानकी को प्रसन्न करने वाला हो। तब महामुनि भरद्वाज ने कहा हे आर्य्य! यदि ऐसी ही इच्छा है तो यहां से दस कोस दूर चित्रकूट नामक पर्वत है जहां ऋषि मुनि और तपस्वि गण निवास करते हैं, और जिस की शोभा वानर लंगूर और भालु आदिक जंतुओं ने दुगनी कर दी है। अनेक महात्मा उस पर्वत पर कठिन तपस्या तपते हुए मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार वार्त्तालाप करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने वह रात्रि प्रयाग के उसी तट पर महामुनि भरद्वाज के आश्रम में व्यतीत की।

चित्रकूट यात्रा।

प्रातःकाल होने पर वह दोनों राज कुमार जानकी सहित संध्योपासन करके प्रयाग से आगे चले। अब वह उस स्थान पर पहुंचे जहां से यमुना पार करके चित्रकूट को मार्ग जाता था। यमुना के गंभीर जल को देखकर जानकी के हृदय में भय और चिन्ता हुई, कि किस प्रकार इस अथाह जल वाली नदी को पार करेंगे, राम और लक्ष्मण भी उस के वेग और आकाश को स्पर्श करने वाली तरंगों को देखकर नदी पार करने का उपाय सोचने लगे। अन्त में लक्ष्मण ने बहुत से बांस

और जंगल के काष्ठों को काट कर लताओं से उन्हें बांधा और एक तरणी सी बनाकर नदी में छोड़ी। उसी प्रकार जानकी के बैठने के लिये बेत का आसन बनाया फिर श्रीरामचन्द्र जी ने जानकी को अपनी भुजाओं में उठाकर तरणीपर रखे हुए आसन पर बैठा दिया, और अपने तथा लक्ष्मण के सब चीर भी तरणी पर रख दिये। फिर दोनों भाई भुज बल से तैरते हुए उस तरणी को पार ले जाने के लिये धकेलने लगे। जब तरणी मंझधार में पहुंची जहां जल की तरंगे पवन के झकोरों से तरणी को नीचे ऊपर करने लगीं। उस समय जानकी ने आकाश की ओर आंखें उठाईं और प्रार्थना करने लगी कि हे दीन दयाल परमेश्वर ! यदि हम बनवास का समय व्यतीत करके कुशल पूर्वक लौटे तो यहां मैं यज्ञ करूंगी।

जब तरणी परले तीर पर लग गई, तो वह तीनों तरणी को वहां छोड़कर नदी के तीर तीर चलते हुए उस श्याम वट वृक्ष के नीचे पहुंचे, जिस के हरे हरे सघन पत्ते पथिकों के लिये विश्राम देने वाले थे। कुछ काल वहां विश्राम करके वह तेजस्वी कुमार आगे चले और मार्ग में अनेक मृगों को मार कर आनंद से बन में विचरते हुए सघन बनमें प्रविष्ट हुए जहां मोरों के समूह कुई कुई की ध्वनि से बन को गुंजा रहे थे, वृक्षों की शाखाओं पर चंचल बानर छलांगे मार रहे थे और हाथियों के यूथ इधर उधर घूम रहे थे ! उस समय

सायं काल हो गया, सूर्य्य की रश्मियों ने वृक्षों की चोटियों पर सुनहला रंग छिड़क दिया और उसी बन में नदी तट पर श्रीराम लक्ष्मण व जानकी रात्रि के विश्राम के लिए ठहर गये, और नदी में स्नान कर तट पर संध्योपासन में प्रवृत्त हुए। फिर तृणों की शय्या बनाकर अनेक प्रकार के वार्तालाप करते हुए सुख से सोते हुए रात्रि वहीं व्यतीत करते भये।

प्रातःकाल जब उषा की लाली आकाश में दौड़ गई तो वह स्नान संध्या से निवृत होकर फिर चित्रकूट पर्वत की ओर चले। जब दूर से पर्वत के गगन चुंबी शिखर दिखाई दिये तो श्रीरामचन्द्र जी सीता से बोले हे कमल नयनि! इन फूले हुए केसुओं को देख, जो जलते हुए अंगारों के समान सारे बनको जगमगा रहे हैं, और पुष्पों की मालाएं हाथों में धारण किये मानों हमारे स्वागत के लिए खड़े हैं। हे जानकि! इन भल्ला-तक और बिल्व के पेड़ों को देख जिन्हें आज तक किसी मनुष्य ने स्पर्श नहीं किया, हे सौमित्रे! देख इन वृक्षों में कितने कितने बड़े मधु के छत्ते लटक रहे हैं, और वायु के झकोरों से गिरे हुए इन पुष्पों को देख जिन से पटी हुई भूमि मानो पुष्पों की शय्या बनी हुई है, और आमने सामने वृक्षों पर बैठे हुए तीतर किस प्रकार बोल रहे हैं। हे वीर! चित्रकूट का यह बन मन को प्रसन्न करने वाला रमणीक सघन और रमण करने योग्य है।

इस प्रकार बन की सुन्दरता को देखते देखते वह चित्रकूट पर पहुंचे, जहां महामुनि वाल्मीक जी का सुंदर आश्रम था। मुनि के उस शान्त आश्रम में जाकर रामने अभिवादन किया और अपना परिचय दिया। तब वाल्मीक ने उन की पूजा और सत्कार करते हुए कहा, हे दशरथ नंदन ! तुम्हारे दर्शनों से मैं प्रसन्न हुआ यह आश्रम तुम्हारे निवास के योग्य है, हे सूर्य्य कुलावतंस ! बनवास का समय इसी आश्रम में निर्विघ्न रहकर समाप्त करो। तब श्रीरामचन्द्र जी बोले हे भगवन् ! आप के आतिथ्य से मैं कृतार्थ हुआ, यह चित्रकूट रमणीक बनों से भरा हुआ मुझे और जानकी को पसंद है, परंतु आप की तपस्या में विघ्न न हो, इस कारण मुझे पत्तों की कुटीर बनाकर अलग रहना उचित है। इसके पश्चात् लक्ष्मण को बोले हे वीर ! बन में से दृढ़ लकड़ियें काट ला, इसी आश्रम के समीप कुटिया बनाकर हम रहेंगे। बड़े भाई की आज्ञा से लक्ष्मण तुरंत लकड़ियां काट कर ले आया और उन से उस ने बड़ी सुन्दर पर्ण कुटीर बनाई।

इस कुटिया को देखकर महा तेजस्वी राम अति प्रसन्न हुए। और यज्ञ करके गृह में प्रवेश किया। उस कुटीर में निवास करके श्री रामचन्द्र जी चित्रकूट के नीचे बहने वाली माल्यवती नदी और पर्वतमाला में प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य्य को देखकर प्रवास के

दुख को भूल गये। जानकी भी अनेक प्रकार के वन जंतुओं और सुन्दर पक्षियों को देख देख कर अपने संतप्त मन को शान्त करती भयी।

सुमंत्र का अयोध्या में पहुंचना।

श्रीरामचन्द्र जी से विदा होकर सुमंत्र अयोध्या में पहुंचा। राम के वियोग में अयोध्या उदासीनता से भरी हुई थी। सुमंत्र के शून्य रथ को देखते ही सहस्रों मनुष्य राम लक्ष्मण और जानकी कहां है, कहते हुए रथ के पीछे पीछे चले। तब रोते हुए सूत ने कहा, उन त्याग मूर्तियों को गंगा के पार छोड़ आया हूं। यह सुनकर अयोध्या वासी बिलख बिलख कर रोने लगे, नगर की सब दुकानें बन्द हो गईं, और वियोग से व्याकुल हुए हुए पुर वासियों की टोलियां जहां तहां राम की चर्चा करने लगीं। कोई कहता अब अयोध्या को छोड देना उचित है, कोई कहता पिता के समान प्रजा में स्नेह रखने वाले राम के बिना अयोध्या उजड़ गई है, कोई कैकेयी को धिक्कार देता, कोई दशरथ की निंदा करता, उस समय अयोध्या के बालक वृद्ध और युवक और सब स्त्रियों के होंटों पर राम ही की चर्चा थी, शून्य रथ पर सवार सुमंत्र कानों से सुनता परंतु अपराधियों के समान अंचल से मुख लपेटे हुए रथ को हांकता जा रहा था। राज महल में प्रवेश करके वह उस श्वेत महल में पहुंचा जहां पुत्र शोक से कुम्हलाये हुए मुख

वाला वृद्ध राजा चुपचाप अपनी मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था । सुमंत्र ने राजा के चरणों को स्पर्श करके राम के बन में छोड़ आने की सूचना दी और नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाता हुआ चुपचाप खड़ा हो गया ।

सुमंत्र को खड़े देख राजा का व्यथित हृदय बहुत ही पीड़ित हुआ और वह अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । उस समय सारे महल में हाहाकार मच गया और सब के सब स्त्री पुरुष भुजाएं उठा उठा कर विलाप करने लगे । सुमित्रा और कौशल्या ने राजा को उठाकर कहा, हे सत्यवादिन् ! राम का दूत बन से लौट आया है, उस से क्यों नहीं बोलते, हे राजन् ! पहले स्वयं इतने बड़े अनर्थ को करके अब क्यों दुखी होते हो हे स्वामिन् कैकेयी के साथ की हुई तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई, अब वृथा शोक करके दूसरों को दुखी क्यों करते हो ! महा भाग ! जिस कैकेयी के भय से आप इस सूत से नहीं बोलते वह यहां नहीं है आप निशंक होकर बोलें ।

कुछ समय पीछे जब राजा की मूर्छा टूटी तो रुग्ण हाथी के समान हांपते हुए सारथी से बोले, हे सूत ! वह पितृ भक्त राम जो पलंगों के योग्य और उत्तमोत्तम पदार्थों के सदा सेवन करने वाले हैं, किस प्रकार वृक्षों के नीचे कठोर भूमि पर शयन करेंगे, और किस प्रकार रूखे सूखे कंद मूल फलों पर निर्वाह करेंगे ? हे सुमंत्र ! जिन की यात्रा के समय हाथी घोड़े पालकी और

प्यादा सेना आगे चलती थी, किस प्रकार वह तेरे रथ से उतर कर पांव प्यादा घोर बन में प्रविष्ट हुए? वह कोमलांगी जानकी जिस ने कभी दुख नहीं देखा किस प्रकार हिंसक जंतुओं से भरे हुए बन में निवास करेगी? हे सूत उन सत्यवादी और माता पिता के भक्तों ने तुम्हें लौटाते हुए क्या कहा था, कदाचित इतना ही सुनकर मेरे व्याकुल हृदय को कुछ धीरज आए। राजा के यह वचन सुनकर सूत हाथ जोड़ कर बोला हे अयोध्यानाथ! श्री रामचन्द्र जी ने आप के प्रति प्रणाम करके यह कहा है, कि मेरे पिता और माताओं तथा वृद्धों व मंत्रियोंको भी प्रणाम करके कह देना कि मैं लक्ष्मण और जानकी सहित कुशल हूं, और माता कौशल्या को कहना, कि सदा धर्म पर स्थित रहकर उभय काल संध्या और अग्नि होत्र करना और राजा के प्रति पहले से अधिक सन्मान करना और सदैव देवता के समान उन की पूजा करना, और कैकेयी के विषय में कोई भी कठोर काम न करना तथा भरत के साथ राजा का सा व्यवहार करना। हे प्रभो! रामचन्द्र जी ने कहा है, कि भरत को मेरी ओर से कह देना, कि सब माताओं में समान व्यवहार रखे और पिता की आज्ञा में चले। राजा अब वृद्ध हो गये हैं, इस कारण से राज्य की प्राप्ति के लिये कोई ऐसी चेष्टा न करे जिससे पिता को दुख पहुंचे।

हे महाराज ! श्रीरामचन्द्र जी को बन में छोड़कर जब मैं लौटा तो रथ के घोड़े रास्ते में ठहर गये और बहुत यत्न करने पर भी न चले। उस समय घोड़ों के नेत्रों से आंसु टपक रहे थे, मानों वह राम के बिना घोर दुख से पीड़ित हो रहे थे। तब मैंने मन ही मन श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करके किसी प्रकार रथ को चलाया परंतु अयोध्या में आकर जो हृदय विदारक दृश्य मैंने देखा उसे कथन करने में मेरी जिह्वा समर्थ नहीं है। हे नाथ ! राम से शून्य रथ को देखकर सब के सब पुरवासी रोने लगे। राम से बिछड़ी हुई अयोध्या मुझे तो ऐसी प्रतीत होती है जैसे पुत्र से वियुक्त हुई कौशल्या।

सुमंत्र के मुख से यह वचन सुनकर राजा ने लंबी सांस लेकर कहा, हे सूत ! होनहार बड़ी प्रबल है, जो सूर्य्य कुल के क्षय करने वाला इतना बड़ा संकट अकस्मात आ पड़ा है।

मरणासन्न आयु में मेरे आंखों के तारे चले गये अब संसार मेरे सामने अंधेरा है, इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या दुख होगा, निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागा मनुष्य संसार में दूसरा नहीं है, जिसके प्यारे पुत्र और स्नुषा मृत्यु के समय उस के सामने नहीं हैं। हे कौशल्ये ! राम के बिना मैं शोक के अथाह समुद्र में गोते खा रहा हूं, और इस में मेरा डूब जाना निश्चित है।

इस प्रकार विलाप करते करते राजा फिर मूर्छित

हो गये। राजा को बारंबार मूर्छित होते देख कौशल्या के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न हुआ और वह सूत से बोली हे सुमंत्र ! मुझ को वहां पहुंचाओ जहां मेरे जीवन के सहारे राम लक्ष्मण और जानकी हैं, जो मैं उनके पास न जाऊंगी तो अवश्यमेव प्राण त्याग दूंगी। कौशल्या के ऐसा कहने पर सूत बोला, हे देवि ! तू शोक और मोह क त्याग कर ! राम बड़े सुख से बन में निवास करेंगे. जितने दिन मैं उनके चरणों में रहा हूं मैंने कभी उनको चिंतित नहीं देखा, वह वहां ऐसे ही प्रसन्न थे जैसे यहां। और जानकी के सम्बन्ध में तुम कोई चिन्ता ही न करो, वह तो राम के रूप में पगी हुई है, और बन में नदियों पर्वतों और वृक्षों के इस प्रकार हंस हंस कर नाम पूछती हैं मानों अयोध्या के निकट ही किसी फुलवाड़ी में विहार कर रही हो। बन के कष्टों से सीता का मुख तनिक भी नहीं कुम्हलाया, प्रत्युत पहले से भी अधिक चमक उठा है जैसे स्वर्ण अग्नि में तपाने से ! इस समय भी पति के प्रिय के लिये वह फूलों के आभूषण पहरती और हंसिनी के समान चलती हुई क्रीड़ा करती है, पति की छाया में रहने के कारण वह बनके जंतुओं से तनिक भी नहीं डरती, इस लिये हे देवि ! तू उन तीनों के लिये, अपने लिये अथवा राजा के लिये कोई शंका न कर तब राजा को सुधि में देख रोती हुई कौशल्या बोली, हे पृथिविनाथ सारा संसार ऐसा कहता है कि आप

बड़े दयालु धर्मात्मा और सत्यवादी हैं, परंतु फिर भी आपने न जाने क्यों उन निरपराध पुत्रों को स्नुषा समेत बन में निकाल दिया है ? वह अलौकिक सुंदरी जानकी जो अपने रूप और यौवन में संसार में एक ही है और जो सदा सुख से महल में रही है, जिस ने सदैव अच्छे भोजन खाए हैं, किस प्रकार प्रचण्ड धूप और कठिन शीत को वृक्षों के नीचे सहन करेगी और किस प्रकार कंद मूल का आहार करेगी । अब मैं सुगंधि में बसे हुए सुंदर केशों वाले राम के प्यारे २ मुख को कैसे और कब देखूंगी। हे राजन् ! आपने राम लक्ष्मण और जानकी को बनवास देकर बड़ी निर्दयता का कर्म किया। यदि आप यह कहें कि पंद्रहवें वर्ष में राम के आने पर भरत गद्दी छोड़ देंगे तौ भी मुझे विश्वास नहीं कि राम सिंहासन को अंगीकार करेंगे. हे राजन् ! दूसरे जंतु से मारा हुआ शिकार जिस प्रकार सिंह अंगीकार नहीं करता इसी प्रकार छोटे भाई से उपभुक्त किया हुआ राज वह नरसिंह राम कभी स्वीकार न करेंगे ।

हे स्वामिन् ! बड़े पराक्रम वाला तेजस्वी राम अपने बाणों से संसार में प्रलय कर सकता है, और समुद्रों को सुखा सकता है, वह आज अपने पिता ही के हाथों इस प्रकार मारा पड़ा है जैसे मत्स्य अपने बच्चों को खा जाता है । हे आर्य्य ! यदि आप धर्म के अनुकूल चलते

तो कभी उन को वनवास न देते । अब मेरा यहां कौन है, हे प्रभो ! स्त्रियों का पति, पुत्र और बांधव ही आश्रय होते हैं, सो आप की तो कैकेयी ही है जिसके कथन से आप ने हम को ठुकरा दिया और पुत्रों को निकाल दिया है, हाय ! आपने सब ओर से हम को मार दिया। हे राजन् ! कैकयी के मोह से आप ने पुत्रों को अपने आपको, मुझे, मंत्रि मंडलको और अधिक क्या कहूं सारी अयोध्या पुरी का नाश कर डाला है केवल भरत और कैकेयी दो ही आप के इस कर्म से प्रसन्न हुए हैं ।

कौशल्या के कठोर वचनों को सुनकर राजा का हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया और वह नेत्रों से आंसु गिराता हुआ बोला हे कौशल्ये ! मैं तेरे पांओं पड़ता और हाथ जोड़ता हूं । तू तो शत्रुओं पर भी दया रखने वाली है । हे सुशीले ! पति गुणवान हो चाहे मूर्ख पति व्रता स्त्रियों के लिये वह साक्षात देवता है इस लिए सदा धर्म पर चलने वाली तू मुझ दुखी को धिक्कारने योग्य नहीं है ।

दशरथ के मुख से निकले हुए इन दीन वचनों ने कौशल्या के हृदय को पानी २ कर दिया और उस के नेत्रों से जल की धारा बह निकली । वह दोनों हाथ जोड़कर बोली हे नाथ ! मैं आप के चरणों पर शीश रखकर क्षमा की भिक्षा मांगती हूं, हे नाथ ! आप मुझ से क्षमां मांगने

योग्य नहीं है, वह स्त्री ही नहीं, जिसका पति उस से क्षमा मांगे, हाय मैं इतनी गिर गई। हे प्राण प्रिय ! मुझे क्षमा करें, मैं जानती हूं कि आप सत्य से कभी विमुख नहीं होते और सत्य पर ही आप ने पुत्रों को निछावर कर दिया है, पुत्र वियोग के शोक मे मूढ़ होकर मैंने यह शब्द कहे जो न कहने योग्य थे। हे प्राणनाथ ! राम को बन में गए आज पांच रात्रियां हो गई हैं, परन्तु शोक में डूबी हुई मुझ को यह पांच वर्षों के समान प्रतीत हुई हैं, इसलिये मुझे आप क्षमा करें।

इस प्रकार कौशल्या से प्रसन्न किया हुआ राजा सायंकाल हो जाने से निद्रा वश हो गया।

—:-०-:—

श्रवण कुमार की कथा।

अर्ध रात्रि के पश्चात राजा की नींद खुली उस समय एकाएक उस को अपना किया हुआ दुष्कर्म सब याद आ गया वह महा शोक से पीड़ित होकर कौशल्या से बोला हे सुभागे ! जो मनुष्य जिस प्रकार जैसा जितना और जो अशुभ अथवा शुभ कर्म करता है वह उसी प्रकार वैसा, उतना और वही अशुभ अथवा शुभ फल प्राप्त करता है सो यह दुख जो आज मैं भोग रहा हूं मेरे अपने ही बोए हुए बीज का फल है, जैसे अज्ञान से किसी बालक ने विष खा लिया हो, सो उसका सारा वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूं तू धीरज धरकर सुन।

हे कल्याणि ! मैं अभी कंवारा ही था। युवावस्था थी, गर्मियों की ऋतु समाप्त होने वाली थी, प्रचण्ड गर्मी से लोक बेचैन थे, कि एकाएक नयी बर्सात की पहली घटा आई, और इस वेग से बरसी कि जल थल हो गया, ठंडा पवन बहने लगा वृक्ष झूमने और मोर नाचने लगे, युवकों के मंद और काम को बढ़ाने वाली उस ऋतु में मेरी शिकार खेलने की इच्छा हुई, और रात्रि के गिरने पर मैं धनुष हाथ में ले रथ पर सवार हो वन की ओर चला घोर अन्धकार में रथ को सरयु नदी के तीर तीर बढ़ाते हुए अकस्मात इस प्रकार का शब्द मेरे कर्ण गोचर हुआ जैसे कोई हाथी गर्ज रहा है। परंतु वास्तव में वह शब्द जल में डूबते हुए घड़े का था। मैंने हाथी के मारने की इच्छा से एक बड़ा तीक्ष्ण बाण उस शब्द को लक्ष्य करके छोड़ा। हे कल्याणि ! जहां वह बाण गिरा, वहीं जल में गिरते हुए मनुष्य के मुख से यह बाणी निकली हा मैं मरा, हा मैं मरा, हाय मुझ निरपराध को किसी ने मार डाला, हे पिता, हे माता ! अब तुम जल के विना तड़प तड़प कर मर जाओगे, हाय हाय ! किस पापी ने एक ही बाण से मुझे और मेरे वृद्ध माता पिता को मार डाला। हे सुभगे ! वह करुणा जनक बाणी बर्छी के समान मेरे कलेजे में उतर गई, मेरे हाथ कांपने लगे। और धनुष भूमि पर गिर गया। रथ से उत्तर कर मैं उधर दौड़ा और देखा, कि नदी के तीर पर लोहु लुहान

हुआ एक बनवासी जिस की जटाएं बिखरी हुई हैं, जल का घड़ा औंधा हो रहा है और बाण से बींधा हुआ तट पर छटपटा रहा है। मुझे देखते ही क्रोध से जलते हुए नेत्रों से दग्ध करता हुआ वह इस प्रकार बोला, हे राजन् ! किस अपराध से तूने मुझे मारा है, रात्रि के समय प्यास से व्याकुल हुए हुए माता पिता के लिये, जल लेते हुए तूने मुझ बनवासी के किस लिये प्राण लिये, हे राजन्! मेरा जीवन समाप्त हुआ, अब मैं बोलने में असमर्थ हूं इसलिए इसी पगदंडी से उस कुटिया में जा ज ं मेरे माता पिता जल की आशा में मेरी बाट देख रहे हैं, और उन को जाकर प्रसन्न कर, ऐसा न हो, कि वह तुझे शाप देदें, और इस बाण को मेरे कलेजे से निकाल जिसकी असह्य पीड़ा से मैं छटपटा रहा हूं। हे राजन् यद्यपि मेरा वेश बनवासियों का है, परंतु मैं ब्राह्मण नहीं हूं, मेरी माता शूद्रा और पिता वैश्य है, इसलिये ब्रह्म हत्या के भय से न डर। तब मैंने उस बनवासी के हृदय से बाण निकाला परंतु बाण के खेंचते ही उसका सांस उखड़ गया नेत्र पथरा गये और वह कुम्हलाये हुए मुख वाला मेरी ओर देखते देखते ठंडा हो गया।

—०—

राजा दशरथ की मृत्यु ।

हे कल्याणि ! उस बालक के मरने पर मैं व्याकुल होकर सोचने लगा, कि अब क्या करूं, किस प्रकार

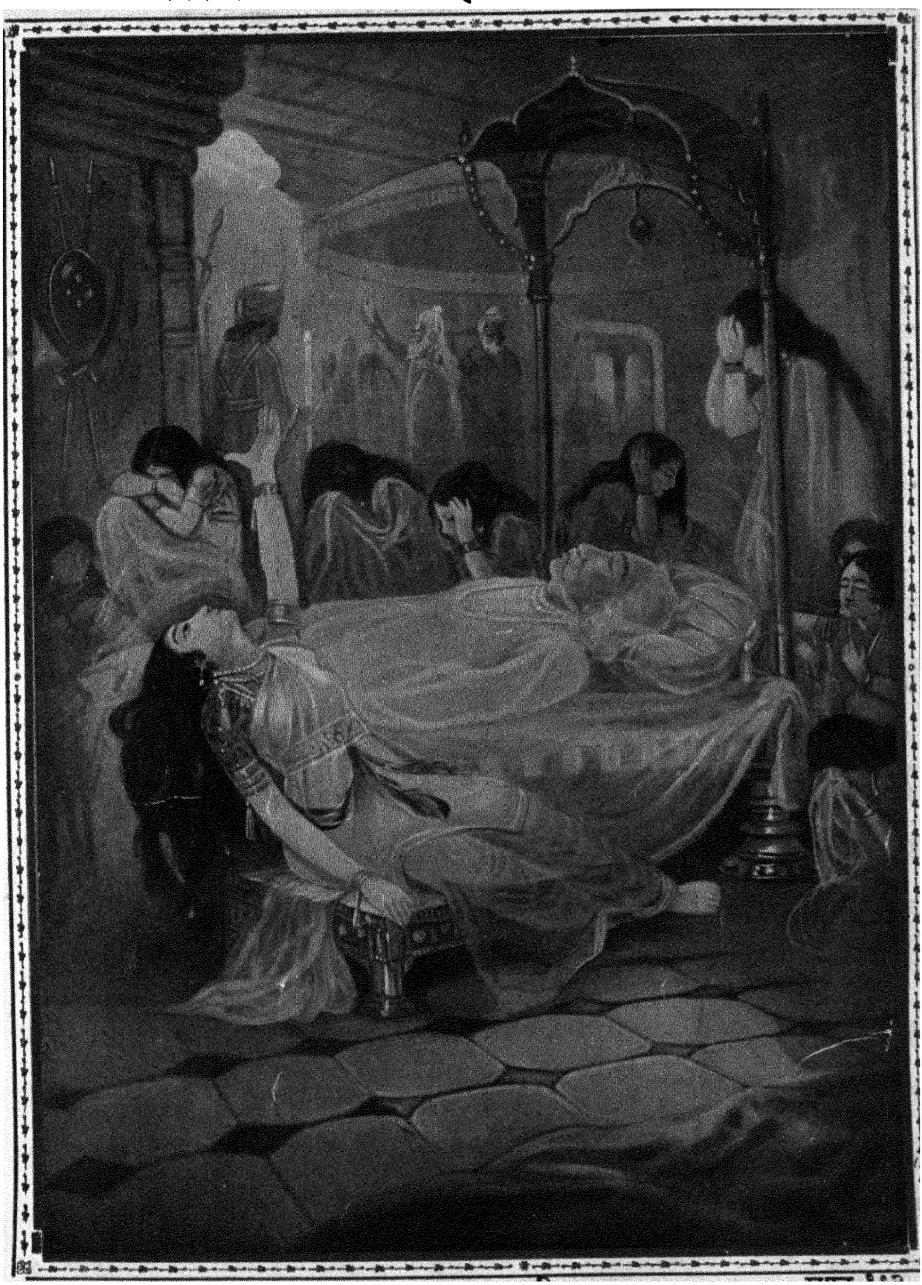

CALCUTTA
ART PO WORKS
LAHORE

राजा दशरथ की मृत्यु

*

इस महा पाप के भयानक फलसे छुटकारा पाऊं। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ मैं उस वनवासी के घड़े को जल मे भरकर उस कुटिया की ओर चला जहां उसके माता पिता थे। कुटिया में जाकर मैंने कटे हुए पंखों वाले पक्षियों की तरह उस के माता पिता को देखा जो अत्यन्त दुर्बल दुखी और नेत्रों मे हीन थे। उन की इस अवस्था को देखकर मेरा भय शोक और त्रास और भी बढ़ गया। मेरे पांओं की चाप सुनते ही वह बोला, बेटा श्रवण! इतना समय कहां रहे, तुम्हारी मां तृषा मे बेहाल हो रही है, हे बेटा! हम ने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं।

श्रवण के पिताके मुखमे यह वचन सुनकर मैंने डरते डरते उसके सामने जाकर कहा, हे महामुनि! मैं दशरथ नामका क्षत्रिय अयोध्या नरेश हूं और अपने पाप कर्म का फल भोगने की इच्छा मे यहां आया हूं। हे भगवन्! धनुष हाथमें लेकर मैं शिकार की इच्छा से सरयु के तट पर विचर रहा था, कि आपके पुत्र श्रवण ने जलमें घड़ा डुबोया। घड़ेके अंदर जाते हुए जलसे "बुद बुद बुद बुद" का शब्द हुआ। उसे मैंने हाथी का शब्द समझा और उसे मारने के लिये शब्दवेधी बाण मारा, जिससे तुम्हारा निरपराध पुत्र आहत होकर गिर पड़ा और मर गया। हे भगवन्! मैंने अज्ञान से श्रवण को मारा, जिसके लिये मेरा हृदय दुःख और शोकसे पीड़ित हो रहा है।

अब मैं उसका दण्ड पानेके लिए आपके पास आया हूं। हे कौशल्ये ! पुत्रका मरना सुन करके वह दोनों बड़ा विलाप करने लगे और मुझसे रोते हुए बोले, हे अयोध्या नरेश ! यदि तू अपने आप आकर मुझे न कहदेता तो मैं अभी शाप देकर तुझे भस्म कर देता और तेरे सिर के सात टुकड़े कर देता। हे राघव ! अब तू हमें वहां लेचल जहां हमारा आंखों का तारा, जीवन का सहारा श्रवण मरा पड़ा है, हम उसे देखना चाहते हैं। तब मैं उन दोनों को जो विलाप कर रहे थे और सिर पीट रहे थे उस स्थान पर ले गया। वहां जाकर वह बारंबार श्रवण के शरीर पर हाथ फेर फेर कर इस प्रकार विलाप करने लगे, कि हे बेटा ! आज तुम मुखसे क्यों नहीं बोलते, हे पुत्र ! चिरकाल तक हमारी सेवा करते करते आज रूठ गये हो ? हे पुत्र ! प्रति दिन की तरह आज तू अपनी माता को आलिंगन क्यों नहीं करता, क्यों मुझसे नहीं बोलता ? हाय ! अब मैं ब्राह्म मुहूर्त में किस के मुख से वेद मंत्रों की ध्वनि सुनूंगा और कौन मेरे साथ बैठकर संध्या अग्निहोत्र किया करेगा। अब कौन हम दोनों अंधों को वन से कंद मूल और फल लाकर खिलायेगा हाय ! हम अंधों की लाठी छिन गई। हे पुत्र ! इस पापी राजा के हाथ से तू निरपराध मारा गया। इस प्रकार करुणा जनक रुदन करते हुए उस ने और उस की भार्य्या ने अपने मृत पुत्र को जलांजलि दी और फिर मुझे

अभिमुख करके बोले; हे राजन् ! जिस प्रकार हम पुत्र वियोग में मरते हैं इसी प्रकार तू भी पुत्र के वियोग में घोर दुख पाकर मरेगा । हे कौशल्ये ! यह शाप देकर वह पुत्र का दाह संस्कार करके स्वयं भी चिता में बैठकर भस्म हो गये ।

हे देवि ! उस पाप कर्म्म का फल अब मुझे मिलने वाला है जो मैंने युवाअवस्था में किया था । हे कौशल्ये अब मेरे सिर पर काल भगवान गर्ज रहे हैं, अब मुझे नेत्रों से कुछ नहीं सूझता । हे देवि ! सत्यवादी और धर्म्मात्मा राम को अंत-समय में मैं अपने पास नहीं देखता, इससे बड़ा दुख और क्या होगा । उस पुत्र के न देखने से मेरा हृदय इस प्रकार शोक से सूख रहा है जैसे गरमी से जल । वही मनुष्य धन्य है जो दोबारा राम को देखेंगे । हे देवि ! मेरी ज्ञानइन्द्रियां अपने अपने विषय को छोड़ रही है, जिस प्रकार तेल के घट जाने से प्रकाश घट जाता है इसी प्रकार मेरी चेतनता घट रही है, हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा पुत्र ! तुम कहां हो ? हा कुल घातिनी कैकेयि ! .....इस प्रकार कहते कहते राजा का कण्ठ रुक गया, सांस उखड गये और उनके प्राण पखेरू पुत्र वियोग में रोते रोते शरीर रूप पञ्जर से उड़ गए ।

———

राजा की मृत्यु पर रानियों का विलाप ।

राजा के प्राण छूट जाने पर कौशल्या पछाड़ खा कर भूमि पर गिर पड़ी, सुमित्रा और अन्य दासियां सब सिर पीट पीट कर और केश खेंच खेंच कर रोने लगीं, सारा अंतःपुर उस समय करुणा जनक विलाप से भर गया, और जो भवन कभी इन्द्र भवन से भी अधिक सुखी था उस समय निरानंद उदास और दुःख का सदन बन गया । जब कुछ देर पीछे कौशल्या सचेत हुई तो रोते हुए उस ने राजा का मस्तक अपनी जंघा पर रखा और कैकेयी के प्रति बोली हे दुष्टे ! आज तेरी आकांक्षा पूरी हुई, अब तू सुख पूर्वक राज्य का उपभोग कर । हे दुष्टे ! राम को वन में भेजकर भी राजा की ओर से तुझे खटका था, अब वह भी दूर हुआ । पुत्र के छिन जाने पर पति सेवा के लिये मैं जीवित थी, अब मेरा जीवन व्यर्थ है सो मैं भी स्वामी के पीछे चलूंगी । हा ! आज कश्मीर की राजकुमारी ने सारे राज्य का नाश कर डाला । हाय ! मेरे पुत्र और स्नुषा आज अनाथों के समान वनों में भटकते फिरते हैं । निस्सन्देह राजा जनक भी अपनी स्नेह से पाली हुई पुत्री के वियोग में प्राण देदेंगे.....इस प्रकार महा दुख से विलाप करती हुई कौशल्या राजा की देह से लिपट कर मूर्छित होगई ।

प्रातःकाल होने पर रोते हुए मंत्री अंतः पुर में आए और कौशल्या को राजा की देह से अलग करके शव

को तेल के कुंड में रखा गया ।

उस समय राजा के शोक में सारी पुरि शोभा रहित होगई, हाट बाजार सब बंद हो गये महल पर उड़ती हुई सूर्य्य वंश की ध्वजा औंधी हो गई, आकाश का रंग धूलि धूसरित हो गया, और सारी अयोध्या पर शोक बर्सने लगा ।

मंत्रियों का परामर्श ।

राजा की मृत्यु होने पर शोक से भरे हुए सब दर्बारी गण तथा मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, और बड़े यश वाला जावली एकट्ठे होकर महामुनि वसिष्ठ के पास गये और हाथ जोड़कर बोले, हे राजगुरो! इक्ष्वाकु कुल में से किसी एक राजकुमार को राजा के आसन पर बैठाइये, क्योंकि बिना राजा के सारा देश नाश को प्राप्त हो जाएगा । हे राज गुरो ! अराजक देश में चमकती हुई बिजली वाले, घोर गर्जना वाले मेघ नहीं बर्सते । अराजक देश में किसान लोग बीज नहीं बो सकते । यदि राजा न रहे तो पुत्र पिता के वश में नहीं रहता और पत्नी पति से विमुख हो जाती है । अराजक देश में भले मनुष्यों के गृहों में न स्त्रियां सुरक्षित रह सकती है और न कोई धनी ही रह सकता है। अराजक देश में लोग सभा नहीं कर सकते, न सुन्दर गृह बनवा सकते और नां ही धर्मशालाएं बनवा सकते हैं । हे राज

गुरो ! अराजक देश में स्वर्ण के भूषण पहर कर कुमारियां सायंकाल को बागीचों और फुलवाड़ियों में नहीं खेल सकतीं । अराजक देश में नट नर्तकों से भरे हुए मेले नहीं हो पाते । अराजक देश में व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर कोई सामग्री नहीं लेजा सकते। अराजक देश में यज्ञ दान तप और कोई पुण्य कर्म नहीं हो सकता अपनी इच्छा से जहां रात्रि हुई वहां सो रहने वाले मुनि अराजक देश में तप नहीं कर सकते, न योगी योगाभ्यास कर सकते हैं । हे राजन् ! अराजक देश में कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि अमुक वस्तु मेरी है क्योंकि दुष्ट नीच और पाप वृत्ति वाले मनुष्य लूट मार करके छीन लेते हैं । अराजक देश में मनुष्य एक दूसरे का नाश कर डालते हैं जैसे बड़ा मत्स्य छोटी मछलियों को निगल जाता है । अराजक देश में मारे भय के लोग यात्रा नहीं करते, और चारों ओर डाकुओं के भय से गौओं का पालन नहीं करते । हे राजगुरो ! राजा ही वर्णाश्रम को ठीक रखता है, राजा के भय से ही सारी प्रजा नियम में चलती है । राजा माता है, राजा पिता है, राजा गुरु है, इसलिये शीघ्र ही अयोध्या के सिंहासन को सुरक्षित रखने के लिय इसका प्रबन्ध कीजिए ।

भरत शत्रुघ्न को बुलाने के लिए दूत का भेजना ।

मंत्रियों के युक्ति युक्त वचन सुनकर वसिष्ठ बोले, हे राज्य के शुभ चिंतक महानुभावो ! निस्सन्देह अराज-

कता एक प्रबल आंधी है, जिस के वेग से राज्य सत्ता समूल उखड़ जाती है, इसलिए शीघ्र ही भरत नाना के हां से बुलाना चाहिए जो राजा की ओर से नियम पूर्वक राज्य का स्वामी घोषित किया जा चुका है। इसलिए चतुर दूत इसी समय तेज चलने वाले घोड़ों पर कश्मीर जावें और उन दोनों भाईयों को यहां ले आवें।

फिर सिद्धार्थ, विजय जयंत और अशोक नंदन इन चारों दूतों को बुलाकर राज गुरू ने आज्ञा दी, कि शीघ्र कश्मीर जाओ और मेरी ओर से भरत और शत्रुघ्नको कहना, कि तुम्हारे साथ आवश्यक काम है, शीघ्र अयोध्या चलो। मत कहना कि राम लक्ष्मण और जानकी देश से निकाल दिये गये हैं, राजा की मृत्यु की सूचना भी मत देना, और कोई ऐसी बात न कहना जिससे उन दोनों को किसी भी अनिष्ट व अमंगल घटना की शंका उत्पन्न होवे।

राजगुरु की आज्ञा पाकर चारों दूत वायु वेग से उडने वाले घोड़ों पर सवार हो, मालिनी नदी पार करके हस्तिना पुर होते हुए पंचाल देश में पहुंचे, और वहां से आगे निर्मल जल वाली शरदण्डा नदी पार करके इक्षु-मती नाम नदी पर पहुंचे जो इक्ष्वाकु वंश की प्राचीन स्मृति है फिर वाल्हीक देशों को पार करते हुए विपाशा नदी तैर कर केकय राज के गिरि व्रज नामक नगर में पहुंच गये।

भरतका स्वप्न देखना ।

जिस रात्रि में दूत उस नगर में पहुंचे उसी रात भरत ने एक बड़ा अमंगल स्वप्न देखा । प्रातःकाल जागने पर उस स्वप्न की स्मृति ने उन्हें शोक और दुख में डुबा दिया शोकातुर हुए हुए वह बारंबार ठंडी सांस लेते, उनका चेहरा उतरा हुआ और मन किसी बात में न लगता। तब उनके एक प्रिय मित्र ने पूछा, कि हे वयस्य ! आज आपके मुख मंडल पर दीनता क्यों बर्स रही है, मैं आज आप को प्रसन्न चित्त नहीं देखता हूं, इसका क्या कारण है ? मित्र के ऐसा प्रश्न करने पर भरत बोले, हे सखे ! रात्रि में मैंने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा है, जिस की स्मृति मेरे हृदय को अशान्त कर रही है, मैंने स्वप्न में अपने पिता को सिर के बाल खुले और पर्वत से गिरते गोबर से लतपत अंजलि से बारंबार तेल पीते और हंसते देखा । मैंने देखा कि राजा तिल और चावलों को खाते हैं, और शरीर पर तेल मलते हैं । इस के अनंतर मैंने देखा, कि समुद्र जल से रहित सूखा पड़ा है, चन्द्रमा टूट कर पृथिवी पर गिर पड़ा है, पिता की सवारी के हाथी के दांत टूट गये हैं । पर्वत माला आपस में टकरा टकरा कर चकनाचूर हो गई है और उस में से ऐसा काला धूम्र निकल रहा है कि जिस ने आकाश और पृथिवी को अंधकार मय बना दिया है। राजा गधों की रथ में सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं।

हे वयस्य ! स्वप्न को देखकर मैं किसी बड़ी अमंगल और विपत्ति जनक घटना होने का अनुमान करता हूं, इस प्रकार भरत अपने मित्र को स्वप्न की घटना सुना रहे थे, कि इसी समय दूत वहां आ पहुंचे और उन्हों ने राजा को प्रणाम करके भरत के प्रति कहा, कि हे कैकयी नंदन ! गुरु वसिष्ठ ने आप को अपनी कुशलता कही है और आप को अयोध्या चलने के लिये संदेश भेजा है। हे राघव ! अत्यावश्यक कार्य्य होने के कारण हम आप को लिवाने के लिये भेजे गये हैं।

महामुनि वसिष्ठ की ओर से दिये गये संदेश को सुनकर भरत बोले, हे दूत प्रवर ! मेरे पिता कुशल तो हैं और महात्मा राम व लक्ष्मण सर्वथा प्रसन्न हैं ? माता कौशल्या सुमित्रा व कैकेयी सब प्रकार से अरोग हैं ?

भरत के ऐसा पूछने पर दूत बोला, हे अयोध्यानाथ ! अयोध्या में सब प्रकार से कुशल है आप शीघ्र रथ जोड़िये। तब भरत ने अपने नाना के पास जाकर कहा: हे महाराज ! अत्यावश्यक कार्य्य होने से दूत मुझे लेने के लिये आए हैं, सो आप मुझे आज्ञा दीजिये। तब कैकय ने भरत का मस्तक चूमकर कहा, हे राघव ! जाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें। मेरी ओर से अपने पिता की कुशल पूछना। महामुनि वसिष्ठ तथा राम व लक्ष्मण को भी कुशल पूछना।

फिर केकय राजाने बहुत से हाथी, अनेक प्रकारके सुंदर

मृगों के मृगान बहुमूल्य कंबल, व्याघ्र के तुल्य आकार वाले बड़े २ कुत्ते, देशदेशान्तर से प्राप्त किए हुए सोलह सौ घोड़े, दो सहस्र स्वर्ण मुद्रकाएं और बहुत से आभूषण भेंट देकर भरत को बड़े आदर से विदा किया। तब नाना और मामा से विदा हो रथ पर चढ़कर भरत ने अपने छोटे भाई के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया दुर्गम वनों पर्वतों और नदियों को पार करके सात रात्रियों में भरत अयोध्या पहुंचे। अयोध्या को देखकर भरत दूत से बोले, हे दूतवर ! आज अयोध्या के अन्दर बाग़ीचे जन शून्य क्यों हैं ? नगर में प्रवेश करते ही मनुष्यों का तुमुल शब्द सुनाई दिया करता है, आज वह कर्ण गोचर क्यों नहीं होता ? नगर की सड़कें जो प्रायः हाथी घोड़ों और पालकियों से पटी रहा करती थीं आज शून्य क्यों हैं ? हे दूत ! मेरा हृदय अकस्मात् मूर्छित हो रहा है। इस प्रकार किसी अव्यक्त शंका से उदास हुआ हुआ भरत नगर में प्रविष्ट हुआ। रथ जब राज-प्रसाद पर पहुंचा तो उसने देखा कि चौरस्ते धूल से भरे हुए हैं, किवाड़ों पर जो सदा गुलाबजल से धोए जाते थे मट्टी जमी हुई है। कहीं कोई प्रसन्नता की झलक नहीं है। इससे उसके मन में अनेक अशुभ शंकाएं उत्पन्न हुईं और वह रथ से उतर कर सिर नीचे झुकाए पिता के मंदिर की ओर उनके दर्शनों के लिए चले। परंतु पिता को घर में न देख वह धर्मात्मा अपनी माता कैकेयी के मंदिर में प्रविष्ट हुआ।

पुत्र को आते देख कैकेयी मुस्कराती हुई स्वर्ण के आसन से उठ खड़ी हुई। भरत ने माता के चरणों को स्पर्श किया और कैकेयी ने उसका मस्तक चूम कर गोद में बिठाया और अपने पिता अश्वपति तथा भाई युधाजित और माता का कुशल समाचार पूछ कर बोली, हे तात! नाना के हां से निकले तुम्हें कितने दिन हुए, लगातार रथमें चढ़े रहने से कष्ट तो नहीं हुआ? कैकेयी के इस प्रकार पूछने पर भरत ने सबका कुशल कहा और फिर माता से पूछा, कि पिता कहां हैं? वह प्रायः इसी महल में रहा करते हैं, उनके दर्शन के लिये मैं यहां आया हूं मैं उनके चरण स्पर्श करूंगा, हे मातः! वह कहां है? भरत के इस प्रकार पूछने पर राज्य प्राप्ति के आनंद में अप्रिय को प्रिय और अहित को हित जानती हुई कैकेयी ने उत्तर दिया, हे बेटा! बड़े तेज वाला तेरा धर्मात्मा पिता स्वर्ग लोक को चला गया है। कैकेयी के मुख से इन शब्दों के निकलते ही भरत इस प्रकार पीड़ित हो कर भूमि पर गिर पड़ा जैसे बिजली के आघात से वृक्ष। कुछ देर बाद जब उसे सुधि आई तो माता से बोला, हे अंब! पिता के वियोग में मेरा हृदय शोक के अथाह सागर में डूब गया है, आज सत्यवादी धर्मात्मा नीति मान प्रजा पालक राजा संसार से उठ गया है, जो हमारे कुलके और अयोध्या के दुर्भाग्य का चिन्ह है। हाय! अंत काल में सदा के लिये जाते हुए

अपने पिता के मैंने दर्शन न किये, मुझ सा अभागा और कौन होगा, धन्य हैं राम लक्ष्मण, जिन्हों ने अंत समय में पिता की सेवा की है, मातः ! किस रोग से पिता का शरीर छूट गया ? हा ! अब मैं उस प्यारे पिताको कहां देखूंगा जो बाल्यावस्था में धूल से लत पत मुझे उठा कर गोदी में बैठाते थे। हे मातः ! धर्मात्मा राम कहां है जो मेरे पिता के समान हैं, और जिनका मैं अपने आपको दास समझता हूं, पितृ वियोग से दुखी हुए राम को मैं देखना चाहता हूं, अब मेरे वही एक आश्रय हैं। हे मातः ! स्वर्ग पयान करते हुए मेरे पिताने क्या कहा, मेरे लिये उन्हों ने क्या संदेश दिया सो मैं सुनना चाहता हूं। रोते हुए भरत ने जब यह पूछा तो कैकेयी बोली, हे बेटा ! तेरे पिताने कोई संदेश नहीं दिया, और वह पांच रात्रि तक हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा ! जानकी इस प्रकार विलाप करता हुआ परलोक को चला गया। हे तात ! लोहे की सांकलों से जकड़े हुए हाथी के समान तेरे पिता ने प्राण देते समय केवल इतना कहा कि पुण्यवान होंगे वह मनुष्य जो राम लक्ष्मण और जानकी को महावन से लौट कर आने पर दोबारा देखेंगे । कैकेयी के यह शब्द और भी अधिक दुख दायी थे, जिन्हे सुनते ही भरत का मुख पाले से मारे हुए कमल की नाईं कुम्हला गया और वह शोक से पीड़ित हुआ २ फिर बोला, मेरा पूजनीय

कौशल्या के नेत्रों का तारा राम कहां गया है, जिसको स्मरण करते करते पिताने प्राण दे दिये ? भरत के ऐसा पूछने पर चंचल स्वभाव वाली अहित को हित समझती कैकेयी मुस्कराती हुई बोली-हे बेटा ! वल्कल चीर पहर कर तेरा बड़ा भाई जानकी और लक्ष्मण सहित वनको चला गया है। यह उत्तर सुन कर धर्मात्मा राम के सदाचार के विषय में शंका करता हुआ भरत फिर बोला ? हे मातः ! क्या रामने किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति हर ली है ? क्या उसने किसी परस्त्री पर कुदृष्टि डाली है ? किस कारण हे अंब ! राम वनमें निकाल दिया गया है ? तब कैकेयी ने जो अपने आपको बड़ी बुद्धिमती, विदुषी चतुर और वाक् पटु समझती थी प्रसन्न होकर उत्तर दिया, हे बेटा ! तेरे बड़े भाई ने किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति नहीं छीनी और नाहीं पर स्त्री पर कुदृष्टि डाली, परन्तु मैंने मंथरा दासी के मुख से राम के अभिषेक का समाचार सुन कर राजा से दो वर मांगे, जो उन्हों ने स्वीकार किये। सो पहले वर से मैंने तेरे लिये राज्य लिया और दूसरे वर से राम को चौदह वर्ष के लिये वन में निकाल दिया। रामके साथ जानकी और लक्ष्मण अपनी इच्छा से चले गये। उनके चले जाने पर तेरा पिता उनके वियोग में विलाप करता करता चल बसा। हे पुत्र ! यह सब कुछ मैंने तेरे प्रियके लिये किया अब तू सिंहासन पर बैठ कर सारे देश पर राज्य कर। तू शोक

मत कर, किन्तु धीरज से राज्य की बाग अपने हाथों में थाम, अब तेरे विरुद्ध किसी प्रकार का उपद्रव करने वाला कोई मनुष्य नगरी में नहीं रहा। गुरु वसिष्ठ और मंत्रियों को बुला कर विधि पूर्वक राज मुकट को धारण करके पृथ्वी का शासन कर।

——:०:——

भरत का क्रोध से माता को धिक्कारना।

पिताकी मृत्यु और भाइयों के बनवास का वृत्तान्त सुन कर दुख शोक और क्रोध की अग्नि से जलता हुआ भरत कैकेयी से बोला, हे पापीयसि! तूने इक्ष्वाकु कुल को कलंक लगा दिया, तेरी दुष्टता से पिता की मृत्यु हुई, भाई को बनवास मिला, और सारे संसार में मेरी निंदा हुई। तू रघुकुल के नाश करने के लिये सर्पिणी है। मेरे पिता ने रघुकुल को दग्ध करने वाले अग्नि को बिना विचारे घरमें रख लिया। हे पाप दर्शिनि! सत्यवादी बड़े यश वाले दृढ़ व्रती राजा तुझको प्राप्त करके असह्य दुख से मृत्यु को प्राप्त हुए। हे जड़ बुद्धि वाली! किस कारण तू ने राम को बनवास दिया। निस्सन्देह कौशल्या और सुमित्रा भी राजा की तरह पुत्र और पति के वियोग से मर जाएंगी। हे मूर्खे! धर्मात्मा राम तो तुझ में मुझ से अधिक प्रेम और आदर रखते थे, और माता कौशल्या तेरे साथ भगिनी समान प्यार करती थी, फिर किस लिये तूने इतने बड़े अनर्थ का काम किया।

निरपराध राम लक्ष्मण और जानकी को देश से निर्वासित करके निर्लज्जों के समान तू बैठी बातें करती है । हे कठोर हृदये ! जिन्हों ने कभी दुख नहीं देखा उन सत्य संध पितृ भक्त राम लक्ष्मण को बन में निकाल कर तू क्या फल प्राप्त करेगी । हे दुराचारिणि! राम के बिना मैं पल भर जीवित नहीं रह सकता, क्या तू यह नहीं जानती ? मैं तो अभी नीतिमान् राम से शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हूं । हाय! तूने अत्याचार किया अनर्थ किया, और महा पाप किया, हे पापनिश्चये! यदि मैंने तेरे उदर मे जन्म न लिया होता, तो मैं तुझे इसी क्षण त्याग देता । हे कूटे ! मैं तेरा यह मनोरथ पूरा न होने दूंगा, और विष खाकर प्राण दे दूंगा अथवा राम के पीछे पीछे घूमता हुआ बनों में प्राण त्याग दूंगा ।

हे पाप दर्शिनि ! इक्ष्वाकु के वंश में ज्येष्ठ भ्राता सिंहासन पर बैठता है, सनातन से यह परंपरा चली आई है, जो कभी हट नहीं सकती, फिर किस कारण यह निंदित मति तेरे मन में उत्पन्न हुई ? हे दुष्टाचारिणि, तू राज्य से पतित हो, क्योंकि तेरा हृदय पतित हो गया है अब मैं विष खाकर प्राण देता हूं, और जिस प्रकार राम के वियोग में तड़प तड़प कर पिता ने प्राण दिये हैं इसी प्रकार मेरे वियोग में तू सिर पटक पटक कर प्राण छोड़ । हे राक्षसि ! तेरा नरक में वास होवे क्योंकि तूने कुल की हत्या का घोर पाप किया । वैकुण्ठ में मेरे पिता

के साथ तू निवास नहीं कर सकती, क्यों तूने उन्हें महा दुख देकर मार डाला और मेरे जीवन मार्ग में भी कंटक बखेर दिये । हे दुष्टे ! लोभ और ईर्षा के वश में होकर यह जो पाप तूने किया है उस का फल मुझे यह मिला, कि मैं पितृ-विहीन हो गया, राम लक्ष्मण की दृष्टि से पतित होगया और लोक में निंदा का पात्र हुआ । हे पाप संकल्प वाली ! इस राज्य से मुझे क्या प्रयोजन है ? मैं तो अब वन में जाकर उन बड़े तेज वाले भाइयों को अयोध्या में लाऊंगा और उनको सिंहासन पर बैठाकर स्वयं उनके चरणों की सेवा करूंगा । इस प्रकार कहते कहते भरत का कण्ठ आंसुओं से रुक गया और वह वहां से उठकर शत्रुघ्न समेत कौशल्या के भवन में गया । वहां जाकर पुत्र वियोग के असह्य दुख से मुर्झाए हुए मुख वाली कौशल्या के वह दोनों राजकुमार गले लगे ।

कौशल्या के सन्मुख भरत की शपथें खाना ।

भरत और शत्रुघ्न के मस्तकों को चूमकर रोती हुई कौशल्या बोली हे पुत्र ? तूने राज्य प्राप्त कर लिया, सो तेरी मनोकामना पूरी हुई, परन्तु मेरे पुत्र राम को वल्कल चीर पहनाकर वन में निकाल देने से तेरी माता को क्या फल मिला । अब तू राज्य की बाग हाथ में लेकर शीघ्र मुझे भी वनवास की आज्ञा दे, क्योंकि मैं

भी वहीं जाना चाहती हूं जहां वह प्रिय वादी राम निवास करता है। हे भरत ! हाथी घोड़ों रथों और रत्नों से भरा हुआ राज्य कैकेयी ने तेरे लिये प्राप्त किया है, अब तू सुख से उसका उपभोग कर क्योंकि उसका वास्तविक अधिकारी वन में चला गया है और अब किसी प्रकार के उपद्रव की संभावना नहीं है। इतना कहकर सिर नीचे किये कौशल्या विलाप करने लगी। कौशल्या के मुख से यह शब्द सुनकर भरत ने हाथ जोड़ कर कहा हे देवि ! तू मुझ निर्दोष को जिस की अनुपस्थिति में यह सब कुछ हुआ, क्यों दोष देती है। मेरा तो राम के वियोग में हृदय छलनी हो रहा है और मैं उस महात्मा के विना अयोध्या का राज्य क्या वैकुण्ठ का राज्य भी न लूंगा। हे मातः ! यदि पुरुषोत्तम राम मेरी सम्मति से निकाला गया हो तो मुझे पढ़ा हुआ शास्त्र भूल जाए और मेरी बुद्धि वेद विपरीत हो जाए। यदि मेरी सम्मति से राम वन को भेजा गया हो तो मैं पापियों का दास बनूं। हे मातः ! सोती हुई गौ को पांओं से ठुकराने, सूर्य्य की ओर मुख करके मल मूत्र त्यागने से जो पाप लगता है वह मुझे लगे यदि मेरी सम्मति से राम वन में निकाला गया हो। हे कौशल्ये ! भृत्य से काम करवा कर उसे वेतन न देने वाले स्वामी को जो पाप लगता है वह मुझे लगे यदि मेरी सम्मति से राम को बनवास मिला हो। प्रजा पालक

राजा से द्रोह करने वाले को जो पाप लगता है, प्रजा से कर लेकर उस की रक्षा न करने वाले राजा को जो पाप लगता है, यज्ञ कराकर ऋत्विजों को दक्षिणा न देने वाले यजमान को जो पाप लगता है, वह पाप मुझे लगे यदि मेरी अनुमति से धर्मात्मा राम बन में भेजा गया है। हे अम्ब ! युद्ध में पीठ दिखाने वाले क्षत्रिय को जो पाप लगता है वह मुझे लगे यदि मेरी सम्मति से राम बन में भेजा गया है। हे मातः ! मेरी इसी समय मृत्यु हो यदि मेरी सलाह से राम भेजा गया है। हे आर्य्य ! गुरु की निंदा से जो पाप लगता है, मित्र द्रोही को जो पाप लगता है, विश्वास घाती को जो पाप लगता है वह मुझे लगे यदि राम मेरी सम्मति से बन में निकाला गया है। हे मातः ! जो गति सत्य पुरुषों से थक्त पुरुष की होती है, जो गति कृतघ्न की होती है, दुर्जन, दुराचारी, दुरात्मा और छल करने वाले को जो पाप होता है वह पाप मुझे होवे यदि धर्मात्मा राम मेरी सलाह से बन में निकाला गया हो, दुष्ट सन्तान वाले ब्राह्मण को, ब्राह्मण के लिये तैय्यार किये गये भोजन को जूठा करने वाले को, बछड़े वाली गौ का सारा दूध दोह लेने वाले को, अपनी स्त्री को त्याग कर पर स्त्री गमन करने वाले को, जल के होते हुए भी प्यासे मनुष्य को जल न देने वाले को, जो पाप होता है हे माता ! वह पाप मुझे हो जो मेरी सलाह से राम

वन में भेजा गया हो, इस प्रकार सौगंधें खाकर आश्वासन देता हुआ राजकुमार भरत मूर्छित होकर कौशल्या के चरणों में गिर पड़ा। तब रोती हुई कौशल्या ने उसे उठाकर गोद में बैठा लिया और फिर स्नेह से मस्तक चूमकर बोली, हे बेटा ! इस प्रकार की शपथें खाकर क्यों मेरे घायल हृदय को और भी पीड़ा देते हो, तुम सच्चे हो, धर्मात्मा हो, निस्संदेह तुम्हारा इस में कुछ भी दोष नहीं है। परंतु मूर्छित हुआ हुआ भरत सारी रात अनेक उपचार करने पर भी सचेत न हुआ और इस प्रकार वह दुख की रात्रि व्यतीत हुई।

राजा दशरथ का अन्त्येष्टी संस्कार।

राजा की मृत्यु और भाइयों के बनवास से भरत को महा शोक में निमग्न देखकर महर्षि वसिष्ठ जी बोले, हे राघव ! इस संसार में कोई भी प्राणि मृत्यु से बच नहीं सकता, यह जीव अनंत काल से जन्म और मरण के चक्र में पड़ा हुआ है, इस लिये अब तुम्हारा शोक और विलाप व्यर्थ है, हे बड़े यश वाले ! अब राजा को श्मशान भूमि में ले चलने की तैय्यारी करो। तब गुरु की आज्ञा से भरत ने राजा का प्रेत कर्म आरंभ किया, और मृत शव को तैल कुंड से निकाल कर रथी पर लिटा दिया। उस समय भरत रोते हुए बोले, हे पिता ! मुझ अनाथ को किस के आश्रय पर छोड़ जाते हो,

हाय ! दोषी समझ कर आज आप मुझ से नहीं बोलते । हे नाथ ! इस अयोध्या पुरी का राज्य अब कौन संभालेगा, क्योंकि राम बन में चले गये और आप स्वर्ग में जा रहे हैं, हे राजन् ! आप के बिना अयोध्या ऐसी ही श्री हीन दिखाई देती है जैसे पति के मर जाने पर विधवा स्त्री ।

भरत को इस प्रकार विलाप करते और आंसुओं की धारा बहाते देखकर महा मुनि वसिष्ठ बोले, हे तात अब शोक को त्याग कर राजा के प्रेत कर्म में मन लगाओ । तब भरत ने रथी को रत्नों से भूषित करके राजा के अग्नि होत्र में ऋत्विज पुरोहित और आचार्य्य के साथ बैठकर अग्नि होत्र किया फिर मंत्रिमंडल ने रथी को उठाया । अयोध्या निवासी सहस्रों की संख्या में रथी के साथ रोते हुए चले, और आगे आगे सोना चांदी और रत्न लुटाते हुए नगर के बाहर पहुंचे । सरयु तट पर चन्दन गुग्गल देवदारु आदिक काष्ठों की चिता बनाई गई और उस पर राजा को सुलाया गया । उस समय कौशल्या आदिक रानियां तथा दासियां क्रौञ्च पक्षि की नांई बिलख बिलख कर रोने लगीं, रोते हुए भरत ने फिर चिता को अग्नि लगाई और इस प्रकार वह धर्म की मूर्ति सत्य का अवतार प्रतिज्ञा का धनी महात्मा दशरथ स्वर्ग लोक को चला गया ।

———

भरत का राम को लौटाने के लिये बन गमन ।

तेरहवें दिवस पिता के प्रेत कर्म से भरत निवृत्त हुआ तो संपूर्ण दर्बारी लोग मिलकर उस के पास आये और हाथ जोड़ कर बोले हे राघव ! राम और लक्ष्मण बन को चले गये अब वह चौदह वर्ष से पहले नहीं आयेंगे, राजा दशरथ परलोक सिधार गये, इस लिये अब तुम न्याय पूर्वक हमारे राजा हो. क्योंकि अयोध्या का राज्य राजा अपने जीते जी तुम्हारे लिये दे गये हैं। तब निर्लोभी भरत सब दर्बारी जनों को उत्तर देते भये, कि पिता के स्थान में ज्येष्ठ पुत्र ही सिंहासन पर बैठता है, रघुकुल में यह रीति सनातन से चली आयी है. जो अटल है, यह आप सब भली भांति जानते हो, वंश मर्य्यादा पर और कुल धर्म्म पर कुठार मारकर मैं राज्य स्वीकार नहीं कर सकता। इस सिंहासन पर धर्मात्मा राम ही विराजेंगे मैं बन में जाकर उन्हें लौटाऊंगा और स्वयं उन के स्थान में १४ वर्ष बन में रहूंगा, इस लिये चतुरंगिनी सेना को तैय्यार करो. क्योंकि मुहूर्त भी यहां ठहरना मेरे लिये असंभव है । भरत के यह वचन सुनकर सारे दर्बार में एक नवीन जीवन आ गया, लोगों की टूटी हुई आशाएं फिर से बंध गईं और वह प्रसन्न होकर बोले, धन्य हो हे राघव ! तुम धन्य हो। तब सड़कें बनाने वाले, भूमि खोदने वाले, वृक्ष काटने वाले सब प्रकार के शिल्पी व मजूर आगे आगे चले। झाड़ झंकाड़

वृक्ष पत्थर आदिकों को काटते छांटते सुंदर सड़के वनाते हुए उन्हों ने नदी नालों पर पुलें बांधी, जल हीन प्रदेशों में पक्के कूप और बावलियां बनाईं और सेनाओं के पड़ाव करने योग्य स्थानों को सब प्रकार की खाद्य सामग्री से भरपूर करके अनेक प्रकार की लताओं और पताकाओं से सुशोभित कर दिया। इसके पश्चात् रथ पर चढ़कर राम के दर्शनों के लिये भरत चलने को तैय्यार हुआ। सब मंत्री और दर्बारी गण उस के आगे आगे चले. रथ के पीछे पीछे कौशल्या सुमित्रा और कैकेयी सोने चांदी के रथों पर चढ़कर चलीं और उन की रक्षा के लिये हाथी घोड़े रथ और प्यादा सेनाएं अनेक प्रकार के बाजे बजातीं हुई बारंबार राम चन्द्र की जय बोलतीं आकाश को धूलि धूसरित करतीं और पताकाएं उड़ाती चलीं। चलते चलते २ जब वह गंगा तट पर राजा गुह की नगरी शृंगबेरपुर में पहुंचे तो वहां उन्हों ने सुन्दर दृष्य देख कर पड़ाव डाल दिया। इतनी बड़ी वाहिनी को देखकर भीलों के राजा गुह ने अपने ज्ञातियों को एकट्ठा करके कहा, कि दशरथ नंदन राम मेरे मित्र और स्वामी हैं, इसलिए तुम इसी सघन वन में जहां तहां छिप कर बैठे रहो और पांच सौ नौकाओं में सौ सौ अस्त्र शस्त्र धारी सैनिक सुसज्जित रहो, ही वीरो ! यदि भरत जो राज्य का अधिकारी हुआ है, राम के संबंध में निष्कपट

हृदय वाला हुआ तो वह सेना सहित सुख से पार होगा अन्यथा आज वह अपनी सेना सहित मेरे हाथों मारा जाएगा। इस प्रकार अपने ज्ञातियों को तैय्यार करके वह भील राज भुना हुआ मत्स्य और मधु भेंट लेकर भरत के पास आया, और नम्रता पूर्वक बोला हे राघव ! इस देश को अपना गृह समझो। विना सूचना दिये आप अकस्मात पधारे हैं, इस कारण मैं विशेष स्वागत न कर सकने के कारण क्षमां मांगता हूं। हे राजपुत्र ! आज की रात यहीं विश्राम कीजिये और और इस दास का रूखा सूखा भोजन स्वीकार कीजिये। भरत ने गुह के ऐसे प्रीति वाले वचन सुनकर उत्तर दिया, हे निषाद ! मैं तुम्हारे प्रेम पर प्रसन्न हुआ, परंतु मैं भारद्वाज के आश्रम में जाना चाहता हूं जहां लक्ष्मण और जानकी सहित राम गये हैं, हे भद्र ! गंगा का यह वन बड़ा सघन है और अपरिचित के लिये दुर्गम्य है, इसका कुछ प्रबंध कीजिये। यह सुनकर निषाद बोला, हे दशरथि ! चिन्ता न करें मैं और मेरे भील सैनिक मार्ग दिखाते हुए आप के साथ चलेंगे, परंतु मैं हाथ जोड़कर पूछता हूं कि राम के पास इतनी बडी सेना लेकर आप का जाना मेरे मन में यह शंका उत्पन्न करता है, कि आप की भावना अच्छी नहीं है। निषाद के मुख से यह वचन सुनकर भरत का सिर झुक गया और उस ने उत्तर दिया हे भील-राज ! राम मेरे बड़े भाई

और पिता के तुल्य हैं, आप मेरे विषय में कोई शंका न करें मैं तो उन्हें लौटाने के लिये जा रहा हूं, यह देखो सब मंत्री मंडल और राम लक्ष्मण की माताएं कौशल्या और सुमित्रा मेरे साथ हैं। तब प्रसन्न हुआ २ निषाद बोला, हे भरत ! तुम धन्य हो, प्राप्त किया हुआ राज्य त्याग देना सहज नहीं है, तुम्हारी कीर्ति संसार में अटल रहेगी। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए रात्रि हो गई और भरत ने सारी सेना सहित वहां विश्राम किया। प्रातःकाल उठकर राम के वियोग से दुखी हुआ भरत निषाद से बोला हे भील राज ! मेरा बड़ा भाई रात्रि को कहां सोया और, जानकी ने कहां विश्राम किया और वह परम पराक्रमी लक्ष्मण कहां लेटा, उन्हो ने क्या खाया और किस प्रकार रात्रि व्यतीत की? तब गुह ने उस बड़े इंगुदी वृक्ष के नीचे जाकर भरत को कहा, हे राज पुत्र ! यह देखो यह घास की शय्यायें लक्ष्मण ने स्वयं बिछाई थीं इसी वृक्ष के नीचे तपस्वी राम और जानकी सोये थे। हे भरत ! लक्ष्मण धनुष हाथ में लेकर उनकी रक्षा के लिये खड़ा रहा रात्रि अधिक होने पर मैंने लक्ष्मण को कहा, कि तुम दिन भर के थके हो सो जाओ मैं अपने सैनिकों सहित रात्रि भर जागकर आप की रक्षा करूंगा, परन्तु धर्म्म के तत्व को जानने वाले लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया वह मुझे आयु भर न भूलेगा हे रामानुज ! उस पराक्रमी ने कहा, कि देव और

दानवों को जीतने वाले तीनों लोक के पूज्य राम और जानकी जब तृणों की शय्या पर सोए हैं तो हे निषाद! किस प्रकार मैं निद्रा का सुख ले सकता हूं। बड़े तप से राजा ने अपने सदृश गुणों वाले इस पुत्र रूप रत्न को प्राप्त किया है, हे भीलनरेश! इस के वियोग में राजा अधिक काल तक जीवित न रह सकेंगे। इस प्रकार उस वीर लक्ष्मण ने विना झपकी लिये खड़े खड़े रात्रि व्यतीत कर दी थी। प्रातः काल होने पर मैंने हे भरत! नाना प्रकार के भोजन पदार्थ राम के आगे रखे परन्तु तपस्वि धर्म में स्थित उस महात्मा ने केवल जल पान किया और उस दिन तीनों ने उपवास रखा। निषाद के मुख से यह वचन सुनकर भरत के नेत्रों से जल की धारा वह निकली और उस ने माताओं को वह स्थान दिखाकर कहा कि यहां वह धर्म्म धुरीण सोया है, यह उस के शरीर से मर्दन की हुई शय्या है। हा देव! फूलों के समान कोमल शय्या पर सोने वाला वह राज पुत्र कैसे यहां सोया होगा, राज-प्रासादों में सुख से रहने वाली सीता किस प्रकार इस तृण शय्या पर सोई होगी, निस्संदेह दैव बड़ा प्रबल है, जो चक्रवर्ती राजा की स्नुषा सीता आज कंकरों पर सोती है, परन्तु मुझ से बढ़कर अभागा कौन होगा, जिस के नाम पर अटल कलंक लगा, क्योंकि पितृ तुल्य भाई के कष्टों का कारण मैं ही हूं, पिता के स्वर्गवास होने और राम

लक्ष्मण के बन में चले जाने से मेरी अवस्था उस मनुष्य के समान हो गई है, जिस की नौका भंवर में हो, चप्पु हाथ से छूट गए हों, और पतवार टूट गई हो अब मेरा राजकीय ठाठ में रहना उचित नहीं है, आज में प्रतिज्ञा करता हूं, कि आज से भूमि पर शयन करूंगा, जटा धारण करूंगा चीर पहनूंगा और राम को अयोध्या में लौटाकर स्वयं उसके स्थान में बनवास भोगूंगा। इसके अनंतर वह शत्रुघ्न के प्रति बोला, कि भील राज गुह को शीघ्र बुला लाओ। गुह के आने पर भरत ने कहा, हे निषाद ! आप के अतिथि सत्कार से मैं बहुत प्रसन्न हुआ, और गंगा तट पर रात्रि सुख से व्यतीत की अब हम पार जाना चाहते हैं। तब भरत की आज्ञा से सैंकड़ों नौकाएं तीर पर लगा दी गईं, जिस में सैनिक लोग सामग्री सहित पार हुए, फिर सुन्दर गलीचों वाली अनेक प्रकार की ध्वजाओं से सजी हुई नौका पर माताओं सहित भरत बैठकर पार हुआ। वहां से सारी सेना समेत चलते हुए भरत भरद्वाज के आश्रम पर पहुंचा, जिसे देखते ही वह महामुनि जल्दी से उठकर पाद्य अर्घ्य देते भये। जब दोनों ओर से कुशल क्षेम पूछी गई तो भरद्वाज बोले हे भरत ! अयोध्या का राज्य करते हुए तुम यहां किस कारण से आये हो इतनी बड़ी सेना लेकर तेरा आना मेरे मन में यह शंका उत्पन्न करता है कि राम के विषय में तेरी बुद्धि निर्मल

नहीं है। भरद्वाज मुनि के मुख से यह वचन सुनकर भरत ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया, हे महामुने ! आप तो सब कुछ जानते हैं फिर मुझ पर ऐसी शंका क्यों करते हैं। मैं तो उस महात्मा का दास हूं। कैकेयी के इस कर्म को मैं पसन्द नहीं करता, मैं राम से क्षमा मांगूंगा और वापस अयोध्या लेजा कर उन्हें सिंहासन पर बैठाऊंगा। तब प्रसन्न होकर भरद्वाज बोले, हे भद्र ! रघुकुल की तूने लाज रख ली, परमात्मा तुम्हें चिरंजीव करे और तुम्हारा यश तीन लोक में फैले। हे भरत ! तेरा बड़ा भाई सीता और लक्ष्मण समेत चित्रकूट पर निवास करता है, आज की रात्रि यहीं विश्राम करो कल प्रातः काल उधर जाना।

महामुनि भरद्वाज के अतिथि सत्कार से पूजित हुआ हुआ भरत रात्रि भर वहीं विश्राम करता भया और दूसरे दिन बड़ी भोर उठकर नित्य कर्म से निवृत हो भरद्वाज से बोला हे महर्षे ! अब मैं आप से चलने के लिये आज्ञा मांगता हूं। तब भरद्वाज बोले हे भरत ! परमात्मा तेरी सहायता करे, अपनी माता में तुम दोष दृष्टि न रखना, क्योंकि परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता, राम के वनवास से संसार का कल्याण होने वाला है, दैत्य दानव और राक्षसों के अत्याचार से पृथिवी पीड़ित हो रही है, उन सब के नाश के लिये कैकेयी द्वारा ईश्वर की ओर से राम बन

को भेजे गये हैं ।

तब भरत ने ऋषि को प्रणाम किया और माता कौशल्या सुमित्रा और कैकेयी ने उनकी प्रदक्षिणा की। इस के अनंतर वह बड़ी सेना जिस में वर्षा ऋतु के बादलों के समान हाथी और हथनियां बड़े स्वन से चिंघाड़ रहे थे, अनेक प्रकार की ध्वजाओं को फहराती समुद्र की तरह गर्जती और हरहराती आगे बढ़ी, उस सेना के चलने से वन के हाथियों के यूथ भागने लगे. सिंह पाढ़े हिरन सूअर आदि जीव चारों ओर भयभीत हुए हुए दौड़े। घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूल आकाश में इस प्रकार छा गई मानों एकाएक आंधी चढ़ आई हो। कई कोस चलने पर भरत सेना सहित मंदाकिनी नदी के तट पर पहुंचा । वहां प्रकृति की रमणीयता देखकर वह महर्षि वसिष्ठ से बोला, हे गुरो ! महामुनि भरद्वाज ने जो स्थान बतलाया था. वह आ गया है, वह देखिए सुनील मेघ के समान वन दिखाई देता है. और वह चित्रकूट पर्वत है, जिस पर वृक्ष इस प्रकार पुष्प बर्सा रहे हैं मानों पावस ऋतु के मेघ जल की बूंदे बर्सा रहे हों। ऋषि मुनियों और तपस्वियों का यह देश मुझे अतीव सुंदर और प्यारा लगता है। इस लिए सेना को यहीं ठहराकर गुप्तचरों को भेजो जो राम के निवास स्थान का पता लें। महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से बहुत से चतुर गुप्तचर निर्जन वन में चारों ओर फैल गए,

और जहां तहां राम की खोज करने लगे। ढूंढते ढूंढते उन्हों ने बहुत दूर आकाश में अविच्छिन्न धारा से उठती हुई धूम शिखा को देखा। तब उन्हों ने भरत को सूचना दी, कि हे राजन! वह देखो पर्वत की उपत्यका में धूआं दिखाई दे रहा है। जान पड़ता है कि कोई मनुष्य अग्नि होत्र कर रहा है, निस्सन्देह महात्मा राम वहीं होंगे, अथवा कोई अन्य तपस्वी हवन करता होगा, जिस से राम लक्ष्मण का पता मिल सकता है।

श्री राम चंद्र जी का जानकी को वन की शोभा दिखलाना।

इधर श्री रामचंद्र जी बहुत दिन पर्वत पर निवास करते हुए जानकी की प्रसन्नता से उसे चित्रकूट की शोभा दिखलाने लगे। उस समय पर्वत के शिखर पर खड़ी हुई यह युगल जोड़ी इन्द्र और इन्द्राणी के समान सुंदर प्रतीत होती थी। पर्वत माला और नील वन की ओर उंगली करते हुए श्री रामचन्द्र जी बोले हे प्रिये! इस रमणीक वन को देखो, जिसकी शोभा देख कर मैं राज्य-त्याग और वनवास के दुःखों को भूल गया हूं। अहह! अनेक प्रकार के अनेक रंगों वाले अनेक बोलियों से पक्षिगण इस वन को गुंजा रहे हैं। यह पर्वत माला जिसके स्थान २ पर उठे हुए मेघों को स्पर्श करने वाले शिखर किस प्रकार चांदी सोने और अन्य धातुओं से चमक रहे हैं। हे भामिनि! नाना प्रकार

के उज्वल रंगों वाले रत्नों की प्रभा से इसकी चोटियां किस प्रकार दूर से नीली पीली धौली और कासनी आदि रंगों की दिखाई देती हैं। इस गहन वनमें अनेक प्रकार के हिरन, भालु, चीते, सिंह आदि जंतु भरे पड़े हैं, परंतु ऋषियों मुनियों तपस्वियों और योगियों के शान्तमय जीवन से प्रभावित हुए २ यह किसी मनुष्य पर आक्रमण नहीं करते। इस वन में जामुन आम अनार श्रीफल आदि के वृक्ष अपने फलों से अतिथियों का सत्कार करते और वनवासियों की उदर पूर्ति करते हैं। हे जनकनंदिनि ! तेरे और लक्ष्मण के साथ आयु भर भी यदि यहां रहना पड़े तो भी मैं उदास न हूंगा। इस वनवास से मुझे दो फल मिले, एक तो मैंने पिता को कैकेयी के ऋण से मुक्त किया, दूसरे भरत को राज्य देकर प्रसन्न किया। हे प्रिये ! वनमें रहकर ही योगी और ऋषि एकान्त में आत्मा का चिंतन करते हैं। काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार से रहित यह वन ही मोक्ष द्वार पर पहुंचने के लिये मार्ग हैं, और वह देख हे प्रिये ! निर्मल जल वाली मंदाकिनी नदी, जिस के बरेतों में हंस और सारस कलोल कर रहे हैं और जिसके तटों पर उगे हुए फूल वायु में विलास कर रहे हैं, जिसके शुभ जल में मंडल बांधे ऋषि जन स्नान करते हैं, जिसके तट वर्ती फूल वायुमें हिलोरे लेते हुए बारंबार जल में डुबकियां लेते हैं और जिसके

बरेतों पर बैठे हुए चकवे सुंदर और मीठे स्वरों से सुखमय संगीत में मस्त हैं, ऐसी सुंदर और मन को हरने वाली नदी को, इस नील वन को, चित्रकूट को तथा तुझ को देख कर हे मैथिलि मैं अयोध्या को भूल गया हूं, इस नदी में तू मेरे साथ स्नान किया कर, जिसमें प्रति दिन योगी ऋषि मुनि और तपस्वी मज्जन करते हैं। हे प्रिये ! इस वन में विचरने वाले हाथी ही अयोध्यावासी लोग हैं, चित्रकूट ही अयोध्या है, और यह शुभ जल वाली मंदाकिनी ही मानो सरयु नदी है ऐसा समझ कर तू मेरे साथ सुख से वनवासके दिन व्यतीत कर। इस प्रकार जब श्री रामचन्द्र जी सीता को वन का दृश्य दिखा रहे थे तो एकाएक उन हाथियों का अकाश को फाडने वाला शब्द सुनाई देने लगा जो भय से पीड़ित होकर चारों ओर वन में दौड़ रहे थे चतुरंगिणी सेना का महान् कोलाहल श्री रामचन्द्र जी ने सुना और हाथियों के यूथ को भागते हुए देखा। यह देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने तेजस्वी लक्ष्मण को कहा, हे सौमित्रि ! वह देख मेघ की गर्ज के समान गंभीर शब्द सुनाई दे रहा है। कोई राजा अथवा राजकुमार वनमें आखेट के लिए घूम रहा है, ऐसा जान पड़ता है। हे वीर ! इसका पता लेना चाहिए।

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर सुमित्रा नंदन लक्ष्मण तुरंत ही एक ऊंचे साल के वृक्ष पर चढ़ गया

दूर तक दृष्टि दौड़ाने से उसने उत्तर दिशा में एक बडी वाहिनी हाथी घोड़ों रथों और प्यादों से युक्त देखी, जिस पर सुंदर वर्दियों वाले धनुष, भाले, तलवारें और अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक बैठे थे। और सूर्य्य की पताकाएं वायु मंडल में फहरा रही थीं। यह देख लक्ष्मण तुरंत वृक्ष से नीचे उतरा और जलते हुए नेत्रों वाला क्रोध से बोला, हे राघव ! आप अग्नि को जल से ठंडा करें, और सीता को पर्वत की कंदरा में छिपावें, धनुष को तान कर अपनी रक्षा के लिये तय्यार हो जाएं। तब श्री रामचन्द्रजी ने पूछा हे वीर ! अच्छी तरह देख कर बता कि यह किसकी सेना है। लक्ष्मण जो इस समय क्रोध से कांप रहा था नेत्रों से अग्नि बर्साता हुआ बोला, हे महात्मन् ! कैकेयी का पुत्र भरत धोखे से १४ वर्ष का राज्य प्राप्त करके अब हम पर चढ़ आया है। बनवास में हमें अकेले जान कर सदा के लिये राज्य की अभिलाषा से वह हमें इस पृथिवी से उठा देना चाहता है। वह देखो हे वीर ! कोविदार-ध्वजा वाला रथ पेड़ के नीचे खड़ा है, आज मैं भरत को समझूंगा, जिसने कि यह सारा षड्यंत्र तुम्हारे विरुद्ध रचा है। आज मैं अपने दबाए हुए क्रोध को शत्रुओं पर प्रकट करूंगा और अपने अग्नि समान बाणों से शत्रु की सेना को दग्ध करूंगा। मेरे बाणों से मारे हुए हाथी घोड़ों और मनुष्यों के मांस को आज

बनके श्वापद नोच २ कर खाएंगे। हे मानद ! आज भरत अपने कर्मों का फल भोगेगा, इसलिये आओ धनुष और कवचों से सुसज्जित होकर पर्वत की चोटी पर खड़े होवें।

क्रोध से कांपते हुए लक्ष्मण के मुख से ऐसे वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा, हे सौमित्रे ! धनुष तान कर खड़ा रहने का यहां क्या प्रयोजन है, जब कि प्राणों से प्यारा भरत स्वयं आ रहा है, क्या भाई के आने पर भाई बाण से कलेजा बींध डालता है। भरत मेरा प्राणों से भी अधिक प्यारा भाई है, निस्संदेह वह मुझे बन से लौटाने के लिये आया है, हे लक्ष्मण ! भरत ने आज तक तुम्हारा कोई भी अहित नहीं किया, फिर कैसे तुम उसका अनिष्ट चिन्तन करते हो और मैं तो भाईयों ही के लिए राज्य-सुख चाहता हूं। भरत शत्रुघ्न और तेरे विना मैं बैकुंठ का राज्य भी स्वीकार नहीं करूंगा, क्या फिर अयोध्या का। मैं अपने बाहुबल से तीनों लोकों को विजय कर सकता हूं, परन्तु अधर्म से हाथ भर भूमि भी स्वीकार न करूंगा। मेरे और भरत में कोई भेद नहीं है, इसलिये जो कठोर और अयोग्य वचन तू ने भरत के प्रति कहे हैं वह वास्तव में मुझे ही कहे गये हैं। भरत मुझे यहां आकर मार डालेगा यह तेरी शंका निर्मूल है, कितनी भी विपत्ति हो, कभी पुत्र पिता की हत्या नहीं करता और भाई

भाई के प्राण नहीं लेता। राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण अपने मन में बहुत लज्जित हुआ और खिन्न चित्त होकर बोला, हे महाभाग ! इस बड़ी सेना में मैं पिता का श्वेत छत्र नहीं देखता इसी से मुझे भरत पर शंका हो रही है, आप मुझे क्षमा करें, हित बुद्धि से मैंने ऐसे कठोर वचन कहे हैं ।

उधर भरत ने अपनी सेना को पर्वत के चारों ओर ठहरा कर शत्रुघ्न के साथ राम के आश्रम की ओर प्रस्थान किया । कुछ दूर चलकर उन्हों ने बड़ी सुन्दर पत्तों की कुटिया देखी जिस की दीवारों में किवाड़ लगे हुए थे, उस पर्ण कुटीर के पास वृक्षों के स्कंधों पर राम लक्ष्मण और जानकी के चीर लटकते दिखाई दिये । तब भरत प्रसन्न होकर बोले, हे शत्रुघ्न ! ऊंचे ऊंचे वृक्षों पर यह चीर अवश्यमेव लक्ष्मण ने बांधे हैं । रात्रि के अंधकार में अथवा मार्ग भूल जाने पर यह चीर भटके हुए मनुष्य को कुटिया का मार्ग बतलाते हैं । वह देखो तपस्वियों के हवन कुण्डों से उठता हुआ धूआं आकाश को आच्छादित कर रहा है । यहां मैं पितृ भक्त राम के दर्शन करूंगा । थोड़ा और आगे चलने पर उस ने सुन्दर वेदी के पास जटा धारी श्री रामचन्द्र जी को बैठे देखा ! कृष्ण हरिणका मृगाजन पहले वल्कल चीर धारण किये, सिंह के समान ऊंचे कधों वाले राम को देखकर भरत दौड़ कर उधर गया, भ्रातृ स्नेह से

उसके नेत्रों में आंसु भर आए और कण्ठ रुक गया। बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी उसके मुख से केवल "आर्य्य" इतना निकल सका, उस के आगे शब्द मानों उस के होंठों से चिपक गये, और वह कुछ न बोल सका। शोक संताप और आनन्द की प्रबल तरंगों ने उसे जड़ के समान अचल खड़ा कर दिया और वह बिलख बिलख कर रोता हुआ भाई के चरणों में गिर पड़ा। यही दशा शत्रुघ्न की हुई।

भरत और राम का वार्तालाप।

रोते हुए भाईयों को राम ने पृथिवी पर से उठाया और मस्तक चूम गोद में लेकर पूछा। हे तात! सच्ची प्रतिज्ञा वाला पिता कुशल है? इक्ष्वाकुओं के कुल गुरु वसिष्ठ की पूजा करते हो! हे तात! कैकेयी और कौशल्या तथा सुमित्रा सब प्रकार से प्रसन्न हैं। हे भाई सेना कोष और राज्य का प्रबन्ध तो अच्छा है? हे तात! राजा के बिना प्रजा में अव्यवस्था फैल जाती है परन्तु मैं तुझे तपस्वियों के समान जटा बांधे और मृगान धारण किये देखता हूं, हे तात! तुम्हारे यहां आने का कारण जानना चाहता हूं।

श्री रामचन्द्र जी के ऐसा पूछने पर भरत रोता हुआ बोला हे तात! सत्यका अवतार धर्म धुरीण बड़े पराक्रम वाला हमारा पिता स्वर्ग लोक को चला गया है। हे भ्रातः! मेरी दुष्ट माता ने यह ऐसा महा पाप

किया है, कि दुःख और लज्जा के मारे मैं संसार में मुख दिखाने के योग्य नहीं हूं, निस्सन्देह कैकेयी विधवा हुई हुई रौरव नरक में गिरेगी । हे नाथ ! अब मैं आप की शरण में हूं, आप अयोध्या का राज्य अपने हाथ में लेकर मुझ डूबते हुए की रक्षा करें ! यह सारा मंत्रि मंडल, दर्बारी गण और विधवा माताएं आप के पास यही प्रार्थना करने आई हैं, आप कृपा करें, और नियमानुसार सिंहासन पर बैठकर हम सबकी और सारी प्रजा की मनोकामना पूरी करें । हे महात्मन् ! मैं आपका छोटा भाई हूं, शिष्य हूं, और दास हूं आप मुझ पर दया करें और "ज्येष्ठ भ्राता को बनवास दिला कर भरत राज्य करता है" इस कलंक से मुझे बचाएं । इतना कहकर भरत रोता हुआ फिर भाई के चरणों में गिर पड़ा, तब नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाते हुए भरत को उठाकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा, हे भाई ! मेरे जैसे ऊंचे कुल में जन्म लिये हुए, दृढ़ संकल्प वाले ब्रह्मचर्य्य व्रत को पूर्ण किये हुए, क्षत्रिय, सत्य परायण मनुष्य के लिए राज्य के अर्थ धर्म से पतित होना असंभव है । हे शत्रु दमन ! तुझ में तो मैं कुछ भी दोष नहीं देखता, फिर तुम दुखी और लज्जित क्यों होते हो और हे वीर ! माता कैकेयी की भी निंदा करनी उचित नहीं है, क्योंकि पिता ने अपनी इच्छा से मुझे बन में भेजा है, और अपनी इच्छा ही से उन्हों ने दोनों

वर कैकेयी के लिये दिये थे। हे इक्ष्वाकु नंदन! जितना आदर मैं पिता के लिये रखता हूं उतना ही मान मेरे मन में कैकेयी के लिये है, इस लिए उस की निंदा करके तू मेरे हृदय को संताप न दे! हे भरत! जब पिता और माता ने मुझे वन को जाने की आज्ञा दी है फिर किस प्रकार मैं उनकी आज्ञा भंग करूं। उन के लिये मैं प्राण भी त्याग सकता हूं. क्या फिर अयोध्या का राज्य हे भरत! पिता अपने हाथ से तेरे लिये राज्य दे गये हैं, और उसे ग्रहण करना तेरा धर्म है। हे तात! मेरे जीवन के सहारे पिता स्वर्ग चले गये हैं, अब अयोध्या से मेरा क्या काम। हा शोक! मेरा जीवन वृथा है जो मैंने सदा के लिये जाते हुए अपने पिता के दर्शन नहीं किये, नां ही उनकी सेवा की और नां ही उनका दाह संस्कार किया हे भरत! तू और शत्रुघ्न दोनों पुण्यवान् हो जिन्हों ने राजा का संस्कार किया है, इस प्रकार कहते कहते राम के नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी और वह शोक से तपा हुआ सीता के पास जाकर बोला, प्रिये! तेरे श्वशुर स्वर्ग लोक को चले गये हैं, हे लक्ष्मण तू पितृ हीन होगया है, भरत ने आकर यह सूचना दी है। श्वशुर की मृत्यु सुन कर सीता के नेत्रों में आंसु भर आए और वह रोने लगी, तब सीता को धीरज देकर राम ने शोक संतप्त लक्ष्मण को कहा, हे वीर! इंगुदीका गूदा और मेरा वल्कल चीर ले आ, मैं स्वर्ग गत पिता

को जलांजलि दूंगा तब आगे आगे सीता पीछे लक्ष्मण और फिर श्री रामचंद्र जी तीनों बड़े शोक में डूबे हुए मन्दाकिनी नदी के तीर पर पहुंचे। उस निर्मल जल वाली नदी के कर्दम रहित तीर पर खड़े होकर अंजलि में जल भर कर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, हे तात! मैं आप के लिये जल देता हूं, हे पिता! पितृ लोक में मेरा दिया हुआ यह जल आपके लिये अक्षय सुख प्रदान करे। फिर भाइयों सहित इंगुदी के गूदे का पिण्ड बनाकर उन्हें कुशा पर रखकर रोते हुए बोले हे तात! हमारे दिये हुए इस भोजन को प्रसन्न होकर खाओ। इस के अनन्तर राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न और सब स्त्रियों तथा मंत्रियों ने नदी में स्नान किया। पिण्डोदक क्रिया से निवृत्त होकर भाईयों सहित श्री रामचन्द्र जी चित्रकूट के उसी शिखर पर चढ़ गये और पर्ण कुटीर के द्वार पर खड़े हो भरत और लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में थाम कर रोने लगे, रोते रोते जब उन के मन कुछ हल्के हुए, तो महामुनि वसिष्ठ रानियों को आगे करके श्री रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये चले। आश्रम में पहुंच कर स्वर्ग च्युत देवता के समान जटा मंडल बांधे श्री रामचन्द्र जी को देखकर वह सब रोने लगीं। माताओं को देखते ही श्री रामचन्द्र जी ने आसन से उठ कर उन के चरणों को स्पर्श किया। रोती हुई माताओं ने कोमल हाथों से उन की पीठ पर हाथ फेरा और शरीर पर लगी हुई

धूल को पोंछा। इस के पश्चात् लक्ष्मण ने माताओंको चरण बंदना की, फिर जनक नंदनी सीता रोती हुई उनके चरणों में गिरी। उसे देखकर कौशल्या दुख से विकल हो उठी और सीता को गले लगाकर बोली हाय ! मेरी बहु जिस का श्वशुर जगत को विजय करने वाला राजा हो और जो राम जैसे प्रिय दर्शन की पत्नी हो, आज वह इस प्रकार बनों में भटकती फिरती है। हे जानकि! स्वर्ण के सदृश चमकने वाले, चन्द्रमा के समान उज्वल और कमल के समान सदैव खिले रहने वाले तेरे मुख को आज शुष्क धूलि धूसरित और उदास देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है। इस के पश्चात महात्मा भरत महामुनि वसिष्ठ, तथा अन्य मंत्रियों और अयोध्या के मुख्य मुख्य पुरुषों के साथ रामचंद्र जी के पीछे बैठ गया और वह रात्रि राजा के शोक में व्यतीत हुई। सूर्य्य उदय होने पर भरत मंत्रियों सहित मंदाकिनी नदी पर हवन और स्वाध्याय करके फिर रामचन्द्र जी के पास आया और हाथ जोड़ कर बोला, हे रघुकुल सूर्य्य ! प्रतिज्ञा में बंधे हुए पिता ने राज्य मुझे दे दिया, वही राज्य मैं आप को देता हूं, आप अयोध्या लौट कर अखंड राज्य पाकर पृथिवी पर शासन करें। हे भाई ! मेरी दुर्बल भुजाएं बड़े पर्वत रूप इस राज्य को नहीं संभाल सकतीं। हे राजन् ! यह सब मंत्री, नगर के मुख्य मुख्य लोग, माताएं और शत्रुघ्न सहित मैं आप से यही प्रार्थना करने

आये हैं, सो आप इसे स्वीकार करें। इतना कहते कहते भरत के नेत्रों से जल की धारा बहने लगी। तब श्री रामचन्द्र जी ने उसे धीरज दिया और कहा हे भरत! तुम को पिता के मरने और मेरे बनवास से बहुत दुःख हुआ है, परन्तु इस में न तुम्हारा न कैकयी का और न राजा ही का कुछ दोष है यह सब कुछ परमेश्वर के अधीन है, मनुष्य की इच्छा इस में नहीं चलती, मनुष्य अपने किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगते हैं, जो जन्मता है वह अवश्य मरता है, संयोग का अन्त वियोग है, जैसे पके हुए फल एक न एक दिन अवश्य गिरते हैं इसी प्रकार मनुष्य एक दिन मृत्यु को प्राप्त होता है। हे भरत! बहुत पक्का बना हुआ घर भी जीर्ण होकर गिर पड़ता है इसी प्रकार मनुष्य जरा और मृत्यु से लिपटा हुआ है। जो दिन चला गया वह फिर कभी लौट कर नहीं आता! हे भरत! दिन और रात मनुष्य को इस प्रकार लगातार खा रहे हैं, जैसे गर्मी सरोवर के जल को। पिता के शोक से क्या, हे भरत! तू भी और मैं भी घड़ी पल दिन रात मास और वर्षों पर पांओं रखते हुए मृत्यु रूप महा तीर्थ की यात्रा कर रहे हैं। यह मृत्यु प्राणि के साथ ही बैठता साथ ही चलता साथ ही सोता और साथ ही खड़ा रहता है। जैसे नदी के प्रवाह में दो लकड़ियां कुछ समय इकट्ठी होकर फिर अलग अलग हो जाती हैं, इसी प्रकार स्त्री पुत्र भाई

माता धन संपत्ति कुछ काल के लिये मिलकर फिर अलग अलग हो जाते हैं । हे भरत ! सैंकड़ों और सहस्रों हमारे पूर्व पुरुष एक दूसरे के पीछे चले गये हैं और हम उन के पीछे चल रहे हैं, फिर शोक कैसा ? हे कैकेयी सुत ! हमारे पिता सहस्रों यज्ञ और दान तप व शुभकर्म करके वैकुंठ को गये हैं, वह शोक करने योग्य नहीं, इसलिये तू अयोध्या जाकर राज्य कर क्योंकि पिता ने तेरे लिये यह आज्ञा दी है, और मैं भी पिता की आज्ञा का पालन करता हुआ बन में निवास करूंगा । हे भरत ! पिता की आज्ञा भंग करने से नरक में वास होता है, इस लिये तू राज्य का त्याग न कर और जितेन्द्रिय होकर अयोध्या पर शासन कर ।

राम के मुख से ऐसे युक्ति युक्त वचन सुनकर भरत फिर हाथ जोड़ कर बोला हे धर्मात्मन् ! आप के तुल्य संसार में दूसरा कौन हो सकता है, आप न दुख से दुखी होते हैं और न सुख से सुखी । हे राघव ! जिस समय यह सारी दुर्घटना हुई उस समय मैं नाना के गृह में था, मेरी मूर्खा माता ने यह अनिष्ट कर्म किया जिसे मैं पसंद नहीं करता, हे रघुकुल सूर्य्य ! महात्मा दशरथ का पुत्र और धर्माधर्म को जानने वाला होकर मैं किस प्रकार आप के अधिकार को हरण करूं, इस कारण हे भ्रातः ! कैकेयी को नरक में गिरने से, मुझे कलंक लगने से, प्रजा को अराजकता से और माता कौशल्या,

सुमित्रा तथा अन्य सम्बन्धियों को वियोग की अग्नि में जलने से बचाओ । हे नाथ ! क्षात्र धर्म कहां और कहां यह जटा मंडल, हे राजन् ! प्रजा का पालन करना ही क्षत्रिय का धर्म है । सो आप इसी समय पुरोहित और मंत्रियों से राज्य तिलक लेवें । हे रघुनाथ ! विद्या में आयु में और प्रत्येक बात में मैं आप से छोटा हूं, सो किस प्रकार आप के योग्य सिंहासन पर बैठ सकता हूं, इस कारण आज राजतिलक लेकर मेरी माता को लोक निंदा से और पिता को पाप से बचाइए, और यदि आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं करते तो मुझे भी अपने साथ बन में रहने की आज्ञा दीजिए । तब श्री रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया, हे कैकेयी सुत ! देवता और राक्षसों के महा युद्ध में प्रसन्न होकर पिता ने कैकेयी के लिये दो वर दिये, उन्हें तेरी माता ने तेरे लिये मांग लिये और राजा ने दे दिये सो पिता की आज्ञा से मैं चौदह वर्ष बन में रहूंगा और तू राज्य भोगेगा हे भरत ! जिस प्रकार मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल खड़ा हूं, ऐसे ही तुझे भी राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिए, सो तू शासन की बाग हाथ में लेकर शीघ्र अपने पिता को ऋण से मुक्त कर और माता को प्रसन्न कर । हे वीर ! अयोध्या जाकर प्रजा को धीरज दे मैं भी अब दण्डक बन में प्रवेश करूंगा । अब तू मनुष्यों से बसे हुए नगरों का राजा है और मैं पशुओं और अनेक प्रकार के

जंतुओं से भरे हुए बनका राजा हूं। वंश परंपरा से चला हुआ श्वेत छत्र तेरे सिर पर झूलेगा और वृक्ष अपनी छतरियों से मुझ पर छाया करेंगे। बुद्धिमान शत्रुघ्न तुझे राज्य कार्य्य में सहायता देगा और पराक्रमी लक्ष्मण मेरा साथी होगा। हे भरत! हम चारों भाई इस प्रकार सत्य मार्ग पर चलते हुए पिता को ऋण से छुड़ावेंगे। इतना कहकर धैर्य्य धुरीण मनस्वी श्री रामचन्द्र जी चुप होगये। इस अवसर पर राजा के मंत्री जाबालि ने जो कि बोलने में बड़ा चतुर था कहा, कि हे राम! इस संसार में कोई किसी का संबंधी नहीं है भाई बंधु माता पिता पुत्र और स्त्री सब अपने कर्मों से इस संसार में आते और थोड़ा समय अपना अपना स्वार्थ निकाल कर चले जाते हैं। यह संसार तो यात्रियों के क्षणिक विश्राम के लिए सराय है, यहां जिस प्रकार सुख मिले वैसा करना चाहिये। और इस झूठे संबंधों में फंसकर अपने आप को नष्ट करना बुद्धिमान् पुरुष का काम नहीं है। हे राम! पितृ ऋण के इस झूठे विचार को छोड़ कर राज्य को स्वीकार कर। दशरथ चला गया और सब लोग अपने अपने समय पर चलते जायंगे, तुम क्यों व्यर्थ इतना दुख सहन करते हो, हे राजन्! न कोई परलोक है न स्वर्ग है न वेद है न शास्त्र न कोई कर्म्मों का फल देने वाला है, जो कुछ तेरे सामने है, यही है, परलोक के झूठे विचार से इस लोक को दुखमय बनाना

और अगले जन्म के मिथ्या विचार से इस जन्म को कंटकाकीर्ण बना लेना राज पुत्रों के लिये उचित नहीं है।

जाबालि के इन वचनों को सुनकर धर्म पर विश्वास रखने वाले वेद और शास्त्रों के श्रद्धालु परमेश्वर के भक्त श्री रामचन्द्र जी बोले, हे जाबालि ! तुम ने मेरे हित के लिये जो वचन कहे हैं वह वास्तव में अहित रूप हैं। पुण्य से गिरे हुए मर्य्यादा हीन नास्तिक मनुष्य का संसार में कोई आदर नहीं करता। हे मंत्रिन् ! सदाचार के सामने धन सम्पत्ति तुच्छ है। सच्चरित्र पुरुष ही पुरुष कहलाने योग्य है। चरित्र ही से मनुष्य का कुल स्वभाव और गुण परखा जाता है। यदि मैं आर्य्य, वेद शास्त्र का मानने वाला राजपुत्र होकर वेदानुकूल आचार को छोड़ दूं, तो आज ही सब लोग पापी अनाचारी दुश्चरित्र और पतित हो जाएंगे, क्योंकि राजा ही के पीछे सब लोग चलते हैं जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। राजाओं का धर्म सत्य और न्याय ही तो है, ऋषि और देवता सत्य का ही आदर करते हैं, सत्य पर चलने ही से मोक्ष प्राप्त होता है, यह संसार सत्य के आश्रय पर खड़ा है, मिथ्यावादी मनुष्य से संसार ऐसे डरता है जैसे सर्प से, सत्य ही परम धर्म है, सत्य से बढ़कर कुछ नहीं इस लिए मैं तुम्हारे अनार्य्य, असत्य और नरक को ले जाने वाले वचनों को अंगीकार नहीं कर सकता। हे जाबालि ! न लोभ से न मोह से और न किसी

और प्रकार से मैं पिता की आज्ञा भंग कर सकता हूं। मैंने पिता के सामने बन जाने की प्रतिज्ञा की है और उस समय माता कैकेयी प्रसन्न हुई थी, अब उस प्रतिज्ञा को मैं कैसे छोड़ सकता हूं। सो मैं अपने वचन पर अटल रहकर चौदह वर्ष बन में रहूंगा, फल फूल और कंद मूल खाऊंगा, जितेन्द्रिय, निश्छल निष्कपट, और आस्तिक भाव से बनवास के दिन पूरे करूंगा। हे जाबालि! सारी आयु में मेरे पिता ने एक भी ऐसा कर्म नहीं किया, जिससे उन की निंदा हो परंतु मैं उन के इस कर्म की निंदा करता हूं जो तुम जैसे नास्तिक मनुष्य को उन्हों ने मंत्रि पद दिया जिस के तुम योग्य नहीं हो, राम के मुख से ऐसे वचन सुनकर भयभीत हुआ २ जाबालि बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर बोला हे रघुनाथ! मैं नास्तिक नहीं हूं, परंतु भरत के बारंबार कहने पर भी जब आप ने राज्य स्वीकार न किया तो आप के लौटाने के लिये मैंने यह बात कही क्योंकि कोई उपाय शेष नहीं था।

श्री रामचन्द्र जी भरत के बारंबार प्रार्थना करने पर भी जब अयोध्या लौटने को तैय्यार न हुए तो वह नेत्रों में आंसु भरकर बोला, कि मैंने पिता से राज्य नहीं मांगा, नां ही माता को ऐसा करने के लिये कहा है, और नां ही इस घटना का मुझे कुछ भी ज्ञान है, फिर न जाने क्यों मुझे इस कलंक से नहीं बचाया जाता,

इस विशाल राज्य की मैं रक्षा नहीं कर सकता, सारी प्रजा तुम्हारी प्रतीक्षा में इस प्रकार व्याकुल हो रही है जैसे खेतीहर किसान बादल की प्रतीक्षा में, हे रघुनंदन! संसार के पालन और उसको मर्य्यादा में रखने की शक्ति मुझ में नहीं है, सो आप मुझ पर मेरी माता पर और सारे लोक पर दया करें और अयोध्या को लौटें !

इतना कहते कहते भरत धर्मात्मा रामचन्द्र जी के चरणों में गिर पड़ा और रोता हुआ बारंबार प्रार्थना करने लगा। भरत को रोते देखकर श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों में भी आंसु आगये, उन्हों ने उसे उठाकर गोद में बैठाया और फिर मृदुवाणी से कहा हे भरत ! राजाओं के पुत्र जन्म ही से शासन करने की योग्यता रखते हैं बाल सूर्य्य भी प्रकाश हीन नहीं होता और तू तो रघुकुल की धर्मात्मा सन्तान है, स्वार्थ से रहित तू शासन करने के योग्य है। सो तू अयोध्या में जाकर राज्य कर यह राज भक्त और नीति निपुण मंत्री तेरी सहायता करें हे काकुत्स्थ! चन्द्रमा से चांदनी दूर हो जाए, हिमालय पर्वत हिम से रहित हो जाए समुद्र अपनी मर्य्यादा को छोड़ दे, यह हो सकता है, परंतु मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। हे भरत ! माता कैकेयी ने जो कुछ किया है, उस में भगवान् की इच्छा समझना और उसका आदर रखना। तब भरत हाथ जोड़कर बोला हे तात ! यह राज्य आपका है मैं इसे अंगीकार न करूंगा,

परंतु आप यदि अवश्य ही पिता की आज्ञा पालन करना चाहते हैं, तो आपके स्थान में मैं वन मे रहूंगा और इस प्रकार पिता को अपनी माता के ऋण से मुक्त करूंगा।

भरत के यह स्नेह युक्त वचन सुनकर श्री रामचंद्र जी मंत्रियों और पुरवासियों की ओर देखकर बोले, कि मेरे पिता महाराज दशरथ ने जो कुछ कर दिया उसे न मैं उलटा सकता हूं न भरत उलट सकता है। वन में निवास करने की मुझे आज्ञा हुई है, न कि भरत को माता कैकेयी ने जो कहा है वह उचित है और पिता ने जो कुछ किया वह भी उचित है। भरत माता पिता और गुरुका आदर करने वाला, सच्चा सच्ची प्रतिज्ञा वाला परिश्रमी धीर वीर और सर्वगुण संपन्न है वही राज्य करे और पिता को ऋण से मुक्त करे।

श्री रामचंद्र जी की चरण पादुका लेकर भरत का लौटना।

अब भरत बारंबार श्री रामचन्द्र जी को राज्य अंगीकार करने की प्रार्थना करता है और राम उसी प्रकार अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर खड़े राज्य को स्वीकार नहीं करते। बड़े तेज वाले इन दोनों भाईयों के यह उदारता, त्याग और धर्म भाव देखकर सब ऋषि मुनि और प्रजा के लोग आश्चर्य्य में हैं। अंत में कोई उपाय न देखकर भरत रोकर बोला, हे भाई!

यह राज्य आपका है परंतु आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल खड़े हैं, इसलिये आप अपनी चरण पादुकाएं दीजिये, इन्हीं को मैं सिंहासन पर रखूंगा, और स्वयं अयोध्या से बाहर रहकर राज्य की सेवा करूंगा। हे तात ! जब तक आप लौट कर न आएंगें, मैं जटा बाधूंगा, फल फूल खाऊंगा, ब्रह्मचारी रहूंगा, वल्कल चीर पहनूंगा, और चौदहवें वर्ष के अंतिम दिन में यदि आप न आए तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अग्नि में कूद कर अपने प्राण दे दूंगा।

तब श्री राम जी ने " तथास्तु " कहकर उसे कण्ठ से लगाया और अपनी चरण पादुकाएं दे दीं, और फिर शत्रुघ्न को गले लगाकर बोले, हे तात ! माता केकेयी का अपमान न करना, वह मेरी माता है और तेरी भी माता है, तुझे मेरी और सीता की शपथ है, इस बात को न भूलना। इसके अनन्तर माता कौशल्या और सुमित्रा को नमस्कार करके उन्हें धीरज दिया और फिर गुरुओं को नमस्ते कहकर वह धीर वीर विक्रमी महात्मा सत्यवादी राम सब को विसर्जन करके अपनी कुटिया के अन्दर चले गये ।

भरत का अयोध्या में लौटना ।

भाई की चरण पादुकाएं सिर पर धारण करके भरत शत्रुघ्न सहित रथपर सवार हुआ। मंत्री राज माताएं तथा पुरवासी लोग सेना सहित उस रथ के पीछे पीछे

चले और तीन रात्रि में अयोध्या पहुंचे। माताओं को महल में छोड़ कर वह महात्मा गुरु वसिष्ठ को बोला, हे गुरो ! वास्तव में इस राज्य के स्वामी महात्मा राम हैं, परंतु अब उन की चरण पादुकाएं राज्य करेंगी, मैं नगर से दूर नंदि ग्राम में पत्तों की कुटिया में १४ वर्ष निवास करूंगा और वहीं पर राज्य कार्य्य करता हुआ भाई के वियोग का दुख सहूंगा। इतना कहकर वह उसी रथ पर सवार हो मंत्रियों सहित नंदि ग्राम पहुंचा। वहां चरण पादुकाओं को सिर से उतार कर सिंहासन पर रखा और मंत्रियों को बोला, कि यह चरण पादुकाएं राम के प्रतिनिधि रूप में राज्य करेंगी, इस पर श्वेत छत्र की छाया करो, मैं राम के आने तक उनका काम करूंगा, और इस प्रकार वह महात्मा भरत चरण पादुकाओं की छाप से सारा राज्य कार्य्य करने लगा।

अत्रि ऋषि का आश्रम।

भरत के चले जाने पर श्री रामचन्द्र जी का चित्त उदास हो गया और वह लक्ष्मण के प्रति बोले हे वीर ! अब मेरा चित्त यहां नहीं लगता, क्योंकि माताएं, मंत्रि गण, पुरवासी और भरत शत्रुघ्न यहां मुझ से भेंट करके गये हैं, उनकी स्मृति मेरे हृदय पर अंकित हुई हुई व्याकुल कर रही है, और भरत की सेना के हाथियों और घोड़ों की दूर तक फैली हुई लीद से यह स्थान मलिन भी

यह राज्य आपका है परंतु आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल खड़े हैं, इसलिये आप अपनी चरण पादुकाएं दीजिये, इन्हीं को मैं सिंहासन पर रखूंगा, और स्वयं अयोध्या से बाहर रहकर राज्य की सेवा करूंगा। हे तात ! जब तक आप लौट कर न आएंगें, मैं जटा बाधूंगा, फल फूल खाऊंगा, ब्रह्मचारी रहूंगा, वल्कल चीर पहनूंगा, और चौदहवें वर्ष के अंतिम दिन में यदि आप न आए तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अग्नि में कूद कर अपने प्राण दे दूंगा।

तब श्री राम जी ने " तथास्तु " कहकर उसे कण्ठ से लगाया और अपनी चरण पादुकाएं दे दीं, और फिर शत्रुघ्न को गले लगाकर बोले, हे तात ! माता केकेयी का अपमान न करना, वह मेरी माता है और तेरी भी माता है, तुझे मेरी और सीता की शपथ है, इस बात को न भूलना। इसके अनन्तर माता कौशल्या और सुमित्रा को नमस्कार करके उन्हें धीरज दिया और फिर गुरुओं को नमस्ते कहकर वह धीर वीर विक्रमी महात्मा सत्यवादी राम सब को विसर्जन करके अपनी कुटिया के अन्दर चले गये ।

भरत का अयोध्या में लौटना ।

भाई की चरण पादुकाएं सिर पर धारण करके भरत शत्रुघ्न सहित रथपर सवार हुआ। मंत्री राज माताएं तथा पुरवासी लोग सेना सहित उस रथ के पीछे पीछे

चले और तीन रात्रि में अयोध्या पहुंचे। माताओं को महल में छोड़ कर वह महात्मा गुरु वसिष्ठ को बोला, हे गुरो ! वास्तव में इस राज्य के स्वामी महात्मा राम हैं, परंतु अब उन की चरण पादुकाएं राज्य करेंगी, मैं नगर से दूर नंदि ग्राम में पत्तों की कुटिया में १४ वर्ष निवास करूंगा और वहीं पर राज्य कार्य्य करता हुआ भाई के वियोग का दुख सहूंगा। इतना कहकर वह उसी रथ पर सवार हो मंत्रियों सहित नंदि ग्राम पहुंचा। वहां चरण पादुकाओं को सिर से उतार कर सिंहासन पर रखा और मंत्रियों को बोला, कि यह चरण पादुकाएं राम के प्रतिनिधि रूप में राज्य करेंगी, इस पर श्वेत छत्र की छाया करो, मैं राम के आने तक उनका काम करूंगा, और इस प्रकार वह महात्मा भरत चरण पादुकाओं की छाप से सारा राज्य कार्य्य करने लगा।

अत्रि ऋषि का आश्रम।

भरत के चले जाने पर श्री रामचन्द्र जी का चित्त उदास हो गया और वह लक्ष्मण के प्रति बोले हे वीर ! अब मेरा चित्त यहां नहीं लगता, क्योंकि माताएं, मंत्रि गण, पुरवासी और भरत शत्रुघ्न यहां मुझ से भेंट करके गये हैं, उनकी स्मृति मेरे हृदय पर अंकित हुई हुई व्याकुल कर रही है, और भरत की सेना के हाथियों और घोड़ों की दूर तक फैली हुई लीद से यह स्थान मलिन भी

हो गया है । सो अब किसी और स्थान पर चलना चाहिये । ऐसा निश्चय करके श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी सहित वहां से प्रस्थान करके अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंचे । जटा मंडल धारण किये हुए शान्त रूप वृद्ध महर्षि को देखकर उन्हों ने प्रणाम किया । मुनि ने भी पाद्य अर्घ्य आदिक देकर पुत्रों के समान उनका सत्कार किया । तत्पश्चात महर्षि ने अपनी धर्म चारिणी वृद्धा पत्नी अनुसूया से कहा, विदेह राजा की पुत्री जानकी तुम्हारे आश्रम में पधारी हैं, इनका आदर सत्कार करो । ऋषि के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी ने सीता की ओर देखकर कहा, हे राज कुमारि ! माता के समान स्नेह रखने वाली महाभागा अनुसूया के पास जाओ। पति से आज्ञा पाकर जानकी तपस्विनी अनुसूया के पास गई जिस के केश बुढ़ापे से सफेद हो चुके थे और जो वायु से प्रेरित केले के पत्ते के समान कांप रही थी । माता अनुसूया के निकट जाकर वैदेही ने हाथ जोड कर कहा कि, हे देवि ! जनक की पुत्री सीता आप को प्रणाम करती है । सीता के नम्र वचनों को सुनकर अनुसूया ने आशीर्वाद देकर कहा, हे पति की प्यारि ! तुम्हारे धर्म भाव को देखकर मैं अति प्रसन्न हुई हूं, हे भामिनि ! राज महलों, दास दासियों सब प्रकार के ऐश्वर्य्य व सुखों, संबंधियों और अपने मान को त्याग कर जो तू पति के पीछे आई है इस कर्म

मे तू ने तीनों लोकों को जीत लिया है । हे सुंदरि ! जो स्त्री अपने पति से, चाहे वह नगर में हो, बन में हो, सुंदर हो, अथवा कुरूप हो, प्यार करती है, स्वर्ग और बैकुंठ उस के चरणों में आकर पड़ता है। हे जानकि ! सुशील स्त्रियों का पति ही परम देवता है, चाहे वह क्रोधी हो निर्धन हो अथवा कामी हो। हे राजपुत्रि ! बहुत रिवचा करने के पश्चात मैं अंत में इस परिणाम पर पहुंची हूं कि स्त्रियों के लिये इस लोक में और परलोक में पति के समान दूसरा कोई भी संबंधी नहीं है। हे सीते ! कठिन तपस्या जिस प्रकार मनुष्य को स्वर्ग में ले जाती है, इसी प्रकार पति अपने बल से स्त्री को स्वर्ग का सा सुख देता है।

हे जानकि ! जो स्त्री अपने पति के गुणों में दोष देखती है और पति को अपने वश में रखने की इच्छा से नित्य कलह करती है, और व्यर्थ इधर उधर घूमती रहती है, और पति के कहने की परवा न करके मन माने काम करती है वह इस लोक में अपयश को प्राप्त करती और मरकर नरक में गिरती है, हे जानकि ! तू शुभाशुभ कर्म्मों को जानने वाली शास्त्रवित, सदा पति की अनुगामिनी हो, निस्सन्देह तुम ने बैकुंठ को जीत लिया और इस लोक मे अपनी कीर्ति से दशों दिशाओं को उजेला कर दिया है, मैं परमात्मा से यही मांगता हूं कि वह तेरी बुद्धि को ऐसा ही निर्मल बनाये

रखे और तू सदा अच्छे चरित्र वाली, पतिपरायणा हो कर इसी प्रकार अपने स्वामी की सेवा में तत्पर रहे ।

अनुसूया के इस प्रकार उपदेश देने पर सीता ने मुस्करा कर उत्तर दिया, कि आर्य्या ने जो कुछ मुझे उपदेश दिया है वह सत्य है परंतु मैं भी यह जानती हूं, कि पति स्त्री का गुरु होता है और वन में आते समय मेरी साम ने जो शिक्षाएं मुझे दी थीं वह भी भूली नहीं हूं, और उस से पहले मेरी माता ने मेरे विवाह पर जो उपदेश मुझे दिया था, वह सब मेरे हृदय पर लिखा हुआ है ! हे मातः ! तपस्विनी सावित्री ने जिस प्रकार पति सेवा से अक्षय लोक को प्राप्त किया है और जिस पति सेवा से तू भी स्वर्ग को हाथ में किये बैठी है, उसे मैंने अपने रोम रोम में धारण किया हुआ है ।

सीता के इन वचनों से प्रसन्न होकर अनुसूया ने उस के मस्तक को चूमा और प्रसन्न होकर बोली हे बेटी ! जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग, परमात्मा की कृपा से मैं तेरी कामना पूर्ण करने में समर्थ हूं । वन में निवास करने वाली तपस्विनी होकर राजाओं की मनोकामना पूर्ण करने में समर्थ है, इस बात को सोच कर सीता को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह धीरे से मुस्कराकर बोली हे मातः ! यह सब कुछ आप ही का

है। सीता के इस वचन से और भी प्रसन्न होकर अनुसूया ने कहा हे जानकि ! तू सदा सुहागिन रह, यह मैं तुझे दिव्य फूलों की माला जो कभी न कुम्हलायेगी और यह दिव्य वस्त्र जो कभी मैले न होंगे और न फटेंगे और यह अंगराग जिसका रंग कभी फीका न होगा और यह सुगंधित उबटन देती हूं. यह तेरे योग्य है। हे पुत्रि! इन को तू यहीं धारण कर। तब सीता ने उन वस्त्रों माला और भूषणों को धारण किया और अंगराग लगाया । इसके अनन्तर वह अनुसूया के चरणों पर मस्तक निवाकर श्री रामचन्द्र जी के पास गई और उन सब उपहारों की बात कह सुनाई। सीता के इतने बड़े सत्कार को देखकर श्री राम और लक्ष्मण अति प्रसन्न हुए। संध्या काल होने पर राम और लक्ष्मण ने तपस्वियों के साथ बैठकर संध्योपासन किया और जानकी अनुसूया के निकट जाकर सन्ध्या करती भई इस कर्म से निवृत्त होकर अनुसूया जानकी के जी बहलाने के लिये वन की रात्रि का वर्णन करती हुई बोली हे सीते ! देखो सूर्य्य अस्त हो रहा है और रात्रि धीरे धीरे गिर रही है दिन भर चोग्गे के लिए जहां तहां उड़ते हुए पक्षि संध्या काल जानकर अपने अपने घोंसलों में बसेरा करने के लिए आ गये हैं, यह मधुर कलरव उन्हीं का सुनाई दे रहा है। वह देखो बनवासी तपस्वी लोग नदी में स्नान करके भीगे वस्त्र हाथों में लिये जल

कलश उठाये कुटियाओं की ओर आ रहे हैं। ऊपर की ओर अग्नि होत्रों के उठते हुए धूंए से आकाश की शोभा स्याम कबूतर के कंठ की सी हो रही है, वह देखो दूर स्थान पर खड़े हुए वृक्ष अन्धकार में कैसे सघन दिखाई देते हैं, और तपोवन में रहने वाले मृग किस प्रकार हवन की वेदियों के निकट रात्रि भर विश्राम करने के लिये आकर बैठ गये हैं। हे जानकि ! यह देखो किस प्रकार आकाश तारों से जगमगाने लगा है और पूर्ण चन्द्रमा ने किस प्रकार सारे वन को उदय होते ही प्रकाशमान कर दिया है, हे राजकुमारि ! अब तुम जा कर अपने पति की सेवा करो। तब अनुसूया के कथन से सीता श्री रामचन्द्र जी के पास चली गई, और इस प्रकार बड़े सुख से यह रात्रि व्यतीत हुई।

प्रातःकाल संध्योपासन आदिक से निवृत्त होकर श्री रामचन्द्र जी वहां से आगे चलने को तैयार हुए। उस समय ऋषि मुनि और तपस्वियों ने उन्हें विदा करते हुए कहा हे काकुत्स्थ्य! इन भयानक वनों में बड़े उपद्रवी राक्षस रहते हैं, और इतने भयंकर अजगर व सर्पों का इन में निवास है, कि वह मनुष्यों का रक्त पी लेते हैं। इन राक्षसों और सर्पों ने अनेक तपस्वियों को असावधान पाकर खा लिया है आप इन राक्षसों को मार कर तपस्वियों की रक्षा करें। तपस्वियों की इस प्रार्थना को स्वीकार करके श्री रामचन्द्र जी सीता

और जानकी को साथ लेकर उस महा बन में ऐसे प्रवेश करते भये मानों सूर्य मेघ मंडल में प्रवेश करता हो ।

इति श्री कविराज जयगोपाल कृत
बाल्मीकीय रामायणे अयोध्या काण्ड
समाप्त ।

अरण्य काण्ड ।

दण्डक वन में ऋषियों के आश्रम ।

दण्डक बन में प्रवेश करके श्री रामचन्द्र जी ने आश्रमों में जाकर ऋषियों मुनियों और तपस्वियों के दर्शन किये, जो मृगान धारण किये जटा मंडल बांधे सूर्य्य के तुल्य तेजोमय मुख मण्डल वाले थे। जिन के आश्रम बडे सुन्दर स्वच्छ चित्र विचित्र पुष्पों वाले पौधों और फलों के भार से झुके हुए वृक्षों से अति रमणीक और हृदयों को शान्ति देने वाले थे । जहां अनेक प्रकार के पुष्पों और कदली स्तम्भों से अलंकृत यज्ञ शालाएं होम का सुगंधित धूम उगल रही थीं। ऐसे प्रशान्त आश्रमों में श्री रामचन्द्र जी ने धनुष की प्रत्यंचा उतार कर उन ऋषियों के दर्शन किये ! राम लक्ष्मण और जानकी को अपने आश्रमों में पधारते देख वह ज्ञान संपन्न ऋषि मुनि बड़े आश्चर्य को प्राप्त भये और आशीर्वाद देकर उन को अंगीकार किया। उन के सुन्दर रूप और सुडौल देहों को अतृप्त नेत्रों से देखकर मुनियों ने हाथ जोड़ कर कहा, कि हे राघव ! चाहे आप नगर में हों अथवा बन में आप हमारे राजा हैं, तपोधन बनवासी लोगों की रक्षा करना आप का धर्म है। हे रघुनंदन ! काम क्रोध आदि दोषों से रहित, आत्मा के साक्षात्कार में लीन हुए हुए मुनि निरपराध ही राक्षसों

से मारे जाते हैं, उन से हमारी रक्षा करें जैसे गर्भ में बालक की रक्षा की जाती है।

तब फल और मूल से पूजित हुए श्री रामचन्द्र जी ने मुनियों को धीरज देकर उस महा बन में प्रवेश किया जहां सिंह चित्रक आदि हिंसक जंतु और नरमांस के खाने वाले राक्षसों का निवास था।

विराध को मारना।

दण्डक बन में राम अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि एक पर्वताकार राक्षस हाथी के समान चिंघाड़ता हुआ बाघ की खाल धारण किये हुए चला और लहु से भरा मृत्यु के समान मुंह फैलाए भूमि को कंपायमान करता हुआ मृग लोचना सीता पर झपटा और उसे कमर से उठा दूर हट कर बोला, अरे तुम दो मनुष्य एक स्त्री को लिये इस बन में कैसे विचर रहे हो। इस तपो भूमि में तुम अधर्मी कौन हो जो ऋषि मुनियों और तपस्वियों के भेस को कलंक लगा रहे हो। मैं विराध नामक राक्षस इस बनका स्वामी हूं और प्रति दिन मुनियों का मांस खाकर सशस्त्र घूमता रहता हूं, अपने पंजे में फंसे हुए मनुष्य को मैं बिना खाए कभी नहीं छोड़ता परंतु इस पतली कमर वाली सुन्दरी को प्राप्त करके मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। विराध के इन अभिमान से भरे हुए वचनों को सुनकर जानकी भयभीत होकर

कांपने लगी। सीता को इस अवस्था में देखकर श्री रामचन्द्र जी ने तीक्षण बाणों से उस राक्षस को बींध डाला। इन बाणों से व्याकुल होकर विराध ने सीता को भूमि पर रखा और क्रोध से दांत पीसता ठहरो ठहरो कहता त्रिशूल उठाकर राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा, परन्तु बिजली के समान चमकते हुए उस भयंकर त्रिशूल को श्री रामचन्द्र जी ने अपने बाणों से दो टूक कर दिया। यह देखकर उस राक्षस के क्रोध का वार पार न रहा और झुंझला कर उस ने राम और लक्ष्मण दोनों को उठाकर भागना आरंभ किया। अपने पति और देवर को राक्षस के हाथों में फंसे देखकर जानकी दोनों हाथ फैलाकर रोने लगी। तब उस भयंकर बल वाले विराध की हाथी के शुंड के समान एक भुजा को लक्ष्मण ने और दूसरी को श्री रामचन्द्र जी ने मरोड़ कर तोड़ डाला। दोनों भुजाओं के टूट जाने पर कज्जल के समान वह काला राक्षस मूर्छित होकर ऐसे गिर पड़ा जैसे काला मेघ गर्जता हुआ अकस्मात पृथिवी पर गिर जाए। तलवार और बाणों से कटे हुए शरीर वाले इस राक्षस की देह से बहते हुए रक्त को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों किसी पर्वत पर बर्सातो जल वाले नाले बह रहे हैं। तब निस्तेज आंखों से देखता हुआ विराध राम के प्रति बोला, हे नर श्रेष्ठ ! तुम इन्द्र के समान बल वाले हो, तुम्हारे हाथों से इस पापी शरीर

को छोड़ते हुए मुझे शान्ति प्राप्त हुई। हे क्षत्रिय कुमार यहीं पर भूमि खोद कर मुझे गाड़ दे क्योंकि मेरी जाति में यह रीति सनातन से चली आई है। इतना कहकर वह राक्षस मर गया। तब लक्ष्मण ने एक बहुत बड़ा गढ़ा खोदकर उस पापी की देह को उस में दबा दिया।

महर्षि शरभंग का आश्रम।

विराध राक्षस को मार कर श्री रामचन्द्र जी महर्षि शरभंग के आश्रम में पहुंचे और उस तपोधन महात्मा के चरण स्पर्श करके बैठ गये। शरभंग इस समय अत्यन्त वृद्ध हुए हुए मृत्यु की प्रतीक्षा में दिन व्यतीत कर रहे थे। सीता और लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी का आतिथ्य करके वह बोले हे राघव! तेरे जैसे प्यारे अतिथि के दर्शन करके मेरा जीवन सफल हुआ, बहुत काल से मैं इस देह को छोड़ने की इच्छा से यहां बैठा था, आज मैं ब्रह्मलोक में जाऊंगा, तुम ने मेरी और्ध्व दैहिक क्रिया कर देना। इतना कहकर वह तपस्वी जलती हुई अग्नि में अपने आप प्रवेश करके परलोक को चला गया। शरभंग ऋषि के जल जाने पर उस बन के सब ऋषि और मुनि उस आश्रम में एकत्र होकर श्री रामचन्द्र जी के प्रति बोले, हे राघव! आप हमारे राजा हैं। फलाहार करते हुए हम सब तपस्वी लोग कठिन तपस्या में लगे हुए हैं आत्मा का मनन

करते हैं और अपने तपका चौथा भाग राजा के लिए कर देते हैं परंतु आप जैसे पराक्रमी और सत्य संध नाथ के होते हुए भी हम अनाथों के समान राक्षसों से मारे जाते हैं, हे दाशरथि ! पंपा नदी मंदाकिनी और चित्रकूट पर्वत पर निवास करने वाले ऋषि मुनि और महात्मा निर्दोष ही इन उपद्रवी राक्षसों के हाथों पीड़ित किये जाते हैं यह लोग हमारे तप को भंग करते यज्ञों को विध्वंस करते और एकान्त में बैठे हुए समाधिस्थ मुनियों को असावधान पाकर उन्हें मार डालते हैं, सो हम तुम्हारी शरण आए हैं, राक्षसों से हमारी रक्षा करो, हम प्रार्थना करते हैं, हे राम ! इस दुख और असह्य अपमान से हमें बचाओ ।

तपस्वियों के इन वचनों को सुनकर राम ने उत्तर दिया, हे मुनि लोगो ! आप मुझे आज्ञा देवें, जो कुछ कि मैंने करना है । पिता की आज्ञा से मैं इस महा वन में आया हूं, मैं इन वनों को राक्षसों से शून्य कर दूंगा । और इस प्रकार अपने बनवास के दिनों को सफल करूंगा । हे तपस्वियो ! मैं आप के सन्मुख जिन में बहुत से ब्राह्मण पद को प्राप्त कर चुके हैं प्रतिज्ञा करता हूं कि पृथिवी को राक्षसों से रहित कर दूंगा, तुम सब मुझे आशीर्वाद दो जो कि वास्तव में सफलता की कुंजी है ।

इस प्रकार राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा करके श्री रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण ऋषि के

आश्रम में आये । वहां वृद्ध महात्मा जटा भार से शोभायमान तेजस्वी मुख मंडल वाले परम योगी महर्षि सुतीक्ष्ण को देखकर श्री रामचन्द्र जी ने उसके चरण छुए । धर्म ध्वजी श्री रामचन्द्र को देखकर सुतीक्ष्ण ने बड़े प्रेम से उसे अपने अंक में भर लिया और पाद्य अर्घ्य तथा फलों से उनका सत्कार किया । फिर सूर्य्य अस्त होने वाला देखकर श्री रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता ने महामुनि सुतीक्ष्ण के साथ बैठकर सन्ध्योपासन किया और रात्रि भर बड़े सुख से वहां विश्राम किया। प्रातःकाल होने पर श्री रामचन्द्र जी मुनि की परिक्रमा करके बोले हे महामुने ! दण्डकारण्य में निवास करने वाले ऋषियों और मुनियों के दर्शन करने की हमारी इच्छा है, जो सैंकड़ों और सहस्रों वर्ष से फल फूल आहार करते हुए सिद्ध हो गये हैं जिन के दर्शन मात्र से ही जन्म जन्मान्तर के पाप भस्मी भूत हो जाते हैं, सो अब हमें चलने की आज्ञा दीजिये । तब सुतीक्ष्ण ऋषि ने बड़े प्रेम से विदा करते हुए कहा हे राम ! तेरे मार्ग शुभ हों, यह मुनि लोग जो कि ज्ञान और भक्ति के अथाह सागर हैं उन के दर्शन कर और यह दण्डक बन जो कि फूलों और फलों के पेड़ों से भरा हुआ है, जिस में नाना प्रकार के मृग पशु और पक्षि निवास करते हैं, और मुनियों की संगति से जो शान्त और निर्भय होकर सुख से विचरते हैं, जिस में स्वच्छ

और निर्मल जल वाले, कमलों से भरे हुए अनेक प्रकार के जल चरों से युक्त शोभायमान सरोवर हैं, जिस में पर्वतों से निकलते हुए जल के झरने अपने शब्द से अनहद नाद कर रहे हैं और जिस में कोयलों की प्यारी कूक और मोरों के शब्द हृदय को गद्गद प्रसन्न करते हैं ऐसे दण्डक बन में भ्रमण करके सीता और लक्ष्मण सहित अपने बनवास को सार्थक कर, हे राम बड़े भाग्य से ऐसे बनों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

सुतीक्ष्ण ऋषि से विदा हो कर श्री रामचन्द्रजी आगे चले तो जानकी मधुर शब्दों में बोली हे नाथ! आप वेद और शास्त्रों के जानने वाले धर्म पर दृढ़ और दयालु हैं परंतु इस समय आप ऐसा काम करने में प्रवृत्त हुए हैं जो नहीं करने योग्य है। हे नाथ! मनुष्य के यह तीन दोष हैं जो इच्छा से उत्पन्न होते हैं। और वह तीनों ही करने के योग्य नहीं हैं। उनमें से पहला झूठ बोलना है सो वह न कभी आपने बोला और न बोलोगे दूसरा दोष परस्त्री गमन है अथवा पराई स्त्री की चाह जो धर्म को नाश करने वाली और लोक परलोक को बिगाड़ने वाली है सो यह तो आप में असंभव है, क्योंकि आप सदा मुझ से अनुराग रखते हो और एक पत्नि-व्रत धारण किये हुए सदाचारियों में श्रेष्ठ प्रसिद्ध हो। आप जितेन्द्रिय हो और परस्त्री को देखना तो क्या मन में भी चिंतन भी नहीं करते हो, परंतु हे स्वामिन्!

यह तीसरा दोष रौद्रता तुम्हें लगना चाहता है। हे आर्य्यपुत्र! आपने तपास्वियों के सामने राक्षसों को मार डालने की भीषण प्रतिज्ञा की है उसी में मैं दोष देखती हूं। हे नाथ! लक्ष्मण सहित आपने इस बन में धनुप चढ़ा कर प्रवेश किया है, इस में मैं आपका कल्याण नहीं देखती हूं। हे राघव! शस्त्र धारी होने पर क्षत्रिय का तेज और बल बढ़ जाता है सो ऐसा न हो कि इन बेचारे राक्षस जाति के बनचरों की जिन्होंने तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं किया वृथा ही हत्या कर डालो, यही विचार कर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है और मैं बन में प्रवेश करना नहीं चाहती। हे आर्य्य पुत्र! किसी बन में तपस्वि-धर्म में प्रवृत्त एक ऋषि रहता था वह फलाहार करता हुआ परमात्मा की भक्ति किया करता था। उसकी कठिन तपस्या से भयभीत हो कर इन्द्र ने उस के तप को भंग करना चाहा। इस विचार से इन्द्र खड्ग हाथ में ले कर क्षत्रिय के वेश में उस के पास आया और नम्र हो कर ऋषि के प्रति बोला हे महामुने! यह मेरा खड्ग आप अपने पास रखिए, यह मेरी धरोहर है, आवश्यकता पड़ने पर मैं आप से ले जाऊंगा। तब ऋषि ने उस खड्ग को अपने पास रख लिया उसकी रखवाली के लिए वह सदा उसे अपनी कमर से बांधे रहता। इस प्रकार नित्य खड्ग धारण करने से उन के मन में तामस भाव आगया और बुद्धि

रौद्र हो गई फल यह हुआ कि तप छूट गया और जहां तहां जीवों की हत्या करने लगा और वह अंत में नरक में जा गिरा । हे आर्य्यपुत्र ! यह एक प्राचीन कथा है । हे सूर्य्यकुलावतंस ! शस्त्र की संगति और अग्नि की संगति एक समान होती है, यह बात मैं आप के कल्याण के लिए सिखलाती नहीं वरन् याद कराती हूं क्योंकि आप सब धर्मों के जानने वाले हैं । आप और लक्ष्मण सदैव धनुष उठाए फिरते हैं इस लिए कहती हूं कि किसी निर्दोष राक्षस की हत्या का पाप न लेना क्योंकि उन्होंने आप के प्रति कोई वैर भाव नहीं दिखलाया और विना वैर के किसी को मार डालने से लोक में निंदा होती है । वनों में धनुष धारण करने का प्रयोजन केवल आर्तों की रक्षा करना ही होता है । हे नाथ ! कहां वन और कहां शस्त्र कहां तपस्वि धर्म और कहां प्राणियों की हत्या यह परस्पर विरुद्ध है और आपने वन में रह कर तपस्वि धर्म को ग्रहण किया है सो उसी का पालन कीजिये । बुद्धिमान लोग अत्यंत क्लेश सहन करके भी धर्म का साधन करते हैं संसार में सुख से कभी सुख प्राप्त नहीं होता, सदैव दुख सहन करने से ही सुख मिलता है ।

सीता के मुख से यह वचन सुन कर श्री रामचन्द्र जी बोले हे प्रिये ! तूने मेरे हित के लिए ही यह सब कहा है और तेरा यह वचन कि आर्त की रक्षा करना ही

धनुष धारण करने का एक मात्र प्रयोजन है। सो हे जानकि ! यह ऋषि मुनि और तपस्वी लोग तुम्हारे सन्मुख मेरे पास आये और उन्होंने कहा कि हम राक्षसों के हाथों दुखी हैं, सो मैंने उन आर्तों की रक्षा के लिए ही यह प्रतिज्ञा की है और यह क्षत्रिय का धर्म है। हे सीते ! ब्राह्मणों के सन्मुख की हुई प्रतिज्ञा को अब मैं झूठा नहीं कर सकता। मुझे सत्य प्राणों से भी प्यारा है। मैं अपने प्राण त्याग सकता हूं, लक्ष्मण को त्याग सकता हूं और तुझे भी त्याग सकता हूं परंतु सत्य को नहीं त्याग सकता। हे जनक दुलारि ! ब्राह्मणों की सेवा तो मुझे बिना कहे ही करनी चाहिए क्या फिर वचन दे कर। हे प्रिये ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं तूने अपने कुल के सदृश ही मेरे हित के लिये यह वचन कहे हैं।

इतना कह कर श्री रामचन्द्र जी सीता और वीर लक्ष्मण सहित अगस्त्य मुनि के दर्शन के लिये चले। अनेक बनों में घूमते फिरते श्री रामचन्द्र जी को दश वर्ष व्यतीत होगए इस काल में उन्होंने अनेक आश्रमों में निवास किया कहीं एक वर्ष कहीं कहीं दो वर्ष कहीं चार महिने कहीं दस महिने परन्तु अगस्त्य मुनि के आश्रम को न ढूंढ सके अंत में वह फिर सुतीक्ष्ण ऋषि के पास आए और उन से कहा कि हे महामुने ! दस वर्ष बनों में घूम फिर कर मैंने पत्ता पत्ता छान मारा

परन्तु अगस्त्य जी के दर्शनों की इच्छा पूरी नहीं हुई, उनका पता बतलाईये । तब प्रसन्न हो कर सुतीक्ष्ण मुनि ने कहा हे राम ! मेरे आश्रम से १६ कोस दक्षिण की ओर जाओ वहां बड़ा शोभायमान पिप्पली का बन है, जिस में असंख्य पुष्प बारहों मास खिले रहते हैं, जो बन पक्षियों के मधुर कलरव से सदैव गूंजता रहता है और जहां हंस सारस बगुले चकवे सुन्दर और निर्मल जलों वाले सरों पर खेलते रहते हैं, उस रमणीक बन में अगस्त्य जी के भाई का शांत आश्रम है वहां जाकर उनके दर्शन करना और कुछ दिन वहां निवास कर के प्रकृति की शोभा देखना फिर वहां से दक्षिण दिशा की ओर वन के किनारे किनारे चलते जाना वहां से चार कोस की दूरी पर महर्षि अगस्त्य का आश्रम है जिस के दर्शन मात्र से सब पाप क्षय हो जाते हैं ।

———:०:———

श्री रामचन्द्रजी का अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाना ।

सुतीक्ष्ण ऋषि की परिक्रमा करके श्री रामचन्द्र जी बनों में पर्वतों और नदियों की शोभा देखते हुए सांयकाल को अगस्त्य ऋषि के भाई के आश्रम में पहुंचे । उस मुनि ने श्री रामचन्द्रजी का बड़े प्रेम और आदर के साथ सत्कार किया । रात्रि भर वहां विश्राम करके प्रातः काल मुनि से विदा हो वह अगस्त्य जी के आश्रम की ओर चले । मार्ग में पुष्पों से भरी हुई

लताओं से वेष्टित सहस्रों वृक्षों को देखा । मदमत्त हाथियों की शुण्डों से तोड़े हुए सैंकड़ों वृक्षों को जहां तहां गिरे पाया और अनेक बानरों को शाखाओं पर झूमते देख तथा पक्षियों के मीठे स्वरों को सुन कर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण के प्रति बोले हे वीर ! देखो यहां के वृक्षों के पत्तों की हरियाली कैसी घनी और चिकनी है कोई जीव जन्तु एक दूसरे को नहीं मारता । महात्मा अगस्त्य जी ने इस वन को अपने तपोबल से कैसा शांत बना दिया है उन के तप के प्रभाव से राक्षस इस वन में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं कर सकते और वह राक्षस बुद्धि का त्याग कर के देवताओं के समान जीवन बिता रहे हैं । हे लक्ष्मण ! इस समय सब ऋषियों और मुनियों में अगस्त्य की पदवी सब से ऊंची है । इस वन में देवता राक्षस यक्ष गंधर्व नाग सब जातियों के मनुष्य धर्म पर चलते हुए परस्पर प्रेम से निवास करते हैं । इस शांत वन में कोई चोर दस्यु मिथ्यावादी अथवा कपटी नहीं रहता सो तू आगे जा कर महर्षि को मेरे आने की सूचना दे ।

बड़े भाई की आज्ञा पा लक्ष्मण ने आश्रम में जा कर मुनि के शिष्य को कहा कि हे सौम्य ! चक्रवर्त्ती महाराज दशरथ के ज्येष्ट पुत्र रघुकुल अवतंस श्री रामचन्द्र जी अपनी पत्नी जानकी सहित महामुनि अगस्त्य के दर्शन के लिए आएं है मेरी ओर से तू उनको यह

सूचना दे ।

जब शिष्य ने जाकर लक्ष्मण का यह निवेदन अगस्त्य मुनि को कहा तो वह सुनते ही गद्गद प्रसन्न हो कर शिष्य से बोले, राम की बाट देखते देखते मेरे नेत्र थक गए, धन्य हूं मैं जो आज कूआ प्यासे के पास आया है, हे वत्स ! शीघ्र जा कर राम लक्ष्मण और जानकी को ले आओ उन के लिए पूछने की क्या आवश्यता थी। तब सुन्दर और चित्र विचित्र हरिणों से शोभायमान उस शांत आश्रम में श्री रामचन्द्र जी प्रविष्ट हुए। उधर अगस्त्य मुनि भी उन के स्वागत के लिए कुटिया से बाहर निकले। सूर्य्य के समान उस तेजोमय मुख वाले महर्षि को देख कर श्री रामचन्द्रजी का श्रद्धा से सिर झुक गया और वह लक्ष्मण व जानकी सहित हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। तब मुनि ने बड़े प्रेम से उन्हें बैठाया और पाद्य अर्घ्य तथा फल फूलों से उनका सत्कार करके कहा हे राम ! चिरकाल से मेरे नेत्र चकोर तुम्हारे चन्द्रमुख के दर्शनों के लिए तरस रहे थे आज भाग्यसे मैं तुझ धर्मात्मा सत्यवादी, योद्धा और नीतिमान प्यारे अतिथि को अपने आश्रम में देखता हूं. यह कहकर महामुनि अगस्त्य ने राम के प्रति कुछ शस्त्र देते हुए कहा, हे राघव ! देवताओं और असुरों के महा संग्राम के समय के पड़े हुए यह अस्त्र शस्त्र मैं तेरे लिये देता हूं, जिन्हें ग्रहण करने के तू योग्य है। हे सूर्य्य कुल सूर्य्य ! यह दिव्य धनुष

जिसे विश्वकर्मा ने स्वर्ण और वज्र से बनाया है, मैं तेरे लिए देता हूं, और यह बाण जो कभी व्यर्थ नहीं जाते, जिन की चमक सूर्य्य की रश्मियों के समान है और ब्रह्मा से दिये हुए हैं मैं तेरे लिए देता हूं, और इन्द्र से दिये हुए अग्नि के समान जलते हुए बाणों से भरे हुए यह दो भत्थे और यह कभी न टूटने वाला खड्ग मैं तेरे अर्पण करता हूं। हे राघव! इन्हें धारण करके इन्द्र के समान तू अजेय होगा। हे महाभाग! तुम्हारे दर्शनों से मैं कृत्य कृत्य हुआ। इस वीर लक्ष्मण के दर्शन से भी जिस के कंधे संसार को जीतने के लिये ही बनाए गए हैं, मैं प्रसन्न हुआ हूं। और यह जानकी जिसका पति प्रेम संसार में आदर्श है, जिस ने कभी दुख नहीं देखा था और केवल पति प्रेम से ही छाया के समान पीछे पीछे चली आई है और अब रास्ते की थकावट से पीड़ित दिखाई देती है, इस के दर्शन से तो पापों का क्षय हो जाता है। हे राम! प्रातः काल से इन बीहड़ बनों में चलते चलते थकावट हो जाती है, अब तुम विश्राम करो। और बनवास काल को यहीं व्यतीत करो।

मुनि के मुख से स्नेह भरे यह वचन सुन राम ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया हे मुनि श्रेष्ठ! बड़े यत्न से भी राजा और महाराजा जिन के दर्शन नहीं कर पाते हैं, आज मैं उनको अपने इन नेत्रों से देख रहा हूं, मुझ से बढ़कर आज संसार में कौन भाग्यवान् है, हे तपोधन!

भाई और स्त्री सहित मैं आपका आभारी हूं, आज की रात्रि मैं यहां विश्राम करूंगा परंतु बनवास के शेष दिन व्यतीत करने के लिए कोई ऐसा स्थान लाओ जहां फूलों फलों वाला सघन बन हो, और निर्मल जल से युक्त हो, हे महामुने ! वहां मैं आश्रम बनाकर सुख से रहूंगा। तब अगस्त्य मुनि ने कुछ काल विचार करके उत्तर दिया हे रघुनंदन ! मेरे इस आश्रम को तुम अपना ही समझो, आप के चरणों की धूलि से यह कुटिया पवित्र हुई, आप के यहां निवास करने से मैं समझता कि मेरे भाग्य उदय हुए परंतु यदि तुम एकान्त में आश्रम बनाना चाहो तो यहां से आठ कोस दूर पंचवटी नामका महा बन है, जो फलों फूलों से भरा हुआ अनेक प्रकार के मृग और पक्षियों से युक्त है, जहां पर्वत से उतर कर अमृत के समान ठंडे जल वाली गोदावरी नदी सदा बहती रहती है, और जिस की शोभा को देखने के लिए देवता भी तरसते हैं, हे राघव! वहां तू आश्रम बनाकर पिता की आज्ञा का पालन कर। वहां सीता प्रकृति की शोभा को द्विगुणित करेगी। वह स्थान अति रमणीक है, सुंदर, स्वच्छ है और पवित्र है। यह जो मधूक बन सामने दिखाई देता है इस के उत्तर में जाना, उस के आगे पर्वत आएगा उस के समीप ही पञ्चवटी का मनोहर बन आएगा।

तब संध्योपासन करके वह रात्रि उन्होंने वहीं व्यतीत की, और बड़ी भोर अगस्त्य मुनि से विदा होकर लक्ष्मण

और जानकी सहित पञ्चवटी की ओर चले ।

—:०:—

श्री रामचन्द्र जी की जटायु से भेंट ।

अब आगे आगे राम पीछे लक्ष्मण और मध्य में जानकी जी पञ्चवटी की ओर चले। उस समय वह तीनों इस प्रकार शोभायमान हुए मानों जीव और ब्रह्म के मध्य में माया का आवरण होता है। कंधों पे धनुष बाण धारण किए चित्र विचित्र पुष्पों की सुगन्धि में बसे हुए बनों को पार करते हुए उन्हों ने मार्ग में एक पर्वताकार बड़े बलवाला मनुष्य देखा। लक्ष्मण ने उस भीम काय देह धारी को देखकर राक्षस समझा और धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर उससे पूछा. तुम कौन हो ! लक्ष्मण के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उस ने दोनों हाथ जोड़ कर श्री रामचन्द्र जी को कहा हे दाशरथि ! दण्डक बन में तुम्हारा आगमन सुनकर कई वर्ष से तुम्हारी राह देखता यहां पड़ा हूं. हे वीर ! तू मुझे अपने पिता का मित्र समझ। मेरा नाम जटायु है और मेरी जाति गृद्ध है. अरुण का पुत्र हूं। हे राम ! बन में अपने साथ रहने की मुझे आज्ञा दो मैं सदा तुम्हारी सहायता करता रहूंगा, जब तुम और लक्ष्मण बन में विहार करने के लिए जाओगे तो मैं जानकी की रक्षा किया करूंगा। इतना कहकर जटायु ने राम और लक्ष्मण को छाती से लगाया और फिर उन के साथ साथ पञ्चवटी की ओर चला ।

श्री रामचन्द्र जी का आश्रम बनाना।

पञ्चवटी में पहुंच कर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के प्रति बोले, हे वीर! अगस्त्य मुनि का बतलाया हुआ पञ्चवटी बन यही ह, यह देखो सदा पल्लवित और पुष्पित रहने वाला बन कैसी शोभा दे रहा है यहीं पर कोई अच्छा सा स्थान देखकर आश्रम बनाओ। हे लक्ष्मण! यह देखो निर्मल जल वाली गोदावरी, जिस के तटों पर पुष्पों से लदे हुए वृक्ष पर्वतीय वायु के झोंकों से झूम रहे हैं, जिसमें हंस जलकुक्कुट और चक्रवाक क्रीड़ा कर रहे हैं, जिस के तीर पर मृगों के झुंड विहार कर रहे हैं, और जो धीमें धीमे बह रही है। और यह देखो ऊंचे ऊंचे हरे हरे पर्वत फलों के भार से झुके हुए वृक्षों से कैसी शोभा दे रहे हैं, इस के अनेक स्थान स्वर्ण चांदी और तांबे आदिक धातुओं से कैसे चमक रहे हैं, इन के पीले सफ़ेद और लाल प्रकाश से यह पर्वत शृंगार किए हुए हाथियों के समान देख पड़ते हैं, और यह बन भी ताल तमाल कटहल नाग केशर आम अशोक देवदारु चंदन कदंब बड़ शमी धावा केवड़ा मोतिया चंपक मौलसिरि गेंदा रबेल आदिक पौधों और वृक्षों से भरा हुआ कैसा सुहावना प्रतीत होता है सो हे वीर! इसी पवित्र स्थान पर आश्रम बना कर रहना उचित है।

तब बड़े भाई की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने तत्काल

कुटिया बनानी आरंभ करदी, खनित्र से खोद पहले भूमि को समतल बनाया और फिर मिट्टी की दीवारें बना कर शमी की लकड़ीयां उन पर डाल बन के घास फूस से उस पर छत डाली। इस के पश्चात् उसी प्रकार की एक और सुन्दर पत्तों की कुटिया बनाई फिर सुंदर खंभों वाली यज्ञ की वेदी बनाई और पश्चात कंटक मयी बाड़ आश्रम के चारों ओर बांध दी। इस प्रकार आश्रम बनाकर श्री रामचन्द्र जी को उसे देखने के लिए कहा। श्री रामचन्द्र जी और जानकी उस आश्रम को देखकर अति प्रसन्न हुए और लक्ष्मण को कंठ से लगाकर बोले हे वत्स! तुम्हारे जैसे पुत्र के होते हुए मेरे लिए अब बन घर से अधिक सुखदाई हो गया है। इस के पश्चात् हवन यज्ञ करके श्री रामचन्द्र जी ने जानकी सहित कुटिया में प्रवेश किया। लक्ष्मण तन्मय होकर उन की सेवा करने लगा और यह तीनों उस आश्रम में दिव्य सुख को प्राप्त करते हुए निवास करने लगे।

शरत काल के दो मास सुख से बीत गये और हेमंत ऋतु आ गई। एक दिन सूर्य्योदय के समय श्री रामचन्द्र जी जानकी सहित गोदावरी नदी पर स्नान के लिए चले। पीछे पीछे लक्ष्मण घड़ा उठाए चला। जब नदी पर पहुंचे तो कठिन शीत और ठंडे वायु से शरीर सुन्न होने लगा, उस समय लक्ष्मण तीर पर घड़ा रखकर बोला, हे महाबाहो! अब वह ऋतु आ गया है जो आप को

अति प्यारा है । यह ऋतु क्या है मानों वर्ष का गहना है । देखिये शीत कैसा कठोर पड़ने लगा है, पृथिवी अन्न से भरपूर हो रही है । आज कल जल नहीं सुहाता पर अग्नि प्यारा लगता है । नगरों के लोग यज्ञों में धूमधाम से अन्न की पूजा कर रहे हैं । सारे भारत देश में दूध दही माखन और घृत की नदियां चलने लगी हैं । राजे महाराजे शत्रुओं को विजय करने के लिए चढ़ पड़े हैं, और सूर्य्य के दक्षिणायन होने से उत्तर दिशा तिलक हीन महिला के समान शोभा हीन हो रही है । सूर्य्य के दूर हो जाने से हिमालय हिम के अंबारों से अपने नाम को सार्थक कर रहा है । आज कल के दिन मध्याह्न काल में घूमने के लिए अच्छे हैं, सूर्य्य का ताप कैसा प्यारा लगता है, और छाया कैसा दुख देती है । मंद तेज वाले भगवान् भास्कर और ओस से ढका हुआ सारा वन पाले से पशु पक्षियों को जड़ बना रहा है । हे राम ! आज कल रात्रियां कैसी ठंडी, बर्फ से धुंधली और लंबी हो गई हैं, कि पाले का मारा मनुष्य सिकुड़ता जाता है पर प्रभात होने में नहीं आती । इस समय कुहर के छा जाने से चन्द्रमा ऐसा प्रतीत होता है जैसे श्वास लगने से धुंधला दर्पण होता है । देखिये, यद्यपि आज पूर्णमासी की रात्रि है परंतु चन्द्र देव की ज्योत्स्ना कैसी मलिन सी हो रही है । हे महाभाग ! सीता का मुख भी प्रचंड धूप और कठोर शीत को वर्षों तक खुले बनों

में सहन करने से इसी चन्द्रमा के समान श्याम वर्ण हो गया है। बर्फ़ से मिला हुआ यह पश्चिमी वायु जो आगे से भी दुगना ठंडा हो गया है किस प्रकार अपने सर्द झोंकों से शरीर के रोंगटे खड़े करता है, हे नाथ! जौ और गेहूं से भरे हुए इन खेतों में किस प्रकार ओस के बिन्दु लटक रहे हैं, मानों प्रकृति ने मोतियों की वृष्टि करदी है। सुनहले रंग के यह धान्य के खेत कैसी शोभा दे रहे हैं। हे तात! सूर्य्य कितना ऊपर आगया है. परन्तु पाला अभी घटने का नाम नहीं लेता, और प्रभात काल की धुंध में लिपटा हुआ सूर्य्य किरणों के न होने से पीली छटा वाला चन्द्रमा ही तो देख पड़ता है। यह देखिये हरे हरे घास से जो ओस से गीला हो रहा है पटी हुई वन की भूमि कैसी सुहावनी देख पड़ती है और वह देखिये जंगली हाथी जो यद्यपि प्यास से पीड़ित है परन्तु अत्यन्त शीतल जल के स्पर्श करते ही किस प्रकार सूंड को सिकोड़ रहा है और यह जल में क्रीड़ा करने वाले सारस वक और चकवे इस प्रकार चुप चाप नदी के तीर पर बैठे हैं जैसे युद्ध से भयभीत हुए हुए कायर मनुष्य चुप चाप अलग खड़े रहते हैं। कोहरे और अन्धकार में डूबा हुआ यह वन ऐसा प्रतीत होता है मानों चादर लपेट कर सो रहा है इस समय कोहर से नदी का जल ढका हुआ है। किनारे की ओस के जल से भीगी हुई रेत पाओं को घायल

कर रही है। हे तात ! इधर देखिए सर्दी से कमलों के पत्ते झड़ गये हैं और केवल ठूंठ खड़े रह गये हैं। हे पुरुषोत्तम ! अयोध्या के बाहर भाई भरत इस समय तुम्हारे वियोग का दुख सह रहा है जो इस पाले से भी अधिक दुखदायी है, धन्य है वह कैकेयी-सुत जो राज्य पाकर भी राज्य के सुखों को छोड इस कठोर हेमंत ऋतु में भूमि पर सोता है और फलाहार कर के तपस्वि जीवन व्यतीत करता है। निस्संदेह वह भी इस समय आप के समान जटा मंडल बांधे कमण्डल हाथ में लिए अपने प्रधानों सहित सरयु के अत्यन्त शीतल जल में स्नान करता होगा। हा देव ! सुख और ऐश्वर्य में पला हुआ सुकुमार देह वाला भरत किस प्रकार रात्रि के अवसान में बर्फ के सदृश जल में स्नान करता होगा हे तात ! कमल के समान नेत्रों वाला, श्यामवर्ण, सुंदर रूप वाला, पतली कमर वाला, लंबी भुजाओं वाला मीठा बोलने वाला भरत सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों पर लात मार कर आप की भक्ति में लीन है। अहो आश्चर्य्य ! उस ने वैकुण्ठ को जीत लिया। हे तात ! लोग कहते हैं, कि मनुष्य माता के स्वभाव पर जाता है पिता के नहीं, परंतु भरत ने यह बात उल्टी कर दी, क्योंकि वह अपनी क्रूर स्वभाव माता के पीछे नहीं गया जो उसके हमारे और सारे देश के दुख का कारण है।

लक्ष्मण के मुख से कैकेयी की निंदा सुन कर

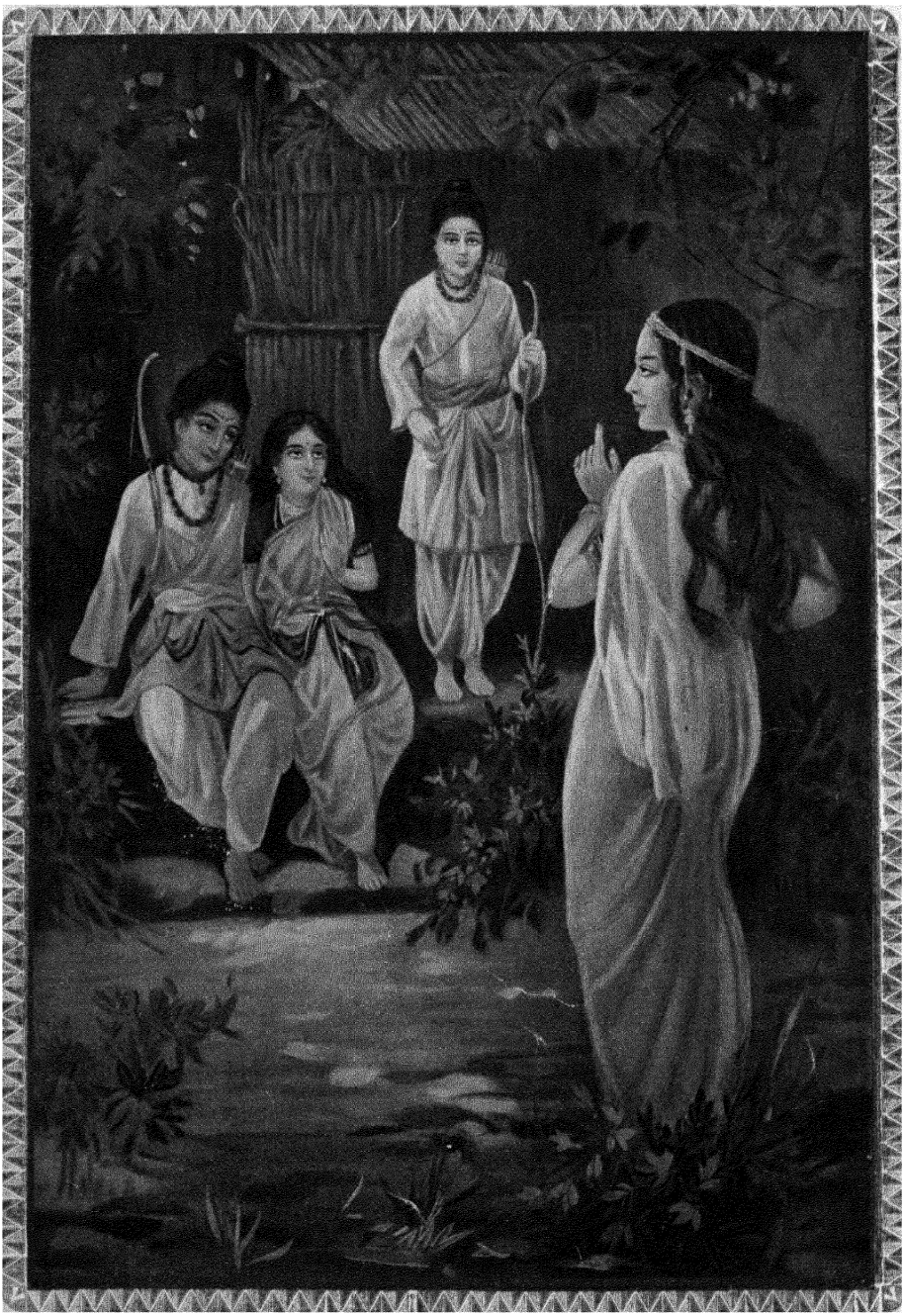

CALCUTTA
ART PO WORKS
LAHORE

शूर्पणखा का आना

श्री रामचन्द्रजी ने कहा हे वीर ! कैकेयी की निंदा मत करो क्योंकि वनवास में मैंने तपस्वि धर्म को ग्रहण किया है और तपस्वियों के लिये पर निंदा करना और सुनना अनुचित है। कैकेयी जैसे भरत की माता है वैसे ही मेरी है और मैं तो भरत के उन नम्र मधुर और प्यारे वचनों को ही स्मरण करता हूं जो उस ने चित्रकूट में आकर मेरे सन्मुख कहे। हे लक्ष्मण! वह दिन कब आएगा जब हम चारों भाई एक दूसरे के गले मिलेंगे। इस प्रकार भरत के वियोग में व्याकुल होते हुए श्री राम और लक्ष्मण ने जानकी सहित हिम के समान शीतल जल वाली गोदावरी में स्नान किया।

—:-०-:—

शूर्पणखा का नाक कान काटना।

श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी स्नान कर के आश्रम में पहुंचे तो अकस्मात एक राक्षस कन्या वहां आई और तेजस्वी मुख मंडल वाले, लंबी भुजाओं वाले मस्त हाथी के समान चाल वाले, कमल नयन विशाल हृदय, सुकुमार नीलांबुज वर्ण शरीरवाले कामदेव के समान सुंदर राम को देख कर काम से मोहित हो गई और निकट आकर बोली तुम कौन हो ? और इस बन में जहां राक्षसों का राज्य है, किस लिये आए हो, तुम्हारा तपस्वियों का तो वेश है परंतु

धनुष कंधों पर रखे हुए स्त्री सहित घूमते हो, यह दोनों विरुद्ध धर्म देख कर मुझे आश्चर्य्य हुआ है सो तुम अपना वृत्तान्त कह कर मेरे विस्मय को दूर करो। शूर्पणखा के इस प्रकार पूछने पर छल रहित श्री रामचन्द्र जी बोले, हे राक्षस कन्ये! मैं चक्रवर्ती महाराजा दशरथ का पुत्र राम नाम से विख्यात हूं, यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है और यह मिथिला नरेश राजा जनक की पुत्री मेरी स्त्री सती सीता है। पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष वन में निवास करने के लिये आया हूं। हे राक्षस-पुत्रि! अब तू बतला कि किस कारण तू यहां आई है? क्या तेरा नाम है, और इन भयंकर वनों में किस प्रयोजन से अकेली घूमती फिरती है? तब काम से पीड़ित हुई हुई राक्षस कन्या ने उत्तर दिया हे राम! रति के समान सुंदर मुख वाली मैं निर्भय हो कर सदा इन वनों में विचरती रहती हूं। तीनों लोकों के जीतने वाले लंकपति रावण की मैं बहन हूं। बड़े डील वाला, बल के मद में सदा सोया रहने वाला कुंभकरण और विभीषण यह दोनों भी मेरे भाई हैं जो लंका ही में निवास करते हैं और हे राम! खर और दूषण जिनके पराक्रम के सामने ठहरने वाला संसार में कोई विरला ही पुरुष होगा वह भी मेरे भाई हैं जो इसी पंचवटी बन के स्वामी हैं। हे राम! तेरे रूप लावण्य और सुडौल शरीर को देख कर मेरा मन मेरे हाथ से

जाता रहा है और हृदय से तुझे अपना पति मान चुकी हूं सो आप मेरा हाथ स्वीकार कर के चिरकाल तक मेरे साथ सुख से रहें। अहो भाग्य हैं हे राम ! तेरे, जो तीन लोक के राजा रावण के साथ अनायास ही तेरा संबंध हो गया है और वह स्त्री तुझे अपना हृदय दे चुकी है जिसकी प्राप्ति के लिये सैकड़ों राजा और राजकुमार प्राण देने को उद्यत हैं। उस बड़े पेटवाली कुरूप राक्षसी के मुख से यह वचन सुन कर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे भद्रे ! मैं विवाहित हूं और यह मेरी स्त्री है: धर्मानुसार मैं तुझे वरने योग्य नहीं हूं, हां मेरा भाई लक्ष्मण अकेला बन में आया है सो उसे तू अपना भर्ता बना कर सुख से निवास कर। यह उत्तर सुन कर काम के अग्नि से जलती हुई शूर्पणखा तुरंत उठ कर लक्ष्मण के पास जाकर बोली, हे राजकुमार ! तेरे सुंदर रूप को देख कर मैं मुग्ध हो गई हूं सो मुझे स्त्री रूप से अंगीकार कर के मेरे साथ सुख से निवास कर। राक्षसी के ऐसा कहने पर वाक-चतुर लक्ष्मण बोला हे सुन्दरि ! राज-कन्या हो कर कैसे तू दास की स्त्री बनना पसंद करती है, दासी कहलाने से जगत में तेरा सम्मान घट जायगा, सो हे विशाल लोचने ! राम की ही तू छोटी भार्य्या बन, उसी के तू योग्य है। लक्ष्मण के इस उत्तर से प्रसन्न हो कर वह भयानक राक्षस-कन्या फिर राम की ओर लौटी और क्रोध से कांपती हुई

बोली, हे राम ! इस कराल रूप वाली, असती और बूढ़ी सीता के कारण तू मेरा अपमान करता है, सो आज इस को चीर कर तेरे सामने खाऊंगी और फिर तुझ से विवाह करके तेरे साथ इस वन में निवास करूंगी। इतना कह कर नेत्रों से अग्नि बर्साती हुई वह भयंकर राक्षसी दौड़ कर सीता पर झपटी। बिजली के समान अकस्मात सीता पर गिरती हुई शूर्पणखा को राम ने बड़ी कठिनता से संभाला और फिर लक्ष्मण से बोले हे वीर ! इन भयंकर, क्रूर, दुष्ट और निर्दयी राक्षसों के साथ ठठोल करना उचित नहीं है, हे तात ! सीता आज सौभाग्य से ही बच गई है, सो इस कुरूपा पुंश्चली के नाक कान काट कर इसे शिक्षा दे। राम की यह आज्ञा पाते ही लंबी भुजाओं वाले लक्ष्मण ने फुर्ति से उस के नाक और कान काट डाले। उस समय वह घोर पीड़ा से व्याकुल हुई हुई कर्कश चीखों से बन को सिर पर उठाती, जहां तक रक्त गिराती हुई अपने भाई खर के सामने आकर इस प्रकार गिर पड़ी जैसे गगन मंडल से बिजली गिरती है। लहु से भरी हुई अपनी बहन को हाथ के सहारे से उठाता हुआ क्रोध से खर बोला हे बहन ! यह मैं आज क्या देखता हूं, किस पापी ने तेरे नाक कान काटे डाले हैं किसने महा विषधर सर्प के फण को उंगलि से छेड़ा है आज मेरे तीक्ष्ण बाण किस के कलेजे का रुधिर पीना चाहते हैं हे शूर्पणखे ! घबरा-

हट छोड़ कर मुझे सारा वृत्तान्त सुना। भाई के धीरज भरे वचन सुन कर रोती हुई शूर्पणखा बोली, हे खर! अयोध्या पति राजा दशरथ के दो पुत्र राम और लक्ष्मण ब्रह्मचारी तपस्वी और बड़े पराक्रम वाले इस वन में आए हैं उन के साथ मैंने अप्सराओं से बढ़ कर एक सुंदर स्त्री देखी। मैंने उनके पास जाकर उस स्त्री के संबंध में पूछा जिस से कुपित हो कर उन्हों ने मेरे नाक कान काट डाले। हे भाई उन दोनों भाईयों का और उस असती स्त्री का सफेन रुधिर जब तक मैं न पियूंगी। मेरा हृदय शांत न होगा। बहन के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर क्रोध से कांपते हुए खर ने १४ राक्षसों को जो बड़े बलवान और भीमकाय थे शूर्पणखा के साथ भेजा और आज्ञा दी कि उन दुष्टों को स्त्री सहित मार डालो आज मेरी बहन उन के रुधिर से तृप्त होगी। तब हाथों में बड़े बड़े परिघ दण्ड और गुर्ज उठाये वह काले काले राक्षस शूर्पणखा के साथ साथ इस प्रकार चले जैसे आंधी के साथ साथ बादल उड़ते चले जाते हैं। श्री रामचन्द्र जी ने उन राक्षसों को शूर्पणखा सहित आश्रम की ओर आते देख कर लक्ष्मण से कहा हे वीर! देख यह मृत्यु से घेरे हुए राक्षस हम पर चढ़ आए हैं तू सीता की रक्षा कर मैं इन्हें देखते देखते यम लोक को पहुंचाऊंगा। इस के पश्चात धनुष तान कर खड़े हुए और निकट आए हुए राक्षसों से श्री रामचंद्र जी बोले, रे अधम राक्षसो! तपस्वि

धर्म का पालन करते हुए हम इस बन में निवास करते हैं और बिना अपराध देखे किसी को कुछ नहीं कहते सो तुम आश्रम से दूर रहो और लौट जाओ जब तक मेरे धनुष से बाण नहीं छूटते, अपने प्राण बचा कर भाग जाओ। राम के मुख से यह वचन सुन कर बिना कुछ उत्तर दिये वह भयंकर राक्षस अभिमान से भुजाओं को तौलते हुए शस्त्र उठा कर उन पर टूट पड़े, परन्तु जलते हुए अग्नि के समान तेज वाले श्री रामचन्द्र जी ने १४ बाण उनकी ओर छोड़े जो उनकी छातीयां फाड़ कर इस प्रकार अंदर घुस गए जैसे सर्प बांबियों में घुस जाते हैं और वह लहुलुहान हुए हुए मर कर भूमि पर गिर पड़े। प्राणहीन राक्षसों को भूमि पर गिरा हुआ देख शूर्पणखा भयभीत हुई और दौड़ती हुई खर के सामने आकर रुदन करने लगी उसे इस अवस्था में देख कर खर ने कहा, अब तेरे रुदन का क्या कारण है, क्या वह चौदह राक्षस मेरी आज्ञा को उल्लंघन कर के कहीं चले गये हैं, अथवा भयभीत हो कर भाग गये हैं, हे शूर्पणखे! तू अधीर न हो और अपने शत्रु को मरा ही जान। खर ने जब ऐसे धीरज बंधाने वाले शब्द कहे तो वह नकटी रोती हुई बोली, हे महाबाहो! जिन चौदह भीम कर्म राक्षसों को तूने राम के मारने के लिए भेजा था वह सब के सब पराक्रमी राम के बाणों से क्षण मात्र में मारे गए, सो

हे भाई ! इन्द्र के तुल्य बल वाले राम से भयभीत हुई हुई मैं तेरे पास आई हूं, जो तुझ में शक्ति है तो उन कांटों को अभी जड़ मूल से उखाड़ दे नहीं तो सब के सब राक्षस उन के हाथों मारे जायेंगे और अंत में तेरे लिये बड़े भय का सामना होगा । हे खर ! मेरा नाक काट कर वास्तव में उसने तेरा ही नाक काट डाला है बहन का अपमान सहन कर के तेरे जीने से मर जाना अच्छा है यदि तूने मेरे अपमान का प्रतिकार न लिया तो मैं अभी तेरे सामने प्राण त्याग दूंगी ।

शूर्पणखा से उत्तेजित किया हुआ खर क्रोध से नेत्र लाल कर के बोला, हे शूर्पणखे ! तू धीरज धर राम का तेज मेरे सामने ऐसे ही है जैसे सूर्य्य के सामने जुगनु का । आज मैं उसे यमपुरी को पहुंचाऊंगा, उस के श्वास समाप्त हो चुके हैं । इस प्रकार बहन को प्रसन्न कर के वह राक्षस राज विचित्र घोड़ों वाले सूर्य्य के समान चमकते हुए रथ पर सवार हो कर चौदह सहस्र राक्षसों की बड़ी सेना के आगे आगे चला । उन राक्षसों की मेघ के समान गर्जती और धूल से सूर्य्य को छिपाती और आंधी की तरह वेग से चलती हुई सेना शूर्पणखा के दिखाए हुए मार्ग पर चली इतनी बड़ी सेना को देख कर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले, हे तात ! बड़ा भय सन्मुख आया है, आज लहु की नदी बहेगी । आज राक्षस लोक एक आर्य्य का

बल देखेंगे । हे लक्ष्मण ! हमारी जय होगी इस में तनिक भी संदेह नहीं क्योंकि मेरी दांई भुजा बार बार फर्क रही है तू जानकी को ले कर पर्वत की अंधेरी गुफा में चला जा । भाई की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर के जानकी सहित लक्ष्मण पर्वत की दुर्गम कंदरा में चला गया तब श्री रामचन्द्र जी ने दुर्भेध्य कवच धारण किया । अग्नि के समान देदीप्यमान उस कवच के धारण करने से श्री रामचन्द्र जी अंधकार में उठे हुए अग्नि के समान जगमगाने लगे । उस अपूर्व और भयंकर संग्राम को देखने के लिये देवता यक्ष किन्नर चारण और सिद्ध एकट्ठे हो कर श्री रामचन्द्रजी की स्तुति करने और परमात्मा से प्रार्थना करते भये कि हे त्रिलोकी के नाथ ! पृथिवी को पीड़ा देने वाले ऋषि मुनियों और ईश्वर के भक्तों को दुख देने वाले राक्षसों का गौ ब्राह्मण के प्रति पालक श्री रामचन्द्र जी के हाथों नाश होवे । तब चारों ओर राक्षसों की समुद्र के समान दुर्धर्ष सेना को देख कर श्री रामचन्द्रजी ने महा क्रोध से धनुष की प्रत्यंचा पर बाण जोड़ा । तेज से भस्म कर देने वाले प्रलय के अग्नि के समान जलते हुए राम के नेत्रों को देख कर तीन लोक भय से कांप उठे । उधर बड़े तेज वाला राक्षसराज खर राम के आश्रम पर पहुंच कर सेना सहित इस प्रकार बाणों की वर्षा करने लगा मानों संसार को नाश करने के लिये काले बादल वृष्टि

करते हों। खर और उस की सेना से छोड़े हुए उन बाणों को श्री रामचन्द्रजी धीर भाव से स्वीकार करते भये जैसे समुद्र सहस्रों नदियों को। सैंकड़ों बाणों से लहु लुहान हुए हुए श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार अपने स्थान पर अचल और अडोल खड़े रहे जैसे बिजलियों के प्रहार से हिमालय। उस समय उन की शोभा सायंकाल के मेघों में घिरे हुए लाल सूर्य्य के समान दिखाई देने लगी। तब बड़े क्रोध से श्री रामचन्द्रजी अपने धनुष को गोल मंडलाकार कर के वेग से बाण छोड़ने लगे। उनकी हस्तलाघवता और फुर्ति को देख कर देवता लोग आश्चर्य रह गये। बाणों को न जोड़ते न खेंचते और न छोड़ते ही कोई देखता, केवल क्षण क्षण में सैकड़ों की संख्या में राक्षसों को भूमि पर लोटते ही देखा गया। थोड़े ही समय में उस दशरथ नंदन ने सहस्रों राक्षसों को मार मार कर ऐसे छिन्न भिन्न कर दिया जैसे प्रबल वायु बादलों को। श्री रामचन्द्रजी के अग्नि समान बाणों से राक्षसों की वह बड़ी सेना बन के बांसों के समान जलने लगी, देखते देखते गिरे हुए राक्षसों से युद्ध क्षेत्र पट गया और चलने के लिए मार्ग न रहा तब भयभीत हुए हुए राक्षस राम के तेज को न सहन करते हुए इधर उधर भागने लगे। दूषण ने अपनी सेना को मरते गिरते हाय हाय करते और भागते देख मेघ के समान घोर गर्जना की और तीक्ष्ण

बाणों से श्री रामचन्द्रजी को घेर लिया दूषण को सामने देख भगवान के क्रोध की कोई थाह न रही । उन्हों ने चमकते हुए क्षुर से उस के धनुष को काट डाला और चार बाणों से चारों घोड़ों को पृथिवी पर सुला दिया और फिर अर्धचन्द्राकार एक बाण से उस के सारथि का सिर काट लिया । घोड़ों सहित सारथि के मर जाने पर दूषण ने प्रचंड कोप से एक बड़ा परिघ उठाया और दौड़ता हुआ श्री रामचन्द्रजी के सिर पर पहुंच गया । तब बड़ी फुर्ति से भगवान ने खड्ग से उस के दोनों हाथ काट डाले। भुजाओं के कट जाने से पीड़ित हुआ हुआ दूषण मूर्छित हो कर पृथिवी पर गिर पड़ा । उस भयंकर राक्षस के गिरते ही देवताओं ने साधु साधु की ध्वनि की। अपने सेनापति खर के भाई दूषण की यह दशा देख कर सहस्रों राक्षस एक साथ ही श्री रामचन्द्र जी पर टूट पड़े परंतु महा पराक्रमी राम ने स्वर्ण और वज्र के बने हुए तीक्ष्ण शरों से उन सब को वहीं ढेर कर दिया। खुले हुए बालों वाले, लहु से लतपत हाय हाय करते उन राक्षसों से युद्ध भूमि ऐसे बिछ गई जैसे यज्ञ की वेदि पर कुशा । रुधिर से भरे हुए कीचड़ में लतपत राक्षसों से वह भूमि नरक के समान दिखाई देने लगी । चौदह हज़ार भयंकर राक्षसों को अकेले श्री रामचन्द्रजी ने मार डाला, केवल सेनापति त्रिशिरा और राक्षसराज खर यह दो ही बच सके । तब

प्राणों का मोह छोड़ कर त्रिशिरा रथ से कूद पड़ा और हाथ जोड़ कर खर के प्रति बोला, हे नाथ ! आप मुझे राम को मारने की आज्ञा दें, रणभूमि में मैं आप के खाये हुए अन्न को सार्थक करना चाहता हूं। आज आप महाबाहु राम को मेरे हाथों मरा हुआ देखेंगे अथवा मुझे ही युद्ध भूमि में लेटा हुआ पाएंगे। तब खर ने प्रसन्न हो कर उसे आज्ञा दी और यमराज से बुलाया हुआ त्रिशिरा राम को मारने के लिए ऐसे दौड़ा जैसे पतंग दीपक पर दौड़ता है। उधर श्री रामचन्द्रजी ने भी त्रिशिरा का बाणों से स्वागत किया। लंबी भुजाओं वाले श्री रामचन्द्रजी ने तीक्ष्ण बाणों से उस के सारथि घोड़े और ध्वजा को काट दिया। यह देख कर त्रिशिरा रथ से कूद कर गदा हाथ में लिए राम की ओर झपटा परंतु महाबलि दशरथ नंदन ने उसे निकट आने का अवसर ही नहीं दिया और एक तीक्ष्ण बाण उस के हृदय पर मारा जो उसके कवच को फोड़ कर इस प्रकार अंदर घुस गया जैसे सर्प बांबी में प्रवेश करता है। उस बाण के लगते ही खर की सेना का सेनापति महा पराक्रमी भीमकर्मा त्रिशिरा मर गया।

दूषण और त्रिशिरा के मर जाने पर खर अकेला रह गया अब वह अकेला ही राम के सन्मुख चला और क्रोध से बाणों की वर्षा करने लगा। देखते देखते उस महारथी ने बाणों से दिशाओं को भर दिया। उधर

श्री रामचन्द्रजी ने भी अग्नि के समान जलते हुए बाणों से खर के रथ को भर दिया फिर दोनों ओर से बाणों की ऐसी वृष्टि हुई कि सारा आकाश भर गया और वायु का मार्ग भी रुक गया। उस समय प्रसन्न हो कर खर गर्जा और रथ को और आगे बढ़ा कर भगवान पर बाणों की मार करने लगा। थोड़े ही समय में उस राक्षस ने श्री रामचन्द्रजी के धनुष को काट डाला, उस राक्षस के इस भयानक युद्ध को देख कर देवता लोग भयभीत हो गये परंतु अदम्य उत्साह और बड़े तेज वाले भगवान ने तत्काल अगस्त्य मुनि का दिया हुआ बड़ा धनुष उठाया और उसे तान कर खर की ओर दौड़े और क्षणमात्र में खर के घोड़ों और सारथि को मार गिराया। अपने आपको रथहीन देख कर क्रोध मे कांपता हुआ खर रथ मे कूदा और गदा उठा कर राम की ओर दौडा। उसे मृत्यु के मुख में आते हुए खर को देख कर तेजस्वी रामचन्द्रजी बोले, हे राक्षसराज ! निर्दोष प्राणियों को दुख देने वाला दुष्ट, पापी मनुष्य ब्रह्माण्ड का स्वामी भी क्यों न हो परंतु अंत में वह अपने पाप का फल अवश्य भोगता है। हे पापाचारी ! स्वभाव ही से दुष्ट और क्रूर कर्म करने वाले मनुष्य के प्राण लेने के लिये लोग इस प्रकार घात में लगे रहते है जैसे सर्प को मारने के लिए। हे निशाचर ! दण्डक वन में रहने वाले किसी

को दुख न देने वाले आत्मा के साक्षात्कार में लगे हुए संयमी तपस्वियों और मुनियों की हत्या का फल आज तुझे प्राप्त होने वाला है। हे खर! पाप की जड़ नहीं होती, और मनुष्य के कर्म अपने समय पर फलते फूलते हैं जैसे ऋतु के आने पर फल फूल। विष संयुक्त अन्न अपना प्रभाव शीघ्र ही दिखाता है। हे राक्षस! पापियों और दुष्टों को मार कर पृथिवी का भार उतारने के लिए मैं इस संसार में आया हूं सो तू अपने आप को मरा हुआ ही समझ।

श्री रामचन्द्रजी के मुख से यह वचन सुन कर खर ने उत्तर दिया, हे काकुत्स्थ्य! वीर लोग अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं किया करते, तूने अपनी श्लाघा कर के अपनी तुच्छता प्रगट की है, मुझे मारने की तुझमें सामर्थ्य नहीं। यह मेरी गदा जिसने आज तक सहस्रों आर्य्यों के प्राण लिये आज तुझे भी रणभूमि में सुलाएगी। आज मेरी बहन का प्रतिकार मुझे मिलेगा इतना कहते कहते बिजली के समान चमकती हुई गदा खर ने राम की ओर फेंकी परन्तु यम की पाश के समान आती हुई गदा को श्री रामचचन्द्रजी ने रास्ते ही में बाण से काट डाला और अनेक बाणों से उसे लहु लुहान कर डाला। तब लहु की गंधि से खर मतवाला हो कर राम की ओर दौड़ा परन्तु अगस्त्य मुनि से दिए हुए अग्नि के समान जलते हुए एक ही

बाण से श्री रामचन्द्रजी ने खर की छाती फाड़ दी । बाण की पीड़ा से भयानक चीत्कार करता हुआ पर्वताकार राक्षस भूमि पर गिर पड़ा । खर के मरने पर देवता किन्नर गंधर्व और चारण जय जय करते हुए पुष्पों की वर्षा करने लगे और सब मिल कर स्तुति करते हुए हाथ जोड़ कर बोले, हे दशरथ नंदन ! आपने हम पर बड़ा उपकार किया है, आज दण्डक बन में रहने वाले तपस्वि-जन निर्भय हो कर सोएंगे आप की जय हो! हे कौशल किशोर ! आप की जय हो । इस अवसर में लक्ष्मण भी जानकी को कंदरा से निकाल कर आश्रम में ले आया और वैदेही ने रुधिर से रंगे हुए उदय होते हुए सूर्य्य के समान शत्रुओं को जीतने वाले अपने स्वामी को देख प्रसन्न हो कर उसे कंठ से लगाया ।

—:०:—

अंकपन राक्षस का लंका में जाना ।

खर के सेना सहित मारे जाने पर अंकपन नामक एक राक्षस जो भाग कर बच गया था, लंकापति रावण के पास पहुंचा और हाथ जोड़ कर बोला, हे लंकेश ! दण्डक बन के रहने वाले चौदह सहस्र राक्षस खर दूषण और त्रिशिरा सहित मारे गये, मैं बड़ी कठिनाई से बच कर आया हूं। एकाएक यह दुखदायी समाचार सुन कर रावण को मानों आग लग गई और वह

चिंगारे छोड़ता हुआ बोला, हे अंकपन ! किस ने मेरे जन स्थान को उजाड़ डाला है ? मेरे भाईयों को मार कर किस ने अपनी मृत्यु का आवाहन किया है ? मैं तुझे अभय दान देता हूं तू वहां का सब वृत्तान्त सुना ! तब अंकपन हाथ जोड़ कर बोला, हे देवताओं के शत्रो ! अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र ने जिस के पराक्रम की कोई थाह नहीं है, जिस के ऊंचे कंधे और विशाल हृदय तीनों लोक को जीतने में समर्थ हैं उस श्याम सुन्दर राम ने अकेले ही अपने बाणों से यह भीम कर्म किया है। तब आश्चर्य्य से चकित हुआ हुआ दशकंधर बोला, हे राक्षस ! क्या उस राम ने देवताओं की सहायता से खर को मारा है ? अंकपन ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया, नहीं हे राजन् ! देवता उस के साथ नहीं थे परन्तु राम स्वयं ही सर्व दिव्य शक्तियों से युक्त है। सुनो मैं उस के गुणों का वर्णन करता हूं। हे राजन ! वह राम बडा तेजस्वी, धनुर्धर दिव्य अस्त्रों के चलाने वाला, बलवान, रूप की खान और धर्मयुद्ध में प्रवीण है उस के साथ उसी के समान गुणों वाला उस का छोटा भाई लक्ष्मण है। मैंने राम को युद्ध करते हुए इन आंखों से देखा है और उस के अमोघ बाणों से राक्षसों के भयानक नाश को भी देखा है। हे लंकाधिपति ! जिस खर के हुंकार मात्र से देवता कांपते थे वह अपनी सारी सेना सहित उस के सामने

खड़े होने में भी अशक्त रहा, यह आश्चर्य्य था जो मैंने युद्ध भूमि में देखा। हे राजन् ! यदि आप अपनी सारी सेना से भी उसे मारना चाहें तो भी वह न मरेगा यह मेरा निश्चय है, सो उसे जीतने का एक ही उपाय है और वह यह कि उस के साथ उसकी परम रूपवती स्त्री सीता है जिस की सुन्दरता के सामने देवांगनाएं अप्सराएं, किन्नरीयां तथा संसार की समस्त सुन्दरियां तुच्छ हैं उसे यदि आप हर लाएं तो राम उसके वियोग में घुल घुल कर अपने आप मर जाएगा।

अंकपन के इस उपाय से सहमत हो कर रावण तत्काल अपने दिव्य रथ पर सवार हुआ और आकाश में उड़ता हुआ सागर पार मारीच नामक राक्षस के पास पहुंचा जो उस का परम मित्र था। मारीच ने लंकापति रावण को देख कर उस का बड़ा सत्कार किया और फिर नम्रता से पूछा, हे राजन् ! किस अर्थ आप का इधर आना हुआ आप के जल्दी आने से मुझे शंका होती है, कहो कुशल तो है ?

मारीच के ऐसा पूछने पर रावण बोला, हे मित्र ! दशरथ नंदन राम ने मेरा जनस्थान नष्ट कर डाला चौदह सहस्र राक्षसों सहित मेरे भाईयों का वध किया मेरी भुजाएं तोड दी गई हैं और इसी से पीड़ित हुआ हुआ मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूं। हे मित्र ! राम की रूपवती स्त्री सीता को हर कर लंका ले जाना चाहता

हूं सो तुम इस काम में मेरे सहायक बनो । रावण के यह वचन सुन कर मारीच बोला, हे राक्षस-राज ! जिसने तुम को सीता हरने की सम्मति दी है, निस्संदेह वह तुम्हारा हृदय से शत्रु है, क्योंकि सीता को हरना सर्प के मुख से दांत निकालने के समान भयानक कर्म है । हे रावण ! सिंह के समान पराक्रमी लंबी भुजाओं वाले राम से युद्ध में तुम पार नहीं पाओगे । सर्पों के समान धनुष से छूटते हुए राम के बाणों को सहन करने की शक्ति संसार में आज किसी को नहीं है । सो यदि तू अपनी मृत्यु नहीं चाहता तो चुपचाप लंका में चला जा ।

—:०:—

शूर्पणखा का लंका में रावण के पास जाना ।

मारीच की ओर से निराश हो कर रावण लंका में आ गया । ऊधर शूर्पणखा इतने बड़े जन-संहार को देख कर लंका में पहुंची । वहां उस ने पर्वत के समान ऊंचे महल पर अपने भाई को बैठे देखा, जो चारों ओर मंत्रियों से घिरा हुआ था । स्वर्ण के आसन पर बैठा हुआ वह दूर से ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ जैसे स्वर्ण की वेदी में घी से जलता हुआ अग्नि । उस अपने पर्वताकार भाई को, जिस ने अपने बाहुबल से समुद्रों को जीत लिया है और पर्वतों को हस्तगत कर लिया है । जिस ने वासुकि नामक नागराज को जीत कर

तक्षक की प्रिय पत्नी को हर लिया है, जिस ने कुवेर को जीत कर अपनी आज्ञा में चलने वाला पुष्पक विमान छीन लिया है, इन्द्रादि देवता जिस से भयभीत हैं वायुदेव जिसे पंखा करते हैं, वरुण देवता जिस के यहां जल भरता है और जो मृत्यु को भी मार देने की शक्ति रखता है, ऐसे अथाह बल वाले भाई को उस ने दिव्य भूषण पहरे हुए शस्त्रों से सुसज्जित बैठे देखा। भय से व्याकुल हुई हुई नाक और कान से हीना शूर्पणखा उस के पास जा कर यूं बोली—

शोक है तेरी बुद्धि पर, शोक है तुझ पर और तेरे इन मंत्रियों पर, हे राक्षसराज ! तेरे लिए बड़ा भय उत्पन्न हो गया है, परन्तु विषय भोगों में लीन हुआ हुआ तू बेखबर पड़ा है। हे लंकेश ! जो राजा समय पर उचित कार्य्य नहीं करता वह राज्य सहित नष्ट हो जाता है, जो राजा अपने देश की रक्षा के लिए सदा सावधान नहीं रहता, वह दिन प्रतिदिन हीन अवस्था को प्राप्त होता जाता है। जिस के गुप्तचर, खजाना, और नीति अपने वश में नहीं है, वह राज्य करने के योग्य नहीं है। हे राजन् ! गुप्त चर ही राजा के नेत्र हैं, इन के बिना राजा अन्धा है। हे भाई ! मैं तो यह देखती हूं कि तुम्हारे गुप्त चर मूर्ख और मंत्री अयोग्य हैं जो इतनी बड़ी भयानक घटना से अनभिज्ञ हैं। जनस्थान नष्ट हो गया, चौदह सहस्र राक्षस तेरे भाईयों

सहित मर गए, बहन के नाक कान कट गए परन्तु मद्य मांस और स्त्रियों में रत हुआ हुआ तू कुछ नहीं जानता। जो ऋषि मुनि और तपस्वि लोग कल राक्षसों के नाम से डरते थे आज वह बगलें बजाते और राजाओं के समान दण्डक बन में विचरते हैं। हे दशकंधर ! सूखा हुआ तृण और मट्टी का ढेला भी काम आ जाता है, परन्तु सिंहासन से गिरा हुआ राजा किसी काम का नहीं होता। जो राजा आलस्य रहित हो कर अपने राज्य की प्रत्येक बात जानता है और जितेन्द्रिय है उस का राज्य अटल रहता है। हे भाई ! जो राजा आंखों से तो सोया हुआ है परन्तु नीति की आंखों से जागता है, जिस के क्रोध में प्रलय का सा सामान है और जो प्रसन्न होने पर निहाल कर सकता है प्रजा उस की पूजा करती है, परन्तु हे लंकापति ! तुझ में तो एक भी गुण मैं नहीं देखती। जो तुझे राम से किये गये इतने बड़े हत्या-काण्ड का भी पता नहीं लगा।

तब कुछ लज्जित सा हो कर रावण बोला, हे शूर्पणखे ! मैं जनस्थान के राक्षस वध का सारा वृत्तान्त सुन चुका हूं, केवल तेरी बाट देख रहा था, सो तू अब उन बनवासियों को मरा हुआ ही जान। हे बहन ! तेरे नाक और कान काटने वाले को अब इन्द्र यम कुबेर ब्रह्मा विष्णु आदि कोई भी नहीं बचा सकता। जो कुछ मैंने करना है वह मैंने सोच लिया है। हे

शूर्पणखे ! सीता मेरे ही योग्य है, यह जान कर जो तैनें मेरे हित के लिए राम के हाथों कष्ट पाया, उसका फल मैं तुझे दूंगा, राम मारा जाएगा, सीता मेरे महल में आएगी और तेरी दासी बनेगी। इतना कह कर लंकापति रावण ने सभा को विसर्जित किया और आकाश-रथ में बैठ कर फिर मारीच के पास पहुंचा, और परम स्नेह दिखाता हुआ उस के प्रति बोला, हे तात ! संकट के समय मित्र ही काम आया करते हैं इसी लिए मैं फिर तुम्हारे ही पास आया हूं क्योंकि बहुत खोज करने पर भी मैं तेरे समान बलवान, नीति निपुण, सत्यस्नेही और विश्वासपात्र किसी को नहीं पाता हूं। हे मारीच ! पिता से निकाले हुए क्षत्रिय-कुल कलंक, अधर्मी और स्त्री पर हाथ उठाने वाले कायर राम के हाथों मेरे चौदह सहस्र राक्षस मारे गये, यह देख कर मेरा हृदय जल रहा है, रात्रि को नींद नहीं आती और दिन भर तड़पता रहता हूं। हे आजानु भुज ! शूर्पणखा की नाक कटने से सारी राक्षस जाति की नाक कट गई है, देवता और ऋषि मुनि जो पहले हमारे नाम से कांपते थे, आज हमारी कायरता पर हंसते हैं इस अपमान से तो हमारा युद्ध में मर जाना ही अच्छा है, सो हे मारीच ! राक्षस जाति को इस बड़े अपमान से बचा। सीता के हर लाने में मेरी सहायता कर संसार में तू बहुरूपिया प्रसिद्ध है तेरे समान स्वांग

भरने वाला और कोई नहीं है, सो तू चांदी के बिंदुओं वाला सुनहला हरिण बन कर राम के आश्रम में विचरण कर। हे मारीच ! मृग के रूप में तुम्हें देख कर जानकी अवश्य ही राम और लक्ष्मण से तेरे पकड़ने की प्रेरणा करेगी और जब वह दोनों तेरे पीछे पीछे दूर निकल जाएंगे, तो मैं अकेली सीता को हर लूंगा और फिर पत्नी के वियोग में दुर्बल हुआ हुआ राम मेरे हाथों मारा जाएगा।

रावण के इस प्रकार कहने पर मारीच ने उत्तर दिया, हे लंकेश ! पहले भी मैंने तुम को कहा था और अब भी मेरा विचार वही है, कि सीता के हरने से तेरी मृत्यु अवश्य होगी। हे वेदवित् ! सब शास्त्रों के जानने-वाला हो कर भी तू पर स्त्री के हरने में पाप नहीं देखता, यह आश्चर्य्य है। हे दशकंधर ! सूर्य्य से रश्मि को जैसे कोई अलग नहीं कर सकता इसी प्रकार सीता को राम से वियुक्त करना असंभव है। राम के तेजको तू नहीं जानता, वह तो बलि और नमुचिके भी प्राण लेसकता है, फिर तू क्या वस्तु है।

मारीचके इस उत्तरसे क्रुद्ध हुआ हुआ रावण खड्ग हाथ में लेकर बोला, रे दुर्बुद्धे ! राक्षस कुल में तू कलंक उत्पन्न हुआ है। तेरे वचन ऐसे ही निष्फल और निस्सार हैं जैसे ऊसर भूमि में बीज। तेरी इन युक्तियो से मैं अपने विचार को नहीं बदल सकता। सीता को मैंने

अवश्य हरना है, और तुझे मेरे कथनानुसार काम करना होगा। हे मूर्ख! मेरी आज्ञा भंग करके तू सुख नहीं पा सकता, राजाकी आज्ञा हाथ जोड़ कर शिर पर धारण करनी चाहिये, सो यदि तू सीता हरण में मेरी सहायता न करेगा तो राम और लक्ष्मणके बध से पहले तू अपने आपको मरा हुआ समझ।

रावणके इन कठोर वचनों को सुन कर मारीच भयभीत होगया और बिना कुछ और कहे बोला "अच्छा चलिए"

तब प्रसन्न हो कर रावण ने उसे कंठसे लगा कर कहा अब तू सच्चा राक्षस है, और मेरा परम मित्र मारीच है। इसके अनंतर वह दोनों रथ पर सवार हुए और दण्डक बनमें पहुंच कर राम के आश्रम को देखते भये रावण की आज्ञा से मारीचने उसी समय मृगका स्वांग भरा और कूदता फांदता आश्रमके निकट विचरने लगा। नीलम के समान स्निग्ध और चमकीले शृंगों वाले ऊंची और लंबी ग्रीवा वाले, इंद्र नील के सदृश उदर वाले, मधूक पुष्पके सदृश पसलियों वाले, हरित मणिके समान खुरों वाले, पतली टांगों वाले, सुडौल और सुगठित देह वाले, इन्द्र धनुपके रंग वाली सुंदर पूंछ वाले उस सुंदर चित्र विचित्र मायामृगको हरी हरी दूब चरते और नाना प्रकार की क्रीड़ा करते देख कर जानकी आश्चर्य्य से चकित रह गई, और विस्मयसे उसके

CALCUTTA
ART PG WORKS
LAHORE

मारीच वध

नयन कमलके समान खुले रह गए।

—:०:—

मारीच बध व सीता हरण ।

चांदी और स्वर्णकी आभा से युक्त उस माया मृग को प्राप्त करने की अभिलाषा से जानकी ने अपने भर्ता को ऊंचे स्वरसे बुला बुला कर कहा, आओ आओ स्वामिन्! लक्ष्मणके साथ शीघ्र आओ, यह स्वर्ण मृग तुम्हारे देखने योग्य है । सीता के बुलाने पर दोनों भाईयोंने उस मृग को देखा। तब लक्ष्मण ने उस माया मृग को अच्छी तरह देखकर कहा, हे तात! स्वर्णकी देह वाला, रत्न जटित इस प्रकारका मृग कभी देखा न सुना, कदाचित् कोइ राक्षसी माया का जाल हमारे फांसने के लिये रचा गया हो। लक्ष्मणके इस वचन को सुना अनसुना करके सीता प्रसन्न हो कर बोली हे स्वामिन्! यह मृग छौना संसारका एक विचित्र पदार्थ है, इसकी शोभाने मेरे मनको हर लिया है, इसे आप पकड़ लाईये, इसके साथ मैं खेला करूंगी । हे आर्य्य पुत्र! बनवास समाप्त करके जब आप सिंहासन पर विराजमान होंगे तब यह सोनेका मृग हमारे महलोंकी शोभा बनेगा। इस मृग को देख कर मेरे देवर और सासें विस्मित होंगी, और यदि जीते जी न पकड़ा जाए तो इसका मृगान ही ले आईए, इसे घास पर बिछा कर मैं परमेश्वर की उपासना किया करूंगी। सीता की इस लालसा को देख

कर श्री रामचंद्रजी लक्ष्मणके प्रति बोले हे वीर! यह अद्भुत मृग जो पहले कभी देखा नहीं गया, आज अपने सुंदर रूपके कारण पकड़ा जाएगा अथवा मारा जाएगा, किसका हृदय इस स्वर्णके अद्भुत मृगको देख कर लालायित नहीं होता। इस के रत्न जटित मृगान पर बैठ कर जानकी संध्या किया करेगी, सो इसका आखेट करना चाहिये, और यदि यह वास्तव में हरिण नहीं, प्रत्युत राक्षसी माया है, तौ भी उसका बध कर देना आवश्यक है, क्योंकि मैं ऋषियोंके सन्मुख राक्षसों को मारनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूं। सो तू सावधान हो कर सीता की रक्षा कर मैं इस हरिणको पकड़ूंगा अथवा मार कर मृगान लाऊंगा।

इतना कह कर श्री रामचंद्र जी तलवार और धनुष लेकर मृगकी ओर दौड़े। इनको अपनी ओर आते देख वह मृग भयसे घबराया हुआ, आकाशमें कूदता, छलांगें मारता गह्वर वनमें घुस गया। श्री रामचंद्र जी भी लक्ष्य बांधे हुए वेगसे उसके पीछे पीछे दौड़ने लगे। सूर्य्य किरणोंके पुंजके समान वह माया मृग कभी वृक्षोंकी ओट में और कभी दृष्यमान होता हुआ ऐसी शोभा देने लगा, जैसे शरद ऋतुका चंद्रमा थोड़ा समय बादलों के नीचे छिप जाता है और फिर प्रगट होता है। इस प्रकार छिपते और प्रगट होते हुए वह माया मृग श्री रामचंद्र जी को आश्रमसे बहुत दूर घने वनों में ले

गया। तब क्रोधसे हांपते हुए रामने वृक्ष समूह से निकलते ही उस मृगको ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा, कि वह उसका बनावटी वेश काट कर इस प्रकार छाती में घुस गया, जैसे सांप बांबी में घुस जाता है। बाणके लगते ही मृग रूप को छोड़ कर वह भयानक राक्षस ताड़ वृक्ष के बराबर आकाश में उछल कर भूमि पर गिर पड़ा और ऊंचे स्वर से "हा लक्ष्मण" "हा जानकी" कह कर मर गया।

उस समय श्री रामचंद्र जीको लक्ष्मणका कथन स्मरण आया, कि उसने सत्य कहा था, सचमुच यह राक्षसी माया निकली, तब वह रुधिर से भरे हुए उस विकाल राक्षसको वहीं छोड़ कर मनमें किसी अनिष्टकी शंका करते हुए जल्दी जल्दी आश्रमकी ओर चले। उन्होंने सोचा, कि यह दुष्ट "हा लक्ष्मण" "हा जानकी" इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहता हुआ मरा है। न हो कि लक्ष्मण मेरी सहायता को इधर आए और सीता को कोई राक्षस मार डाले।

इधर आश्रम में बैठी हुई जानकी ने जब भर्ता के समान उस स्वर को 'हा लक्ष्मण' 'हा जानकी' इस प्रकार पुकारते सुना तो वह घबराई हुई बोली, हे लक्ष्मण! शीघ्र जा कर अपने भाई का पता लो, मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है, मैंने पीड़ा से पुकारते हुए उनका शब्द अच्छी तरह सुना है। हे राघव! विपत्ति में फंसे हुए अपने भाई की सहायता करना तुम्हारा धर्म है। सीता के

ऐसा कहने पर लक्ष्मण बोला, हे जनक नंदिनि ! तुझे अकेली छोड़ कर न जाने की मुझे भाई ने आज्ञा दी है सो उनकी आज्ञा को मैं किसी प्रकार भी उल्लंघन नहीं कर सकता, तुम धीरज धरो, राम अभी आते ही होंगे ।

लक्ष्मण के इस उत्तर से संतप्त हो कर सीता ने कहा, हे लक्ष्मण ! तू मित्र रूप से भाई का वैरी है, जो तू उन के आर्त शब्द को सुन कर भी सहायता के लिए नहीं जाता । तू भाई को विपत्ति में फंसा हुआ देख कर भी चुपचाप बैठा है, निस्संदेह तुझे उस के लिए प्रेम नहीं है । हे सुमित्रा के पुत्र ! भाई के मर जाने पर मेरी रक्षा से क्या लाभ होगा, इस प्रकार कहते कहते जानकी के नेत्रों से आंसूओं की धारा बह निकली । सीता की यह अवस्था देख कर लक्ष्मण फिर हाथ जोड़ कर बोला, हे मातः! तेरा स्वामी देव दानव राक्षस यक्ष किन्नर गंधर्व और मनुष्यों को युद्ध में जीत सकता है सो तू थोड़ी देर शान्ति करके प्रतीक्षा कर वह आते ही होंगे । हे देवी ! खर दूषण को मार कर हमने राक्षसों से वैर बढ़ा लिया है, इस कारण अत्याचारी राक्षस दण्डक वन में नाना प्रकार की बोलियां बोलते और नाना प्रकार के रूप धारण करके विचरते हैं । महात्मा राम तुझे मेरी रक्षा में छोड़ गये हैं, ऐसा न हो कि मेरे जाने पर तू किसी विपत्ति में फंस जाए, इस कारण मैं डरता हूं

और तुझे अकेली छोड़ने में असमर्थ हूं। लक्ष्मण के इस उत्तर से जानकी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह नयनों से अग्नि के चिंगारे छोड़ती हुई बोली, लक्ष्मण! राम को विपत में देखना चाहता हुआ तू भीतर ही भीतर आनन्द मना रहा है। हे मूर्ख! तेरी दुष्ट कामना कभी पूरी न होगी। राम के बिना मैं अपने प्राण त्याग दूंगी। हे दुष्ट! तू मेरी प्राप्ति के लिए राम के साथ वन में आया है, अथवा तू भरत का गुप्तचर है जो तू इस प्रकार बैठा बैठा बातें बनाता है। मैं गोदावरी में डूब मरूंगी, अग्नि में जल जाऊंगी परन्तु पर पुरुष का स्पर्श नहीं करूंगी। सीता के इन शब्दों ने लक्ष्मण के हृदय को चीर डाला उस के रोंगटे खड़े हो गये मस्तक चकरा गया और मूर्छा आने लगी परन्तु बड़ी कठिनता से अपने आप को संभाल कर बोला—

हे जानकी! मैं तेरी इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि तू मेरी माता के समान है। स्त्रियां स्वभाव ही से चञ्चल होती हैं और बिना सोचे समझे वचन कुवचन मुख से निकाल देती हैं परन्तु मैं बाणों के सदृश तेरे इन शब्दों को नहीं सह सकता। धिक्कार है तुझ पर जो तूने मुझे यह शब्द कहे जब कि बड़े भाई की आज्ञा से मैं यहां खड़ा हूं, परन्तु होनहार बड़ी प्रबल है, जो तुझे बड़े संकट में डाल रही है, हे बन के देव-

ताओ ! तुम सब सुनते हो, मैं तुम्हें साक्षी कर के कहता हूं, कि मैं जाता हूं और जानकी से बलात् भेजा जाता हूं ।

यह कह कर लक्ष्मण कंधे पर धनुष रख कर राम की ओर चला ।

—:-०-:—

सीता हरण ।

लक्ष्मण के चले जाने पर सन्यासी का रूप धारण कर के लंकापति रावण सीता के पास गया । पतिव्रता जानकी को क्या पता था कि गेरुवे वस्त्र पहरे कमण्डलु हाथ में लिये, लकड़ी की चरण पादुकाएं धारण किये यह सन्यासी वास्तव में रावण है और तिनकों से ढके हुए कूप के समान मुझे छलना चाहता है । सुन्दर होंठ और दांतों वाली परम रूपवती जानकी को अकेली देख कर रावण बोला, हे सुन्दरि ! तू इस बन की देवी है अथवा साक्षात् लक्ष्मी है व साक्षात् कामदेव की स्त्री रति है । हे सुलोचने ! तेरे रूप को देख कर मेरा मन वश में नहीं रहा । हे क्षीणोदरि । संसार में तेरे समान सुन्दरी मैंने आज तक देखी न सुनी, परन्तु चक्रवर्ती राजा के महलों के योग्य तुझे इस बन में अकेली देख कर आश्चर्य्य में हूं । तू कौन है, किस की कन्या है, किस की स्त्री है और किस कारण राक्षसों से भरे हुए इस घोर बन में निवास करती है ।

CALCUTTA
ART PG. WORKS
LAHORE.

सीता हरण

(पृष्ठ २९६)

रावण के इस प्रकार प्रश्न करने पर सीता ने उत्तर दिया, हे परंतप ! हे परिव्राट !! तुम्हें और तुम्हारे वेश को नमस्कार !! यह आसन है, यह जल है और यह आप के लिये फल हैं मैं आप का स्वागत करती हूं। हे सन्यासिन् ! मेरा नाम सीता है, मिथिला के राजा जनक की मैं पुत्री हूं और अयोध्या के राजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र बड़ा तेजस्वी सूर्य्य के समान प्रतापी, वीरों में शिरोमणि जिस की आयु पच्चीस वर्ष की है उस की मैं पत्नी हूं। पिता की आज्ञा से अपने छोटे भाई भरत को राज्य दे कर चौदह वर्ष के लिए मेरा भर्ता वन में भेजा गया है। हे महात्मन् ! उस सत्यवादी के साथ मेरा देवर लक्ष्मण जो युद्ध में शत्रुओं को मारने वाला और बड़ा बलवान है मेरी रक्षा के लिये आया है, आप थोड़ी देर यहां विराजिये अभी वह आते ही होंगे। हे महात्मन् ! अब आप बतलाईये कि आप कौन हैं और इस भयानक वन में विचरते हैं। सीता के ऐसा पूछने पर वह राक्षसराज गर्ज कर बोला, हे जानकि ! जिस के नाम से देव दानव मनुष्य किन्नर गंधर्व आदिक भयभीत हैं, पवन देवता जिसे पंखा करता है वरुण जिस के हां पानी भरता है और इन्द्र जिस के महलों में प्रकाश करता है, वह मैं तीनों लोक चौदह भुवन और सप्त खंड पृथिवी को जीतने वाला रावण हूं। हे सीते कुंदन

के समान रंग वाली तुझ सुन्दरी को देख कर अपनी स्त्रियों को भूल गया हूं, और तुझे अपने महल में ले जाना चाहता हूं । हे विशाल लोचने ! मेरे महल में नाना देशों की सुन्दरियां हैं, वह सब तेरी सेवा करेंगी तू उन की पटरानी बन । हे जानकि ! चारों ओर समुद्र से घिरी हुई पर्वत की चोटी पर लंका पुरी प्रसिद्ध है वहां मैं रहता हूं, वहां तू मेरे साथ रहकर सुख भोगेगी. हे कोमलांगि ! तू बनों में रहने के योग्य नहीं है ।

रावण के इन वचनों से कुपित हुई हुई सीता बोली हे निशाचर ! हिमालय पर्वत के समान अचल और महा समुद्र के समान अक्षुभ्य, बड़े बलवान तेजस्वी सर्व गुण सम्पन्न सिंह की चाल वाले राम को तू नहीं जानता और गीदड़ों की नांई मुझ अकेली को ऐसे वचन कहता है । हे नीच ! सिंह के मुख से तू दांत उखाड़ना चाहता है । रे मूर्ख ! तू नेत्र से सीना चाहता है, तपी हुई तलवार को जिह्वा से चाटना चाहता है, रे गर्दभ ! तू गले में पत्थर बांध कर सागर को तैर कर पार करना चाहता है । तेरा मनोरथ उस निर्बुद्धि मूर्ख के समान है जो चांद और सूर्य्य को हाथ से पकड़ना चाहता है ।

सीता के इस अपमान जनक उत्तर को सुन कर रावण ने क्रोध से अपने हाथों को मसलते हुए कहा, हे सीते ! तू मेरे बल और प्रताप को नहीं जानती मैं

आकाश में खड़ा हो कर भूमि को गेंद के समान उठा लूं समुद्र को चुल्लु में रख कर पान कर जांऊ और मृत्यु का भी गला घोंट दूं, इतना कहते कहते नील पर्वत के समान विकाल रूप रावण ने गेरुवे वस्त्र उतार दिए और दोनों हाथों से सीता को उठा कर कंधे पर डाल लिया। इसी समय उस राक्षस राज का विमान वहां आ पहुंचा। रावण से पकड़ी हुई सीता ने 'हा राम' 'हा राम' इस प्रकार पुकारा और अपने आप को छुड़ाने के लिए बहुत हाथ पांव मारे, परन्तु काम से पीड़ित हुए हुए रावण ने उसे बांध कर विमान में फेंक दिया और आकाश मार्ग से ले उड़ा, उस समय बावली सी हुई हुई सीता विलाप करने लगी, हा लक्ष्मण! तू कहां है, पापी रावण मुझे लिये जाता है। हा सुमित्रा नंदन! तेरे बलवान हाथ इस समय मेरी रक्षा क्यों नहीं करते। हाय! आज कैकेयी का मनोरथ सफल हुआ इस प्रकार विलाप करती हुई जानकी ने जटायु को देखा। उसे देख कर आकाश में कुररी के समान रोती हुई सीता ने पुकार कर कहा, हे आर्य्य! हे जटायो!! यह देख लंकापति रावण मुझे बलात् हर कर ले जा रहा है, तुम मेरे श्वशुर के सखा हो रक्षा करो, रक्षा करो।

—:-०-:—

जटायु वध ।

श्येन से दबोची हुई कुररी के समान सीता के इस आर्त शब्द को जटायु ने सुना और आकाश की ओर मुंह उठा कर उस गृध्र ने रावण से कहा, हे ब्राह्मण ! चारों वेदों को जानने वाला हो कर किस कारण तू पर स्त्री को हर कर लिये जाता है, हे भाई ! सर्वगुण सम्पन्न श्री रामचन्द्रजी की यह स्त्री है किस प्रकार तू इतना ज्ञानवान हो कर ऐसे निंदित कर्म में प्रवृत्त हुआ है । हे राजन ! राजा का धर्म तो स्त्रियों की रक्षा करना है परन्तु काम से पीड़ित हुआ तू भले बुरे का ज्ञान छोड़ बैठा है । इसे छोड़ दे । हे दशकंधर ! तू जवान है शस्त्रधारी और कवच पहने हुए है, और मैं बहुत बूढ़ा शस्त्र हीन और दुर्बल हूं, परन्तु जब तक मेरे तन में प्राण हैं मैं सीता की रक्षा करूंगा और तुझे इस काम से रोकूंगा । हे रावण ! तू इसे चोरों के समान हर लाया है सो तू आज मेरे हाथों मारा जाएगा अथवा मैं ही तेरे हाथ से मार दिया जाऊंगा ।

जटायु के इन कठोर और अपमान जनक वचनों से क्रुद्ध हुआ हुआ रावण उस पक्षिराज की ओर दौड़ा जो विमान पर बैठ कर सीता को छुड़ाने के लिये उसकी ओर आ रहा था । वायु से प्रताड़ित दो बादलों के समान खुले आकाश में उन की टक्कर हुई जिस के शब्द से गगन मण्डल गूंज उठा । क्रोध से तपे हुए जटायु ने

रावण को मार मार कर घायल कर दिया, परन्तु सुनील पर्वत के समान रावण के सामने उस का बस न चला, युद्ध में उस की दोनों भुजाएं कट गई और पीड़ा से व्यकुल हो कर वह पृथिवी पर गिर कर मूर्छित हो गया। लहु लुहान हुए हुए जटायु को पृथिवी पर गिरते देख कर सीता भी उस के पीछे भूमि पर गिरी। तब रावण ने जल्दी से उस गिरती हुई को बालों से पकड़ लिया। और 'हा राम हा लक्ष्मण' इस प्रकार विलाप करती हुई को निर्दयता से विमान में फेंक कर लंका की ओर ले उड़ा।

—:०:—

सीता विलाप।

रावण से हरी जाती हुई सीता दोनों भुजाओं को पसार पसार कर विलाप करने लगी। उस समय सोने के भूषणों से भूषित और सुनहले वस्त्रों को पहेरे हुए वह जनकात्मजा रावण से पकड़ी हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानों काले मेघ में बिजली चमक रही हो। वायु से उड़ते हुए उस के पीले वस्त्रों से रावण ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ मानों अग्नि के प्रकाश से पर्वत प्रकाश मान हो रहा हो। विशाल मस्तक वाला, सुन्दर केशों वाला, निर्मल, उज्वल, गौर वर्ण वाला, हरिण के समान नेत्रों और शुभ दन्त पंक्ति वाला जानकी का सुन्दर मुख लंकापति रावण की गोद में धरा हुआ

ऐसा देख पड़ता था मानों नीले बादल को फाड़ कर पूर्णमासी का चन्द्रमा निकला हो । सोने के रंग वाली सीता के साथ रावण ऐसा शोभा युक्त हुआ मानों मस्त हाथी की देह में सोने की जंजीर लटक रही हो, इस प्रकार वह रावण आकाश मार्ग से रोती हुई सीता को हर कर लिये जा रहा था । उस समय सिंह बाघ आदि जंगल के मृग रावण के विरुद्ध क्रोध से विमान के नीचे नीचे दौड़ने लगे । जल के नालों को बहाते हुए पर्वत ऐसे प्रतीत होते थे मानों वह सीता के लिए आंसु बहा रहे हैं । उस समय श्वेत अभ्रखंड से ढका हुआ सूर्य्य ऐसा प्रतीत होने लगा मानों जानकी के दुख को देख कर उस के मुख का रंग उड़ गया है । सीता के विलाप को सुन कर बन के पशु पक्षि विलाप करने लगे, आकाश की ओर निहारते हुए हरिणों के नेत्रों से आंसु टपक रहे थे, बन के वृक्ष शोक से अपनी शाखाओं को झुकाए उदासीन खड़े थे और दुख व शोक से विलाप करती हुई सीता कुररी के समान राक्षसेन्द्र से पकड़ी हुई चली जाती थी ।

—:०:—

किष्किन्धा पर्वत पर जानकी का वानरों को देखना ।

जानकी ने जब देखा कि अब इस राक्षस से मुक्ति प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है तो वह बड़ी दीनता से आंसु बहाती हुई परमात्मा से प्रार्थना करने लगी, कि

हे दीन बंधो ! हे घट घट के जानने वाले ! हे दुखियों के दुख दूर करने वाले परमेश्वर ! इस समय तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं है, मेरी रक्षा कर । हे दया के भण्डार ! हे रोम रोम में व्यापक प्रभो ! मेरे सतीत्व की रक्षा करने वाला तू ही है । हे नाथ ! तू निराश्रयों के आश्रय और शरणागतों का शरण्य है, हे दयालो ! मैं तेरी शरण में हूं, इस प्रकार प्रार्थना करते करते उस देवी ने नीचे एक पर्वत पर पांच वानरों को बैठे देखा । उस को देख कर जानकी ने पीले दुपट्टे में अपने भूषणों को बांध कर ऊपर से गिरा दिया । भूषणों के अकस्मात गिरने से वह वानर आकाश की ओर देखने लगे परन्तु काम के मद में मतवाला हुआ हुआ रावण आंधी के समान वेग से नद नदी सरोवर वन पर्वतों और विशाल समुद्र को पार कर के लंका में जा पहुंचा । लंका में जा कर उस राक्षसेन्द्र ने जानकी को मय नामक दैत्य से बनाए हुए सुन्दर महल में रखा और फिर क्रूर राक्षसियों को बुला कर आज्ञा दी, कि कोई पुरुष अथवा स्त्री इस को मेरी आज्ञा के बिना मिलने न पावे, और हीरे मोती स्वर्ण तथा जो पदार्थ पहरने व खाने को यह मांगे इसे तत्काल दे दिया जावे और तुम में से कोई भी यदि इसे कटु वचन कहेगा तो वह तुरन्त ही मार डाला जाएगा ।

इस प्रकार राक्षसियों को पहरे पर लगा कर रावण

महल से बाहर निकला और सोचने लगा, कि अब क्या करना चाहिए ? उसने अपने बड़े बड़े आठ सेनापतियों को बुला कर आज्ञा दी, कि दण्डक बन के जनस्थान को राम ने उजाड़ दिया है, सो तुम वहां जा कर निवास करो और राम लक्ष्मण की प्रत्येक चेष्टा की मुझे सूचना देते रहो। हे बलवान राक्षसो ! राम और लक्ष्मण के मार डालने का प्रयत्न करो, मैंने तुम्हारे पराक्रम को युद्ध भूमियों में अनेक बार देखा है सो इसी लिए तुम्हें इस काम पर नियुक्त करता हूं। इन राक्षसों को जनस्थान में भेज कर रावण सीता को देखने के लिए तत्काल फिर महल के अन्दर गया। वहां जा कर उस कामी ने राक्षसियों से घिरी हुई शोक से पीड़ित रोती हुई जानकी को देखा।

—:-०-:—

रावण का सीता को प्रेरणा करना।

दुख से आंसु बहाती हुई सीता के निकट जा कर वह पतित राक्षस बोला, हे मदिराक्षि ! मेरा यह सारा राज्य आज से तेरा हुआ और मैं भी जो तीनों लोकों का राजा हूं आज से तेरा दास हुआ, तू मुझे प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी है। हे सीते ! देश देशान्तरों से लाई हुई मेरी सब सुन्दर स्त्रियां तेरी दासियां हैं, तू मुझे पतिरूप से स्वीकार कर, और इस लंका की पटरानी बन कर इस पर शासन कर। हे क्षीणोदरि ! सब

देव दानव राक्षस और मनुष्य तेरे दास होंगे और मैं भी तेरे इशारे पर चलूंगा, तू अभिषेक के जल से स्नान कर के मेरे साथ सुख से रमण कर । हे जनकात्मजे ! पूर्व जन्म के पापों का फल तूने बनवास के रूप में प्राप्त किया अब पुण्यों के फलने का समय आया है जो तू मुझे वर कर त्रैलोक्य की अधीश्वरी बनने वाली है । हे कमल लोचने ! दिव्य मालाएं, देवताओं के भूषण और नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ सब तेरे लिए हैं, यदि तू मुझे अंगिकार करे । हे जानकि ! युद्ध में कुबेर से छीने हुए पुष्पक विमान पर बैठ कर तू आकाश में मेरे साथ विहार कर, कमल के समान तेरा यह मुख रुदन करने के योग्य नहीं है और जो तू धर्म अथवा लोक लज्जा के भय से भयभीत है सो तेरा यह विचार भी निर्मूल है, हे नितंबिनि ! युद्ध में हर कर ले जाना भी वैदिक विधि है, सो तू मुझे अंगीकार कर के देवदुर्लभ सुख को प्राप्त कर ।

—:०:—

सीता का रावण को धिक्कारना ।

कामपीड़ित रावण के यह वचन सुन कर शोक संतप्त सीता मध्य में तृण रख कर बोली, हे शठ ! धर्म धुरीण दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी सत्यवादी धर्मात्मा और बड़े पराक्रमी हैं वही मेरे पति और वही मेरे इष्ट देवता हैं । सिंह की चाल वाले महाबाहु श्री राम-

चन्द्रजी लंका सहित तेरा नाश करेंगे इस बात को तू अटल जान। रे कायर ! यदि तू उन के सन्मुख मुझे हरण करने का यत्न करता तो निस्संदेह तेरी वही दुर्गति होती जो तेरे खर दूषण भाईयों की हुई है। हे दुर्बुद्धे ! तू मेरे पति के सामने ऐसे ही है जैसे गरुड़ के सामने सर्प। श्री रामचन्द्रजी के बाण तेरे शरीर के इस प्रकार टुकड़े कर डालेंगे जैसे वेगवती गंगा तटों को तोड़ डालती है। हे रावण ! देवता और राक्षस तुझे नहीं मार सकते यह सत्य है परन्तु श्री रामचन्द्रजी तुझे जीता न छोड़ेंगे। अब तेरे जीवन के दिन थोड़े रह गए हैं सो तू अपने इष्ट देवता का स्मरण कर। हे रावण तेरा तेज बल और बुद्धि नष्ट हो चुकी है, सो अब लंका के विधवा होने में कोई दिन की बात है। हे राक्षस ! जिस का नाश निकट होता है उस की बुद्धि नष्ट हो जाती है सो तू अपने आप को काल की पाश से जकड़ा हुआ समझ। हे लंकेश ! ब्राह्मणों से मंत्र द्वारा पवित्र की हुई यज्ञ की वेदी जैसे चण्डाल के बैठने के योग्य नहीं होती, इसी प्रकार रघुवंशी श्री रामचन्द्रजी की भार्य्या को तू स्पर्श करने योग्य नहीं है। हे मूर्ख ! हंस के साथ कमलों में विहार करने वाली हंसी जल-कुक्कुट के साथ कैसे रह सकती है। हे राक्षसाधम ! यह शरीर क्षणभंगुर है, सो तू इसे भले ही काट दे परंतु मेरे सामने उस धर्मात्मा श्री रामचन्द्रजी की निंदा न

कर।

सीता के मुख से ऐसे कठोर और अपमान जनक वचन सुन कर रावण क्रोध से बोला, हे जनकनंदिनि ! मैं चाहूं तो अभी तेरा सिर काट लूं परन्तु तुझ पर दया करता हूं और सुन ! यदि तू एक वर्ष के अन्दर अन्दर मुझे अंगीकार न करेगी तो तुझ को टुकड़े टुकड़े कर डाला जाएगा। ऐसा भयानक वचन कह कर फिर वह राक्षसियों के प्रति आज्ञा देता भया, कि हे भयंकर कर्म वाली राक्षसियो ! तुम सीता को दुख दे दे कर इस के अभिमान को दूर करो और इसे अशोक वाटिका में लेजा कर रखो।

रावण की आज्ञा पाकर वह राक्षसियां सीता को अशोकवाटिका में ले गईं जो अनेक प्रकार के पुष्पों और फलों से लदी हुई थी, जहां पक्षियों का कलरव कानों को सुख देता था और जहां सदैव वसन्त खिला रहता था।

—:०:—

श्री रामचंद्र जी का आश्रम को लौटना।

मृग रूप मारीच राक्षस का बध कर के श्री रामचन्द्रजी जब आश्रम की ओर लौटे तो उन्होंने लक्ष्मण को आते देखा। सीता से बिना अकेले लक्ष्मण को देख कर श्री रामचन्द्रजी बोले हे सुमित्रा नंदन ! जानकी कहां है और उसे अकेली छोड़ कर कैसे तू

यहां आया है ? हे लक्ष्मण ! छाया के समान सदा मेरे पीछे रहने वाली मेरी प्राण प्यारी कहां है, जिस के बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता । हे लक्ष्मण ! तुझे अकेले देख कर मेरा कलेजा मुंह को आरहा है क्या वह जनक नंदिनी जीती तो है ! हे सुमित्रा नंदन ! यदि सीता जीती है तो आश्रम में जाऊंगा, नहीं तो प्राणों को त्याग दूंगा । निस्संदेह ! उस मायावी राक्षस ने 'हा लक्ष्मण' कह कर तुझे भी धोखे में डाल दिया और जानकी से भेजा हुआ तू मेरी सहायता के लिए इधर दौड़ आया है । हे लक्ष्मण ! राक्षसी माया से धोखा खा कर तूने राक्षसों को बदला लेने का अवकाश दे दिया है। दुष्ट राक्षसों ने खर के बदला लेने के लिए सीता को अवश्य मार डाला होगा । हे महाबाहो ! आज मेरे दुर्भाग्य की कोई थाह नहीं है ।

—:०:—

श्री रामचंद्र जी का आश्रम में सीता को न देख कर विलाप करना ।

इस प्रकार चिन्ता में पड़े हुए श्री रामचन्द्रजी जब आश्रम में पहुंचे तो वहां सीता को न पाया । सीता के बिना वह पर्णकुटी ऐसी शोभाहीन देख पड़ी जैसे शीत से मारी हुई कमलिनी । उस समय आश्रम के वृक्ष पत्तों को गिराते हुए ऐसे प्रतीत होने लगे मानों वह भी सीता के वियोग में आंसु गिरा रहे हैं । आश्रम के अन्दर श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि मृगान और कुशा

इधर उधर बिखरे पड़े हैं, आसन मसले हुए और चटाई औंधी पडी है, फूलों के पौधे जहां तहां उलटे और टूटे पड़े हैं और कहीं कहीं वृक्षों की झुकी हुई डालीयां आधी टूट कर नीचे को लटक रही हैं। आश्रम को इस अस्त व्यस्त दशा में देख वह बड़ी चिन्ता से सोचने लगे कि सीता कहां गई क्या उस को कोई हर कर ले गया है व कोई राक्षस खा गया है अथवा वह पुष्प चुनने गई है किंवा नदी पर जल लेने चली गई है। इस प्रकार बहुत विचार करने और खोजने पर भी जब सीता को न पाया तो उन के नेत्रों के आगे अंधकार छा गया, आंखे लाल हो गईं, मस्तक चकरा गया और उन्मत्त से हो गये और सीता के वियोग में कभी नदी की ओर दौड़ते, कभी पर्वत की ओर भागते और कभी वृक्षों के आस पास चक्कर लगाने लगे। अपनी प्राण प्यारी की विरह व्यथा से पीड़ित हुए हुए वह कभी तो कदंब वृक्ष के नीचे खड़े हो कर उसे पूछते, कि हे कदंब ! मेरी सीता को तेरे फूलों से बहुत प्यार था, यदि उस का कुछ पता है तो बताओ। कभी बिल्व के पास जा कर कहते, हे बिल्व तरो ! यदि तूने बिल्व के सदृश स्तनो वाली पीत वस्त्र धारिणी उस भामिनी को देखा हो तो बताओ, कभी किसी और वृक्ष के पास जा कर कहते कि निस्संदेह इस वृक्ष ने जानकी को देखा है, क्योंकि फूलों से लदा हुआ होने के कारण यह स्पष्ट है कि इसका

हृदय उसको देख कर आनंद से फूल रहा है । फिर वहां से हट कर अशोक के निकट जा कर पूछते, कि हे वृक्ष ! तेरा नाम अशोक है सीता को मिला कर मेरे शोक को दूर कर । फिर ताड़ की ओर देख कर कहते हैं, हे ताड़ तरो ! तू बहुत ऊंचा है, भला देख तो मेरी प्राण वल्लभा कहां है ।

इस प्रकार शोक से विलाप करते हुए श्री रामचन्द्र जी आम कदंब ताड़ जंबु अनार आदिक पेड़ों से पूछते करुणा जनक विलाप करने लगे कि हे सीते ! हे प्राण प्रिये ! तू कहां है, हे जानकि ! यदि वृक्षों की ओट में छिप कर तू मेरे साथ हंसी कर रही है तो अब मेरे सामने आजा मैं अत्यन्त दुखी हूं । हे प्रिये ! जिन मृग शावकों के साथ तू नित्य खेला करती है और जिन्हें बच्चों के समान अपने हाथ से घास खिलाया करती है इस समय वह तुझे न देख कर आंखों से आंसू गिराते हुए इधर उधर भटक रहे हैं । हे वीर लक्ष्मण ! सीता के बिना मैं जीता नहीं रह सकता, हा ! निस्संदेह मेरा पिता स्वर्ग में मुझे धिक्कारेगा और स्पष्ट शब्दों में कहेगा कि हे अनार्य्य ! चौदह वर्ष वन में व्यतीत किए बिना ही कैसे तू स्वर्ग में आया है । हे सीते ! तू मुझे छोड कर कहां चली गई है । दलदल में फंसे हुए हाथी के समान दुखी भाई को इस प्रकार विलाप करते देख कर लक्ष्मण बोला, हे नरोत्तम ! रोने और विलाप करने

से कुछ लाभ न होगा मेरे साथ चल कर इस बड़े पर्वत में सीता की खोज करो जिस में अनेक कन्दराएं और सैकड़ों वृक्षों के संघट्ट हैं। जानकी बनों में घूमना पसंद करती है और फूलों की बहुत प्यारी है कदाचित वह वन में घूमने गई होगी अथवा गोदावरी के तट पर मछलियों का कौतुक देख रही होगी किंवा भयभीत हो कर वन में घुसी होगी हे मेधाविन् ! निस्संदेह हमारी तरह वह भी हमें ढूंढ रही होगी सो विषाद को छोड़ कर शीघ्र उसकी खोज करनी चाहिए।

लक्ष्मण के इन वचनों ने श्री रामचन्द्रजी को कुछ धीरज दिया और वह उसको साथ ले कर पर्वत में सीता को ढूंढने लगे। पर्वत की शिलाएं शिखर और कंदराएं तथा सघन झाड़ियां एक एक करके सब देखीं पत्ता पत्ता छान मारा परन्तु जानकी न मिली अंत में हताश हो कर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले हे भाई ! पर्वत की एक एक शिला देख ली, फूले हुए कमलों वाली पद्मिनियों में भी ढूंढा परन्तु प्राण प्रिया के दर्शन न हुए, इतना कहते कहते उस बड़े धीरज वाले का भी धीरज टूट गया और वह 'हा सीते' 'हा प्रिये' इस प्रकार बन में ऊंचे स्वर से पुकारने लगा। लक्ष्मण के बारंबार धीरज देने पर भी महात्मा राम अपने आपको भूल गया और वियोग की पीड़ा से उन्मत्त पुरुषों के समान सीता को न देखता हुआ भी देखते हुए के

समान इस प्रकार प्रलाप करने लगा, हे पुष्पों की प्यारी ! तू अशोक वृक्ष की टहनियों में अपने शरीर को छुपा कर क्यों मुझे दुख देती है मैं तेरी केलों के सदृश जंघाओं को केले की ओट में देख रहा हूं, तू मेरी आंखों से ओझल नहीं हो सकती, हे प्राणेश्वरी ! कर्णिकार के बन में छिपी हुई तू मेरे साथ क्यों हंसी कर रही है, अब बस कर मैं अधिक वियोग नहीं सह सकता। हे सुनयनि ! तेरे बिना यह आश्रम सूना हो रहा है। हा लक्ष्मण ! राक्षसों ने सीता को खा लिया है, इस में अब कुछ भी संशय नहीं रहा, क्योंकि यदि वह जीती होती तो मेरे बुलाने पर आ जाती। यह मृग नेत्रों में आंसु भर कर मेरी ओर देखते ऐसे मालूम होते है, मानों मुझे यह कह रहे हैं, कि सीता को कोई राक्षस खा गया है। हा! आर्य्या के बिना कैसे मैं अयोध्या में जाऊंगा, लोग मुझे नपुंसक निर्दयी और निर्वीर्य्य कहेंगे। राजा जनक को मैं क्या उत्तर दूंगा, जब वह सीता की कुशल पूछेंगे ? हे लक्ष्मण ! अब मैं किसी को मुख दिखाने के योग्य नहीं रहा सो तू मुझे छोड़ कर अयोध्या को लौट जा और मेरी ओर से भरत को कहना कि अब तू ही अयोध्या का राज्य कर और मेरी माता तथा सुमित्रा व कैकेयी को मेरी ओर से प्रणाम कहना। मेरी माता के प्रति सीता के विनाश और मेरी आत्म हत्या का सारा वृत्तान्त कह देना

अब मैं अपने प्राण त्यागूंगा, इतना कह कर श्री रामचन्द्रजी और भी अधिक विलाप करने लगे और शोक में मग्न हुए हुए फिर लक्ष्मण के प्रति बोले हे भाई ! मेरे जैसा पापी संसार में दूसरा कोई नहीं है, देखो समुद्र के द्वीपों के समान एक के पीछे दूसरा दुख लगातार मेरे सामने आ रहा है और इस का अंत होने में नहीं आता। राज्य हाथ से निकल गया घर बार सम्बंधी परिवार कुटुम्ब सब छूट गये पिता स्वर्ग को चले गए बन बन की मट्टी छानी, इतने दुखों के होते हुए भी केवल प्राण प्यारी सीता का एक सहारा था जिसका मुख देख देख कर मै जीता था परन्तु कुटिल दैव को यह भी एक आंख न सुहाया और सीता को मुझ से छीन लिया, निस्संदेह वह सुन्दर केशों वाली कमल लोचना बन में राक्षसों से खेंची हुई कुररी के समान रो रही होगी। तुम कहते हो, कि वह बन में घूमने गई होगी परन्तु वह भीरु है बन में अकेली जाने से डरती है और नांही गोदावरी पर आज तक कभी अकेली गई है, सो अवश्य ही राक्षसों ने उसे खा लिया है अथवा हर लिया है। हे बन के वृक्षो ! प्राण प्यारी सीता कहां है, उसे क्या हुआ है यदि तुम जानते हो तो बताओ। हे वायु देव ! तेरी गति सारे संसार में है, तू ही सीता के केशों की सुगन्धि को उड़ा कर यहां ला, हे सूर्य्य देव ! तू सारे संसार को देखता है, मुझे बता

कि सीता कहां है ।

—:-०-:—

लक्ष्मण का फिर धीरज देना ।

बड़े दुख से दुखी हुए हुए बड़े भाई को अनाथ के समान रुदन करते देख कर लक्ष्मण ने उन के चरणों को छू कर कहा, हे राघव ! बड़े तप से पिता ने तुम को प्राप्त किया है तुम्हारे वियोग ही में उस महिपति ने प्राण दिए हैं, सो हे भाई ! इस प्रकार रुदन करते करते यदि तुम ने प्राण दे दिए तो मेरी, भरत की और माताओं की क्या दशा होगी, इस पर विचार करो । हे नरोत्तम ! धीरज धरो, इस संसार में किस मनुष्य पर आपत्तियां नहीं आती दुख सुख प्राणियों का भोग है । हे राघव ! सुख नहीं रहा तो दुख भी नहीं रहेगा, सदा दिन एक से नहीं रहते यह मनुष्य काल के झूलने में बैठा कभी नीचे और कभी ऊपर होता है । हे भाई ! बड़े बड़े देवता ऋषि और मुनि भी दैव के हाथों से नहीं छूट सकते । हे सत्यवादिन् ! आप तो साक्षात् वृहस्पति के समान बुद्धिमान हैं, आप को कौन शिक्षा दे, सो आप मनको स्थिर कर के जानकी की खोज करें ।

लक्ष्मण के तत्त्व से भरे हुए इन शब्दों ने श्री रामचन्द्रजी को सावधान कर दिया और वह धीरज के साथ सीता की टोह लेने के लिए खर और दूषण के जनस्थान की ओर चले । तब सारे बन को भली भान्ति

देखते देखते उन्होंने मार्ग में लहु में डूबे हुए अपने पिता के मित्र जटायु को देखा । पर्वत के समान डील वाले उस पक्षि को देख कर श्री रामचन्द्रजी के क्रोध की थाह न रही और वह लक्ष्मण से बोले इसी दुष्ट ने जानकी को खा लिया है आज यह मेरे हाथों यमपुरि में भेजा जायेगा । यह कह कर नेत्रों से अग्नि के अंगारे बर्साते हुए श्री रामचन्द्रजी प्रत्यञ्चा पर बाण रख कर जटायु की ओर दौड़े ।

मुख से फेन छोड़ता हुआ, घावों से पीड़ित लहु से लतपत जटायु श्री रामचन्द्रजी को देख कर धीमे स्वर से बोला, हे राम ! अच्छा हुआ तुम आ गये कदाचित तुम्हारे दर्शन ही के लिये मेरे प्राण अटके हुए थे, हे राघव ! लंकापति रावण ने मेरे प्राण ले लिये हैं और तुम्हारी प्राणप्यारी सीता को हर कर ले गया है । हे धीर शिरोमणि ! जिस को तुम संजीवनी बूटी की तरह वन में ढूंढ रहे हो उस सीता को मैंने रावण के विमान में रोते और सहायता के लिये पुकारते सुना तब मैंने उस देवी की सहायता के लिए महा बलि रावण पर आक्रमण किया । यह उस का धनुष है यह उस के बाण हैं और यह उस के रथ का कुछ भाग चूर चूर हुआ पड़ा है परन्तु वृद्ध होने के कारण मैं उस राक्षस से पार न पा सका जब लड़ते २ मेरी भुजाएं थक गईं तो उस ने तलवार से मेरी भुजाओं को काट

दिया। हे दाशरथि! अब मेरी मृत्यु निकट है अधिक बोला नहीं जाता, जिह्वा खिंची जा रही है और सब इन्द्रियां शून्य हो रही हैं, सो तुम मेरे मर जाने पर मेरा दाह संस्कार कर देना, मैं तुम्हारे पिता का सखा हूं.....इतना कह कर उसने राम को गले से लगाया और फिर थोड़ी देर बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ।

—:०:—

जटायु का दाह संस्कार।

लहू से भरे प्राणहीन जटायु को पृथिवी पर पड़े देख कर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले, हे वीर! राज्य छिन गया, घर से निकाला गया, सीता खोई गई और आज यह द्विज जटायु भी मारा गया, निस्संदेह मुझ से बढ कर अभागा संसार में कोई नहीं है। हे लक्ष्मण! विपत्तियों की फांसी जो मेरे गले में पड़ गई है जब तक जीता हूं नहीं छूटेगी। यह मेरे पिता का प्यारा मित्र आज मेरे ही दुर्भाग्य से मारा गया है। चिरकाल तक दण्डक बन में निवास कर के इस द्विज ने आज अपने शरीर को मेरे अर्थ लगा दिया है। हे वीर! जानकी के हरे जाने का मुझे जितना शोक हुआ है उस से कहीं अधिक इस के मरने से हुआ है, मैं इसे अपने पिता के समान समझता था। हे लक्ष्मण! शीघ्र लकड़ियां ला मैं इसे अपने हाथों दाह संस्कार करूंगा। तब बड़े भाई की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने बहुत

सी लकड़ियां एकट्ठी करके चिता बनाई । श्री रामचन्द्रजी ने अरणियों का मंथन कर के अग्नि निकाली और फिर उस द्विज की देह को चिता पर रख कर इस प्रकार कहने लगे, कि हे बलवान गृध्रराज! यज्ञ करने वाले, अग्नि होत्र करने वाले, युद्ध भूमि में सामने हो कर लड़ने वाले और संग्राम में न भागने वाले और भूमि दान करने वाले मनुष्य जिस लोक में जाते हैं आज तुम मेरे हाथों से दग्ध किये हुए उसी उत्तम गति को प्राप्त करो और उसी लोक में जाओ तुम्हारी कीर्ति संसार में अटल रहेगी। यह कह कर उन्होंने चिता को अग्नि लगा दी और उस परोपकारी जटायु के शरीर को भस्म कर दिया। इस के पश्चात् गोदावरी नदी के तीर पर जाकर दोनों भाईयोंने जटायु को जलांजलि दी, और वह पक्षिराज जो दूसरे के लिए युद्ध में मारा गया था सद्गति को प्राप्त भया।

—:०:—

कबन्ध राक्षस को मारना।

जटायु को जलञ्जलि दे कर दोनों भाई सीता की खोज में दक्षिण पश्चिम दिशा को चले। कुछ दूर आगे चल कर वह ऐसे मार्ग पर पहुंचे जहां कोई पगडंडी नहीं थी और रास्ता नाना लताओं और वृक्ष समूहों से ऐसा हो गया था, कि वहां चलना कठिन हो गया। परन्तु सीता की खोज में व्याकुल हुए २ दोनों

भाई उस दुर्गम्य बन को पार करते भए। इस प्रकार वह जन स्थान से तीन कोस दूर जा कर बड़े भयानक क्रौञ्च नामक बन मे पहुंचे। वह बन जल से भरे हुए बादल के समान सघन और अन्धकार मय था। नाना रंगों के सुगन्धित पुष्पों मृगों तथा पक्षियों से भरे हुए उस दुर्गम बन में वह दोनों सीता की खोज करने लगे परन्तु बहुत ढूँढने पर भी उसे वहां न पा कर आगे चले। क्रौञ्च बन को पार कर के मतंगाश्रम नामक अरण्य में पहुंचे। यह जंगल बड़ा भयानक और हिंसक जन्तुओं से भरा हुआ था। उस में घूमते फिरते इन्होंने एक ऐसी पर्वत-कन्दरा देखी जो पाताल के तुल्य गहरी और इतनी अन्धेरी थी कि हाथ पसारा भी न देख पड़ता था। उस भयानक कन्दरा के मुख पर एक बड़ी मैली कुचैली विकराल मुख वाली लंबोदरी बड़े २ दांतों वाली सिर के बालों को खोले हुए हड्डियां चबाती हुई राक्षसी दिखाई दी। इन दोनों के निकट पहुंचने पर वह राक्षसी अट्टहास करती हुई लक्ष्मण को लिपट गई और बोली मेरा नाम अयोमुखी है तुम को पा कर मैं बहुत प्रसन्न हुई। इस बन में मेरे साथ विहार करो और सुख से रहो। उसकी इस चेष्टा से लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और म्यान से तलवार खेंच कर उसके नाक कान और स्तन काट दिए। तब लहू की धारा बहाती हुई वह राक्षसी भयानक क्रोश करती हुई वहां

से भाग गई । इस प्रकार अयोमुखी राक्षसी को विरूप कर के दोनों भाई अपने पराक्रम से उस बन को फाड़ते हुए आगे चले । बहुत दूर आगे निकल जाने पर उस अन्धेरे बन में एकाएक उन्होंने एक भयानक शब्द सुना जो मेघ की गर्जना के समान बन को फोड़ता हुआ सारी पृथिवी को कंपायमान करता भया । उस शब्द का पता लगाने के लिए दोनों भाई तलवारें सूत कर जब आगे बढे तो क्या देखते हैं, कि गज के आकार वाला ग्रीवा के बिना जिस की छाती पर मुख और आंखे चमक रही हैं ऐसा कबंध राक्षस अपनी मुट्ठी में बन के जन्तुओं को पकड़े हुए मार्ग रोके खड़ा है । जब दोनों भाई उस के निकट पहुंचे तो उस लम्बी भुजाओं वाले कबंध ने झपट कर इन को पकड़ लिया और दोनों भुजाओं से दबाता हुआ बोला, भाग्य से तुम मुझे मिले हो आज तुम्हें खा कर तृप्त हूंगा, अपने इष्ट देवता का स्मरण करो । इस अवसर पर लक्ष्मण भयभीत हो गया परन्तु श्री रामचन्द्रजी ने बड़ी फुर्ति से उस की भुजाओं को काट दिया और वह राक्षस भयानक चीत्कार कर के पृथिवी पर गिर पडा ।

रुधिर का स्रोत बहाता हुआ वह राक्षस पृथिवी पर गिरते ही श्री रामचन्द्रजी से बोला हे नर श्रेष्ठ ! इस राक्षस योनि से छुड़ा कर तुम ने मेरा बडा उपकार किया । तुम्हारे हाथ से मैं सद्गति पाऊंगा यह मैं

इन्द्र की कृपा से पहले ही से जानता था, सो अब तुम मेरा दाह संस्कार कर के मेरे शरीर को ठिकाने लगा देना। कबंध के मुख से यह बचन सुन कर श्री रामचन्द्रजी बोले, हे राक्षसराज! तुम्हारी कामना सफल हो, मैं ऐसे ही करूंगा परन्तु दण्डक बन में मेरी अनुपस्थिति में रावण मेरी भार्य्या को हर कर ले गया है। मैं उस को, उस के ठिकाने को, और उस के बल पराक्रम को नहीं जानता सो यदि तू उस के विषय में कुछ जानता है तो कह। तब वह बोला, हे आर्य्य! रावण लंका का राजा बड़े बल से युक्त है, देव दानव सब उस से भयभीत हैं सो यदि तुम उस से युद्ध करना चाहो तो नीति से काम लो। हे राघव! मैं तुम्हें उपाय बताता हूं। सुनो, ऋष्यमूक पर्वत पर जिस की सीमा पंपा सर पर है सुग्रीव नामक वानर चार वीर वानरों के साथ निवास करता है। वह वानरराज बड़ा तेजस्वी बलवान, सुन्दर, सत्यवादी, धीर, वीर, बुद्धिमान, नीति निपुण, और बड़ी सेना वाला रावण को मारने में समर्थ है। उस के बडे भाई बाली ने उस का राज्य और स्त्री छीन कर उसको गृह से निकाल दिया है यदि तुम उसे मित्र बनालो तो तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। उस को भी इस समय तुम्हारे जैसे पराक्रमी पुरुष की सहायता की आवश्यकता है। सो तुम अग्नि को साक्षि कर के उस के साथ मित्रता करो वह राक्षसों

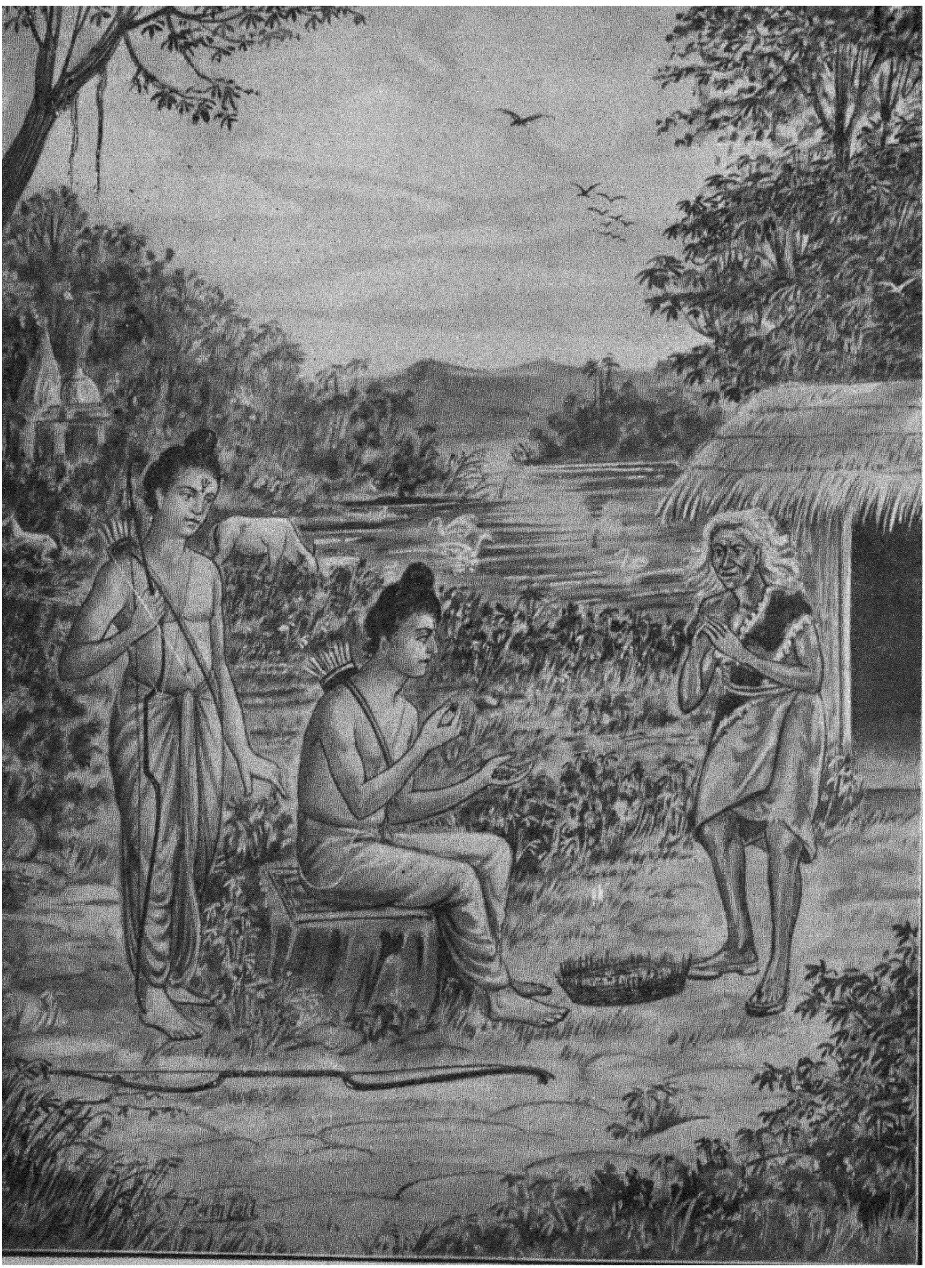

Bhardawaj Press Lahore.

शबरी का आश्रम।

(पृष्ठ ३२१)

के सब स्थानों को जानता है और मायवी चालों को समझता है। वह अपने चतुर वानरों द्वारा सीता की खोज कर देगा। चाहे वह आकाश व पाताल के किसी भी कोण में होगी, और एक बार सीता को पा लेने पर वह वानर राज राक्षसों को मारकर अवश्य तुम्हारी कामना पूरी कर देगा।

इतना कहकर कबंध प्राणों को त्याग कर अपने पूर्व जन्म के पुण्य फल से दिव्य लोक को चला गया।

तब श्री रामचन्द्र जी कबन्ध का दाह संस्कार करके लक्ष्मण सहित पंपा सर की ओर चले। वहां पहुंच कर उन्हों ने उस सुन्दर सरोवर के तीर पर भीलनी के रमणीक आश्रम को देखा।

शबरी का आश्रम।

कबंधका दाह कर्म करके श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित सुग्रीव के दर्शन के लिए चले। चलते चलते वह पंपा के पश्चिम तीर पर पहुंचे। उस रमणीक स्थान पर उन्हों ने शबरी के आश्रम को देखा, जो अनेक प्रकार के वृक्षों से भरा हुआ था। उस आश्रम में उन्हों ने शबरी के दर्शन किये। श्री रामचन्द्र जी को आते देख कर वह उठ खड़ी हुई और दोनों के चरणों को स्पर्श करके जल और आसन देकर इनकी पूजा करती भई। तब आसन पर बैठकर श्रीरामचन्द्र जी ने पूछा, हे तपस्विनि

तुम्हारी तपस्या सफल तो हुई, इस में कोई विघ्न तो नहीं आया। तुम ने क्रोध को तो जीत लिया है? तुम्हारा आहार तो नियमित है? तुम कुशल से तो हो तुम्हारी गुरु सेवा तो सफल हुई?

श्री रामचन्द्र जी के ऐसा पूछने पर वह वृद्धा भीलनी हाथ जोड़ कर उत्तर देती भयी, कि हे रघुनंदन! आज मेरी गुरु सेवा सफल हुई, आपके दर्शन से आज मेरी तपस्या फली भूत हुई और मेरा यह जन्म सफल हुआ। हे राघव! वह मुनि लोग जिन के चरणों की मैं सेवा करती थी, उसी दिन स्वर्ग को चले गये जिस दिन आप चित्रकूट में पधारे थे। इस नश्वर देह को छोड़ते समय उन मुनियों ने मुझे कहा था, कि श्री रामचन्द्र जी तेरे आश्रम में आएंगे। तू ने उनकी तन मन से पूजा करना। सो हे नाथ! आप की पूजा के लिये मैंने इस मतंग बन के स्वादिष्ट और मीठे बेर आदिक जंगली फल एकट्ठे किये हैं, आप इन्हें स्वीकार कीजिए।

तब उस वृद्धा भीलनी से दिये हुए उन जंगली फलों को श्री रामचन्द्र जी ने बड़े प्रेम से खाया। प्रेम और श्रद्धा से दिये हुए उन फलों को खाकर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे तपस्विनि! तेरे इन फलों ने मुझे राजाओं के अत्युत्तम स्वादिष्ट पदार्थों को भी भुला दिया। सोने के थालों में परोसे हुए, बड़े बड़े

छत्र पतियों की पाकशालाओं में चतुर रसोईयों के हाथों से बने हुए पदार्थों में भी मैंने ऐसा स्वाद न पाया जैसा मैं इन फलों में देखता हूं। हे वृद्धे! आज मैंने साक्षात माता कौशल्या के हाथ के दिए हुए फलों! को खाया है, ऐसा प्रतीत होता है.....इतना कहते कहते श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों से प्रेम का नीर बहने लगा।

इसके अनन्तर भीलनी ने उस बड़े बन की ओर उंगली करके कहा हे राम! यह जो मेघ घटा के समान काला बन सामने दिखाई देता है, इसी को मतंग बन कहते हैं। मृग और पक्षियों से आकीर्ण इस बन में मेरे गुरुओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया था वह देखो यज्ञ की वेदी से अभी तक थोड़ा २ सुगंधित धूम उठ रहा है, वह यज्ञ के पात्र हैं जो ज्यूं के तूं रखे हुए आजतक उनकी याद दिलाते है। हे राघव! इस जीवन में मैंने तप किया व्रत किए गुरु सेवा की परन्तु एक आशा आप के दर्शनों की थी सो आज पूरी हुई, अब मैं इस जीर्ण देह को छोड़ना चाहती हूं और वहीं जाना चाहती हूं जहां वह मुनि लोग गए हैं। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उस वृद्धा को नेत्रों से नीर बहाते हुए कहा, हे तपस्विनी! तेरी पूजा से मैं प्रसन्न हूं, तू सुख से जा, परमात्मा तेरी कामना पूरी करे।

श्री रामचन्द्र जी के ऐसा कहने पर उस भीलनी ने समाधि लगाई और योग बल से प्राणों को दशम द्वार में लेजाकर शरीर को त्याग दिया।

तब शबरी का अन्त्येष्टि संस्कार करके श्री रामचंद्र जी लक्ष्मण सहित पंपा पर पहुंचे, जो सुन्दर बाग बागीचों से सजी हुई, स्फाटिक के समान निर्मल गंभीर जल वाली, सफ़ेद रेत वाली, कमल और सुगंधित फूलों से नीले वर्ण वाली नाना प्रकार के रंगों से रमणीय थी। उसे देखकर श्री रामचन्द्र जी के हृदय का शोक दूर होगया और वह महात्मा सुग्रीव के दर्शनों के लिये पंपा के तीर तीर चलने लगे।

इति श्री बाल्मीकीय रामायणे
कविराज जयगोपालकृत
आरण्यकाण्ड समाप्त।

किष्किन्धा काण्ड

पंपा की शोभा निहार कर श्री रामचन्द्रजी का विलाप करना।

पंपा सर पर पहुंच कर श्री रामचन्द्रजी एकाएक व्याकुल हो गये और सीता के वियोग में विलाप करते हुए लक्ष्मण के प्रति बोले, हे वीर! देख ये पंपा कैसी शोभा देती है जिस का जल मूंगे के समान निर्मल है, जिस में लाल पीले और नीले कमल फूल रहे हैं, जो चारों ओर से सुन्दर बनों से घिरी हुई है और जिस का जल ठंडा और नेत्रों को प्रसन्न करने वाला है। हे लक्ष्मण! पंपा के तट वर्ती इन स्थलों को देख जो लाल पीले और नीले फूलों के साथ गुलदस्ते से देख पड़ते हैं। इन के चारों ओर फूलों से लदे हुए पेड़ों की चोटीयों पर चढ़ी हुई पुष्पित लताएं क्या भली प्रतीत होती हैं। हे लक्ष्मण! यह चैत्र मास जिस में बन फूलों और फलों से भर जाता है, वायु सुगंधि में बस जाता है, काम को उद्दीप्त करता है। हे सौमित्रे! फूलों से सजे हुए इस बन को देख जो पर्वत पर पुष्प वृष्टि करता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानों मेघ ने नन्हीं नन्हीं बूंदों से वर्षा की झड़ी बांध दी है। रंग रंग के बन वृक्ष पवन के वेग से हिलते हुए पर्वत शिलाओं पर पुष्प बखेर रहे हैं। हे लक्ष्मण! देख! पवन इन वृक्षों से किस प्रकार क्रीड़ा

करता है, कहीं गिरे हुए फूलों को शिलाओं पर से उड़ा कर आगे आगे धकेलता है, गिरते हुए पुष्पों को कभी नीचे और कभी ऊंचे उड़ाता हुआ वृक्षों और हरे हरे पौधों की चोटीयों पर अटका देता है और गिरने वालों के साथ झूम झूम कर अठखेलीयां करता है, हे वीर ! देख !! पर्वतों की गुफाओं से निकलता हुआ पवन, वृक्षों के साथ नाचता कोकिला के समान गायन करता कैसा प्यारा लगता है । हे वीर ! इन कर्णिकार के वृक्षों को देख जो स्वर्ण से ढके हुए पीत वस्त्रों वाले सैनिक मनुष्यों के समान वन को चारों ओर से घेरे खड़े हैं । हाय ! यह बसतं ऋतु जिस में भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, पवन मस्ती से बह रहा है, फूल चटक रहे हैं और ठंडे जल सरोवरों में लहरा रहे हैं सीता के बिना मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है । हे वीर ! मधु मास रूपी यह अग्नि जिसके कि अशोक के स्तवक अंगारे हैं भ्रमरों की गुंजार ध्वनि है और कोकिलाएँ लाल रंग की लाटें हैं, निस्संदेह मुझे जला कर राख कर डालेगा । हे लक्ष्मण ! यह ऋतु मेरी प्यारी को अति प्यारा है, देख ! वृक्षों की शाखाओं पर नाचते हुए मोरों के खुले हुए पंख पवन से हिलाये हुए बिल्लोर के झरोखों के समान कैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं । हे वीर देख, पर्वत के शिखरों पर नृत्य करते हुए मोरों के संग कामातुर हुई हुई मोरनियां कैसे नाच कर रहीं हैं । और मोर भी पंख फैला फैला कर उन के पीछे दौड़

रहे हैं हा ! आज यदि मेरी प्राण प्यारी यहां होती तो वह भी इसी प्रकार मेरे साथ खेलती। हे लक्ष्मण ! जहां जानकी है वहां भी यदि इसी प्रकार वसंत खिला हुआ होगा तो निस्संदेह वह भी मेरे विरह में अत्यन्त दुखी होगी। हे लक्ष्मण ! वह कमल नयना, मधुर भाषिणी, कोमलांगी जानकी अवश्य ही मेरे वियोग में रो रो कर प्राण दे देगी। उस का मन सदैव मुझ में लीन रहता है मुझ से रहित हुई हुई वह जल से बाहर निकाली हुई मछली के समान तड़प रही होगी। हे वीर ! जो जो वस्तुएँ मुझे जानकी के साथ पहले सुख देती थीं, आज दुख का कारण हो रही हैं। हे लक्ष्मण ! इन भ्रमरों को देख जो वायु मण्डल में उड़ते हुए तिलक मञ्जरी पर गुंजार कर रहे हैं। हा ! यदि सीता मेरे साथ होती तो इस पंपा सर को देख कर अति प्रसन्न होती जो बाल सूर्य्य के समान प्रभा वाले कमलों से चारों ओर घिरी हुई है। हे लक्ष्मण ! देख किस प्रकार वायु के झकोलों से सहस्रों कमल एक साथ ही एक ओर को झुक जाते हैं। निस्संदेह यह कमल दल मेरे नेत्रों को अति प्यारे लगते हैं क्योंकि यह जानकी के नयनों के समान हैं। कमलों के स्पर्श से सुगंधित हुआ हुआ यह वायु जानकी के श्वासों के तुल्य हो रहा है। अहह ! आज यदि सीता यहां होती तो इस वसन्त की शोभा को निहारती जिस में पर्वतों के शिखिर केसुओं के असंख्य फूलों से मानों

जल रहे हैं और वायु नाना वृक्षों को स्पर्श करता हुआ कभी पर्वत की चोटियों पर और कभी जल की तरंगों पर नृत्य कर रहा है। यह देख वसन्त के वायु से मस्त हुए हुए भौंरे कभी खट्टे कभी मीठे और कभी तीक्ष्ण फूलों का रस ले ले कर फूलों के गर्भ में समा रहे हैं, और देख ! अपने आप झडे हुए पुष्पों से पटी हुई भूमि फूलों की सेज के समान शोभा दे रही है, आज वसन्त पूरे जोबन पर है और फूल मानों इर्षा से एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर खिल रहे हैं। हे सौमित्रे ! आज यदि सीता के दर्शन यहां हों तो मैं अयोध्या क्या इन्द्रपुरी का भी त्याग कर दूं। ऐसी सुन्दर हरी हरी भूमि पर निश्चिन्त हो कर मैं उस के साथ विहार करूं। हे लक्ष्मण ! देख इन पर्वतों की सुन्दर चोटियों पर किस प्रकार मृग अपनी मृगियों के साथ रमण कर रहे हैं परन्तु मैं अभागा सीता के वियोग में वनों की मट्टी छान रहा हूं। उस प्राणप्यारी ने मेरे लिये महलों को छोडा सारे परिजनों का त्याग किया, सब सुखों पर लात मारी, परन्तु आज वह न जाने कहां कैसे दुख में होगी। हा दुर्दैव ! अब मेरा जीना कठिन है, किस प्रकार मैं उस पद्मपत्राक्षी के बिना प्राण धारण करूं। हे परमात्मन् ! कब मैं उस प्यारी का सुन्दर और भोला भाला मुख देखूंगा। कब उस के मीठे और हित से भरे हुए वचन सुनूंगा। हा ! अयोध्या में लौटने पर जब

कौशल्या मुझ से पूछेगी कि "जानकी कहां है, जिसे मैंने तेरे हाथ में सौंपा था" तब मैं क्या उत्तर दूंगा, किस प्रकार उसे अपना मुख दिखलाऊंगा। हे लक्ष्मण ! मेरे सिर पर विपत्तियों का पहाड़ गिरा है, जिसके नीचे आया हुआ मैं कभी बच नहीं सकता, यहीं मेरे प्राण पखेरू इस शरीर को त्यागें गे, तू जा और मेरी माताओं व भरत को मेरी मृत्यु का समाचार सुनादे। इस प्रकार कहते कहते श्री रामचन्द्रजी महा विलाप करते मूर्छा खा कर पृथिवी पर गिर पड़े।

बड़े भाई की यह अवस्था देख कर लक्ष्मण ने उन के सिर को गोद में रखा और कमल फूल से पंखा झुलाने लगा। जब कुछ चेतना हुई तो नेत्रों में आंसु भर कर बोला, हे नरोत्तम! शोक न कर! आप जैसे महा-पुरुषों को घबराना उचित नहीं है। हे रघुनंदन। अब रावण बच नहीं सकता चाहे वह तीनों लोक चौदह भुवन में कहीं भी चला जाय उस की मृत्यु अब निश्चित है। हे राघव विपत्ति में धैर्य्य रख कर पुरुषार्थ और उत्साह से काम करना चाहिए। उत्साहवान पुरुष के सामने विपत्ति नहीं ठहर सकती, उत्साह ही संसार में एक बड़ी शक्ति है, जिस से सब काम सिद्ध हो सकते हैं। उत्साही पुरुष कभी दुखी नहीं होते, इसी उत्साह से इसी पुरुषार्थ से, हे राघव ! हम रावण को मार कर सीता को लायेंगे।

लक्ष्मण के इन हितकारी और धीर बंधाने वाले शब्दों ने श्री रामचन्द्र जी को फिर उत्साहित कर दिया और वह कार्य्य क्षेत्र में उतरने के लिये कटिबद्ध होकर पंपा को पार कर गये।

—:०:—

हनुमान का श्री रामचन्द्र जी के पास आना।

पंपा सर को पार करके दोनों भाई ऋष्य मूक पर्वत के पास पहुंचे। वहां वानर राज सुग्रीव जो बाली के भय से सदैव चौकस रहता था अतुल तेज वाले इन दोनों धनुप धारियों को देखता भया। अकस्मात् इन अपरिचित मनुष्यों को शस्त्र धारण किये, घूमते देखकर सुग्रीव भय भीत होगया, और उसके चित्त में अनेक प्रकार की शंकाएं उठने लगीं। सुग्रीव की यह दशा देखकर हनुमान बोला, हे वानराधिपति! आप बाली के भय से क्यों व्याकुल हैं, यहां उसका बल नहीं चल सकता। तब सुग्रीव ने अपने सब मंत्रियों को इकट्ठा करके कहा, हे भाईयो! यह दोनों शस्त्र धारी बाली के भेजे हुए गुप्त चर हैं, और मुनियों का वेश धारण करके हमारी टोह लेने आए हैं, यदि जल्दी ही इनका उचित प्रबंध न किया गया तो हम सब की बालि के हाथों मृत्यु निश्चित है। सुग्रीव के मुख से यह वचन सुनकर हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा, हे राजन्! तुम्हारे दुष्ट आत्मा बड़े भाई को मैं यहां नहीं देखता और न ही वह यहां आ सकता

है, सो तुम धीरज धारण करके बुद्धि के साथ सब कार्य्यों को करो क्योंकि धैर्य्य हीन राजा संकट में उचित उपाय नहीं सोच सकता। हनुमान के ऐसा कहने पर सुग्रीव बोला, हे हनुमान! इन्द्र कुमारों के समान इन दोनों मनुष्यों को देखकर मुझे तो यही शंका होती है, कि यह अवश्य ही बालि के दूत हैं, इसलिये इन पर विश्वास करना उचित नहीं, सो हे महावीर! तुम अपना वेश बदल कर उनके पास जाओ और बात चीत से, चेष्टा से जिस प्रकार भी हो सके उनके हृदय की भावना का पता लो, और यदि इन की शुद्ध भावना देखो तो यहां ले आओ अन्यथा हमें जल्दी आकर पता दो।

हनुमान की भेंट।

सुग्रीव की आज्ञा पाकर हनुमान ने अपना भिखारी का सा रूप बनाया और पर्वत से नीचे उतर कर बड़ी नम्रता से दोनों हाथ जोड़कर श्री रामचन्द्र जी की स्तुति करने लगा। फिर साष्टांग दण्डवत करके बोला हे राजर्षियो! आप इस देश में कैसे आए हैं। आप मनुष्य हैं व देवता जो इस भूमि के पवित्र करने के लिये देव लोक से उतरे हैं। हे वीर ब्रह्मचारियो! महात्मा सुग्रीव से जो इस देश के राजा हैं, भेजा हुआ मैं आपके आगमन का कारण पूछना चाहता हूं, मेरा नाम हनुमान है और मेरे स्वामी धर्मात्मा सुग्रीव भाई के हाथों दुखी हुए हुए

आप से मित्रता चाहते हैं ।

हनुमान के ऐसा पूछने पर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से बोले हे वीर ! यह हनुमान महाराज सुग्रीव का मंत्री है, सो तू इस से वार्तालाप कर । निस्संदेह यह बाणी में चतुर चारों वेदों का जानने वाला और व्याकरण का पंडित मालूम होता है, क्योंकि जैसे स्पष्ट और शुद्ध और तुले हुए शब्द इस के मुख से निकले हैं, ऐसे वेद शास्त्रों का न जानने वाला मनुष्य नहीं बोल सकता, और बात करते समय इसके मुख मस्तक भवें और शरीर के किसी अंग पर कोई विकार नहीं आया, इस की विचित्र और मधुर बाणी ने मेरे कानों में अमृत टपका दिया है और मन को वश में कर लिया है, हे लक्ष्मण ! जिस राजा का दूत ऐसा बुद्धिमान मेधावी और चतुर हो उसके कार्य्य कैसे सिद्ध न हों ।

बड़े भाई से इस प्रकार प्रेरणा किया हुआ लक्ष्मण पवन पुत्र हनुमान से बोला, हे कपीश ! धर्मात्मा सुग्रीव के गुणों को हम जानते हैं, उसी के दर्शनों के लिए हम यहां आए हैं । हे विद्वन् ! चक्रवर्ती राजा दशरथ संसार में विख्यात हुआ है, यह श्रीरामचन्द्र जी उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं और मैं इनका छोटा भाई हूं । राज्य च्युत होकर १४ वर्ष के लिये यह बन में रहने के लिये आये हैं, इन के गुणों पर मुग्ध होकर दास रूप से इन की सेवा के लिये मैं भी साथ आया हूं । हे हनुमान ! दिन के अन्त

में जैसे सूर्य्य के पीछे उसकी लाल प्रभा चलती है इसी प्रकार इन की प्राण प्रिया पत्नी इनके साथ चली थी, परन्तु अंधकार रूपी रावण राक्षस ने उसे हर लिया है, इसी विचार से मैं और श्री रामचन्द्र सुग्रीव की शरण में आए हैं। हे हनुमान जो श्री रामचन्द्र जी सारे संसार को शरण देने वाले हैं आज दिनों के फेर से वह तुम्हारी शरण में आते हैं और तुम्हारा प्रसाद चाहते हैं। हे कपि प्रवर! जिस राजाधिराज दशरथ के चरणों में भूमंडल के सब राजे महाराजे झुकते थे उसी का प्यारा पुत्र भाग्य के फेर से आज सुग्रीव की शरण में आया है। सो शोक और दुख से पीड़ित श्री रामचन्द्र जी को राजा सुग्रीव अपने दल बल सहित सहायता देवे। इतना कहते कहते लक्ष्मण के नेत्रों से आंसु गिरने और कण्ठ रुक गया। लक्ष्मण के यह बचन सुनकर पवन पुत्र हनुमान बोला, हे लक्ष्मण! आज हमारा देश पवित्र हुआ, हमारे नेत्र आपके दर्शनों से कृतार्थ हुए। आप जैसे जितेन्द्रय, पराक्रमी और मेधावी पुरुषों के भाग्य ही से दर्शन होते हैं, हे राघव! तुम्हारी तरह सूर्य्य पुत्र सुग्रीव भी इस समय बड़ी विपत्ति में है उस की स्त्री भी वालि से हरी गई है, वह भी अपने राज्य से निकाला गया है और भाई के भय से इस पर्वत पर निवास करता है, सो मैं उसकी ओर से आप को विश्वास दिलाता हूं कि वह वानर राज आप की सब

प्रकार से सहायता करेगा इतना कहकर हनुमान श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण को बड़े आदर के साथ ऋष्य मूक से मलया गिरि के ऊपर सुग्रीव के पास ले गया।

श्री रामचंद्र जी का सुग्रीव के साथ मित्रता करना।

दोनों भाईयों को साथ लेजाकर हनुमान सुग्रीव के सन्मुख इस प्रकार बोला, हे वानर राज! चक्रवर्ती राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित आप ही के दर्शनों के लिए आए हैं। दण्डक बन में वास करते हुए इनकी प्रिया को राक्षसेन्द्र रावण हर कर ले गया है, अब यह आप की मित्रता चाहते हैं, इन्हें स्वीकार करो क्योंकि यह बड़े गुणवान् बुद्धिमान और पूजा के योग्य हैं।

हनुमान के वचन से प्रसन्न होकर सुग्रीव बोला, हे राघव! आप के दर्शनों से मैं अति प्रसन्न हुआ, हम तुम एक ही दुख से दुखी हैं, और मिलकर एक दूसरे का दुख दूर करने की सामर्थ्य रखते हैं, सो यदि तुम सच्चे हृदय से मैत्री चाहते हो तो यह मेरा हाथ है इसे अपने हाथ में पकड़ो और अग्नि को साक्षि करके शपथ उठाओ कि हमारे हाथ कभी अलग न होगे और एक दूसरे की भुजा बनकर परस्पर सहायता करते रहेंगे। उस समय हनुमान ने भिखारी का वेश त्यागकर अग्नि को प्रज्वलत किया। श्रीरामचन्द्र जी ने अग्नि को साक्षि करके सुग्रीव

के हाथों को पकड़ा और फिर दोनों बड़े प्रेम से एक दूसरे के गले मिले। परस्पर मैत्री हो जाने पर सुग्रीव सहित श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण सुन्दर आसनों पर बैठ गये। और एक दूसरे की ओर अतृप्त नेत्रों से देखने लगे। इसके पश्चात् चंदन और पुष्पों से श्री रामचन्द्र जी की पूजा करके सुग्रीव बड़े हर्ष से बोला हे राघव! मैं बड़े अपमान के साथ जीवन व्यतीत कर रहा हूं, मेरे भाई बालि ने मेरी स्त्री को हर लिया है, और राज्य छीन लिया है, अब भय के मारे इस मलय गिरि पर निवास करता हूं, सो आप बालि से मेरी रक्षा कीजिये।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे कपीश! अब मैंने तुम्हारा हाथ पकडा है, सो तुम धीरज धरो मैं अपने वज्र तुल्य इन तीक्ष्ण बाणों से उसका वध करूंगा। छोटे भाई की स्त्री कन्या के समान होती है, उसका हरण करके उस नीच ने लोक और परलोक में अपना मुंह काला किया है, सो अब तू उसे मरा हुआ ही समझ। उसे मारकर मैं तुझे राज्य तिलक दूंगा यह मैं अग्नि के सामने प्रतिज्ञा करता हूं।

सीता के भूषणों को देखना और श्री रामचन्द्र जी का विलाप करना।

बालि बध की प्रतिज्ञा हो चुकने पर सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र जी को कहा, हे राघव! हनुमान के मुख से मैं तुम्हारी दुख कथा सुन चुका हूं, परंतु अब तुम धीरज

धारण करो। मैं शीघ्र ही तुम को सीता से मिला दूंगा। हे महाबाहो! चाहे वह आकाश पताल व रसातल में भी हो, मैं अवश्य उसे ढूंढूंगा। रावण क्या इन्द्रादि देवता भी उसे हरकर जीते नहीं रह सकते। हे रघुनंदन! विष से मिला हुआ भोजन जैसे कोई पचा नहीं सकता इसी प्रकार सीता किसी को पच नहीं सकती। हे दाशरथे! थोडे दिन हुए एक राक्षस एक स्त्री को विमान में उडाए लिये जा रहा था, उसके मुख से हा राम हा लक्ष्मण इस प्रकार के वचन हम ने सुने, कदाचित वही सीता हो, क्योंकि मैं अच्छी तरह उसे देख नहीं सका। उस स्त्री ने हम पांचों वानरों को देखकर कुछ वस्त्र और भूषण नीचे गिरा दिये जो हमने अभी तक सम्हाल कर रखे हैं, इतना कहकर सुग्रीव ने पर्वत की कंदरा से उन भूषणों को लाकर श्री रामचन्द्र जी के सामने रख दिया इन भूषणों और वस्त्रों को देखकर श्री रामचन्द्र का धीरज जाता रहा नेत्रों में आंसु आगए और उन को हृदय से लगाकर पृथिवी पर गिर पडे। दुख और क्रोध से उनके श्वास इस समय ऐसे वेग से चलने लगे मानों बिलमें बैठा हुआ सर्प क्रोध से फुंकारे मार रहा हो। तब छम छम आंसु बर्साते हुए श्री रामचन्द्र जी बोले हे लक्ष्मण! सीता के इन भूषणों को तुम पहचानों क्योंकि मेरी बुद्धि इस समय अपने ठिकाने नहीं है, प्राण प्रिया के वियोग से मैं ज्ञान शून्य हो रहा हूं, श्री रामचन्द्र

जी की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने कहा, हे नरोत्तम ! न मैं हाथों के कंकणों को पहचानता हूं, ना कंठ के हार को और नांही मस्तक के किसी भूषण को पहचान सकता हूं, क्योंकि आज तक मैंने कभी सीता के मुख और हाथों को नहीं देखा हां नित्य चरणों को स्पर्श करने के कारण मैं इन नूपुरों को पहचानता हूं, और निस्संदेह यह सीता ही के हैं।

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव से बोले हे सूर्य्य सुत ! मेरी प्राण प्रिया को वह राक्षस किस दिशा में लेजा रहा था, सीता के इस अपमान के बदले में पृथिवी से राक्षसों का बीज नाश कर डालूंगा जिसने जानकी को हरण करके मेरे क्रोध को जगाया है, उसे मैं भस्ममात कर दूंगा। हे कपीश ! जिस राक्षस ने मेरी प्रिया को हरा है, उसका पता बताओ, मैं आज ही उसका बध करूंगा।

सुग्रीव का श्री रामचंद्र जी को धीरज देना।

श्री रामचन्द्र जी को सीता के वियोग में अत्यन्त दुखी देखकर सुग्रीव के नेत्रों में भी आंसु आ गये परन्तु वह हाथ जोड़कर कंपित स्वर से बोला, हे राघव ! मैं उस पापी रावण का बल पौरुष और ठिकाना नहीं जानता, परन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि रावण को मारकर सीता को उसके पञ्जे से छुड़ा लूंगा। आप धीरज धारण

करें. धैर्य्यवान पुरुष विपत्ति में विलाप नहीं करते। बंधुओं से वियोग, प्राणों का भय, धन का नाश आदिक संकट मनुष्यों पर ही आया करते हैं, परंतु बुद्धिमान धैर्य्य के बल से इन सब विपत्तियों को पार कर जाते हैं और मूर्ख जन शोक सागर में डूबकर अपने आपका नाश करते और जगत् में हंसी कराते हैं, सो आप पौरुष का आश्रय लेवें। हे राघव ! मैं मित्र भाव से ऐसा कहता हूं आप को उपदेश नहीं देता, क्योंकि आप सर्वगुण सम्पन्न और चारों वेदों के जानने वाले हैं।

सुग्रीव के इन वचनों से प्रसन्न होकर श्री रामचन्द्र जी बोले हे कपीश ! प्यारे मित्रों को जो काम करना चाहिये वही तुम ने किया है, तुम्हारे समझाने से मुझे धीरज आ गया, सचमुच तुम्हारे जैसे स्नेही मित्रका मिलना महा दुर्लभ है। हे वानर राज! सीता के खोजने और दुष्ट रावण के मारने में तुम मेरी सहायता करना, और मैं तुम्हारे सामने ही दुष्ट बालि का संहार करूंगा, उसके विषय में जो जो बातें तुम ने कहनी हैं, निशंक होकर कहो। हे सूर्य्य पुत्र ! मैंने जो प्रतिज्ञा तुम्हारे सन्मुख की है. उसे हिमालय पर्वत के समान अटल समझो. बालि अब बच नहीं सकता. उसके दुष्ट कर्म अब फल लाकर रहेंगे।

श्रीरामचन्द्र जी के मुख से बालि-बध की प्रतिज्ञा सुनकर सुग्रीव के हर्ष का कुछ ठिकाना न रहा और वह

अपनी दुर्दशा और बालि के बलका वर्णन करता हुआ बोला कि हे रघुनंदन ! मैं बालि के बल को आप के प्रति कहता हूं, तुम ध्यान देकर सुनो और उसके मारने का उपाय सोचो । हे राम ! बालि ने मेरा राज्य छीन कर मुझे कठोर वचनों से धिक्कार दिया और मेरी प्राणों से प्यारी स्त्री को अपने महल में डाल लिया, वह दिन रात मेरे मारने की युक्तियां सोचता रहता है । उसके डर से मैं इस पर्वत पर निवास करता हूं । मेरे सब साथी एक एक करके मेरा साथ छोड़ गये, अब यह हनुमान आदि चार मित्र मेरी दिन रात रक्षा करते हैं । जहां मैं जाता हूं यह मेरे साथ जाते हैं और जहां ठहरूं ठहर जाते हैं । हे राघव ! अपने बड़े भाई के भय से मेरे प्राण सूख गए हैं, वह बड़ा बलवान है, बन के बड़े बड़े वृक्ष वह अपनी भुजाओं से उखाड़ डालता है । दुंदुभि नामक राक्षस जो सुमेरू के शिखर तुल्य आकार वाला था, जिस के बल की कोई थाह नहीं थी, उसको उठा कर उसने भूमि पर पटक दिया और मार डाला । साल के वृक्ष को यह अपनी भुजाओं में भरकर जब झंझोड़ता है तो पत्र हीन कर देता है, उस के असाधारण बलको जब मैं देखता हूं तो चित्त में संशय उत्पन्न होता है, कि किस प्रकार आप उस पर्वताकार वानर को मारेंगे ।

सुग्रीव के यह वचन सुनकर लक्ष्मण ने हंसकर कहा हे सुग्रीव ! श्री रामचन्द्र जी बालि को मार देंगे, ऐसा

विश्वास तुम्हें किस प्रकार होवे सो तुम कहो । तब सुग्रीव ने उत्तर दिया, कि यह जो साल के सात बड़े २ वृक्ष खड़े हैं, बालि ने एक एक करके सातों वृक्षों को बींधा है, जो मैंने अपनी आंखों देखा है, सो श्री रामचंद्र जी इन वृक्षों में से यदि एक को बींधे तो मुझे विश्वास होगा । हे लक्ष्मण ! श्री रामचन्द्र जी के बल को तोलने के लिये मैं ऐसा नहीं कहता, उन की वाणी पर ही मुझे विश्वास है, परंतु भाई के बल से भयभीत हुआ हुआ ऐसा कहता हूं ।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर सूर्य्य के समान तेजस्वी श्री रामचन्द्र जी ने धनुष को संभाला और प्रत्यंचा पर बाण जोड़कर उसकी टंकार से सारा पर्वत गुंजा दिया । फिर उस बाण को आकर्ण खेंचकर इस वेग से साल पर छोड़ा कि वह बाण एक साथ ही सातों साल वृक्षों को और पर्वत के शिखर को फोड़ कर पृथिवी में धंस गया । तब श्री रामचन्द्र जी के इस अद्भुत बल को देखकर सुग्रीव विस्मित हो गया और हाथ जोडकर स्तुति करता भया कि हे राघव ! जिस ने एक ही बाण से सात वृक्षों को पर्वत समेत फोड डाला, उसके आगे युद्ध में कौन ठहर सकता है, आप युद्ध में इन्द्रादि देवताओं को भी परास्त कर सकते हैं, इस बालि की बिसात ही क्या है । हे राम ! आज ही उस दुष्ट बालि का वध करके मेरी चिन्ता को दूर करो मैं आप से हाथ जोड कर प्रार्थना करता हूं ।

बालि सुग्रीव युद्ध।

श्री रामचन्द्र बोले हे सुग्रीव! आज ही मैं दुष्ट बालि का संहार करूंगा। यहां से हम सब किष्किन्धा को चलते हैं। तुम हमारे आगे आगे चलो और अपने दुष्ट भाई को युद्ध के लिए ललकारो हम समय पर तुम्हारी सहायता करेंगे।

इस प्रकार निश्चय करके वह सब किष्किन्धा को चले। उस समय श्री रामचन्द्र जी ने अपने धनुष को च ाकर हाथ में रख लिया और सब से आगे आगे चले। उन के पीछे सुग्रीव और लक्ष्मण चले। इनके पीछे पवन पुत्र हनुमान, नल नील और तार नामक वानर चला जो युद्ध विद्या में बड़ा कुशल था। अनेक नदी नाले बन विपिन और कुञ्जों को पार करते हुए वह किष्किन्धा में पहुंचे वहां वृक्षों के सघन कुंज में ठहर कर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को बालि के साथ युद्ध करने के लिए भेजा और उसकी पीठ पर थपकी देकर कहा कि हे वानरेन्द्र! हम इन वृक्षों की ओट में ठहरते हैं तुम निर्भय होकर उसके साथ युद्ध करो।

श्री रामचन्द्र जी के इन शब्दों से उत्साहित होकर सुग्रीव बड़े क्रोध से बालि को ललकारने लगा। उस समय गर्जता हुआ सुग्रिव ऐसा प्रतीत होने लगा मानों प्रलय कालका बादल संसार के विनाश के लिए गर्जना कर रहा है। उस गर्जना से गौएं मारे भय के ऐसे

भागने लगीं जैसे अत्याचारी राजा के देश से कुलीन और सती साध्वी स्त्रियां चली जाती हैं, बन के जीव जन्तु युद्ध के घोड़ों के समान चारों ओर दौड़ने लगे। आकाश में उडते हुए पक्षी वज्राघात के समान पृथिवी पर गिरने लगे, इस प्रकार वह वानरेन्द्र सुग्रीव श्री रामचन्द्र जी से उत्साह दिलाया हुआ बाली को आह्वान करता हुआ ऐसे गर्ज रहा था जैसे तूफ़ान आने पर समुद्र गर्जता है।

सुग्रीव की उस भयंकर गर्जना को सुनते ही बाली के क्रोध की कुछ थाह न रही और वह पैरों से भूमि को प्रताडन करता हुआ इस प्रकार महल से बाहर निकला जैसे अस्ताचल के शिखर से सूर्य्य बाहर निकलता है। दोनों भाई आमने सामने होते ही एक दूसरे पर टूट पड़े। क्रोध से पागल हुए हुए वह दोनों भाई लोहे के मूसलों के समान मुक्कों और लातों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। यह देखकर श्री रामचन्द्र जी ने अपना धनुष संभाला, परन्तु उन दोनों का डील आकार, रूप और तेज एक समान होने के कारण वह बालि की पहचान न कर सके, और बाणों को छोडने में संकोच करते रहे। इतने में बालि की मार को न सहकर सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत की ओर भाग गया। श्री रामचन्द्र जी भी लक्ष्मण हनुमान नल नील और तारा को साथ लेकर उसी बन में सुग्रीव के पास पहुंचे जहां वह अपने आप को कोस

रहा था। वानरों समेत श्री रामचन्द्र जी को देखकर सुग्रीव ने लज्जा से मुंह नीचे कर लिया। और अश्रुपात करता हुआ बोला हे राघव ! मुझे युद्ध के लिए भेजकर आप खड़े खड़े देखते रहे, यह आपने अपनी प्रतिज्ञा अनुसार कार्य्य नहीं किया, यदि आप ने मेरी सहायता नहीं करनी थी तो पहले ही साफ़ कह देना था, तुम्हारे भरोसे पर आज मैं मृत्यु की डाढ़ में फंस गया था, यह आपने क्या किया।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र बड़ी दीनता से बोले हे कपीश ! क्रोध को त्याग करके वह कारण सुनिये जिससे मैंने बाण नहीं छोड़ा। हे सूर्य्य सुत ! रूप रंग आकार, स्वर, गति और चेष्टा में तुम दोनों में कुछ भी अंतर नहीं है, युद्ध करते हुए तुम दोनों में से कौन बालि और कौन सुग्रीव है, इसकी मैं पहचान नहीं कर सका, इसलिए मैंने अपना भयंकर और प्राणों को हर लेने वाला बाण नहीं छोडा। हे वीर ! यदि मैं बिना सोचे समझे बाण छोड़ देता और वह तुम्हें जा लगता तो मैं इस लोक में और परलोक में मुख दिखाने के योग्य न रहता संसार मेरी मूर्खता पर हंसता और मैं आयु भर रोता रहता। सो हे वानरेन्द्र ! शंका को छोडकर फिर संग्राम कर अब के मैं तुम पर कोई चिन्ह लगा दूंगा। इस प्रकार सुग्रीव की शंका दूर करके श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को कहा, हे वीर ! इस पुष्पों से भरी हुई लता

को उखाड कर सुग्रिव के गले में बांध दो तब लक्ष्मण ने उस पुष्प लता को उस के कंठ में बांध दिया जिसमे वह ऐसे शोभायमान हुआ जैसे बगुलों की पंक्ति मे कृष्ण मेघ शोभा पाता हे। इसके अनंतर वह सब फिर किष्किन्धा की ओर चले गये।

वहां पहुंच कर सुग्रीव ने पहले से दुगने जोर से गर्जना करके बालि को ललकारा। उसकी वह गर्जना वन पर्वत और कुंजों को फोडती हुई बालि के प्रासाद में जा पहुंची, जिसे सुनकर वह आंधी के समान वेग से बाहर निकला। उस समय तारा प्यार से बाली को कंठ से लगाकर बोली, हे वीर! सोकर उठा हुआ पुरुष जिस प्रकार रात भर भोगी हुई पुष्प माला को फेंक देता हे, इसी प्रकार इस क्रोध को थूक डाल। हे वीर! सुनों जिस कारण में तुम्हें बाहर जाने से रोकती हूं, एक बार सुग्रीव मार खाकर भाग गया है, परन्तु अब फिर आकर उसका इस प्रकार गर्जना और लालकारना मेरे हृदय में शंका उत्पन्न करता है, कि सुग्रीव साथी के बिना नहीं हे। हे वीर! आज मुझे अंगद कुमार ने यह समाचार सुनाया हे, कि अयोध्या के राजा दशरथ के दोनों पुत्र जो रण में अजेय हैं सुग्रीव की सहायता के लिये आये, हैं। हे वीर राम के गुणों और पराक्रम को भी मैंने सुना है, प्रलय के अग्नि के समान शत्रुओं को जला डालने वाला, भक्तों में अनुरक्त और प्रजा के लिये कल्प वृक्ष

के समान सब की कामनाओं को पूरा करने वाला, बड़ा विद्वान मेधावी और पराक्रमी है, हे वीर! उसके साथ विरोध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है। सो अब तुम्हें सुग्रीव के साथ बैर छोड़कर मित्रता करनी उचित है। उसे यौवराज्य पद पर अभिषिक्त कीजिए। वह तुम्हारा छोटा भाई है, भाई के समान पृथिवी में दूसरा कोई बन्धु नहीं होता, सो दान मान आदि से उस का सत्कार कर। वह भी वैर भाव को छोड़कर तेरे अधीन हो जाएगा। हे वीर! यह वचन मैं तेरे हित के लिए कहती हूं इसे स्वीकार कर।

बाली वध।

तारा के इस प्रकार रोकने पर बाली ने झिड़क कर उसे भूमि पर पटक दिया और फिर क्रोध से बोला, तू स्त्री है, स्वभाव से ही कायर है, भाई की ललकार को कायरों के समान घर में घुसकर सहन करना असंभव है। वह शूरवीर जो कभी किसी से न दबे हों, कैसे शत्रु की गर्जना सह सकते हैं, राम को मैं जानता हूं वह न्याय शील है धर्मात्मा है, कैसे मुझ पर अकारण ही वार करेगा तू अब पीछे लौट जा, मैं सुग्रीव के साथ युद्ध करूंगा। हां तुझसे प्रतिज्ञा यह करता हूं कि उसके प्राण न लूंगा। इतना कहकर सर्प की नाईं क्रोध से फुंकारे मारता हुआ बाली नगर से बाहर हुआ और कमर कसकर मुक्का तान

कर सुग्रीव की ओर दौड़ा, सुग्रीव भी सोने की माला वाले तेजस्वी बालि को अपनी ओर आते देखकर उधर ही दौड़ा। तब वह दोनों भूकंप से हिलते हुए पर्वत शिखरों की न्याईं बड़े वेग से टकरा गए। मुक्कों गोड़ों लातों और पांओं का प्रहार करते हुए वह दोनो इन्द्र और वृत्र के समान लड़ने लगे। जब श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को बालि से दबा हुआ देखा तो उन्हों ने, मृत्यु के तुल्य विष भरे बाण को धनुष पर रखकर चढ़ाया, और लक्ष्य बांध कर बाली पर छोडा। वह बाण इन्द्र वज्र के समान कड़कता और चमकता बालि की छाती को फाड़ कर इस प्रकार घुस गया जैसे सर्प बांबी में प्रवेश करता है, उस बाण के लगते ही महा पराक्रमी, वानरेन्द्र बालि बेसुध होकर पृथिवी पर गिर पड़ा. आश्विन मास की पूर्णिमासी के दिन वह कपीश गिरा हुआ भी पूर्ण चन्द्र के समान तेज को न छोडता भया। तब भूमि पर गिरे हुए बालि के पास राम और लक्ष्मण पहुंचकर अस्तगत सूर्य के समान उसका दर्शन करते भये। बालि उन दोनों तेजस्वी कुमारों को देखकर इस प्रकार कठोर परन्तु धैर्य और नम्रता के साथ वचन बोला, हे राघव! छिपकर बाण मार कर तुमने कौनसी वीरता का काम किया है। हे रघुनंदन! संसार के सब लोग तुम्हें धीर वीर विक्रमी मेधावी धर्मात्मा न्याय शील आस्तिक चारों वेदों के जानने वाला, नीतिज्ञ तथा पितृभक्त कहते हैं और आपका यश बखान करते हैं।

यद्यपि तारा ने मुझे बाहर आने से रोका परंतु आप के इन गुणों को जानता हुआ मैं आप की ओर से निर्भय होकर सुग्रीव के साथ जुट गया। हे राघव! मेरा यह निश्चय था, कि आप मुझे दूसरे के साथ युद्ध करते हुए नहीं मारेंगे क्योंकि यह क्षत्रियोचित काम नहीं था, और नांही आप के साथ मेरा कोई वैर था। परंतु अब मैंने समझ लिया, कि धर्म की ध्वजा हाथ में लेकर तिनकों से ढके हुए कूए के समान पापी अत्याचारी और कपटी तुम मुनियों के वेश में पाप करते हो, धर्म की ओट में अधर्म करते हो। हे राघव! मैंने आपके विरुद्ध आज तक कोई आचरण नहीं किया, फिर किस अपराध से आप ने मेरे प्राण लिये हैं। हे राजन्! साम दाम दण्ड भेद दान क्षमा सत्य धीरज और विक्रम यह राजाओं के गुण होते हैं। बिना अपराध के कोई राजा दण्ड नहीं देता, फिर किस अपराध से मुझ निर्दोष का आप ने वध किया है, जो अति निंदनीय कर्म है। हे राघव! मुझ निर्दोष को आप ने मारा है, परंतु जिस ने आप की स्त्री को हर लिया है उसके सामने तो मैं आपका पराक्रम नहीं देखता हूं। मुझ असावधान को आप ने छिपकर मारा, हां, सामने होकर मुझ से युद्ध करते तो आज निश्चय ही मेरे हाथ से मारे जाते। हे राघव! मेरी मृत्यु होने पर सुग्रीव सिंहासन पर बैठेगा, इस से मुझे कोई दुख नहीं, परंतु आपके इस कपट से मैं अति दुखी हूं।

बाली के इन कठोर शब्दों को सुनकर धर्म्मात्मा श्री रामचन्द्र जी धर्म से युक्त वचन कहने लगे, कि हे बालि ! कैसे तुम बालकों की नांई ऐसे वचन कहते हो. जिस कारण मैंने तुम्हें मारा है सो सुन ! हे वानरेन्द्र ! बन पर्वत नदी नालों सहित यह सारी पृथिवी इक्ष्वाकुओं की है । इक्ष्वाकु ही इसके एक मात्र स्वामी हैं, और उन्हें ही पापियों को दण्ड देने का अधिकार है। हे कपीश इक्ष्वाकु कुल अवतंस महाराज भरत इस समय सारे देश पर धर्मानुसार शासन कर रहा है। वह सत्यवादी, धर्मात्मा, सरल और न्याय शील न्याय से सत् पुरुषों का पालन करता और दुष्ट क्रूर तथा पामर मनुष्यों को दण्ड देता है। उस छत्र पति की आज्ञा से हम सारे देश में घूम रहे हैं और उसी की आज्ञा से साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दमन करते हैं। हे बालि ! तू कामवश होकर कुमार्ग गामी हो रहा है। ज्येष्ठ भ्राता, पिता और गुरु यह तीनों पिता के समान है, ऐसा धर्म शास्त्र में कहा गया है और छोटा भाई पुत्र और शिष्य यह तीनों पुत्र के समान कहे गए हैं, परंतु इस धर्म पथ को छोड़कर तू ने छोटे भाई की स्त्री को हर लिया है जो तेरी धर्मानुसार स्नुषा अर्थात् पुत्र की स्त्री है जीतेजी उसकी स्त्री को भोगना महा पाप है । हे भाई ! इस पाप का तुझे दण्ड दिया गया है, और ऐसा करके मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है। मैं सूर्य्य कुलोत्पन्न क्षत्रिय हूं, तेरे भयानक पाप को जो

कि लोक मर्य्यादा के विरुद्ध है, नहीं सहार सकता। अपनी सगी बहन और छोटे भाई की स्त्री को काम वश होकर जो भोगता है, वह मार डालने योग्य है। हे बालि! तुझे मारकर मैंने तेरे पिछले पापों का दण्ड दिया है, और आगे होने वाले पापों से बचा लिया है, सो अब तू निष्पाप होकर स्वर्ग को जाएगा। हे वानरेन्द्र! मेरे पूर्व पुरुषों में मान-धाता नामक एक राजा हुए हैं, उन्हों नें भी श्रवण को दण्ड न दिया, जिस ने ऐसा ही दुष्कर्म किया था जैसे तूने किया, परंतु उनको दण्ड न देने का पाप लगा और घोर दुख उठाया। हे कपीश! अब तेरा पश्चाताप करना निरर्थक है, मैंने धर्मानुसार तुझे दण्ड दिया है। मैं स्वतंत्र नहीं हूं, परंतु भरत की आज्ञा से ऐसा करने पर बाध्य हूं। राम के ऐसा कहने पर बालि अपने उन कठोर वचनों पर पश्चाताप करता भया और हाथ जोड़ कर रोता हुआ बोला, हे राम! जो कुछ आप ने कहा, वह सत्य है, मुझे अपनी मृत्यु का शोक नहीं, क्योंकि सब प्राणि एक न एक दिन मरने वाले हैं। नांही मुझे तारा का शोक है, और नांही अन्य संबन्धियों का परंतु अंगद की ओर देख मुझे दुख होता है, क्योंकि मैंने बहुत लाड प्यार से उसका पालन किया है वह मुझे न देखकर सूख कर कांटा हो जाएगा। अभी बालक है, कभी मुझ से वियुक्त नहीं हुआ, हे राम! मेरा यह इक-लौता पुत्र तुम्हारी शरण में है, आप इसकी और सुग्रीव

की रक्षा कीजिए । हे राजन् सुग्रीव और अंगद में आप वही भाव रखने योग्य हैं, जो आपका भरत और लक्ष्मण में है । इतना कहकर बाली चुप हो गया और फिर न बोला ।

तारा विलाप ।

बालि के मरने पर उस की सेना के मुख्य मुख्य वानरों ने तारा को यह दुखदायी समाचार दिया । भर्ता के बध का संदेश सुनकर तारा अत्यन्त व्याकुल हुई २ पर्वत कंदरा से बाहर निकली, और छाती पीटती केश नोचती वहां पहुंची जहां योद्धाओं में श्रेष्ठ बालि गिरा पड़ा था ! कुररी के समान तारा को रुदन करते और अंगद को अस्महायों की नांई विलाप करते देखकर सुग्रीव के नेत्रों से आंसु निकल गये । तारा ने भर्त्ता के समीप जाकर उसे आलिंगन किया और इस प्रकार विलाप करने लगी हे भर्तार ! किसी के वश में न आने वाला तू सुग्रीव के हाथों मारा गया, निस्सन्देह इस में कालका अपना हाथ था, हाय ! आज राम ने तुझे छिपकर बाण मारकर क्षात्र धर्म को कलंकित किया है, हे बेटा अंगद ! अपने पिता को आज दृष्टि भरकर देख ले जिसके दर्शन करने का फिर कभी अवसर न मिलेगा । हे नाथ ! आज आप कैसे सो रहे हो, उठकर अपने पुत्र के आंसु पोंछो जो आप को देख देख कर रो रहा है ! हे स्वामिन् ! मुझे और अंगद

को किसके हाथ में सौंपे जाते हो। हाय! मेरे वचन को न मानकर आज आप इस भूमि पर लेटे हैं। जिस स्थान पर अनेक वीरों को आपने सुलाया था वही स्थान आज आप के लिये वीर शय्या बन गया है। हे पवित्र हृदय वाले! ऊंची कुल वाले! हे प्यारे! मुझे अनाथ करके तू कहां चला गया है। आज मेरा मान टूट गया, आज मेरी गति भंग होगई, आज मैं दुख के समुद्र में डूब रही हूं, हे मानद! मुझ डूबती हुई की रक्षा कर। हा! न जाने मेरा हृदय पत्थर का है जो इस समय टुकड़े नहीं हो जाता। पुत्र भी है, ऐश्वर्य्य भी है, लोक के सब सुख भी विद्यमान हैं, परंतु इन के होते हुए भी संसार में मैं विधवा के नाम से पुकारी जाऊंगी। इस प्रकार विलाप करती हुई तारा के सामने नील ने उसके भर्ता की देह से बाण को निकाला। बाण निकलते ही उस में से रक्त का स्रोत बह निकला, तब रुधिर से लाल हुए हुए अपने पति को अस्त होते हुए सूर्य्य की नाईं देखकर तारा ने अपने पुत्र अंगद को कहा, हे पुत्र यम लोक में जाते हुए अपने पिता को हाथ जोड़कर अभिवादन कर। तब रोते हुए अंगद ने अपनी मुडौल भुजाओं से पिता के चरणों को स्पर्श किया। मृत पति के चरणों को स्पर्श करते हुए पुत्र को देखकर तारा नेत्रों से आंसु गिराती हुई बोली हे नाथ! यह आपका प्यारा पुत्र आप को अभिवादन करता है, इसे उठकर आशीर्वाद क्यों नहीं देते। हाय! आज युद्ध रूपी यज्ञ को पूर्ण करके

अवभृथ में आपने मेरे बिना अकेले किस प्रकार राम बाण रूपी जल से स्नान किया, हे नाथ ! पत्नी के बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता ।

इस प्रकार घोर विलाप करती हुई दीन तारा को वानरेन्द्र बालि के शव से मुख्य २ वानरों ने जब अलग कर दिया तो उसने सूर्य्य के समान तेजस्वी मुख वाले श्री रामचन्द्र जी को हाथ में धनुष बाण लिए खड़े देखा उन्हें देखकर तारा निकट जाकर बोली, हे रघुनन्दन ! तू बीर है, तेजस्वी है, जितेन्द्रिय है, धर्मात्मा है, अक्षय यश वाला है, पृथिवी के बराबर क्षमावान् है, हे राघव ! जिस बाण से तूने मेरे पति के प्राण लिये है, उसी से मेरा भी अंत कर । मैं मर कर अपने प्राण पति के पास जाऊंगी । हे कौशल्यानंदन ! स्त्री से वियुक्त हुआ हुआ पुरुष कामातुर होकर महा दुख को प्राप्त करता है, इस कारण तू शीघ्र मुझे मार । मेरा पति स्वर्ग में मेरी प्रतीक्षा करता होगा हे नरश्रेष्ठ ! स्त्री बध के पाप से तू न डर और मुझे बालि का ही रूप समझ, क्योंकि मैं उसी का आधा अंग हूं । हे राम ! खोई हुई स्त्री को मिलाने से बढ़कर संसार में और कोई पुण्य नहीं है, सो मेरे प्यारे को मेरा दान देकर लोक में यश का भागी बन । तारा के इन हृदय बेधक शब्दों को सुनकर श्री रामचन्द्र जी उसे धीरज देते हुए बोले हे बालि पत्नी ! तेरा शोक करना व्यर्थ है, सारा संसार परमात्मा के अटल नियम में

बंधा हुआ है, परमेश्वर की आज्ञा के बिना कोई काम नहीं होता। विधाता की ऐसी इच्छा थी सो तू अब संताप को छोड़ कर धीरज धारण कर, तेरा पुत्र अंगद यौवराज्य पद को प्राप्त करेगा। रोने और विलाप करने से मृत प्राणि को दुख होता है। तेरे पति ने युद्ध में पीठ न देकर इस वीर गति को प्राप्त किया है, सो योगियों के लिये भी दुर्लभ है, जो अब करने योग्य कार्य्य को कर।

तारा को अनेक सान्त्वनामय वचनों से धीरज देने के पश्चात लक्ष्मण ने मूर्छित हुए हुए सुग्रीव को पृथिवी से उठाकर कहा, हे वीर! तारा और अंगद को साथ लेकर बालि के दाह संस्कार की तय्यारी कर। हे अंगद तू अंत्योष्टि संस्कार के लिय घृत चंदन और सुगंधित सामग्री ले आ और हे तार तू शीघ्र इस वीर के लिये अर्थी तैय्यार कर ला। तब श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा से अंगद सामग्री ले आया और तार भी अत्यंत शोभा वाली पक्षियों और वृक्षों के चित्रों से सजी हुई योगियों के विमानों के समान जाली के गवाक्षों से विभूषित अर्थी तय्यार कर लाया। तब नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाते हुए सुग्रीव ने भाई के शव को अर्थी पर रखा और फिर अंगद तार नल नील आदिक बड़े बड़े योद्धा सेना सहित रोते हुए अर्थी के पीछे पीछे चले। उनके पीछे पीछे किष्किन्धा निवासी लोग रुदन करते चले, अर्थी के आगे आगे वानर लोग चांदी स्वर्ण और रत्न

लुटाते हुए चलने लगे और सब के पीछे तारा आदिक वानरियां अपने करुणा जनक विलाप से पर्वत के पत्थरों को रुलाती हुई चलीं। उनके रुदन से उस समय ऐसे प्रतीत होने लगा कि बन पर्वत नदी नद सब बालि के वियोग में रो रहे हैं वानरियों के विलाप के दुखमय वचन पर्वतों और बनों मे टकरा टकरा कर सारे बन में गूंजने लगे। तब नदी के एक पुलिन में बन के काष्ठ से वानरों ने सुन्दर चिता सजाई। वहां पहुंचकर अर्थी को भूमि पर रख दिया गया । उस समय असह्य वैधव्य दुख से पीड़ित हुई हुई तारा अर्थी पर लेटे हुए प्राणपति को देखकर उसके मस्तक को चूमकर और सिर को गोद में रखकर दारुण विलाप करती भई: कि हाय ! मेरे सुखों का अंत होगया। हे राजन् हे प्यारे ! हे मानद !! आंखे खोलकर इस दुखिनी की ओर देख, हाय ! निर्जीव होने पर भी तेरा मुख मंडल उसी प्रकार सूर्य्य की नांई चमक रहा है, जैसे जीवित अवस्था में चमकता था। हे शत्रुओं के नाश करने वाले ! वही मैं तेरी पत्नी हूं, जिसे तू चन्द्र मुखी कहकर पुकारा करता था, वही यह तेरे संबंधी हैं, जिन्हें तू अपनी भुजाएं कहता था और वही यह तेरा पुत्र अंगद है, जिसकी रोते रोते हिचकियां बंध गई हैं, हे प्यारे ! उठकर इनको धीरज दे। इस प्रकार रोती और विलाप करती हुई स्त्रियों में से अंगद और सुग्रीव ने शव को उठाकर चिता पर रखा । इसके

अनंतर नेत्रों से आंसु बहाते हुए अंगद ने अग्नि देकर चिता की प्रदक्षिणा की। तब बालि के भौतिक शरीर के भस्म हो जाने पर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदिक वानरों सहित बालि के लिये जलांजलि देते भये।

श्री रामचन्द्र जी का सुग्रीव को अभिषेक देना।

बालि का दाह संस्कार करके शोक से मुर्झाए हुए सब वानर श्री रामचन्द्र जी के चारों ओर इस प्रकार हाथ जोड़ कर खड़े होगए जैसे ब्रह्मा के निकट ऋषिगण। उन में से महावीर पवन पुत्र हाथ जोड़ कर बोला हे राघव! आपकी दया से सुग्रीव शत्रु रहित हुआ सो अपने हाथ से इस महात्मा को अभिषेक देकर अंगद को यौवराज्य पद मे विभूषित कीजिए।

पवन पुत्र के ऐसा कहने पर श्रीरामचंद्र जी बोले हे महावीर! किष्किन्धा नगरी में प्रवेश करके मैं सुग्रीव को सिंहासन पर नहीं बैठा सकता, क्योंकि पिता की आज्ञा का पालन करता हुआ मैं चौदह वर्ष के लिये बन में रहने पर विवश हूं। बनवास काल में मैं नगर अथवा ग्राम में जाकर प्रतिज्ञा भंग करने में असमर्थ हूं, ऐसा कहकर फिर सुग्रीव के प्रति बोले, हे वानरेन्द्र! तुम नीतिज्ञ और लोक व्यवहार के जानने वाले हो, इस कारण अपने भतीजे अंगद को युवराज बनाओ। यह बालक तुम्हारे

बड़े भाई का ज्येष्ठ पुत्र है और बल पराक्रम में भी उस के तुल्य है, सो इस को यौवराज्य पद पर स्थापन करके अपने भाई को और अपने आप को कृतार्थ करो । हे कपीश ! यह श्रावण का महीना है, और वर्षा ऋतु पूरे यौवन में है, इस कारण जानकी की खोज इन दिनों में नहीं हो सकती । तुम नगरी में जाओ और मैं लक्ष्मण सहित इस पर्वत पर निवास करूंगा । असौज के बीतने पर सीता के ढूंढने और रावण के बध का उद्योग करना, इस समय तुम राजधानी में जाकर और राज्याभिषेक प्राप्त करके अपने सुहृद मित्रों को प्रसन्न करो ।

श्रीरामचन्द्र जी से विदाहोकर सुग्रीव किष्किन्धा की ओर चला । उस समय उस वानरेन्द्र को सहस्रों वानरों ने घेर लिया और जय जय करते पुष्प बर्साते नगरी में प्रवेश करते भये । महल में पहुंचने पर प्रधान वानरों तथा नगर निवासियों ने सुग्रीव को दण्डवत प्रणाम किया और वहीं पर राज्य के मुख्य मुख्य पुरुषों और ब्राह्मणों ने उस महात्मा को राज्याभिषेक दिया जैसे देवताओं ने देवेन्द्र को अभिषिक्त किया था, अभिषेक के पश्चात् महाराज सुग्रीव सुवर्ण दण्ड से भूषित श्वेत छत्र वाले सिंहासन पर बैठकर ब्राह्मणों के लिये अनेक प्रकार के रत्न स्वर्ण रजत वस्त्र तथा अन्न आदिक दान करते भये ।

———

प्रस्रवण पर निवास ।

सुग्रीव के किष्किन्धा में चले जाने पर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर निवास करने लगे। उस पर्वत पर अगणित सिंह भेड़िये चीते आदि जंगली जीव निवास करते थे जिन की गर्जना से वह पर्वत सदैव गूंजता रहता था। भान्ति भान्ति की लताओं से ढंपा हुआ, वानर, भालु, गोपुच्छ और जंगली बिलारों से भरा हुआ वह सघन पर्वत दूर से मेघ की घटा के समान देख पड़ता था। उस पर्वत के शिखर पर एक बहुत बड़ी कंदरा में वह दोनों भाई निवास करने लगे। उस गुफा मे आसन लगाकर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण के प्रति बोले, हे वीर ! हम वर्षा ऋतु यहीं व्यतीत करेंगे। देख इस पर्वत का शिखर नाना धातुओं से युक्त होने के कारण सफ़ेद काले और लाल वर्णों से कैसा शोभायमान हो रहा है। वर्षा के जल से गर्जना करते हुए स्रोत नीचे की ओर दौड़ते हुए कैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, और हमारी गुफ़ा के निकट होने से यह पहाड़ी नदी हमारे लिये अति लाभदायक होगी। गुफा के द्वार पर यह जो शिला है, वह कज्जल के पुञ्ज के समान कैसी काली और स्निग्ध है, यहां से किष्किन्धा भी दूर नहीं है, हम लोग बड़े सुख से यहां निवास करेंगे। देखो यहां बाजों और गीतों की ध्वनि और वानरों की गर्जना तथा मृदंगों का शब्द स्पष्ट सुन पड़ता है। इस समय सुग्रीव अपनी

पत्नी सहित राज्य को प्राप्त करके बड़े सुख में होगा। परन्तु हे सुमित्रा नंदन ! जानकी के बिना मेरा हृदय अति शोक से तपा हुआ है, वर्षा काल का यह शीतल वायु मेरे संतप्त हृदय को दुगना संताप दे रहा है। इतना कहते कहते उनके नेत्रों में आंसु भर आए। तब बड़े भाई को इस प्रकार शोकातुर देखकर लक्ष्मण बोले हे राघव! शोक करना व्यर्थ है, शोक से मनुष्य उत्साह हीन हो कर अपने कार्य्य को नष्ट कर लेता है। हे महाबाहो ! यदि आप शोक में मग्न हो जाएंगे तो रावण जैसे पराक्रमी कपटी राक्षस को कैसे मारेंगे। आप तो समुद्र और पर्वतों सहित इस सारे भूमंडल को उलट सकते हो, रावण की तो गिनती ही क्या है। वर्षा ऋतु के व्यतीत होते ही रावण परिवार सहित मारा जाएगा।

वर्षा ऋतु का वर्णन ।

लक्ष्मण के सान्त्वना मय शब्दों से श्री रामचन्द्र जी का हृदय स्थिर हुआ और वह प्रकृति की शोभा को निहार कर परम प्रीति से कहने लगे, हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा काल कैसा सुहावना हो गया है। लंबे चौड़े आकार वाले काले बादल बड़े बड़े पर्वतों के समान गगन मंडल में दौड़ रहे हैं। आकाश समुद्रों के जल को पी पी कर नौ मास तक गर्भ धारण करके अब मानों अमृत की वर्षा करेगा जिस से असंख्य औषधियां और बनस्पतियां

तथा अन्न उत्पन्न होंगे। हे वीर! एक के ऊपर एक खड़े हुए इन मेघों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों सूर्य्य तक पहुंचने के लिए परमात्मा ने सीढ़ियां बना दी हैं। देख हे लक्ष्मण! मांझ की लाली से रंगे हुए सफ़ेद किनारे वाले जल से भरे हुए बादल रूपी वस्त्र के टुकड़ों से आकाश ने मानों अपने घाव पर पट्टियां बांधी हैं। शीतल मंद और सुगंधित वायु रूपी निश्वास को छोड़ता हुआ संध्या रूपी चंदन से चर्चित और कुछ गोरे से बादल रूप कपोल वाला आकाश कामातुर पुरुष के समान दिखाई देता है। प्रखर गर्मी और प्रचण्ड धूप से पीड़ित हुई हुई भूमि वर्षा के नवीन जल से भरपूर होकर शोक संतप्त जानकी की नांई आंसुओं की धाराएं बहा रही है। अहह! बादल से छने हुए शीतल वायु केवड़े की लपट से सुगंधित हुए २ अंजलि से पिये जा सकते हैं। केवड़े की सुगंधि में बसा हुआ, अर्जुन के श्वेत पुष्पों से आकीर्ण पहाड़ी नदियों से सिञ्चित यह पर्वत सुग्रीव की नांई मानो अभिषेक के जल से स्नान कर रहा है। हे लक्ष्मण! यह पर्वत इस समय ब्रह्मचारियों के समान दिखाई देते हैं, देख, काले काले मेघ तो इनके मृगाण हैं जिन को इन्होंने धारण किया है और पहाडी नालों की धाराएं ही यज्ञोपवीत हैं और गंभीर गर्जना ही वेद मंत्रों की ध्वनि है। हे वीर! देख, यह कृष्ण मेघ बारंबार गर्जता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानों बिजली के कोडों से

प्रताड़ित होकर पीड़ा से आर्तनाद करता है। हे वीर ! कज्जल के समान काले मेघों में चमकती हुई बिजली ऐसी देख पड़ती है, मानों लंका पति रावण की गोद में बैठी हुई पीतवसना जानकी हो।

हा ! इन मेघों को देखकर जिन्हों ने अपनी काली चादर से दशों दिशाओं को ढांप दिया है मेरा हृदय जानकी के वियोग में अत्यन्त दुखी होता है। हे सुमित्रा नंदन ! वृष्टि के जल से धूलि बैठ गई है, ठंडा पवन बहने लगा है, गर्मी के सब उपद्रव शान्त होगए हैं। राजा लोग इस ऋतु में अन्य देशों पर आक्रमण नहीं कर सकते। परदेसी अपने अपने गृहों को चल पड़े हैं, और यह मानसरोवर के लालसी हंस मानसरोवर की ओर मुंह किए उड़ते जा रहे हैं, चकवे अपनी प्राण वल्लभा चकवियों के साथ मिल रहे हैं, हे लक्ष्मण ! इन दिनों में लगातार वृष्टि होने से भूमि में स्थान स्थान पर गढ़े जल से भर जाते हैं, जिस से सवारियां रुक जाती हैं। अहह ! इन मेघ मालाओं से घिरा हुआ आकाश कहीं श्वेत और कहीं काला ऐसा देख पड़ता है मानों सुनील महा समुद्र में कहीं कहीं पर्वत दिखाई देते हों ! हे लक्ष्मण ! यह पहाड़ी नाले वर्षा के नये जल से भरे हुए कैसे वेग से बहते जा रहे हैं, और यह मोर इन्हें देख देख कर किस प्रकार नृत्य करते और कुई कुई करते हैं। वह देख बनवासी लोग काले काले जंबु फलों

को जो वृष्टि के जल से रसीले और मीठे होगए हैं, और वायु के झोकों से पृथिवी पर गिर रहे हैं, उठा उठा कर खा रहे हैं। हे वीर! बगुलों की पंक्तियों से युक्त इन मेघों को आकाश में मंडलाते हुए को देख जो युद्ध भूमि में दौड़ते हुए हाथियों के समान देख पडते हैं, अहह! जहां तहां चमकती हुई बिजलियां इन की पताकाएं हैं और इनसे यह अति शोभायमान हो गए हैं। सांझ होने वाली है, इस समय बन कैसे शोभा दे रहे हैं, जिनके एक ओर तो नयी २ घास की मानों चादर बिछी है और दूसरी ओर मोर अपनी प्रियाओं के साथ नाच रहे हैं हे वीर! देख यह दृष्य कैसा सुन्दर है, कि बगुलों की पंक्तियों से शोभायमान काले काले, जल से भरे हुए मेघ पर्वतों के शिखरों पर विश्राम करते करते चलते हैं। और लाल लाल बीर बहुटियों से व्याप्त, नवजात घास से पटी हुई यह भूमि ऐसी देख पड़ती है मानो कोई नव यौवना सुन्दरी लाल बेल बूटों वाली हरी साढी पहरे लेटी है। हे लक्ष्मण! जिस प्रकार यह श्वेत बगुलों की पक्तियां मेघों की ओर उड़ी जाति हैं इसी प्रकार कामिनी स्त्रियां इन मेघों को देखकर अपने प्यारों को मिलने जाती हैं, अहह! वर्षा ऋतु कैसी सुहावनी है। जंगलों में जहां तहां मोर नाच रहे हैं। कदम्बों की शाखाओं में फूल ही फूल दिखाई देते हैं। सांड गौएं तुल्य कामना वाले हुए हुए एक दूसरे को चाट रहे हैं। सारी पृथिवी

वृष्टि से हरी भरी होगई है। नदियें बह रही हैं। मेघ बर्स रहे हैं हाथी चिंघाडते हैं, बन शोभायमान हो रहे हैं वियोगी पुरुष प्रियाओं की चिंता में तड़प रहे हैं, मोर नाच रहे हैं और वानर लोग सुग्रीव के राज्य पाने से संतुष्ट हैं कदम्ब के वृक्षों की टहनियों पर लटकते हुए भ्रमर वृष्टि की बूंदों से बारंबार प्रताडित हुए हुए प्रसन्नता से उडते हैं और रस को छोड़ते हैं। हे लक्ष्मण! देख, यह मस्त हाथी मेघ की गर्जना सुनकर किसी अन्य हाथी की चिंघाड़ की भूल से पीछे को मुड़ पड़ा है। देख यह पक्षि कैसे प्रसन्न हैं जो पत्तों पर अटकी हुई वर्षा जल की बूंदों को पी रहे हैं। सूखी मिट्टी में दबे हुए मेंडक बादलों की गर्ज से जाग उठे हैं, और नये जल की धाराओं से भीग कर एकाएक लाखों की संख्या में खेतों में कूदने लगे हैं। देख! काले बादलों के ऊपर चढ़े हुए दूसरे काले बादल ऐसे देख पड़ते हैं जैसे पर्वतों के ऊपर पर्वत चढ़ रहे हों। समुद्र की गर्ज भी जिन की गर्जना के सामने फीकी है ऐसे नीले मेघ अनंत जलों से, नदियों सरोवरों और सारी पृथिवी को जलमय कर रहे हैं। मूसलाधार वृष्टि हो रही वायु के जोर के झोंकों से वृक्ष झूम रहे हैं, नदियों के तटों को तोड़ कर जल वेग से बह रहे हैं जिन से मार्ग रुक गए हैं। बड़े बड़े आकार वाले मेघ अपने जलों से पर्वतों को स्नान करा रहे हैं जो अभिषेक किये गये राजाओं के समान शोभा दे रहे हैं। जल की वेगवती धाराओं से

धोई हुई पर्वत की चोटियों पर से उतरती हुई पहाड़ी नदियां इस प्रकार बिखर कर बह रही हैं मानों मोतियों की मालाएं टूट रही हों। पक्षि घोंसलों में छिप गए हैं, कमल सकुचा गए हैं, और मालती खिल गई है, इस से जान पड़ता है कि सूर्य्य देव अब अस्ताचल को जाने वाले हैं। बालि मारा गया है, अब विस्तृत राज्य को प्राप्त करके सुग्रीव अपनी भार्य्या के साथ वर्षा का आनंद ले रहा होगा परंतु न जाने मैं अपनी प्रिया के कब दर्शन करूंगा। हे लक्ष्मण! श्रावण मास का अंत होगया, अब इस भाद्रपद के महीने में ब्राह्मण सामवेद का गायन करेंगे। आज कल सरयु नदी पूर्ण होकर बडे वेग से बहती होगी और उसका शब्द ऐसा होता होगा जैसे बन की यात्रा के समय हमारे रथ के पीछे अयोध्या वासियों का हुआ था। हे वीर! वर्षा के मारे मार्ग दुर्गम हो गए हैं, इस ऋतु में शत्रु पर चढ़ाई नहीं हो सकती, इस विचार से मैंने सुग्रीव को विदा होते समय कुछ नहीं कहा था, परंतु वह धर्मात्मा है, समय आने पर अपने आप ही मेरे उपकार को स्मरण करेगा इस कारण मैं चुपचाप बैठा शरत्काल की बाट देख रहा हूं जो थोडे दिन तक आने वाली है।

———

शरत काल का वर्णन ।

वर्षाऋतु का अंत हो गया और मेघों ने आकाश मंडल का त्याग कर दिया । अब श्रीरामचन्द्र जी गगन मंडल को सफ़ेद, चंद्र मंडल को निर्मल और तारों भरी स्वच्छ रात्रि को देख कर अति शोक में मग्न हुए । वह सोचने लगे, कि सुग्रीव कृतार्थ होकर मुझे भूल गया है और विषय भोग में लवलीन है, सो जानकी को पाने का अब कोई उपाय नहीं है, हा ! सारस के समान सरस बोलने वाली मेरी प्राण प्रिया पर न जाने क्या बीत रही होगी, जो प्राण वल्लभा पहले राज हंसों के शब्द मे जागती थी, न जाने अब किस प्रकार रहती होगी । इन चकवों के शब्द को सुनकर जो अपनी प्रियाओं के साथ सरोवरों में विहार कर रहे हैं वह कमल नयनी कैसे जियेगी, निस्सन्देह यह शरद ऋतु उस के काम को उद्दीपित करेगी और वह मेरे वियोग में तड़प रही होगी ।

इस प्रकार गहरे विचारों में मग्न हुए हुए राम अति दुखी हुए और इस प्रकार विलाप करने लगे जैसे जलका प्यासा चातक मेघ के लिये विलाप करता है । इसी अन्तर में लक्ष्मण बन में से फलों को लेकर वहां पहुंचा और बड़े भाई को भार्य्या के वियोग में विलाप करते देख धीरज देने लगा । तब श्रीरामचन्द्र जी बारंबार ठंडी सांस भरते हुए बोले, हे लक्ष्मण ! घोर गर्जना करने वाले मेघ पर्वतों बनों नदियों और खेतों को जलमय करके अब

शान्त होगए हैं। मूसला धार वृष्टि से धोए हुए पर्वत शृंग अब चन्द्रमा की किरणों से चमकने लगे हैं। चन्द्रमा तारों और सूर्य्य की प्रभाओं में शरत काल की लक्ष्मी विलास कर रही है। शरद ऋतु की शोभा अब उन कमलों में विराज रही है जो प्रभात सूर्य्य की किरणों से अभी अभी खिले हैं। देख मान सरोवर से हंस लौट आए हैं और इन चक्रवाकों से नदियों के बरेतों में खेल रहे हैं. जिन के सुन्दर पंख कमलों की धूलि से भरे हुए हैं। मतवाले गजों में और बलवान तथा ऊंचे कुकुद्म वाले सांडों में, व निर्मल नीर वाली नदियों में शरत्काल की शोभा विभक्त होकर संसार में विलास कर रही है। हे लक्ष्मण ! देख मोर जो वर्षाकाल में वनों में नृत्य करते थे अब मेघों के चले जाने पर निरानंद और उदास दिखाई देते हैं। इन्हों ने अपने चंचर रूप भूषणों को त्याग दिया है और वियोगियों के समान प्रियाओं के ध्यान में मुह लटकाए खडे हैं। सूर्य्य के प्रकाश में नीला आकाश तीक्ष्ण तलवार की नांई चमक रहा है। नदियों के वेग घट गए हैं और अपने मंद प्रवाह से मानों प्राणियों को उपदेश देते हैं, कि चार दिन के यौवन में अभिमान करना उचित नहीं है। कमलों की सुगन्धि से सना हुआ वायु बह रहा है। मेघों के हट जाने से दिशाएं प्रकाश वाली हो रही हैं। सूर्य्य की किरणों ने कीचड़ को सुखा दिया है और अब फिर धूल उभरने

लगी है । हे लक्ष्मण ! शत्रुओं के देशों पर चढ़ाई करने के लिये राजा लोग उद्योग कर रहे हैं । शरत ऋतु के प्रभाव से पुष्ट हुए २ सांड सींगों से मट्टी उखाड़ २ कर धूलि स्नान कर रहे हैं और गौओं के समूह में गर्ज २ कर दूसरे सांडों को युद्ध के लिए ललकार रहे हैं ! हे लक्ष्मण शरत्काल के गुण से मतवाले हाथी गण्ड स्थलों से मद बहाते, चिंघाड़ों से हंसों और चक्रवाकों को भयभीत करते शुण्डों से हिला हिला कर सरोवरों का जल पीते हुए कमलों को मर्दन कर रहे हैं । हे लक्ष्मण ! देख, चंद्रमा तो इस का मुख है और तारे इस के नेत्र हैं और चांदनी ही दुपट्टा है ऐसी श्वेत वस्त्रों वाली यह शरत् रात्रि सुन्दर रमणी के समान शोभा दे रही है । यह देख सारस पक्षियों की पंक्ति खेतों में से चावलों को खाकर बड़े वेग से गगन मंडल में उड़ती हुई ऐसी देख पड़ती है, मानों पुष्पों की गुथी हुई माला वायु से उड़ाई जा रही है । हे लक्ष्मण ! नदियों का जल निर्मल हो गया है, धान्य पक गए हैं, वायु का वेग घट गया है और चन्द्रमा तथा आकाश निर्मल हो रहे हैं, इन चिन्हों से पता लगता है कि वर्षा ऋतु व्यतीत हो गई और शरत ऋतु का आगमन है । हे लक्ष्मण ! राजाओं की यात्रा के दिन आगए परंतु न तो सुग्रीव ने अभी तक मेरी सुध ली है और न ही कुछ उद्योग किया है । वर्षा ऋतु का यह चौमासा मेरे लिये सौ वर्ष के तुल्य व्यतीत होगया, परंतु मुझ दुखी पर

अभी तक सुग्रीव दया नहीं करता। हा! मुझ से बढ़कर अभागा संसार में कौन होगा, राज्य छिन गया, देश से निकाला गया, स्त्री हर ली गई और अब उस दुरात्मा वानर से भी ठगा गया। हे लक्ष्मण! उस ढीठ वानर ने मेरे साथ "वर्षा काल बीतने पर सीता की खोज करूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा की थी, परंतु अब अपना काम निकाल कर मेरी ओर ध्यान नहीं देता। हे लक्ष्मण तुम किष्किन्धा में जाकर उस लम्पट वानर को कहो कि हे मूर्ख! प्रतिज्ञा करके जो उसका पालन नहीं करता वह पुरुषों में अधम है, सो तू अब मेरे वज्र तुल्य धनुष की टंकार को सुनकर उसी मार्ग पर चलना चाहता है, जिस पर कि तेरा भाई गया है। हे लक्ष्मण! चौमासा व्यतीत हो गया परन्तु सुग्रीव मद्यपान और स्त्रियों में अंधा होकर मेरी ओर से विमुख हो रहा है सो तू मेरी ओर से जाकर उसे सचेत कर।

लक्ष्मण का किष्किन्धा में जाना।

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर क्रोध से तपा हुआ लक्ष्मण कंधे पर धनुष रखकर किष्किन्धा की ओर चला जल्दी पहुंचने की इच्छा वाले उस शत्रुञ्जय ने मार्ग में झाड़ झंकार वृक्ष विटपों को पाओं की ठोकरों से तोड़कर अलग कर दिया और फिर किष्किन्धा की रमणीक गुफा में प्रवेश करता भया। दिव्य रत्नों वाली,

गगन चुम्बी महलों वाली उस नगरी को जल्दी जल्दी पार करके वह राघव सुग्रीव के सुमेरू तुल्य ऊंचे और विशाल प्रसाद में पहुंचा। उस अतुल तेजस्वी, सूर्य्य के समान देदीप्यमान मुख मंडल वाले दशरथ सुत को देख कर सुग्रीव के सेवक सुभट वानर चारों ओर भयभीत होकर भागने लगे और दूर जाकर हाथों में शस्त्र लेकर खड़े होगए। उन सब को कुछ न कहकर सातों ड्यौढिओं को पार करके लक्ष्मण सुग्रीव के रणवास को पार करता भया। वहां पहुंचते ही उस के कानों में वीणा के स्वर से मिला हुआ मृदंग के ताल सहित स्त्रियों के मधुर गान का स्वर सुनाई दिया। उसने देखा, कि इन्द्र की अप्सराओं को लजाने वाली स्त्रियां योगियों के मन को भी मोह लेने वाले हाव भाव और कटाक्षों से नृत्य कर रही हैं। उन के नूपुरों का छनत्कार और मेखलाओं के झनत्कार में मुग्ध हुआ २ मद्यपान में अचेत सुग्रीव निमीलत नयनों से बैठा है। जो कुछ श्री रामचन्द्र जी ने कहा था, अब लक्ष्मण ने आंखों देखा। सुग्रीव को कामांध और विषयासक्त देखकर उस के क्रोध का वार पार न रहा। उस समय उस ने अपने वज्र तुल्य धनुष को खेंच और उसकी टंकार से सारे राज भवन को गुंजा दिया। बिजली के कड़कड़ाने के तुल्य धनुष की टंकार को सुनते ही सब स्त्रियां सहम कर कोनों में दुबक गईं, सुग्रीव का भय से मुख उतर गया और वह घबराकर

तारा से बोला हे नितंबिनि ! श्री रामचन्द्र जी का यह छोटा भाई आकारण ही क्यों क्रोध से भरा हुआ इधर आ रहा है। हे कोमलाङ्गि ! तू ही इसके समीप जाकर मृदु वचनों से उसे शान्त कर। तब पति की आज्ञा से वह मतवाले नयनों वाली स्वर्ण की यष्टि के समान सुन्दर, स्वर्ण की मेखला वाली, चंपक के फूल के समान श्वेत वर्ण वाली, चारु हासिनी, मद से झूमती हुई लक्ष्मण के समीप लड़खड़ाती हुई पहुंची। स्त्री को अपने समीप खड़े देखकर वह ब्रह्मचारी सकुचाकर एक ओर खड़ा होगया, उस ने अपनी आंखें नीची कर लीं और क्रोध को दवा दिया। तब लक्ष्मण को सिर झुकाए खड़ा देखकर तारा का भय दूर हो गया और मद्यपान के कारण लज्जा को छोड़ कर राजपुत्र के साथ सट कर बोली, हे राघव ! आप के क्रोध का क्या कारण है, किस ने आप की आज्ञा का उल्लंघन किया है, हे महाबाहो ! यह समय आप के लिये क्रोध करने का नहीं है, और नांही अपने दास पर क्रोध करना आप के लिये उचित ही है, हे सूर्य्य कुलावतंस ! यदि आप के सेवक से कोई अवज्ञा भी हो गई है, तो भी आप क्षमा करने योग्य हैं, और सुग्रीव न तो कृतघ्न है, न कपटी है और नांही असत्यवादी है, और नांही आपके उपकार को भूला है। श्री रामचन्द्र जी की दया से ही इस ने अपने राज्य को रुमाको और मुझ को प्राप्त किया है।

हे दशरथ नंदन ! बालि से निकाले गये सुग्रीव ने घोर दुख उठाए हैं, और अब दोबारा सुख को पाकर समय पर आप के पास नहीं पहुंच सका, देखो ! विश्वामित्र जैसे महामुनि भी घृताची नाम अप्सरा पर मोहित होकर दश वर्ष पर्य्यन्त उसके साथ रमण करते रहे, और प्राप्त काल को भूल गये, फिर सुग्रीव तो एक तुच्छ प्राणि है, इस कारण हे राघव ! पशु धर्म को प्राप्त दुखों से थके हुए इस वानर राज को क्षमा करें मैं आप के आगे हाथ जोड़ती हूं और विश्वास दिलाती हूं कि श्री रामचद्र जी के कार्य्य के लिये वह मुझे, रुमाको, अंगद को और सारे सुखों को छोड देगा और राघव को सीता से ऐसे मिला देगा जैसे चन्द्रमा रोहिणी के साथ मिलता है। आप की सहायता के लिये सब वानर सर्दारों को बुलाने के लिये दूत भेज दिये गये हैं, आज ही उन सब के आने का दिन है, इसी कारण श्री रामचन्द्र जी के चरणों में उपस्थित होने में विलंब हो गया है। हे राघव! आज ही असंख्य वानरों के साथ सुग्रीव जानकी नाथ के पास चलेगा तुम क्रोध को त्याग दो।

लक्ष्मण सुग्रीव संवाद ।

तारा से प्रसन्न किया हुआ लक्ष्मण जल्दी से वहां पहुंचा जहां सुग्रीव भयभीत हुआ बैठा था। लक्ष्मण को देखते ही वह वानरेन्द्र स्वर्ण के आसन को छोडकर

खड़ा होगया । तारा और रुमा के मध्य में खड़े हुए सुग्रीव को देखकर लक्ष्मण ने किंचित क्रोध से कहा हे वानरेन्द्र ! निर्मल मन वाले, उत्तम कुल वाले, दयालु जितेन्द्रिय और कृतज्ञ राजा का ही संसार मान करता है । हे राजन् ! अश्व दान की प्रतिज्ञा करके जो नहीं देता है, उसे सौ घोड़े की हत्या का पाप लगता है, गौ देने की प्रतिज्ञा करके जो नहीं देता उसे सहस्र गौओं की हत्या का पाप लगता है, और जो किसी मनुष्य को सहायता देने का वचन करके अपने वचन का पालन नहीं करता वह आत्म हत्या के महा पाप का भागी बनता है, हे कपीश ! गो-घाती चोर और व्रत को तोड़ने वाले के लिये शास्त्र ने प्रायश्चित्त लिखे हैं, परन्तु कृतघ्नता के पाप का कोई प्रायश्चित नहीं हैं, कृतघ्न मनुष्य का अनंत काल के लिये नरक में वास होता है, सो अब तू अपने किये वचन का पालन कर हे सुग्रीव ! राघव ने तुझ पर उपकार किया है उसे भूल जाना तेरे लियेउचित नहीं ।

लक्ष्मण से ऐसा कहा हुआ सुग्रीव नम्रता से उत्तर देता भया, कि हे रघुनंदन ! तेरे बड़े भाई के प्रताप से ही मैंने अपना नष्ट हुआ हुआ राज्य पाया है, सो उस के उपकार को मैं आजन्म नहीं भूल सकता । श्रीरामचन्द्र जी उस दुष्ट राक्षस को अपने तेज से क्षण मात्र में भस्म कर सकते हैं, मुझे सहायक बना कर तो वह केवल मेरा मान बढ़ाना चाहते हैं जिसके लिये मैं उनका अनुगृहीत हूं । हे

लक्ष्मण ! रावण को मारने जाते हुए राघव के पीछे पीछे यह दास भी सेना सहित चलेगा । यदि मेरे शीघ्र न पहुंचने से आप के मन में क्रोध हो तो क्षमा करें, कौन मनुष्य है जिस से भूल नहीं होती ।

सुग्रीव के इन वचनों से प्रसन्न होकर लक्ष्मण ने कहा हे राजन ! तेरे जैसे मित्र को पाकर मेरा बड़ा भाई कृतार्थ हुआ, सो अब तू शीघ्र मेरे साथ चल और सीता के वियोग में रोते हुए राघव को धीरज दे ।

सुग्रीव का श्री रामचन्द्र जी के पास जाना ।

दशरथ नंदन लक्ष्मण की प्रेरणा से सुग्रीव ने सब वानर सर्दारों को चलने की आज्ञा दी । जल्दी से राजसीय पालकी मंगवाई गई । तब तारा आदिक स्त्रियों को विदा करके सुग्रीव ने लक्ष्मण को कहा, कि हे वीर श्रेष्ठ ! आप इस पालकी में विराजिये, और लक्ष्मण को उस में सवार करके स्वयं भी उस में बैठ गया । तब प्रधान वानर सुग्रीव के सिर पर श्वेत छत्र झुलाने लगे । इस प्रकार शंखों और नगाड़ों के घोष में और सहस्रों वीर योद्धाओं के शस्त्रों के झनत्कार में सुग्रीव लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी के पास पहुंचा । वहां पहुंचकर दोनों पालकी से उतरे और वानरेन्द्र सुग्रीव हाथ जोड़ कर श्री रामचन्द्र जी के पास खडा हो गया अपने राजा को हाथ जोडे खडा देखकर शेष सब वानर

भी हाथ जोड कर खडे होगये। सेना सहित सुग्रीव को देखकर श्री रामचन्द्र जी ने अति प्रसन्न हो उसे कंठ से लगाया और फिर उस की स्तुति करते हुए बोले, कि हे बानरराज! जो राजा समय पर धर्म, समय पर काम और समय पर अर्थ साधन करता है वही शासन करने के योग्य है और जो दिन रात भोग विलास में लिप्त रहकर इन्द्रियों के अधीन हो जाता है वह राजा उस पुरुष की नांई है जो वृक्ष की शाखा के अग्र भाग पर सोता है और जब गिर जाता है तो रोता और पश्चाताप करता है, सो हे कपीश! अब तेरे उद्योग का समय आ गया है, जैसा उचित हो वैसा कार्य्य करो!

श्री रामचन्द्र जी के यह नीति युक्त वचन सुनकर सुग्रीव बोला हे राघव! मैं आप के उपकार से दबा हुआ सदैव आपका दास हूं, इसी कारण इन सहस्रों वानरों को जो संसार के सब वानरों के सर्दार हैं, साथ लेकर आप के पास आया हूं, जो इन्द्र के तुल्य पराक्रमी हैं और जिन की समुद्र के समान अपार सेनाएं सब ओर खड़ी हैं। हे भगवन्! यह सब लंका पति को मारकर सीता को लावेंगे केवल आप की आज्ञा की देरी है। सुग्रीव का ऐसा वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी बड़े प्रेम से उस कपीश को गले लगाकर बोले, हे राजन् सब से पहले यह पता लेना चाहिये, कि सीता जीवित है या नहीं, रावण का निवास कहां है और उसका बल

पौरुष कितना है । यह सब जान लेने के पश्चात् मैं करने योग्य कार्य्य को सोचूंगा । हे कपीश ! इस काम में न मैं और नांही लक्ष्मण समर्थ है, तुम ही इसे कर सकते हो।

तब सुग्रीव बड़े बड़े यूथपतियों को बुलाकर आज्ञा देता भया, कि हे महावीर योद्धाओ ! अब मेरी लज्जा और राघव का जीवन तुम्हारे हाथ में है, सो तुम दशों दिशाओं में जाकर जानकी की खोज करो पर्वतों के दुर्गम स्थान, बनों और नदियों के तीर, गंगा, जमुना, सरयु, कौशिकी, सिन्धु सरस्वती इन नदियों के प्रत्येक स्थल पर ढूंढो । ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कौशल, मगध, अंग, कलिंग, कश्मीर आदिक देशों की ईंट ईंट देखो, समुद्रों के छोटे और बड़े टापुओं में से कोई स्थान बिना देखे न छोडो, हिमालय और मंद्राचल व विंध्याचल आदि पर्वतों की गुफाओं, उपत्यकाओं और शिखरों के प्रत्येक स्थान को देखो । हे वानरो ! आकाश पाताल और भू लोक का कोई भी स्थान बिना देखे न रहे, जहां भी जानकी हो ढूंड कर लाओ । देखो एक मास के अंदर अंदर रावण और जानकी का पता लाना आवश्यक है अन्यथा तुम सब अपने आप को मरा हुआ समझो । सब वानरों को इस प्रकार कठोर आज्ञा देकर फिर उस वानर राज ने हनुमान को अभिमुख करके कहा, कि हे वानर श्रष्ठ ! मैं जानता हूं, कि भूमि आकाश पाताल बन पर्वत नदी कोई भी ऐसा स्थान नहीं

है जहां तेरी गति न हो। तू देव दानव असुर गंधर्व नाग और मनुष्यों के सब स्थानों को जानता है, सारे संसार में तेरे तुल्य तेजस्वी और पराक्रमी मनुष्य भी दूसरा नहीं है। तू बड़ा नीतिज्ञ, कार्य्य कुशल और समय को पहचानने वाला है, सो हे हनुमान ! तू ही सीता की खोज कर यद्यपि मैंने सब वानरों को आज्ञा दी है, परन्तु वास्तव में मैं तुझ पर ही भरोसा कर सकता हूं। सुग्रीव के इस प्रकार सन्मान देने पर श्री रामचन्द्र जी ने जान लिया, कि हनुमान ही पर कपिराज सुग्रीव का पूर्ण विश्वास है, इसी से कार्य्य की सिद्धि होगी। ऐसा जानकर उन्हों ने प्रसन्न होकर हनुमान को कहा, कि हे वीर ! सुग्रीव के समान मैं भी तुम पर ही भरोसा रखता हूं, सो तू मेरे नाम से अंकित इस अंगूठी को ग्रहण कर ! हे पवन पुत्र ! जहां कहीं जानकी को देखना उसे मेरा यह चिन्ह देना। इसे पाकर वह तुझ पर कोई सन्देह न करेगी और मेरा दूत समझ कर तेरे सन्मुख निश्शंक होकर सब बात कहेगी।

तब अंगूठी को लेकर हनुमान ने उसे मस्तक से लगाया और सुग्रीव तथा श्री रामचन्द्र जी के चरणों को स्पर्श करके सीता की खोज के लिये वहां से सब बानरों के साथ चल दिया।

वानरों का सीता को ढूंढना ।

सुग्रीव की सेना के मुख्य वानर, अंगद, तार तथा हनुमान सुग्रीव के बतलाए हुए देशों में सहस्रों की संख्या में फैल गए, बन पर्वत नदी नदों को देखते वह बड़े २ दुर्गम स्थानों, पर्वतों की अंधेरी गुफाओं, ऊंची ऊंची चोटियों समुद्रों के द्वीपों, नदियों के तटों और स्रोतों नगरों ग्रामों खेतों ऋषियों के आश्रमों, राक्षसों के आवासों को देखते उन्हों ने सब देशों को छान मारा परन्तु वैदेही का कहीं पता न पाया । तब वह सब थके हुए भूखे प्यासे और उत्साह भग्न हुए महा दीन होकर एकान्त में एक वन्य स्थली में बैठ गए। फिर कुछ काल विश्राम करके सोचने लगे, कि उत्तर पश्चिम और पूर्व दिशा का कोई स्थान हम ने बिना देखे नहीं छोड़ा, जहां पक्षि भी नहीं जा सकते, और जहां मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं जा सकते उन दुर्गम स्थानों की भी हम ने मट्टी छान मारी परन्तु जानकी का कुछ पता न पाया, सो अब क्या करना चाहिये । ऐसा विचार करते वह वहां से दक्षिण दिशा की ओर चले । तब विंध्याचल के सब स्थानों को देखकर वह वहां पहुंचे जहां अपार समुद्र अपनी गर्जना से दशों दिशाओं को गुंजा रहा था । तब वह विन्ध्याचल की उपत्यका में बैठकर सोचने लगे, कि हमारा सारा प्रयत्न निष्फल हुआ । बहुत खोजने पर भी जानकी का पता न मिला,

सो अब सुग्रीव को मुख दिखाने से मरना ही भला है। देखो महात्मा जटायु ने भी राघव के लिये प्राण दिये हैं।

जहां यह सब वानर निराश होकर इस प्रकार बातें कर रहे थे, वहीं पर एक वृद्ध गृद्ध भी निवास करता था। इनका वार्तालाप सुनकर वह झुकी हुई कमर वाला वहां आकर बोला, कि हे वानर लोगो! चिर काल के पश्चात् मैंने तुम्हारे मुख से अपने प्यारे भाई का नाम सुना है। जटायु मेरा ही भाई था, जो युद्ध में लंका पति रावण से मारा गया है। परन्तु वृद्ध होने से मैं अब रावण से बदला लेने में असमर्थ हूं, हां वाणी मात्र से मैं राघव की सहायता करूंगा। रावण को मारना सब से पहला मेरा कर्त्तव्य था, क्योंकि उस ने मेरे निर्दोष भाई का बध किया है, परन्तु बुढ़ापे ने मेरे रूप बल और तेज को हर लिया है, इस कारण तुम्हें यथा शक्ति सहायता देने आया हूं। हे वानरो! सारे भूषणों से भूषित अप्सराओं से भी अधिक रूपवती एक स्त्री रावण हर कर लेजा रहा था यह मैंने अपनी आंखों देखा है। वह रूप वती नव युवती हा राम हा लक्ष्मण, ऐसे पुकारती जाती थी। सो निस्संदेह वह राम ही की पति व्रता स्त्री जानकी थी, अब वह लंका पुरी में बैठी है जो समुद्र पार यहां से चार सौ कोस की दूरी पर है। हे वानर लोगो! वह पुरी भयानक और बड़े बलवान राक्षसों से भरी हुई, विश्व कर्मा की बनाई हुई, स्वर्ण के द्वारों

स्वर्ण के प्रासादों, स्वर्ण की अटारियों से सूर्य्य के समान चमकती हुई पर्वत के ऊपर बसी है। स्वर्ण के कोट से घिरी हुई उस लंका में अशोक वाटिका के अंदर रेशमी वस्त्रों वाली वैदेही पति से वियुक्त चकवी के समान दीन हुई हुई बैठी है, सो तुम समुद्र को पार करने का उपाय करो, फिर अपने कार्य्य में सफलता प्राप्त करोगे, सीता और राम के प्राण बचाओगे, सुग्रीव को अपने वचन से मुक्त करोगे, हे वानरो ! जल्दी करो, क्योंकि पति वियोग के दुख को न सहन करती हुई जानकी प्राण देने को उद्यत है।

जांबवान का हनुमान को समुद्र पार करने के लिये कहना।

अपार सागर को देखकर सब वानर अत्यन्त शोकातुर होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे, अंगद नल नील तार आदि सेनापतियों में से किसी का भी समुद्र में कूदने का साहस न पड़ता। उस समय उन सब को बड़े विषाद में देखकर वृद्ध जांबवान ने हनुमान को कहा, कि हे पवन पुत्र ! तुम कोने में दुबक कर चुप चाप क्यों बैठे हो। तुम साहस में सुग्रीव के समान हो और बल व पराक्रम में तो मै तुम्हें राम लक्ष्मण से भी कम नहीं देखता। हे महाबाहो ! गरुड़ के पंखों में जितना बल है उतना ही बल तुम्हारी भुजाओं में है, आज अपनी माता अंजना के दूध को सार्थक करो, क्योंकि परोपकार के लिये ही क्षत्राणियां पुत्र को जन्म देती हैं।

हे महावीर ! तुम वायु के पुत्र हो और गति तथा वेग में भी उस के तुल्य हो, सो तुम को इस कार्य्य के लिये कटि बद्ध होना चाहिये। हे वीर ! वानरों की सेना में केवल दो वीर इस काम को कर सकते हैं, एक तुम और दूसरे अंगद। अंगद यद्यपि बालक है परन्तु अपने पिता के समान तीनों लोक को जीतने में समर्थ है, तथापि यदि वह समुद्र में डूब जाए अथवा लंका में राक्षसों से मारा जाय तो संसार सुग्रीव की निंदा करेगा और कहेगा, कि निष्कंटक राज्य पाने के लोभ से सुग्रीव ने अपने भतीजे को कुटिल नीति से मरवा डाला है, इस कारण हे पवन सुत ! वानरों की रक्षा, सुग्रीव की लाज और दशरथ कुमारों के प्राण बचाने के लिये तू ही समुद्र पार जा, हे वीर ! यदि मैं बुढ़ापे से निर्बल न होगया होता तो आज सब से पहले मैं ही समुद्र में कूदता, आज हम सब तेरे आश्रय पर जीते हैं, तू ही हमारी नौका का कर्ण धार है, सो सब वानरों को अपने पुरुषार्थ से पार कर। हम तेरे लौटने तक यहां खड़े रहेंगे। हे अंजना के पुत्र ! सुग्रीव को केवल मात्र भरोसा है और दशरथ नंदन भी तुम ही पर विश्वास रखते हैं। जांबवान के ऐसा कहने पर महावीर हनुमान छाती को उभारता, भुज दंडों पर ताल ठोकता समुद्र की ओर मुंह करके खड़ा हो गया और आंखें मीच कर मन में लंका का ध्यान करता भया।

इति श्री वाल्मीकीय रामायणे कविराज कृत किष्किन्धाकाण्ड समाप्त।

❀ अथ सुंदर काण्ड ❀

हनुमान का समुद्र पार करना ।

जांबवान की प्रेरणा से महावीर हनुमान मन से लंका का ध्यान करके सागर तट वर्ती पर्वत पर चढ़ गया, और उस के शिखर पर खड़ा होकर बोला, हे वानर लोगो ! चिंता न करो, मैं अपने बल से समुद्र को पार कर सकता हूं, आकाश मार्ग से उड़ता हुआ गरुड़ पक्षि के समान इस से दश गुना बड़ा सागर भी फांद सकता हूं, सो अब तुम चिंता को छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी का ध्यान करो । इतना कहकर वह वीर केशरी मतवाले सिंह के समान इधर उधर घूमने लगा । उस समय उस की देह मदमत्त गज के समान विशाल दिखाई देने लगी । समुद्र को फांदने की इच्छा से उस ने अपने शरीर को छनका और फिर एक बड़े वृक्ष को भुजाओं में भरकर झंझोड़ दिया जिस से उस पेड़ के फूल और पत्ते झड़कर पृथिवी पर बिछ गये । उस समय उसका मुख मंडल सूर्य्य के समान दमकने लगा । तब सब वानर लोग उस भयानक प्रचण्ड मूर्ति को हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे । फिर सुनील मेघ के समान गर्जते हुए उस कपिराज ने अपनी दोनों भुजाओं को संकुचित किया और दोनों चरणों को पीछे की ओर सिकोड कर आकाश की ओर देखा फिर प्राण वायु को रोक

कर उछलने के लिये तैय्यार हुआ। उस समय आकाश में विद्याधर और सिद्ध लोग विमानों में बैठकर उस के इस भीम कर्मा को आश्चर्य से देखने लगे। तब सब वानरों को अपने तेज और पराक्रम से आश्चर्य में डालता हुआ महावीर बोला हे भाईओ ! जिस प्रकार श्री रामचन्द्र जी का बाण बड़े वेग से आकाश में चलता है उसी वेग से मैं लंका में जाऊंगा और सीता की खोज करूंगा। यदि मैंने उस को वहां न पाया तो स्वर्ग लोक में जाऊंगा और यदि वह वहां भी न मिली तो दुष्ट रावण को बांध कर राघव के चरणों में डालूंगा, मैं जानकी के विना मिले नहीं आऊंगा इस में कुछ भी संशय न करना। इतना कहकर पवन पुत्र हनुमान उछलकर आकाश पर चढ़ गया और गरुड़ के समान बड़े वेग से लंका की ओर उड़ा। हनुमान के उड़ते ही उस की झटक से टूटे हुए बहुत से पेड़ उस के साथ ही आकाश में उड़े। तब वह वज्र देह उन वृक्षों के साथ ही निर्मल आकाश में तैरने लगा। जंघा के वेग से उड़े हुए वह पेड़ थोड़ी दूर तक उड़कर समुद्र में गिर पड़े जैसे परदेश में जाते हुए के पीछे पीछे बंधु जन थोड़ी दूर तक जाते हैं, उस समय फूलों से लदे हुए बहुत से वृक्षों के मध्य में उड़ते हुए उस महावीर का आकार विचित्र दिखाई पड़ता था। पुष्पित वृक्षों से घिरा हुआ हनुमान चमकते हुए जुगनुओं से जगमगाते हुए पर्वत के समान शोभायमान हुआ। आकाश से समुद्र में गिरते हुए फूल विचित्र

शोभा देने लगे। लाल पीले नीले और कासनी रंग के पुष्प समूह में उड़ते हुए पवन सुत इस प्रकार शोभा देने लगे मानों बिजलियों से अलंकृत कृष्ण मेघ आंधी से उड़ाया जा रहा हो आकाश से गिरे हुए असंख्य फूल सागर पर बिछ गये और उन से वह उत्ताल तरंगों वाला समुद्र ऐसी शोभा देने लगा जैसे शरत काल में तारों से आकाश। वेग से उड़ते हुए पवन पुत्र जब नीचे मुख करते थे तो ऐसा जान पडता था मानों समुद्र को पी रहे हैं और जब ऊपर की ओर मुंह करते थे तो ऐसे देख पड़ते थे मानों अनंत आकाश को पान किये चले जाते हैं। उनके चमकते दोनों नेत्र सागर तट पर खड़े हुए मनुष्यों को ऐसे दिखाई देते थे जैसे हिमालय पर्वत पर दो दावानल जल रहे हैं। उन के तेज से जलते हुए दोनों नेत्र आकाश में चन्द्रमा और सूर्य्य के समान अपनी रश्मियों से समुद्र को प्रकाशित कर रहे थे। उनका लाल लाल कटि प्रदेश दूर से ऐसा देख पडता था जैसे पर्वत के वक्षस्थल में गेरु की खान देख पडती है। आंधी से भी अधिक वेग से उडते हुए हनुमान की दोनों बगलों में से वायु इस प्रकार शब्द करता निकलता था मानों वर्षा ऋतु का बादल गर्जता हो। आकाश में उडती हुई उनकी विशाल देह और उस की समुद्र में पड़ती हुई छाया दोनों मिल कर ऐसा देख पड़ता था मानों सागर में कोई नौका चल रही हो। पर्वत के आकार वाली चौड़ी छाती से आकाश को चीरता

हुआ वह पवन पुत्र समुद्र की उत्ताल तरंगों को पार करता जाता था। इस प्रकार मेघ के समान गर्जता सागर की तरंगों को चीरता भूमि और आकाश को प्रकाशित करता उस भयानक समुद्र को पार करता वह अंजना का पुत्र ऐसे उड़ा चला जाता था मानों तरंगों को गिनता जाता हो। इस प्रकार सौ योजन चौड़े समुद्र को पार करके उस ने वन समूह को देखा। समुद्र और समुद्र के तट वर्ती प्रदेश और समुद्र में गिरती हुई नदियों को देखकर उस कपिराज का चित्त प्रसन्न हुआ, परले तट पर उतर कर उस ने पर्वत के शिखर पर बसी हुई इन्द्र पुरी के समान लंका पुरी को देखा। लंका को देखते ही उस वज्र देह की सब थकान दूर हो गई और वह बड़े वेग से लंका की ओर चला। नीले और हरे हरे घास वाले, अनेक प्रकार के पुष्पों से सुगंधित और मीठे फलों से युक्त वन को पार करके वह ब्रह्मचारी लंका के समीप पहुंचा जिस के चारों ओर कमलों से सुशोभित जल की भरी हुई खाई बनी हुई थी। पर्वत पर बसी हुई लंका को जो आकाश गामी पुरी के समान प्रतीत होती थी, अनेक रंगों की ध्वजाएं जिस पर लहरा रही थीं, जिस के गृहों और भवनों की ऊंची अटारियां आकाश को चूम रही थीं, जो चारों ओर से स्वर्ण के कोट से घिरी हुई थी, और जिस के स्थान २ पर विकराल राक्षस पहरा दे रहे थे, उस लंका को देख

कर महावीर हनुमान पर्वत की एक चोटी पर बैठ गया और नगरी के अन्दर जाने का उपाय सोचने लगा। सब ओर दृष्टि डालकर उसने सोचा, कि पुरी के चारों ओर बलवान, क्रूर राक्षस घूम रहे हैं, जो सीता के हर लाने के कारण प्रत्येक आने जाने वाले मनुष्य पर कड़ी दृष्टि रखते हैं, इस कारण इसी रूप में मैं किसी प्रकार भी पुरी के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता, कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये, कि इन मायावी, दुष्ट राक्षसों की आंखों में धूल झोंक कर मैं जानकी को ढूंढ लूं। कौनसा उपाय करूं कि दुरात्मा रावण की आंखों से बचकर मैं जानकी तक पहुंच जाऊं। किस प्रकार मैं अकेला एकान्त में अकेली सीता के दर्शन करूं और राघव का संदेश उस तक पहुचाऊं। यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो निस्सन्देह मैं उन के हाथ से मारा जाऊंगा, रावण बच जायगा, सीता का मिलना असंभव हो जाएगा और श्री रामचन्द्र जी का कार्य्य नष्ट हो जायगा। राक्षसों के वेश में अंदर जाना भी असंभव है, क्योंकि मेरी और इनकी आकृति में भी तो भेद है, मुझे देखते ही यह दुष्ट लोग पहचान लेंगे, और यह भयंकर राक्षस तो वायु को भी द्वार में प्रवेश नहीं होने देते क्या फिर मुझे, अच्छा तो मैं रात्रि होने पर इसी वेश में परमेश्वर के भरोसे पर लंका में प्रवेश करूंगा। इस प्रकार मन में निश्चय करके महावीर पवन पुत्र निर्जन

प्रदेश में वृक्षों की ओट में छिपकर संध्या काल की प्रतीक्षा में बैठ गया और विश्राम लेने लगा। जब सूर्य्य अस्त हो गया तो वह पराक्रमी पवन पुत्र अंधकार में कोट को फांदकर लंका के अंदर प्रविष्ट हुआ। उस समय उस कपीन्द्र ने कोट को फांदकर मानों अपना बायांचरण रावण के सिर पर रख दिया। कोटसे उतर कर वह लंका के बाजारों की ओर चला जो सब प्रकारसे सुसज्जित मेघों के समान ऊंचे ऊंचे स्वर्ण और रत्नोंसे जटित भवनों और दीपकोंसे जगमगा रहेथे। गलियों और बाजारों में घूमते हुए उस ने नाना प्रकार के चित्रविचित्र भवन देखे। उस ने देखा, कि कहीं नर्तक लोग गा रहे हैं कहीं मद्य पान किये हुए राक्षस बक रहे हैं, कहीं वेद पाठ और स्वाध्याय कर रहे हैं। उस सुंदर पुरी को देखता वह बाग़ बाग़ीचों में सीता की खोज करता नदी तट पर पहुंचा। बहुत देर तक देखने के पश्चात् भी जब उस ने जानकी को कहीं न पाया तो हताश होकर गलियों और घरों में घुसकर उस को ढूंढने लगा। एक एक घर करके उस ने सैंकड़ों घरों मंदिरों और भवनों को देखा, परन्तु सब ओर से निराश होकर अन्त में वह अंजना का पुत्र निर्भयता से उस राज भवन के अंदर प्रविष्ट हुआ जहां लंका पति रावण निवास करता था और जहां राज सभा के सचिव मंत्री और सेनापति तथा राज परिवार के मुख्य मुख्य लोक रहते थे। छिपे

छिपे कोट फांद कर अंदर पहुंचते ही पहले वह महलों के चारों ओर घूमा। उस के पश्चात् वह उस बृहत शाला की ओर चला जिसे रावण स्त्री के समान हृदय से चाहता था, और जो संसार के दिव्य भवनों में सर्वोत्तम समझी जाती थी। उस शाला के अंदर जाकर उस ने देखा कि उस की सीढ़ियां रत्नों से जड़ी हुई हैं, स्वर्ण के बने हुए झरोखे और खिड़कियां दीपकों के प्रकाश से आकाश को प्रकाशित कर रही हैं। नीचे सफेद पत्थर का फर्श है और स्थान स्थान पर हाथी दांत का काम किया हुआ है। जिसकी छतें बहुत ऊंची हैं और विशाल मणियों से जड़ी हुई और रत्न जड़ित स्वर्ण मंडित खभों के आश्रय पर खड़ी हैं। जिस पर घुटनों तक खुभ जाने वाला सुंदर और मुलायम गालीचा बिछ रहा है। उस शाला को जिस में दीपकों का प्रकाश रत्नों पर पड़कर दर्शकों को आश्चर्य्य में डाल देता था, देखकर हनुमान चकित रह गया। इन्द्र भवन से भी बढ़कर ऐश्वर्य्यवती उस शाला के एक ओर उसने स्फटिक का एक सुन्दर पलंग देखा जिस पर लंकापति रावण मद्य के मदमें नेत्र मूंदे बैठा था। उसे देखते ही भयभीत होकर वह कपिराज जल्दी ही पीछे हट गया। वहां उसने मतवाले राक्षस राज को अप्सराओं के समान सुंदर स्त्रियों में बैठे देखकर सोचा, कि कदाचित आकाश से तारे गिरकर रावण के पास स्त्रियों के रूप में निवास करते हैं, क्योंकि तारों ही के

तुल्य इन रमणियों के रूप उज्वल और प्रकाशमान हैं। गाने और नाचने के कारण उन में से बहुत सी सुन्दरियों के केश अलकें और फूलों के भूषण बिखर रहे थे और वह सब थककर निद्रावश हो रहीं थीं। बहुत सी स्त्रियों के तिलक बुझ गये थे। कई एक के पाओं की झांझरें उलट पलट हो गई थीं, और अनेकों के गलों की फूल मालाएं टूटकर गिरी पड़ी थीं, कितनी स्त्रियों के वस्त्र खसक गये थे, और बहुत सी रमणियों के मणियों के हार ढीले होकर दोनों स्तनों के मध्य में ऐसे शोभा दे रहे थे मानों निर्मल सरोवरमें हंस खेल रहे हों। इस प्रकार मद्य के मद में सोती हुई वह रमणियां नदियों के समान शोभा देती थीं क्योंकि उनके अंग अंग में पहरे हुए भूषण पक्षियों के समान देख पड़ते थे और दोनों जंघाएं नदी के दोनों तटों के समान थी, कमर पर लटकती हुई स्वर्ण की तगड़ियां तट पर फूले हुए कमलों के तुल्य शोभा देती थीं, उन रमणियों के विलास और कटाक्ष ही नदियों के ग्रह के समान थे। इस प्रकार वे निद्रासक्त सुन्दरियां नदियों के समान शोभा देती थीं। उन में से बहुत सी स्त्रियां मद्यके मदसे एक दूसरी की भुजाओं में भुजा डालकर सो रही थीं, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि वह एक घना बन है, वह स्त्रियां वृक्षों की फूली हुई डालियों के समान हैं जो एक दूसरी के साथ लिपटी हुई हैं, उन के पुष्पों

के भूषणों से सारा अंतःपुर सुरभित हो रहा था। वहां सीता को न देखकर वह कपिराज बाहर निकला और अर्द्ध रात्रि तक रावण के पुत्रों भाइयों और मुख्य मुख्य राक्षसों के भवनों को देखता रहा, परन्तु कहीं सीता को न पाकर वह मंदोदरी के महलमें घुसा। वहां जाकर उस ने मंदोदरी के शयनागार को देखा जो स्फाटिक मणि से बना हुआ था, जहां स्वर्ण और हाथी दांत के उत्तमोत्तम चित्र लगे हुए थे। वहां पर एक पलंग था, जिस के चारों ओर फूलों की मालाएं लटक रही थीं और जिन की दिव्य सुगंधि से सारा महल सुगंधित हो रहा था। उस पलंग पर जल से भरे हुए मेघके समान कान्ति वाले, कानों में कुंडल पहने, मस्तक पर लाल चंदनका तिलक लगाए दिव्य भूषणों से भूषित, अत्यन्त रूपवान्, मंद्राचल पर्वतके तुल्य बड़े डील वाले, काम क्रीड़ासे थके हुए मदान्ध रावण को सोते देखा जो दिव्य शाला से तृप्त होकर यहां आचुका था। उससे देखते ही वह कपिराज अत्यन्त डरकर सीढ़ियों की ओटमें होगया। और वहां से देखने लगा। स्वर्ण कंकणों वाली दोनों भुजाओंको फैलाये हुए बिछौरी पलंगपर सोया हुआ रावण उस समय ऐसा शोभायमान होरहा था मानों पर्वत पर से कोई विशाल झरना उतर रहा हो अथवा सोता हुआ वह राक्षस राज ऐसे देख पडता था मानों निर्मल गंगा के तट पर कोई बड़ा हाथी पड़ा हो, उस राक्षसेन्द्र के शयनागार में पवन पुत्र ने चन्द्रमा के मुख

वालीं, सुन्दर कुंडलों वालीं और फूलों की मालाओं से सुभूषित बहुत सी सुंदर स्त्रियोंको देखा। उनमें से एकान्त में बिछी हुई एक शय्या पर उसने एक परम रूपवती युवती स्त्री को देखा जो रूप लावण्य और यौवन में सब से बढ़ चढ़ कर थी और अपनी माधुरी छबि तथा रूप छटा से मानों सारे भवन को प्रकाशित कर रही थी। उसके दिव्य रूप को जो कि रावण की पटरानी मंदोदरी थी, देखकर कपिराज हनुमान ने समझा कि कदाचित यही जानकी है, परन्तु तत्काल ही उसका यह विचार बदल गया और सोचने लगा, कि श्रीरामचन्द्र जी से बिछड़ी हुई, पतिव्रता जानकी न सो सकती है, न भोग सकती है, न भूषण पहन सकती है और न मद्यका सेवन कर सकती है, सो यह स्त्री यद्यपि रूप में स्वर्ग की अप्सराओं से भी बढ़कर है परन्तु सीता नहीं है, इस प्रकार मन में सोचकर वह उदास हो गया और मंदोदरी के रनिवास से बाहर निकला और विचारने लगा कि मेरी आंखों ने आज तक कभी पराई स्त्रियों की ओर नहीं देखा था परंतु यहां मैंने यह पाप किया है, क्योंकि सोती हुई दूसरों की स्त्रियों को देखना महा पाप है, यह विचार उसके हृदय को रह रह कर दुखित करने लगा, परंतु कुछ काल पश्चात् यह सोच कर उस के मनको शान्ति हुई, कि रावण की स्त्रियों को मैंने देखा है इस में कुछ भी संदेह नहीं परंतु मेरे मन में

विकार उत्पन्न नहीं हुआ । भली और बुरी अवस्थाओं में मन ही इन्द्रियों को विषयों की ओर प्रेरणा करता है, परंतु मेरा मन अचल अडोल और स्थिर रहा है । जिस कार्य पर मैं लगाया हूं वह बिना स्त्रियों को देखे पूरा नहीं हो सकता था, सो न चाहते हुए भी मुझे यहां आना पड़ा । इन्हीं विचारों में पड़ा हुआ वह ब्रह्मचारी इन्द्रियजित कपीश वहां से निकला और सोचने लगा, कि श्री रामचन्द्र की प्रिया जानकी अब इस संसार में नहीं है, इसमें अब कुछ भी संदेह नहीं । इधर मैंने लंकापुरी के बाजार गलियों और राजकीय महलों का एक एक कोना देख लिया है, यदि वह जीती होती तो अवश्य मिल जाती । उस पति की प्यारी धर्म में दृढ़ चित्त वाली आर्या को विषय विलासी इन्द्रिय लोलुप रावण ने अवश्य मार डाला होगा । हा ! मेरा सारा परिश्रम अकारथ ही गया । जब मैं लौट कर जाऊंगा तो सारे बानर जिनको मैं भरोसा दे कर आया था, क्या कहेंगे । जब वृद्ध जांबवान मुझे पूछेगा तो क्या उत्तर दूंगा, बालि सुत अंगद को क्या कहूंगा । परंतु नहीं, मुझे साहस नहीं छोड़ना चाहिये । धैर्य्य छोड़ देने से सब काम नष्ट हो जाएगा, धैर्य्यवान् मनुष्य ही इस लोक में सफल होता है, सो मुझे और ढूंढना चाहिये, जहां जहां मैं अभी नहीं गया वहां जाकर देखना चाहिए, इस प्रकार मन में धारणा करके वह कपीन्द्र फिर राज प्रासादों में घूमने

लगा, और बड़े उत्साह के साथ राक्षसों के घरों और रावण के रनिवास में सीता की खोजकरने लगा। अबकी बार वह अपने प्राणों को हथेली पर रख कर ऐसे ऐसे स्थानों पर पहुंचा जहां तनिक सी असावधानी हो जाने पर मारे जाने का भय था। परंतु इतना करने पर भी वह अपने कार्य्य में सफल न हुआ और सीता को न पा सका। हनुमान ने उन राज प्रासादों में अनुपम रूप और यौवन वाली विद्याधरी स्त्रियों को देखा, रावण से हरी हुई नाग कन्याओं को देखा। मद से भरी हुई किन्नरियों को भी देखा परंतु जनक नंदिनी सीता को कहीं न पाया। तब वह निराश होकर रावण के मंदिरों से बाहर निकला और अपने सारे उद्योग को निष्फल जान कर शोक सागर में डूब गया, और सोचने लगा, कि दो बार रावण के अंतः पुर को और लंकापुरी के प्रत्येक स्थान को मैं देख चुका हूं परंतु पति प्राणा जानकी कहीं दिखाई नहीं दी। बल से हरी गई विदेह सुता सीता अत्यंत कष्ट दी हुई भी रावण का सेवन नहीं कर सकती, सो अवश्य ही उसने प्राण दे दिये हैं अथवा पिंजरे में पड़ी हुई मैना के समान किसी ऐसी कोठरी में बंद की गई है जहां मैं नहीं पहुंच सका। हा! न जाने राम की प्यारी जनक दुलारी इस समय कहां किस दशा में विलाप कर रही होगी। अब मैं वापस जाकर राघव को यह दुखद समाचार नहीं सुना सकता, कि जानकी मर गई है अथवा

नहीं मिली, क्योंकि ऐसा करने पर श्री रामचन्द्र जी तत्काल ही प्राण त्याग देंगे, सुग्रीव भी कहीं का न रहेगा परन्तु न कहने में भी बड़ा भारी दोष है, सो अब क्या करूं इसकी मुझे कुछ भी समझ नहीं आती। सीता को बिना देखे यदि किष्किन्धा में जाता हूं तो मेरा समुद्र पार करना, लंका का पत्ता २ ढूंढना इत्यादि सब पुरुषार्थ निष्फल जाता है और "सीता मैंने नहीं देखी" ऐसा वज्र के तुल्य कठोर वाक्य भी मैं श्री रामचन्द्र के प्रति नहीं कह सकता, सो अब मेरा लौट कर जाना उचित नहीं है। अब मैं यहीं निवास करता हुआ जानकी की खोज करूंगा अथवा अपने प्राण त्याग दूंगा, ऐसा करने पर राघव और सुग्रीव मेरे आने की आशा में जीते रहेंगे अथवा कुछ और उपाय करेंगे। इस प्रकार मन में दृढ़ निश्चय करके तेजस्वी हनुमान लंका में इधर उधर घूमता फिरा जानकी की खोज करने लगा।

हनुमान का अशोक वाटिका में जाना।

नगरी से निकल कर तेजस्वी हनुमान लंका के बाग़ बाग़ीचे पुष्करिणियां, झील, सरोवर, ताल, तड़ागों पर जा जा कर सीता की खोज करने लगा। जब कहीं भी उसने राम की प्रिया कमल नयनी को न देखा तो वह अशोक वाटिका के निकट पहुंचा जो चारों ओर से ऊंचे कोटों से घिरी हुई थी। एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़कर

वह कोट पर से परली पार कूद गया। वाटिका के अंदर पहुंचकर उस ने वसंत ऋतु के फूले फले वृक्षों को देखा और मन में अति प्रसन्न हुआ। यह वाटिका चांदी और सोने के बनावटी वृक्षों से अलंकृत, नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से परिपूर्ण थी, सुन्दर मृग जहां तहां विचर रहे थे, पुष्पों और फलों के भार से झुके हुए वृक्ष वायु में विलास कर रहे थे, मस्त भौरों की गुंजार और कोकिलाओं के पंचम स्वर से वह अशोक वाटिका शोकातुरों के शोक को दूर करती थी । वृक्षों से गिरे हुए रंगारंग के पुष्पों से अलंकृत उस वाटिका की भूमि देखने वालों के मन हर लेती थी उसमें निर्मल जल से भरी हुई, मणि जटित सीढ़ियों वाली बावड़ीयां हंस सारस और चकवों का क्रीड़ा स्थान बनी हुई वाटिका की शोभा को दुगना कर रही थीं, इस वाटिका में स्वच्छ जल वाली कूलें चल रही थीं, जिन के दोनों तटों पर खड़े हुए वृक्ष अपने पुष्पों से उन के अमृत तुल्य जलों को सुगंधित कर रहे थे। नंदन बन के समान उस अशोक वाटिका में घूमते हुए हनुमान ने वहां विचित्र कूट नामक पर्वत देखा जो संसार में सब से उत्तम और फूलों से लदे हुए शिखरों से मानों जगमगा रहा था। उस पर्वत पर से एक छोटी सी नदी उतर रही थी, जिस के तटों पर उगे हुए वृक्ष अपनी शाखाओं को बारंबार जल में डुबाते ऐसे प्रतीत होते थे मानों तपस्वी

लोग स्नान कर रहे हैं । वहां उस कपीश ने स्वर्ण का बना हुआ एक पेड़ देखा। उसके स्वर्ण के बने हुए स्कंध, शाखाएं फूल और पत्र चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में तारों के समान चमकते हुए मन को मोह लेने वाले थे। उस वृक्ष के नीचे चारों ओर चार स्वर्ण की वेदियां बनी हुई थीं, नदी के तट पर उस रमणीक वृक्ष को देखकर महावीर हनुमान ने सोचा, कि संध्योपासन के लिये श्री रामचंद्र जी की प्रिया यहां अवश्य आएगी। यदि जानकी जीती रही तो वह अवश्य यहां आकर संध्या करेगी, क्योंकि धर्म पर प्राण देने वाली वह आर्य्या प्राण देदेगी परन्तु यदि जीवित है तो संध्या अवश्य करेगी, इस में कुछ भी संदेह नहीं है । यह सोचकर वह वानर उस वृक्ष के ऊपर चढ़ गया और अपने आपको शाखाओं और पत्रों की ओट में छिपाकर बैठ गया । उस समय उस के मन में निश्चय होगया कि यहां जानकी आवश्य आएगी, क्यों-कि वह जानता था कि राम की प्यारी बनों में घूमकर प्रसन्न होती है, उसका मृगों और पशुओं से प्रेम है, और वह पति वियोग से पीड़ित भी है, प्रातर्सन्ध्या का समय भी होने वाला है, सो यदि वह जीवित है और इस वाटिका में है तो यहां आए बिना न रहेगी। इन विचारों में मग्न हुआ हुआ वह पवन सुत दूर तक दृष्टि फैलाकर जानकी की खोज करने लगा ।

———

जानकी दर्शन ।

अब वृक्ष पर चढ़ा हुआ कपिराज हनुमान रावण की उस वाटिका को देखने लगा जिस के सामने इन्द्र का नंदन वन और कुबेर का चैत्र रथ बन दोनों ही फीके थे। उस वाटिका को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों उद्यान रूपी आकाश में पुष्प रूप तारे जगमगा रहे हैं, अथवा कोई सागर है जो पुष्प रूप रत्नों से भरा पड़ा है वह अशोक वाटिका क्या थी मानों साक्षात् कुबेर का गंध मादन पर्वत था, जिस में वसन्त के वायु सुगंधित पुष्पों के रसों की धाराओं को लिये हुए सर्वत्र बह रहे थे, नाना प्रकार के पक्षि विचित्र बोलियां बोल रहे थे। ऐसी सुन्दर वाटिका में उस ने कैलाश के समान ऊंचा स्वर्ण खचित रत्न जटित एक प्रसाद देखा। उस स्वर्ण महल के समीप एक वृक्ष के नीचे कपिराज हनुमान ने चंद रेखा के समान एक स्त्री देखी, जिस के वस्त्र मैले थे और राक्षसियों से घेरी हुई थी। अनाहार से दुबली हुई हुई दीन और बारंबार ठंडी सांस भरती हुई वह चंद्रमुखी राक्षसियों से घिरी हुई दूर से ऐसी देख पड़ती थी जैसे बादलों से घिरी हुई चन्द्रमा की रेखा अथवा धूएं से घिरी हुई अग्नि की शिखा। फटे पुराने और मैले पीले वस्त्र वाली भूषण हीना, पुष्प हीन कमालिनी के समान, शोक और दुख से मारी हुई ध्यानावस्थित उस सुन्दरी की एक वेणी काले सर्प के सामने छूट कर जंघा पर

गिर रही थी। इस दुखित अवस्था में उस की काली वेणी ऐसी शोभा देती थी जैसे वर्षा काल के अन्त में वन की हरी हरी भूमि नीले रंग की पंक्ति धारण करती है। उस कमल नयनी कोमलांगी को देख कर पवन पुत्र ने अनुमान से जाना, कि राम की प्यारी जनक दुलारी सीता यही है। उसे विश्वास हो गया, कि नष्ट हुई हुई श्रद्धा के समान, टूटी हुई आशा के समान झूठी निन्दा से नष्ट हुई कीर्ति के समान, भूमि पर लेटी हुई नियम और व्रत वाली, अपने प्यारे से बिछड़ी हुई राक्षसी समूह में श्वानों से घिरी हुई मृगी के समान, विशाल नैयनों वाली जनकात्मजा यही है। यही सीता है जिसके लिये करुणा दया शोक तथा काम इन चारों से दशरथनंदन राम संतप्त हो रहा है। निस्संदेह इस तपस्विनी का मन राम में और राम का मन इस में निवास करता है। इसी स्वर्ण प्रभा वाली सुन्दरी के प्राप्त करने के लिये राघव ने बालि को मारा है और सुग्रीव को फिर सिंहासन पर बैठाया है। इसी के लिये मैंने नदियों का स्वामी गर्जता हुआ समुद्र पार किया है। इस त्रैलोक्य सुन्दरी के लिये यदि राघव समुद्र तथा पर्वतों समेत सारी पृथिवी को भी उलट दें तो भी युक्त ही है। इसके लिए यदि राघव तीनों लोक का राज्य भी छोड़ दें तो भी अनुचित नहीं क्योंकि ऐसी सुन्दरी और ऐसी पति परायणा नारी के सन्मुख तीन लोक चौदह भुवन और सप्त खंड भूमि का राज्य भी तुच्छ है

हा! आज यह पातिव्रता राम की प्यारी राक्षसियों के पंजे में पड़ी हुई दुख उठा रही है। जो जनकात्मजा पति के प्रेम पर अपने सारे सुखों को निछावर करके उसके पीछे चली, आज वह भर्ता की प्यारी बलात् अपने प्यारे से अलग कर दी गई है। जो पति के प्रेम के कारण बन के कंद मूल खा कर उस के पीछे सदा छाया की तरह चलती है, घोर दुखों को भी पति के साथ निवास करती हुई जो सदा सुखों के समान समझती है, जो हंसती खेलती सदा मीठे वचनों से अपने प्राण पति को दुख में भी सुख देती है, महा नीच रावण के दुख देने पर भी जिस ने अपने सतीत्व को नष्ट नहीं किया, यह वही सती साध्वी धर्म परायणा सीता है। इसे प्राप्त करके राघव ऐसे प्रसन्न होंगे जैसे सुग्रीव नष्ट हुए हुए राज्य को फिर से प्राप्त करके प्रसन्न हुआ है। निस्सन्देह यह जानकी जिस के सब सुख नष्ट हो गए हैं, केवल राम के समागम की आशा से जीती है। हा! न तो यह राक्षसियों को देखती, न पुष्पों को, न फलों वाले वृक्षों को न भूमि को और न आकाश को केवल अनिमिषत नेत्रों से एक टक देखती हुई ऐसी देख पड़ती है मानों साक्षात् राघव को अपने सामने देख रही है। इस प्रकार सीता को देखते और उस की दशा पर आंसु बहाते रात्रि का अवसान होने लगा और भगवान् चन्द्र देव काश पुष्प के समान नीले आकाश में कुछ ऊंचे होकर ऐसी शोभा देने लगे जैसे निर्मल जल में

हंस तैरता है। चन्द्रमा के प्रकाश में कपिराज हनुमान ने चंद्र वदनी जानकी को भली भान्ति देखा। उस समय दुख से जानकी की यह अवस्था थी जैसे बड़े भार से दबी हुई नौका की जल में होती है। उस के चारों ओर बड़ी क्रूर और भयानक आकार वाली राक्षसियां पहरा दे रही थीं, ऐसी दशा में जानकी को देख कर हनुमान ने मन में श्री रामचन्द्र जी का ध्यान किया और सीता को मिलने की युक्ति सोचने लगा।

रावण का अशोक वाटिका में आना।

प्रभात होगई। तारागण एक एक करके आकाश में लीन हो गए। कमल खिलने लगा। अशोक वाटिका में पक्षियों का कलरव होने लगा। लंकापुरी में से वेद मंत्रों की ध्वनि और शंख तथा नगाड़ों का शब्द सुनाई दिया। इस समय लंकापति रावण अशोक वटिका में प्रविष्ट हुआ। उसके साथ साथ मद्य के मद से मतवाली, अप्सराओं के समान सुन्दर स्त्रियां भी प्रविष्ट हुईं। इन स्त्रियों के साथ चलता हुआ महा बलि रावण पवन पुत्र को ऐसे देख पड़ा जैसे जल से भरा हुआ नीला मेघ बिजलियों से शोभायमान हुआ चलता है। उसे देखकर वज्र देह हनुमान पत्तों में सिकुड़ कर बैठ गया। तब रावण कामार्त हुआ हुआ उस पीन पयोधरी सीता को देखने की इच्छा से वहां गया। सुन्दर भूषणों वाले रूप

और यौवन से उन्मत्त रावण को देखकर सीता ऐसे कांपने लगी जैसे आंधी आने से केले का वृक्ष। उसने अपनी दोनों जंघाओं से पेट को और दोनों हाथों से स्तनों को ढांप लिया और भयभीत होकर रोने लगी। राक्षसियों से घिरी हुई बिना आसन के भूमि पर बैठी हुई, शोक से पीड़ित, दीन, रावण के बध का कठोर व्रत धारण करती, कटी हुई शाखा के समान, सारे भूषणों के योग्य होने पर भी बिना भूषण के, मैल रूपी भूषण को धारण करती, पंक से भरी हुई कमलिनी की नांई सीता को राक्षसेन्द्र रावण ने समुद्र में तरंगा से झोंके खाती हुई नौका के समान बैठे देखा। उसने देखा कि एक टक दृष्टि से आकाश की ओर देखती हुई वह राम की प्यारी मानो मन के रथ में सवार संकल्प के घोड़े जोत कर अपने प्यारे पति की ओर जा रही है। उस के नेत्रों से मोतियों के समान गिरते हुए आंसु उस के पीन स्तनों को भिगो रहे थे। दुख के अथाह समुद्र में डूबती, धूम केतु ग्रह से ग्रासित रोहिणी की नांई पीड़ित राहु से ग्रासित पौर्णमासी की रात्रि के समान, मारे गये नायक वाली सेना के सदृश, जल हीन सूखी हुई नदी की तरह, चण्डालों से अपवित्र की गई यज्ञ की वेदी के समान, बुझी हुई दीप शिखा के सदृश, मलिन वस्त्रा, अमावस्या की रात्रि के समान श्री हीना, धूप से जलाई हुई उखाड़ी हुई कमलिनी के समान, बारंबार

ठंडी सांस भरती, उस सुकुमारी जानकी के पास जा कर राक्षसेन्द्र रावण हंसता हुआ बोला, हे मृग नयनि ! हे गज गामिनि ! मुझे देखकर भय से अपने को छिपाती हुई तू क्यों उदर और स्तनों को ढांपती है। हे चन्द्रवदनि ! मैं तुझे तेरी इच्छा के बिना स्पर्श नहीं करूंगा, तू मुझ पर विश्वास कर और इस प्रकार शोकातुर न हो। हे सुन्दरी ! भूषणों के योग्य तुझे बिना भूषणों के ऐसी मलिन अवस्था में देख कर मुझे दुख होता है। तू स्त्री रत्न है, यह तेरा यौवन नदियों के प्रवाह की नांई चले जाने पर फिर कभी वापस नहीं आएगा । हे पीन पयोधरि ! विधाता ने तुझे बनाकर फिर रूप का बनाना छोड़ दिया है, ऐसा मेरा निश्चय है, क्योंकि तेरे समान सारे ब्रह्माण्ड में दूसरी किसी स्त्री को मैं नहीं देखता। हे मदिराक्षि ! तेरे किस किस अंग की मैं प्रशंसा करूं, जिस अंग को देखता हूं वहीं मेरी दृष्टि अटक जाती है। हे जनकात्मजे ! तू राम के मोह को छोड़ मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊंगा, मेरी यह सब रानियां तेरी दासियां होंगी और मैं भी तेरा दास बनकर रहूंगा । हे भीरु ! सारे लोकों का राज्य जो मैंने अपने भुज बल से जीता है, तेरे अर्पण करता हूं और अपने आप को तेरे चरणों पर निछावर करता हूं। हे विशाल श्रोणी वाली ! सारे नगर जो मैंने जीते हैं, तेरी प्रसन्नता के लिये तेरे पिता जनक को दूंगा। हे वैदेहि ! तुझे देखकर तो ब्रह्मा भी

कामवश हो जाएं और मर्य्यादा को छोड़ दें, क्या फिर मैं ! सो तू मुझे प्रसन्न होकर अङ्गीकार कर । हे सीते ! इस संसार में कोई भी मेरा सामना नहीं कर सकता । मैंने इन भुजाओं से देवताओं और दैत्यों के रथ और ध्वजाएं तोड़ी हैं, क्या फिर राम मेरा सामना कर सकेगा । तू स्नानादि से अपने शरीर को निर्मल कर भूषण पहन और प्रसन्न होकर मद्य पान और स्वादिष्ट भोजनों के साथ मेरे साथ रमण कर । तेरे लिये मेरे रत्नों से भरे हुए खजाने खुले हैं, तू उन्हें अपने पास रख अथवा अपनी इच्छा से जिसे चाहे दे डाल । हे कल्याणि ! तू मेरे ऐश्वर्य्य की ओर देख और उस वनवासी चीर पहनने वाले कंगाल राम के ध्यान को हृदय से दूर कर । देख राम के पास न धन है न राज्य है न कोई दास है न सेना है न हाथी घोड़े रथ आदि पदार्थ हैं, वह तो जटाएं बढ़ाए बन में विचरता है, और इस पर भी मुझे संदेह है कि वह जीता भी है अथवा मर गया है । हे जनकात्मजे ! काली घटा के आगे आगे चलने वाली बगुलों की पंक्ति जैसे पीछे चमकने वाली बिजली को नहीं देख सकती इसी प्रकार अब तू राम को नहीं देख सकती और नां ही राम यहां तक पहुंच सकता है । हे सुन्दर दांतों वाली, हे चारुहासिनि, हे नितंबिनि हे पीन पयोधरि ! यद्यपि तेरे वस्त्र फटे हुए, केश खुले हुए और शरीर मलिन है, फिर भी तुझे देखकर मैं

अपनी स्त्रियों को भूल गया हूं और अब उन की ओर देखने को चित्त नहीं चाहता, सो तू हठ को छोड़ और मेरे साथ रमण करके तीनों लोकों की सुख सामग्री को भोग।

सीता का उत्तर रावण के प्रति।

लंकापति रावण के वचनों को सुनकर रुदन करती हुई जानकी मध्य में तृण रखकर बोली, हे मर्य्यादा! के विरुद्ध चलने वाले! मुझ से मन हटा कर तू अपनी स्त्रियों में प्रीति रख यही धर्म मार्ग है। हे मूर्ख! जैसे पापी पुरुष को सिद्धि नहीं मिलती ऐसे ही तू मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। मैं पति परायणा हूं, उत्तम कुल में मेरा जन्म हुआ है, सो ऐसा नीच कर्म कभी न करूंगी चाहे मेरे प्राण भी चले जाएं। हे नराधम! जिस प्रकार तू अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करता है ऐसे ही दूसरे की स्त्री के धर्म की भी रक्षा कर, रे वज्र मूर्ख! किस तरह तू बारंबार ऐसे शब्द कहता है, जो नहीं कहने योग्य हैं। क्या इस नगरी में भले पुरुष नहीं हैं जो तुझे समझावें, अथवा तू भलों का कहना नहीं मानता जो ऐसी उल्टी और मूढ़ों के सदृश बातें करता है, हे राक्षसाधम! जिस राजा की इन्द्रियें वश में नहीं हैं, जो सदा अनीति में लीन रहता है वह चाहे कितना भी ऐश्वर्य्यवान् हो, अवश्यमेव गिरता है, उस के नगर और

देश शत्रुओं से लूटे जाते हैं और वह महापापी मृत्यु से अपने पापों का प्रायश्चित करता है। मैं तेरे राज्य धन और ऐश्वर्य्य के लोभ में नहीं आ सकती हूं। मैं दशरथ कुमार लक्ष्मण के बड़े भाई से इस प्रकार अलग नहीं की जा सकती जैसे सूर्य्य से उसकी प्रभा। उस त्रिलोकी नाथ राघव की भुजा को सिर के नीचे रख कर मैं सोई हूं अब दूसरे की भुजा को कैसे स्पर्श कर सकती हूं। जिस प्रकार विद्या, संयमी व्रती ब्रह्मचारी को प्राप्त होती है इसी प्रकार मैं उसी महात्मा राघव की दासी हूं। हे दशानन! तू मुझे उसी महाबाहु राम के साथ मिला दे, मैं तुझे क्षमा करूंगी और उनसे क्षमा दिला दूंगी, अन्यथा तू दुखी होगा और उस धनुर्धर के बाणों से मारा जाएगा, जिस के सामने इन्द्र यम कुबेर भी तुच्छ हैं क्या तू, हे दुष्ट! शीघ्र ही लंका को भस्म होता, राक्षसों को मरता, राक्षसियों और उन के बालकों को अनाथों के समान विलाप करता देखेगा।

रावण का क्रोध में आना।

जानकी के मुख से ऐसे कठोर और अपमान से भरे हुए वचन सुनकर रावण के नेत्र क्रोध से जलने लगे और वह भृकुटि को तानकर होंठ चबाता हुआ बोला हे जानकि! मैंने तुझे प्रसन्न करने के लिये जैसे जैसे मधुर वचन कहे उनका उत्तर वैसे ही वैसे कठोर वचनों

में दिया । तुझे देखकर जो काम पीड़ा मुझे हो रही है वही मुझे रोक रही है जैसे घोड़ों को सारथि, काम पीड़ित मनुष्य कठोर वचनों और घोर अपमान को भी सहन करता हुआ दया करता है और दण्ड नहीं देता, इसी कारण हे चंद्र मुखि ! तू बध के योग्य होती हुई भी मारी नहीं गई। हे वरारोहे ! तेरे रूप पर दया करके तुझे दो मास तक और क्षमा करता हूं, इस अवधि के बीत जाने पर यदि तू मेरे पलंग पर न चढ़ी तो मेरे रसोईये प्रातः काल के भोजन के लिए तेरे टुकड़े टुकड़े करेंगे और तुझे पकाकर मेरे भोजन के थाल में परोसेंगे ।

रावण के मुख से सीता के विषय में कहे गए ऐसे कठोर वचनों को सुनकर उन देवताओं और गंधर्वों की कन्याओं के मुख पर भी दुख की रेखाएं झलकने लगीं जो बल से हर कर लाई गई थीं । उन्हों ने उंगलियों के इशारों से सीता को धीरज दिया जो इस समय प्राणपति के चिंतन में रो रही थी । उन से धीरज दी हुई सीता का स्वाभाविक नारी दर्प जाग उठा और वह छेड़ी हुई नागिनी के समान क्रोध से फुंकारती हुई रावण के प्रति बोली हे दुष्ट ! अमित तेज वाले सूर्य्य के समान तेजस्वी वर्चस्वी राघव की भार्य्या को जो तू ने पाप मय वचन कहे हैं सो तू अब उन के हाथ से बच नहीं सकेगा । इन्द्र की इन्द्राणी के समान धर्म में दृढ़ मति वाली राम की पत्नी को किस की शक्ति है जो मन से भी

चिंतन करे, सो अब तू अपने आप को मरा हुआ ही समझ । रे नीच ! तेरे यह क्रूर और पिंगल नेत्र मेरी ओर देखते हुए गिर क्यों नहीं जाते । हे दुष्ट बुद्धि ! चक्रवर्ती राजा दशरथ की स्नुषा को जिस जिह्वा से तूने यह वचन कहे हैं सो जल क्यों नहीं गई । मैं पतिव्रता हूं और पति की आज्ञा के विना कोई कार्य्य नहीं करती अन्यथा अपने तेज से तुझे जला कर अभी भस्म कर दूं, तेरी लंका को राख कर दूं और तेरे कुटुम्ब और परिवार को जला डालूं, परन्तु अभी मुझे पति की आज्ञा नहीं है । रे शठ ! महात्मा राम से मैं अलग नहीं की जा सकती यह तो विधाता ने तेरे मारने के लिये रचना रचाई है । रे कायर ! इतने बल इतने तेज इतनी सेना और इतनी बड़ी सामग्री के होते हुए भी तूने राघव की अनुपस्थिति में मुझ अकेली को हर लिया है, इसी से मैंने तेरे कायरपन को जान लिया है, हटजा मेरे सामने से, जा अभी भी तुझे क्षमा करती हूं ।

रावण का जानकी पर फिर क्रोध करना ।

सीता के मुख से ऐसे अपमान जनक वचनों को सुन कर लंकापति रावण क्रोध से मूर्छित सा हो गया और लाल लाल नेत्रों से अग्नि के अंगारे बर्साता सीता की ओर काली पीली आंखों से देखता, सर्प के

समान फुंकारे मारता जानकी के प्रति बोला, हे बुद्धि हीन मूर्ख सीते ! हे अन्ध विश्वासिनि ! हे निर्बुद्धि राम के पीछे चलने वाली ! अभी तेरे टुकड़े टुकड़े करता हूं। हे मंद मति वाली ! जैसे सूर्य्य सन्ध्या को नाश करता है इसी प्रकार अब तेरा नाश कर डालूंगा ।

इस प्रकार सीता को भयभीत करके फिर वह राक्षसेन्द्र भयंकर राक्षसियों की ओर देख कर बोला, हे राक्षसियो ! जिस प्रकार भी हो सके सीता को मेरे वश में लाओ यदि प्रेम से न माने तो इसे ऐसा दण्ड दो कि यह हाथ जोड़ कर मेरे आगे प्रार्थना करे और मुझे अपना पति स्वीकार करे। इस प्रकार राक्षसियों को आज्ञा देकर काम से अन्धा हुआ हआ रावण सीता के सामन खड़ा हो कर जल से भरे हुए बादल के समान बारंबार गर्जना करता भया ।

इसी समय एक विकाल रूप वाली राक्षसी रावण के शरीर से लिपट कर बोली, हे नाथ ! आप इस मानुषी स्त्री के लिये क्यों इतना अधीर होते हैं, देखो फीका तो इसका रंग है, पतले इसके होंठ हैं और छोटा सा भद्दा इसका आकार है। हे प्रभो ! आप मेरे साथ बिहार करें, इस भाग्य हीना के भाग्य में ऐसा सुख कहां जो आप जैसे पराक्रमी, सुंदर, तीनों लोकों के जीतने वाले राजा के साथ विलास करे। हे राजन् ! जो स्त्री आपको न

चाहे उसकी चाह से अपने आप को वृथा संताप देने से क्या लाभ उस राक्षसी के इन बचनों को सुन कर प्रसन्न हुआ रावण अपने सूर्य के समान प्रभा वाले रत्न जटित मंदिर में चला गया, और देवताओं व नागों की कन्याओं से रमण करने लगा।

राक्षसियों का जानकी को डराना।

रावण के चले जाने पर राक्षसियों ने दुर्वचनों से सीता को अति पीड़ित किया और अनेक प्रकार से भर्त्सना करती हुई बोलीं, हे मूर्ख मानुषि! तीनों लोक और चौदह भुवन के ऐश्वर्य्य के स्वामी रावण की शय्या को तू क्यों पसंद नहीं करती, जिसने देवताओं और दानवों को भुजबल से जीता है उसकी भार्य्या बन अतुल सम्पति का भोग कर। हे सुन्दरि! तू जिस राम को प्यार करती है, वह राज्य से भ्रष्ट, देशसे निर्वासित, महा कंगालों के समान बनों में ठोकरें खाता फिरता है, ऐसे कर्महीन हतभाग्य मनुष्यका अंचल छोड़ कर तू सुन्दर तेजस्वी और प्रतापी रावण की अर्धांगिनी बन। राक्षसियों के इन वचनों को सुन कर वह कमल नयनी जानकी नेत्रों से आंसु गिराती हुई बोली, हे राक्षसियों क्यों तुम मुझे ऐसे दुर्वचन कहती हो, जिनके मानने से लोकमें निंदा और परलोक में नरक की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। हे मूर्ख राक्षसियो! एक आर्य्या के लिये पति ही उसका सर्वस्व होता है, सो मैं तुम्हारे किसी भी

वचन को अंगीकार नहीं करूंगी। मेरा हृदय उसी धर्मात्मा दशरथ के पुत्र में निवास करता है, जो दुष्टों को दण्ड देने वाला और भक्तों का रखवाला है। मैं राम की हूं और राम मेरा है चाहे वह राज्य भ्रष्ट है, निर्वासित है अथवा बनोंमें ठोकरें खाता है, वही मेरा आराध्य देवता है । देखो शची इन्द्र को, अरुन्धती वसिष्ठ को, रोहिणी चन्द्रमा को, लोपामुद्रा अगस्त्य को, सुकन्या च्यवन को, सावित्री सत्यवानको, श्रीमती कपिल को, मदयन्ती सौदासको, केशिनी सगर को, तथा दमयन्ती जैसे नल को ही चाहती है इसी प्रकार मैं दशरथ नंदन लक्ष्मण के बड़े भाई, श्रीरामचन्द्र जी को ही चाहती हूं। उन्हें छोड़ कर मैं और किसी का मन से भी चिंतन नहीं कर सकती।

सीता के इस प्रकार उत्तर देने पर वह राक्षसियां क्रोध से मूर्छित होकर उसे कठोर वचन कहने और नाना प्रकार के दुख देने लगीं।

सीता की इस दुर्दशा को पवन पुत्र हनुमान ने शीशम के वृक्ष पर बैठे बैठे देखा । उस समय उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली और वह मन ही मन बहुत दुखी होकर सोचने लगा, कि किस प्रकार जानकी को मिलूं और कैसे इसे धीरज दूं। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ हनुमान परमेश्वर की प्रार्थना करने लगा, कि हे नाथ ! इस अबला के दुःख को शीघ्र दूर करो और

पापी रावण को इस संसार से उठा कर अपने भक्तों की रक्षा करो। इतने में राक्षसियों से सताई हुई पद्माक्षी जानकी भी आंसुओं को अंचल से पोंछती हुई उसी शीशम के वृक्ष के नीचे आई उस समय वह कौशल किशोरी, भेड़ियों में घिरी हुई हिरनी के समान अपने अंगों को सिकोड़ती हुई कांप रही थी। उस वृक्ष के नीचे आकर वह टूटी हुई आशा वाली राम की प्रिया एक झुकी हुई शाखा को पकड़ कर अपने पति को सोचने लगी। नेत्रों से बहती हुई अश्रु धाराओं से उस के पीन पयोधर भीग गये। उस समय उस के दुःख और शोक का कोई अंत न था। क्रोध और शोक से विलाप करती हुई सीता बारंबार 'हा राम, हा लक्ष्मण" पुकारती हुई मूर्छित सी हो रही थी। ऊंचे स्वर से रोते हुए वह बार बार मृत्यु को आवाहन करती हुई बोली महात्माओं ने सच कहा है, कि बिना समय आए मृत्यु नहीं आती कहां वह राज महल जिन में पति के साथ रहती हुई मैं दिव्य सुखों का उपभोग करती थी और कहां आज यह दिन, कि पति से बिछड़ी हुई, बल से हरी गई, इन राक्षसियों के वश में पडी हुई, जल से तोडे गए तट के समान दुख की नदी में गिर रही हूं। उस प्राणपति के बिना मैं जल से निकाली गई मछली की तरह तड़प रही हूं परंतु यह ढीठ प्राण निकलने में नहीं आते। धिक्कार है ऐसे जीवन पर जिसे मैं अपनी इच्छा से त्याग नहीं सकती।

निस्संदेह मेरा यह हृदय पत्थर का बना हुआ है अथवा अजर अमर है, जो इतने बड़े दुख से टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता, धिक्कार है मुझ अनार्य्या पर जो पति से विना अभी तक जीती हूं। मैं इस दुर्बुद्धि पतित महा नीच दुश्चरित्र रावण को बांएं पाओं से भी न स्पर्श करूंगी उस की कामना करना तो कहां। निस्संदेह मेरा प्राणाधार नहीं जानता, कि मैं यहां पर ऐसी विपत्ति में फंसी हुई हूं, अन्यथा वह प्रतापी कौशल किशोर इस अपमान को कभी सहन न करता जो आज दुष्ट रावण ने मेरा किया है। हा! यदि मेरे श्वशुर का परम सखा गृद्ध जटायु इस दुष्ट के हाथ से न मारा गया होता तो राघव के बाण से आज रावण पृथिवी पर लेटा होता। हे भगवन्! जिस जटायु ने मेरे लिये लड़ते हुए वीरता से प्राण दिये, उसे तू अपने चरणों में स्थान दे, हा! वह कैसा वीर था, वृद्ध होने पर भी किस प्रकार वह रावण के सन्मुख खड़ा हो गया। आज यदि किसी प्रकार राघव को मेरे यहां होने का पता मिल जाए, तो क्रुद्ध हुआ हुआ वह अपने तीक्ष्ण बाणों से लंका को राक्षसों से रहित कर दे, लंका में जैसे खोटे कर्म हो रहे हैं, उनसे जान पड़ता है, कि यह नगरी थोड़े ही दिन में उजड़ जाएगी। निस्संदेह भरत के बड़े भाई को निश्चय हो गया है, कि मैं मर गई हूं अन्यथा वह मेरे लिये सारी पृथिवी की ढूंढ भाल करते। अथवा मेरे प्राण पति

लक्ष्मण के बड़े भाई राघव ही अब इस संसार में नहीं हैं, और राज्य व स्त्री के हरे जाने के शोक में देह को त्याग कर अपने पिता के पास चले गए हैं, अथवा मुझ में कोई दोष देखकर वह मुझ से विरक्त हो गये हैं, अथवा इस दुष्ट रावण ने जिस प्रकार मुझे धोखे से हर लिया है इसी प्रकार राम और लक्ष्मण को धोखे से मार दिया है, सो अब मुझे एक क्षण भी इस संसार में नहीं रहना चाहिए और सती स्त्रियों के समान प्राण देकर अपने पति के पीछे चलना चाहिए ।

इस प्रकार रावण के वश में पड़ी हुई सीता के इन वचनों को जब हनुमान ने सुना तो वह मन ही मन सोचने लगा, कि जिस की खोज में वानर लोग सारी दिशाओं में घूम रहे हैं, उसे मैंने पा लिया है । यही सीता है, राम की प्रिया और जनक की कन्या यही है; इस में अब कुछ भी सन्देह नहीं रहा।

सीता से मिलने के लिए हनुमान का उपाय सोचना ।

शीशम के वृक्ष के नीचे खड़ी सीता के दुख भरे शब्दों को सुनकर पवन पुत्र हनुमान ने सोचा, कि पति के दर्शन के लिये तड़पती हुई सीता को यदि मैंने इस समय धीरज न दिया तो यह अवश्य ही प्राणों को छोड़ देगी और मेरे यहां आने और लौट कर जाने का कोई विशेष फल भी न होगा । सो पति वियोग के

अथाह दुःख सागर में डूबती हुई इस चंद्र मुखी को मैं राम का संदेशा देकर बचाता हूं परंतु इन क्रूर राक्षसियों के सन्मुख तो मैं किसी प्रकार भी अपने आप को प्रगट नहीं कर सकता, रात्रि भी थोड़ी ही रह गई है, सूर्य्य निकल आने पर तो मुझे भी यहां से भागना पड़ेगा ! सीता के साथ बात चीत किये बिना यदि मैं चला जाऊं तो फिर सुग्रीव और राम के सब उद्योग भी निष्फल जाएंगे, क्योंकि सीता अब अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती । सो अब मैं यहां बैठा बैठा ही राक्षसियों से आंख बचाकर धीरे धीरे जानकी को समझाता हूं । इस प्रकार अपने मन में निश्चय करके महावीर हनुमान सीता को सुनाकर परंतु धीरे धीरे मीठी वाणी से बोलने लगा–

इक्ष्वाकुओं के वंश में रथ, हाथी, घोड़े तथा बड़ी सेना तथा विशाल पृथिवी का स्वामी, बड़े यश वाला, तेजका पुञ्ज, सूर्य्य समान प्रतापी पुण्यवान राजा दशरथ हुआ है । उसका प्यारा ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रमा के तुल्य उज्वल मुख वाला, धनुर्धारियों में शिरोमणि, सर्व गुण संपन्न, सदाचारी अपने भक्तों की रक्षा करने वाला, जीव मात्र पर दया करने वाला, धर्मात्मा, शत्रुओं का नाश करने वाला, लक्ष्मण का बड़ा भाई राम अपने पिता की प्रतिज्ञा को निभाने के लिए जनक पुत्री सीता और लक्ष्मण के साथ १४ वर्ष के लिए महावन में प्रविष्ट हुआ । चिर

काल तक बनों में निवास करके उस शत्रुञ्जय राम ने काम रूपी राक्षसों को मारकर वनवासी ऋषियों मुनियों को अभय दान दिया। रावण की बहन शूर्पणखा के नाक कान काट कर उस तेजस्वी राघव ने खर और दूषण को मारा और इस प्रकार जनस्थान को राक्षसों से रहित कर दिया। जनस्थान के नाश और अपने भाई खर का मारा जाना सुनकर लंका पति रावण क्रोध से मूर्छित हो गया। उसने मारीच रूप माया मृग की सहायता से राम की अनुपस्थिति में छल से जानकी को हर लिया। प्राण प्रिया जानकी की खोज में घूमता हुआ राम वानर राज सुग्रीव को मित्र बनाकर बालि का बध करता भया। सुग्रीव की आज्ञा से लाखों वानर जानकी की खोज में दशों दिशाओं में गये, उन में से जटायु के बड़े भाई महात्मा संपाति के कथन से मैं सौ योजन चौड़े गंभीर समुद्र को पार करके यहां आया हूं। यहां मैंने उसी मृग नयनी पिक वयनी उसी आकृति उसी आकार उसी गति वाली और उन्हीं चिन्हों वाली को देख लिया जैसा कि मुझे श्री रामचन्द्र जी ने बतलाया था इतना कहकर कपिराज हनुमान चुप होगया।

राक्षसियों से सताई हुई, राम के वियोग में तपी हुई, टूटे हुए मन और आशा वाली जानकी के कानों में जब यह शब्द पड़े तो उस के आश्चर्य्य की कुछ थाह न रही उस ने बिखरे हुए केशों को अपने मुख से हटाकर इधर

उधर चारों दिशाओं में देखा, परंतु इन शब्दों के बोलने वाला उसे कहीं दिखाई न दिया तब मन में प्राण पति राघव का ध्यान करती हुई वह उसी वृक्ष की ओर देखने लगी, जहां उस ने मेघों से घिरे हुए सूर्य्य के समान तेजस्वी हनुमान को पत्तों में छिपा हुआ देखा।

तब सुग्रीव का मंत्री हनुमान धीरे धीरे उस वृक्ष से नीचे उतरा और दोनों हाथ जोड़कर सीता के प्रति बोला, हे कमल लोचने! तू कौन है, किस कारण तू सुन्दर भूषणों के योग्य होकर भी भूषण रहित मलिन वसना यहां रुदन कर रही है? हे देवी! तेरा रूप देखकर ऐसा जान पड़ता है कि तू चन्द्रमा से हीन होकर आकाश से गिरी हुई ताराओं में श्रेष्ठ साक्षात् रोहिणी है हे कल्याणि! तेरे शोक का क्या कारण है, क्या तेरा कोई प्यारा परलोक में तो नहीं चला गया? हे सुंदरि! लंकापति रावण जिस को जनस्थान से हर लाया है, क्या तू वही राम प्रिया जानकी तो नहीं है? क्योंकि बारंबार ठंडी सांस भरती और 'हा राम हा राम' पुकारती हुई तुझे मैं अनुमान से जानकी समझता हूं।

हनुमान के ऐसा पूछने पर जानकी बोली हे वानर श्रेष्ठ! तेरा अनुमान सत्य है, राजा विदेह की कन्या चक्रवर्ती दृढ़ व्रती महाराज दशरथ की स्नुषा और धनुष धारियों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र की भार्य्या मैं ही हूं। पिता की आज्ञा से निर्वासित पति के साथ मैं महा बन में

आई, वहां से यह पापी रावण मुझे हरकर ले आया है, हे कपीश ! दो मास की अवधि इस राक्षसेन्द्र ने मुझे दी है, इस अन्तर में यदि राघव न आए तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगी, यही मेरे शोक का कारण है तब वह तेजस्वी वानर फिर हाथ जोड़कर बोला, हे देवि ! बड़े यश वाले महात्मा राम का भेजा हुआ मैं तेरे पास आया हूं, हे जानकी ! दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र जी और महाबाहु लक्ष्मण दोनों कुशल से हैं। उस सच्ची प्रतिज्ञा वाले, चारों वेदों के जानने वाले, इक्ष्वाकु कुल रत्न राम ने तुझे कुशल कहा है। और सूर्य्य के समान तेजस्वी मुख मंडल वाले, शोक और दुख से तपे हुए तेरे देवर लक्ष्मण ने तुझे अभिवादन किया है।

हनुमान के मुख से अपने प्यारे पति और सिंह के समान पराक्रमी देवर का कुशल समाचार सुनकर सीता का मुर्झाया हुआ हृदय कमल खिल गया, उसके उदास होठों पर मुस्कराहट की एक रेखा सी दौड़ गई और हनुमान की ओर देखकर बोली, हे कपीश ! संसार में यह कहावत है, कि जीते जी मनुष्य सौ वर्ष के पश्चात् भी सुख प्राप्त करता है, सो सत्य ही है।

इस प्रकार वह दोनों इस विचित्र समागम से प्रसन्न होकर अद्भुत प्रीति में मग्न हुए हुए एक दूसरे से विश्वास पूर्वक बातें करने लगे। तब सीता को अपने

वचनों से धैर्य्य देने के लिये कपिराज हनुमान उसके अति निकट चला गया। एकाएक उस वानर राज के निकट आजाने पर सीता के मन में संदेह उत्पन्न हो गया और वह मन ही मन अपने आप को धिक्कार देती हुई बोली " अहो मैंने यह बड़ी मूर्खता की जो इस के साथ वार्तालाप किया, क्योंकि यह तो वही मायावी रावण वानर के रूप में मुझे धोखा देने आया है। यह कहकर जानकी वृक्ष की शाखा को छोड़ कर पृथिवी पर बैठ गई, और फिर उसने हनुमान की ओर न देखा। सीता को भयभीत देखकर महावीर हनुमान ने दोनों हाथ सिर पर रखकर प्रणाम किया, परन्तु इस से जानकी के हृदय का संशय दूर न हुआ और वह ठंडी सांस लेकर बोली, हे मायावी रावण! क्यों मुझ दुखिया को वानर का रूप धारण करके धोखा देता है, तेरे जैसे विद्वान पण्डित के लिये ऐसा करना उचित नहीं है। हे शठ! सन्यासी का रूप धारण करके पहले तू मुझे दण्डक वन से चुरा लाया है और अब वानर के रूप में मुझे छल कर मेरा सर्वस्व नष्ट करना चाहता है। हे राक्षस राज! देख मैं राघव के वियोग में मर रही हूं और इस पर भी तू मुझे दुख देता है।

जानकी के ऐसा कहने पर उस कपीश को अत्यंन्त दुख हुआ, परन्तु फिर साहस करके बोला, हे कौशल किशोरि! सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी, विष्णु के सदृश

पराक्रमी, सब प्राणियों को आश्रय देने वाले, यशस्वी श्री रामचन्द्र जी को माया मृग के द्वारा आश्रम से हटाकर जो दुरात्मा तुझे हरकर ले आया है, शीघ्र ही वह इस कुकर्म का दण्ड भोगेगा, हे मैथिलि ! थोड़े ही दिनों में तू लक्ष्मण के जलते हुए बाणों से लंकापुरी को भस्मसात् होते देखेगी । हे जानकी ! जिस सत्यवादी दृढ़ व्रती के वियोग में तू व्याकुल हो रही है उसी राम का भेजा हुआ मैं दूत तेरे पास आया हूं । तेरे वियोग में तड़पते हुए वह तुझे बनों पर्वतों नदियों और बडे दुर्गम स्थानों में ढूंढ रहे हैं । उस महात्मा राम ने तुझे कुशल कहा है और शत्रुघ्न के भाई लक्ष्मण ने तुझे हाथ जोडकर प्रणाम कही है । हे माता ! इन राक्षसियों के वश में पड़ी हुई भी तू जीती है, सो बड़े आनन्द की बात है, अब थोड़े ही दिनों में तू श्री रामचंद्र जी लक्ष्मण और सुग्रीव को करोड़ों वानरों के मध्य में यहां देखेगी । हे जानकी ! सुग्रीव नामक वानरों का राजा श्री राम चन्द्र जी का परम मित्र है और मैं उसका मंत्री हनुमान नामक वानर हूं । मैं रावण नहीं हूं जैसा कि तू मुझे समझती है । बल से हरी जाती हुई तू ने जो भूषण आकाश से फेंके थे वह मैंने ही अपने हाथों से श्री रामचंद्र जी को दिये थे । उन भूषणों को देखकर हिमालय से बढ़कर धीरज वाले राघव का भी धीरज छूट गया था और वह विलख २ कर रोता हुआ

मूर्छा खाकर देर तक भूमि पर पड़ा रहा। हे सुन्दरि ! तेरे बिना वह राघव जलते हुए अग्नि से तपे हुए पर्वत के समान सदैव जलता रहता है। तुझे न देख कर हे देवी ! वह राघव रमणीक बनों पर्वतों नदियों और झरनों पर उदास घूमता रहता है

हनुमानका सीता को मुद्रिका देना ।

हनुमान के इन प्रीति युक्त वचनों को सुनकर जानकी के मन का संशय जब कुछ कुछ दूर हुआ तो पवन पुत्र महावीर ने तनिक आगे सरक कर कहा, हे महाभागे ! श्री रामचन्द्र जी का मैं दूत हूं, देखो श्री रामचंद्र जी ने तेरे विश्वास के लिये यह मुद्रिका अपनी अंगुली से उतार कर दी है। यह कहकर हनुमान जानकी को वह मुद्रिका देता भया, जिस पर रामनाम अंकित था।

चिर काल से बिछड़ी हुई, भर्ता के दर्शनों के लिये व्याकुल जानकी ने जब अपने हृदय के ठाकुर श्री रामचन्द्र जी की मुद्रिका को देखा तो उसके आनंद की कोई थाह न रही। पृथिवी पर पड़ी हुई मछली को जैसे जल में डाल दिया जाए इसी प्रकार वह भर्ता की प्यारी मानों आनंद के सागर में तैरने लगी। लाल सफेद विशाल नयनों वाला उसका सुन्दर मुख राहु से छूटे हुए चंद्रमा के समान आनंद और प्रेम से निर्मल

हो गया। शोक की छाया उसके मुख मंडल से दूर हुई उस समय बड़े विश्वास से, प्रसन्न होकर वह जनकदुलारी पवन पुत्र के उद्योग की स्तुति करने लगी, कि हे कपिराज ! किस मुख से मैं तेरी प्रशंसा करूं, तू बड़ा पराक्रमी, समर्थ, बुद्धिमान, मेधावी और चतुर है। जो कार्य्य सहस्रों मनुष्य एक साथ मिलकर नहीं कर सकते वह तुझ अकेले ने राक्षसों के स्थान लंकापुरी को दबा कर कर दिखाया है। हे कपीश ! सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण और उसका बड़ा भाई कुशल है, यह सुनाकर तूने मेरा सब शोक दूर कर दिया है, परंतु वह शत्रुओं को जीतने वाला प्रलय के अग्नि के समान अपने क्रोध से इस पृथिवी को क्यों नहीं जला देता। हे कपीश ! वह दोनों भाई युद्ध में देवताओं को जीतने में समर्थ होते हुए भी रावण को नहीं मारते, इस से मैं समझती हूं कि अभी मेरे दुखों का अन्त नहीं हुआ है। हे हनुमान ! क्या दूर निवास करने से श्री रामचद्र जी का मुझ से प्रेम तो नहीं घट गया ! हे वीर ! कौशल्या, सुमित्रा और भरत का कुशल समाचार आता है ? क्या अयोध्या पति भरत मुझे छुड़ाने के लिये सूर्य्य के चिन्हों वाली ध्वजाओं से युक्त सेना को भेजेगा, क्या वह समय मैं अपने नेत्रों से देखूंगी जब राम के रौद्र अस्त्रों से रावण पृथिवी पर गिरेगा ? हे हनुमान ! स्वर्ण के समान रंग वाला, कमल के समान गंधि वाला

राघव का मुख कमल उदासीनता से मुर्झा तो नहीं गया। हे वीर पिता के वचन पर राज्य त्याग कर मेरे साथ बन में चलते समय जो धैर्य्य और अटल विश्वास उस ने दिखाया था क्या वह अब भी उस के हृदय में विद्यमान है?

सीता के इस प्रकार पूछने पर हनुमान ने उत्तर दिया हे मैथिलि! श्री रामचंद्र जी जिस समय मेरे मुख से तेरी दशा सुनेंगे उसी समय वह लाखों ऋक्षों और वानरों को साथ लेकर लंका में पहुंच जाएंगे। हे वैदेहि! तेरे वियोग में धनुषधारियों में श्रेष्ठ राम ऐसे पीड़ित हो रहे हैं जैसे सिंह से पीड़ित हाथी। तेरे ध्यान में वह सदा इस प्रकार मग्न रहते हैं, कि मच्छर मक्खी और दूसरे जन्तु उनके शरीर को काटते हैं परंतु वह उन्हें नहीं हटाते। राघव सदा चिंता में डूबा रहता है। उसका मुख मंडल कभी शोक से रहित नहीं देखा गया, वह कभी कुछ और नहीं सोचता, उठता बैठता चलता फिरता सदैव ठंडी सांस भरता, नेत्रों से आंसु बहाता 'हा! सीते' 'हा सीते' इस प्रकार तेरा नाम लेता है। वह महात्मा कभी सोता नहीं और सोता हुआ भी 'सीता' 'सीता' कहता हुआ उठ दौड़ता है। हे सीते! राम का हृदय तुझ में है, तुझे न देखकर वह सदा दीन दुखी और शोकातुर रहता है। हनुमान के मुख से अपने प्राण प्यारे की करुणा जनक अवस्था सुनकर जानकी के नेत्रों से

आंसुओं की धारा बह निकली और वह नेत्र जल से स्तनों को भिगोती हुई बोली हे वानर श्रेष्ठ! तूने विष से मिले हुए अमृत के समान शब्द कहे हैं। यह बात जो तूने कही है, कि राघव का हृदय दूसरी ओर नहीं है और वह सदा उठते बैठते चलते फिरते मेरा ही चिंतन करते हैं, सो यह वचन अमृत के समान मुझे प्राणोंके देने वाले हैं, और सदा शोकातुर उदासीन और दुखी रहते हैं यह शब्द विष के तुल्य हैं, जो मेरे प्राणों को हरने वाले हैं। हे कपीश! ऐश्वर्य्य में अथवा विपत्ति में दैव ही मनुष्य के कंठ में रस्सी बांध कर खैंचता है। कर्मों की गति को कोई मेट नहीं सकता, हे वीर! राक्षसों को मारकर, लंका को जलाकर, और रावण का बध करके कब वह राघव मुझ दुखियारी को दर्शन देगा। हे पवन पुत्र! दस महीने व्यतीत हो गये हैं, दो मास की अवधि और है, इस के पश्चात दुरात्मा रावण मेरा बध कर डालेगा। रावण बड़ा कामी दुष्ट अत्याचारी है वह और किसी की बात मानने वाला नहीं। विभीषण की पुत्री कला ने मुझे बतलाया है कि उस के पिता ने मुझे छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया अनेक बार रावण को कहा, परंतु उस ने एक न मानी और अभी तक अपने दुष्ट विचार पर तुला बैठा है। हे पवन सुत! राघव पराक्रमी है, बलवान है, दयालु है और बड़ा मेधावी है। उस अकेले ने चौदह सहस्र राक्षसों सहित खरदूषण का बध किया

इस संसार में कौन उस के सामने ठहर सकता है इस प्रकार कहते कहते जानकी का कंठ रुक गया और नेत्रों ने आंसुओं की झड़ी बांध दी ।

दीन दुखिया और पति शोक से दुर्बल हुई २ सीताके इन वचनों को सुनकर हनुमान बोले हे मैथिलि ! बस है अब विलाप से, क्योंकि तेरा संदेश पाते ही अयोध्यानाथ श्री रामचन्द्र जी वानरों ऋक्षों की सेना सहित यहां पहुंच जाएंगे, और यदि तू आज्ञा देवे तो हे देवी ! मैं इसी क्षण तुझे इस राक्षस के बंधन से छुड़ाए देता हूं । तू शीघ्र मेरी पीठ पर सवार हो । मैं तुझे पीठ पर चढ़ा कर इस महासागर को पार करूंगा । हे सीते ! रावण सहित सारी लंका पुरी को उठाकर मैं समुद्र पार कर सकता हूं, क्या फिर तुझे ! आज ही तुझे प्रस्रवण पर्वत पर पहुंचा देता हूं जैसे अग्नि इन्द्र को उस की हवि पहुंचाता है । आज ही तू दशरथ नंदन राघव को देखेगी जैसे देवताओं ने भगवान् विष्णु को दैत्यों के बध में देखा था । अब तू देर न कर और मेरी पीठ पर चढ़, सूर्य्यास्त से पहले पहले तू श्री रामचन्द्र जी के साथ भेंट करेगी । हे सीते आंख झपकते ही तुझे समुद्र पार पहुंचाता हूं, राक्षसों की इतनी सामर्थ्य कहां जो मुझे पकड़ सकें ।

पवन पुत्रके मुख से ऐसे आश्चर्य्य जनक वचन सुन कर जानकी बोली, हे कपीन्द्र ! सौ योजन चौड़ा अगाध

समुद्र तुम मुझे उठाकर किस प्रकार पार कर सकोगे । तुम्हारे छोटे से शरीर को देखकर जब मैं भीषण गर्जना करने वाले अगाध समुद्र का ध्यान करती हूं तो मेरे मन में विश्वास नहीं होता कि जो कुछ तुम कहते हो, उसे करने में भी समर्थ हो।

सीता के कहने पर हनुमान मन में लज्जित सा होकर सोचने लगा, कि यह अबला मेरे बल और पौरुष को नहीं जानती, इसी लिये ऐसा कहती है, सो अब मैं अपना भयानक आकार इसे दिखलाता हूं। यह विचार वह वानर श्रेष्ठ अपनी देह बढ़ाने लगा और क्षण मात्र में पर्वत के समान आकार वाला, तांबे की तरह लाल मुख वाला, वज्र के समान दंत और नखों को धारण किये सूर्य्य के तुल्य तेज को धारण करता हुआ जानकी के सामने खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर बोला हे जानकी ! पर्वतों वनों नदियों बड़े ऊंचे भवनों समेत सारी लंका पुरी को और सेनाओं सहित लंकापति रावण को उठाकर मैं अभी ले चलूं, यदि तेरी आज्ञा हो, अब व्यर्थ के संदेह छोड़ कर मेरी पीठ पर चढ़ो, और दोनों भाईयों के संताप को दूर करो।

पवन पुत्र हनुमान के इस भयंकर रूप को देखकर जानकी बड़े विस्मय को प्राप्त हुई और फिर युक्ति युक्त अर्थ से भरा हुआ यह वचन बोली, हे बलवीर ! पति के शरीर के बिना किसी दूसरे पुरुष की देह के साथ

मैं स्पर्श नहीं कर सकती । दुराचारी रावण ने बल से मेरे अंगों को हरते समय स्पर्श किया था उस समय अनाथ और विवश थी, सो श्री रामचन्द्र जी राक्षसों सहित रावण का बध करके मुझे ले जाएं, इसी में उन की प्रतिष्ठा है, और ऐसा होने पर ही मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो सकती है ।

जानकी का श्री रामचंद्र जी को संदेश देना ।

सती सीता के मुख से ऐसे पतिव्रत धर्म से युक्त वचनों को सुन कर हनुमान अति प्रसन्न होकर बोला, हे कमल लोचने ! तेरे जैसी सती पतिव्रता ही ऐसा वचन कह सकती है । मैं श्री रामचन्द्र जी को तेरी अवस्था विस्तार से कह सुनाऊंगा अब तू कोई ऐसी निशानी मुझे दे, जिसे दशरथ नंदन राम पहचान लें और मेरे कथन पर विश्वास करें ।

तब सुन्दर चूड़ामणि को खोलकर जानकी ने कहा हे पवन पुत्र ! लो यह मणि श्री रामचन्द्र जी को देना, इसे राघव भली भान्ति पहचानते हैं, इसे देखकर वह महात्मा मेरी माता को मुझ को और दशरथ को इन तीनों को स्मरण करेगा । हे हनुमान ! लक्ष्मण और उस के बड़े भाई को तथा वानर राज सुग्रीव को मेरी ओर से कुशल समाचार देना, और जिस उपाय से कौशल्या नंदन राम मुझे इस दुख के समुद्र से पार करे वैसा करना, और रावण का क्रोध, राक्षसियों की झिड़कियां तथा

नाना प्रकार के अपमान जो तूने अपनी आंखों से देख लिए हैं, यह सब रामको जाकर कहना। हे हनुमान्! तू बलवान है, पुरुषार्थी है, चतुर है सो आगे जैसा उचित है वैसा कर।

जानकी से ऐसा कहा हुआ वह बड़े बल वाला हनुमान "ऐसा ही करूंगा" कह कर दोनों हाथ जोड़ नेत्रों से आंसु गिराता हुआ वहां से विदा हुआ।

हनुमान का अशोक वाटिका को ध्वंस करना।

अब जानकी से विदा होकर हनुमान ने मन में विचार किया, कि श्री रामचन्द्रजी का मुख्य कार्य्य तो मैंने कर लिया है अब शत्रु का बल देखना शेष है, क्यों कि वानरराज सुग्रीव जब मुझे यह पूछेंगे कि रावण की सेना कितनी है, उसमें कितना बल है, किस ढंग से राक्षस युद्ध करते हैं, कैसे उनके अस्त्र शस्त्र हैं तो मैं क्या उत्तर दूंगा, सो यह बातें मेरे जानने योग्य हैं। अब मुझे कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये, जिससे रावण की सेना मेरे सामने आए। कुछ क्षण तक विचार करके उसने निश्चय किया, कि इसी अशोक वाटिका को जो इन्द्र के नंदन वनके समान शोभा वाली रावण की अति प्यारी है, विध्वंस करूंगा, ऐसा करने पर रावण अवश्य ही मुझे पकड़ने के लिये अपनी सेना भेजेगा। ऐसा निश्चय करके जलते हुए नेत्रों वाला पर्वताकार हनुमान

उस वाटिका का नाश करने लगा। थोडे ही काल में उसने सैकड़ों बड़े २ वृक्षों को उखाड़ कर भूमि पर डाल दिया। सुन्दर फूलों वाली लताओं को झटक कर मसल डाला। निर्मल जलों वाले सरोवरों के घाट तोड़ तोड़ कर फैंक दिये। थोडे ही समय में वह प्रमदा वन जिसकी सुन्दरता पर देवता भी लालायित थे, ऐसे शोभा हीन होगया जैसे दावानल से जला हुआ बन श्री हीन होता है। वह वाटिका जिसमें मस्त पक्षियों के झुंड अपने मधुर संगीत से आकाश को संगीतमय कर रहे थे, वह सरोवर जिनमें रंगारंग की मछलियें और जल जीव खेल रहे थे, वह पेड़ जिसके मीठे और रसीले फल देवताओं को भी दुर्लभ थे, वह लताएं जिनके पुष्प अपनी दिव्य सुगन्धियों से वायु मंडल को सुगन्धित कर रहे थे, क्षणमात्र में नष्ट हो गए। वृक्षों पर बसेरा करने वाले पक्षियों के समूह उड़ २ कर आकाश में चारों ओर उड़ने लगे, वृक्षों के बिलों और जड़ों में बसने वाले सर्प और सरीसृप निराश्रित होकर इधर उधर दौड़ने लगे। उस अशोक वाटिका में जो ऊंचे ऊंचे पत्थरों के बने हुए भवन थे वह सब उस बानर श्रेष्ठ ने तोड़ फोड़ डाले। सारी वाटिका उजड़ गई और अशोक वाटिका शोक वाटिका बन गई। जब सब वाटिका विध्वंस होगई तो पवन पुत्र हनुमान कूद कर सिंह द्वार के तोरन पर चढ़ गया और युद्ध के लिये राक्षसों की बाट

देखने लगा।

हनुमान और राक्षसों में युद्ध

वृक्षों के टूटने और भवनों के गिरने के घोर शब्द से वह राक्षसियां भी जाग उठीं जो रात भर जानकी के पहरे पर जागती हुई इस समय सो रही थीं। वह रावण के पास जाकर अशोक वनिका के विध्वंस होने का समाचार कहती हुई बोलीं, हे राजन्! अशोक वाटिका के अंदर बड़े बल और पराक्रम वाला एक वानर घुस आया है, जिसने जानकी से न जाने क्या बार्तालाप किया है। उस का रूप और आकार बडा भयंकर है। हे महाराज! वाटिका का उसने एक भी वृक्ष जड से उखाड़े बिना नहीं छोड़ा, सरोवर तोड़ दिये हैं, भवन गिरा दिए हैं और लताओं को तोड़ फोड़ डाला है। उस क्रूर रूप वाले वानर को शीघ्र दण्ड दीजिए जिसने जानकी से बात चीत की है और वाटिका का नाश किया है। यह समाचार सुन कर राक्षस राज रावण के नेत्रों से आगके अंगारे बर्सने लगे, धनुष के समान उसकी भवें तन गईं। उस बड़े तेजस्वी ने जलते हुए दीपकों से तेलकी बूंदों की तरह नेत्रों से क्रोध के अश्रुविंदु टपकाते हुए तुरंत अपने किंकरों को हनुमान के पकड़ने की आज्ञा दी। अपने महाराज की आज्ञा पाते ही यम किंकरों के समान वह राक्षस लोह मुद्गर पट्टिश और खण्डे हाथों में लिये अशोक वाटिका की ओर दौड़े।

द्वारके तोरण पर बैठे हुए महावीर हनुमानने जब इन राक्षसोंको देखा तो मेघके समान भयानक गर्जना करते हुए अपनी पूंछको फटकारा। तब वह सब किंकर हनुमान पर लोह मुद्गर बर्छे और पत्थरोंकी वर्षा करने लगे। इन शस्त्रोंकी चोटसे क्रुद्ध होकर हनुमानने फिर गर्जना की और पर्वत के समान उन राक्षसों पर गिर कर दंतों और नखों से उन को फाड़ना आरंभ किया। काले काले राक्षसों से घिरा हुआ वह पवन पुत्र लातों मुक्कों और धौलों से बड़े २ योद्धाओं को भूमि पर पटकने लगा। तब उस महापराक्रमी कपि की मारको न सहन करते हुए किंकर लोग प्राणों का मोह छोड कर हनुमान पर टूट पड़े। हनुमान इस समय क्रोध से हुंकार मार कर तोरण पर चढ़ गये। और एक बड़ा सा लोह का दंड निकाल कर राक्षसों पर टूट पड़े। राक्षसों के मध्य में लोह दण्ड को घुमाता हुआ हनुमान उस समय साक्षात् यमके समान दिखाई देने लगा। वायु वेगसे प्रहार करते हुए उसने सहस्रों किंकरोंको क्षण मात्र में मार डाला और फिर तोरण पर जाकर बैठ गया। तब यम के समान हनुमान के हाथ से बचे हुए कुछ किंकर भाग गये और शीघ्र ही जाकर लंकापति रावण को यह भयानक समाचार सुनाते भये।

जंबुमाली तथा अक्षकुमार आदि का बध

किंकरों का मरना सुन कर रावण ने प्रहस्त के

पुत्र जम्बु माली को कहा, हे शत्रुओं को जीतने वाले तू धनुष धारियों में श्रेष्ठ है तेरे बल को मैं जानता हूं, सो तू ही उस कपीश को मारने योग्य है। तब रावण की आज्ञा पाकर बड़ी दाढ़ वाला जंबुमाली अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो गधों के रथ पर सवार हो कर बड़ी भयानक ध्वनि वाले विजय शंख को पूर हनुमानको मारने के लिए चला। युद्ध के लिए तय्यार बैठे हुए पवन पुत्र को तोरण पर स्थित देख कर जंबुमाली ने उसे अपने तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला। उन बाणों की चोट खा कर पवनपुत्र का मुख ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ जैसे शरत्काल में कमल फूल पर सूर्य्य की किरणें फैल रही हों। उस समय रक्त मुख वाले हनुमान ने पास ही पड़ी हुई एक बड़ी शिला को उठा कर उस राक्षस पर फेंका परन्तु जंबु-माली ने फुर्ती से दस बाणों से उस शिला को चूर चूर कर डाला। उस भारी शिला के व्यर्थ जाने पर महा-बलि हनुमान ने किलकिला कर एक वृक्ष को उखाड़ा और उसे राक्षसों में घुमाने लगा, जिस से बहुत से राक्षस मर कर गिर पड़े। तब अति क्रुद्ध हो जंबुमाली ने चार बाणों से उस वृक्ष को काट डाला और दस बाणों से हनुमान को घायल कर दिया। इन बाणों के प्रहार से हनुमान के शरीर से रक्त की अनेक धाराएँ बह निकलीं। तब तो उस कपीन्द्र के क्रोध की कोई थाह न रही, उस ने लोहे के मूशल को एक राक्षस

से छीन कर जंबुमाली की छाती का लक्ष्य कर के फेंका। उस मूशल के लगते ही जंबुमाली का रथ चूर चूर हो गया, घोड़े मर गए ओर वह स्वयं भी प्राणहीन हो कर पृथिवी पर गिर पड़ा।

जंबुमालीके मारेजाने का समाचार जब रावण नें सुना तो उसने अपने सातों मन्त्री-पुत्रों और राक्षसी सेनाके पांच बड़े २ नायकोंको आज्ञा दी। लंकेश रावण की आज्ञा पाकर सातों मन्त्री-पुत्र दुर्गसे बाहर निकले, उनके साथ भीषण गर्जना करती हुई बड़ी सेना भी चली। अग्नि के समान तपे हुए मुखों वाले मंत्रीपुत्रों को देख कर हनुमान ने तोरन को बड़े बल से झंझोडा और बिजली गिरने के समान भयंकर नाद किया। इन्द्र कुलिश के सदृश उस कठोर शब्द को सुन कर राक्षसों की सेना कांप उठी उन में से अनेक तो मारे डर के भूमि पर गिर पड़े। अनेकों के कानों के पर्दे फट गये और अनेक इधर उधर भागने लगे। अपनी सेना को भागते देख कर वह मंत्री पुत्र भी मेघ के समान गर्जना करते हुए हनुमान पर बाणों की वृष्टि करने लगे। तब बाणों के आघात से बचने के लिए पवनपुत्र हनुमान आकाश में उड़ कर जल्दी जल्दी पैंतरे बदलने लगा। इस प्रकार वह रामका दूत कुछ कालतक वायु मण्डल में क्रीडा करता रहा। इसके पश्चात् बड़ी गर्जना करता हुआ वह वज्रदेह शत्रु सेना पर टूट पड़ा और किसी को मुक्कों से किसी

को लातों से किसी को छाती से और किसी को नखों से विदीर्ण कर डाला। जब वह सातों मंत्रि पुत्र सेना सहित मारे गये तो सारी लंका पुरी में हाहाकार मच गया तब विरुपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष प्रघस और भासकर्ण यह पांचों नायक सर्प के समान डसने वाले बाणों से हनुमान को पीड़ित करने लगे।

दुर्धर्ष नामक राक्षस ने पांच बाण उसके मस्तक पर मारे। तब उन बाणों की चोट खा कर घोर गर्जना से दशों दिशाओं को प्रति ध्वनित करता हुआ पवन पुत्र आकाश में उड़ चला। तब दुर्धर्ष भी रथ सहित आकाश में उड़ा और तीक्ष्ण बाणों से उस कपीश को पीड़ित करने लगा। इस पर बहुत ऊंचे उड़ता हुआ हनुमान इन्द्र वज्र के समान वेग से उसके रथ पर गिरा। पवन पुत्र के गिरते ही वह आठ घोड़ों वाला रथ चूर चूर हो गया और दुर्धर्ष बड़े पर्वत के समान भूमि पर गिर कर मर गया। उस के अनंतर साखू के एक वृक्ष को उखाड कर उस पराक्रमी अंजनि सुत ने शेष चारों नायकों का वध कर डाला। मंत्री पुत्रों और नायकों के मरते ही सारी राक्षसी सेना भयानक चीत्कार करती हुई भागने लगी। अब अपनी सेनाको अकेले वानर के हाथों विध्वंस होते देख रावण का पुत्र अक्षकुमार स्वर्ण के हारों बाहु बंदों और कुण्डलों वाला गर्जता हुआ हनुमान पर टूट पड़ा। वह दोनों आकाश में विचरते हुए दो मेघों

के समान एक दूसरे से जुट गए, परन्तु क्षणमात्र में ही अतुल पराक्रम वाले पर्वताकार हनुमान ने उस राक्षस को ऐसे पृथिवी पर से उठा लिया जैसे गरुड सर्प को और आकाश में घुमा कर ऐसे बल से पटका कि उस की हड्डियां टूट गईं, कमर और छाती पिस गई, जोड़ सब टूट फूट गए और रावण की आंखों का तारा वह राक्षस कुमार यमलोक को चला गया।

मेघनाद का हनुमान को बांधना।

अक्षयकुमार के वध का समाचार सुन कर रावण के शोक का पारावार न रहा उस समय क्रोध से उस के नेत्र अग्नि बर्साने लगे और शीघ्र हनुमान के वध की आज्ञा देता हुआ अपने प्रतापी पुत्र मेघनाद से बोला, हे इन्द्रजित! तुमने बडी तपस्या द्वारा ब्रह्मा से अस्त्रों को प्राप्त किया है, अपने भुजबल से युद्ध में देवताओं और दैत्यों को परास्त किया है। युद्ध में तुम्हारे पराक्रम के सामने साक्षात् इन्द्र भी ठहर नहीं सका, सो हे पुत्र! तुम अपने बल के योग्य काम करो और उस पवन पुत्र को मृत्यु दण्ड दो जिस ने तेरे भाई अक्षकुमार को मारा है और सेना सहित बड़े २ सर्दारों को पृथिवी पर गिरा दिया है।

अपने पिताकी आज्ञा पाकर तेजस्वी मेघनाद युद्ध के लिये अशोक वनिका की ओर चला। कमल के

समान विशाल लोचनों वाला वह श्रीमान् मेघ के समान नाद करता हुआ, पर्वमें समुद्र की नाईं गर्जना करता दुर्ग से बाहर निकला। उधर तोरण पर बैठे हुए युद्ध के लिये उत्साह वाले पवन पुत्र हनुमान ने जब रथमें सवार मेघनाद को आते देखा तो उसने घोर गर्जना करके पर्वत सहित सारी लंकाको कंपायमान कर दिया। उसकी गर्जसे क्रुद्ध हुआ हुआ इन्द्रजित स्वर्ण पुंख और बज्र के समान वेग वाले बाणों की वृष्टि करने लगा। उस भयानक राक्षसकी बाण वृष्टिसे बचने के लिए पवन सुत बज्राङ्गबलि आकाश में उड़ा और बाणों के लक्ष्य से अपनी रक्षा करता हुआ पैंतरे बदल २ कर आकाश में घूमने लगा। अब अपने बाणों को निष्फल जाते देखकर मेघनाथ बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचने लगा, कि यह कपि वायु मंडल में उड़ता हुआ मेरे अमोघ अस्त्रों को व्यर्थ बना रहा है, सो अब मै अस्त्रों को अकारथ नहीं गंवाऊंगा। ऐसा निश्चय करके इन्द्रजित मेघनाथ ने ब्रह्म अस्त्र से उस कपि को बांध लिया और बल से खैंचता हुआ उसे रावण के निकट लाकर खड़ा कर दिया। ब्रह्म अस्त्र से बंधा हुआ पवन पुत्र हनुमान रूप यौवन और ऐश्वर्य से गर्वित लंकापति रावण को देखकर मन ही मन उस की श्लाघा करता भया, कि अहो! कैसा इसका रूप है, कितनी सुन्दरता है, मुख पर कैसा उत्साह धैर्य्य और तेज बर्स

रहा है । हा ! कदाचित् रूप के समान इसके आचार भी शुद्ध होते तो यह तीनों लोकों का राजा होने योग्य है, परंतु इसके दुष्कर्म्मों ने, दुराचार ने, और पाप वृत्तियों ने उसे देवताओं की दृष्टि से गिरा दिया है ।

तब पिंगल नेत्रों वाले, चौड़ी छाती वाले, सिंह के समान ऊंचे स्कंधों वाले, गज शुण्ड के समान लंबी भुजाओं वाले भीमाकार हनुमान को सन्मुख खड़े देख कर रावण के नेत्र क्रोध से जलने लगे और वह भ्रुकुटि को टेढ़ा करके अपने महा मंत्री को आज्ञा देता भया, कि हे मंत्री प्रवर प्रहस्त ! इस क्षुद्र वानर से पूछो, कि कि कहां से आया है, किस ने उसे भेजा है, सीता के साथ वार्तालाप करने में इसका क्या प्रयोजन है, नंदन कानन से भी अधिक रमणीक, प्रजाजनों के सुख के लिये बनाई हुई अशोक वाटिका को किस लिये इस ने तोड़ फोड़ डाला है, और मेरी आज्ञा से भेजे हुए सैनिक राक्षसों को मारने में इसका क्या प्रयोजन है ?

तब रावण से आज्ञा दिया हुआ प्रहस्त पवन पुत्र हनुमान के प्रति बोला, कि हे वानर ! यद्यपि तूने बड़ी ढिठाई की है और तू मृत्यु दण्ड पाने के योग्य है, परंतु यदि तू सत्य सत्य सब बात कह दे और कोई भेद न छिपावे तो तुझे क्षमा कर दिया जावेगा, हे परदेसी ! मैं तुझे अभय दान देता हूं, बता किस प्रयोजन से तूने इतना बडा उपद्रव किया है ?

मंत्री के ऐसा कहने पर वह विशाल हृदय वाला कपीश निर्भय होकर रावण से बोला, हे दशकन्धर! मैं बालि के भाई किष्किन्धा के राजा महापराक्रमी सुग्रीव का दूत हूं और उसी की आज्ञा से तेरे पास भेजा गया हूं। हे लंकेश! हमारे महाराज ने तेरा कुशल पूछा है, और कहा है, कि तुम नीतिज्ञ हो, धर्म शास्त्र के जानने वाले हो चारों वेदों के पंडित हो, बड़ी तपस्या से तुम ने यह ऐश्वर्य्य और अखंड राज्य को प्राप्त किया है, हे महा बाहो! इतने बड़े विद्वान होकर जो तुम ने पर स्त्री को रोक रखा है, सो अनुचित है, संसार में निंदनीय है, और बड़े कलंक का कारण है। हे महा प्राज्ञ! धर्म से विरुद्ध, राज को जड़ मूल से उखाड़ने वाले इस महा नीच कुकर्म में फंसकर तुम ने मृत्यु का आवाहन किया है। हे रावण! लक्ष्मण के धनुष से छूटे हुए, सर्प के समान डसने वाले बाणों को सहन करने वाला न कोई देवता है न दैत्य, क्या फिर तू उनके सामने ठहरेगा। हे महाराज! सीता की अवज्ञा करके इन्द्र का पुत्र जयंत तीनों लोकों में दौड़ता फिरा, परंतु किसी ने उस को शरण न दी इस बात को स्मरण करके तू दांतों में तृण रख के राम से क्षमा मांग जो बड़ा दयालु है। हे राजन! भूत भविष्यत और वर्तमान तीनों काल में सुख देने वाले मेरे वचनों को मानों और चक्रवर्ती राजा दशरथ की स्नुषा को वापस

करो अन्यथा खर दूषण और बालि के समान अपने आप को मरा हुआ ही समझो।

अर्थ और नीति से युक्त हनुमान के इन वचनों को सुनकर रावण क्रोध से कांपता हुआ बोला, हे वानर तेरे जैसे तुच्छ बुद्धि मूर्ख और शठ वानर को दूत बनाकर सुग्रीव ने अपनी अज्ञानता का प्रमाण दिया है। रे दुर्जन! तू और तेरा राजा सुग्रीव मेरे बल को नहीं जानते। देवताओं दानवों और मनुष्यों को जीत कर मैंने अपनी हथेली पर सारी पृथिवी को उठाया है, जिस ने मेरा अपमान किया वही इस यम लोक में भेज दिया गया है, सो पहले तेरा बध करके सुग्रीव सहित राम और लक्ष्मण को यम लोक में भेजूंगा। इतना कहकर मेघ के समान गर्जते हुए रावण ने मंत्रियों को आज्ञा दी कि हे वीर योद्धाओ! अशोक वाटिका के विध्वंस करने वाले इस दुर्जन के टुकड़े टुकड़े कर डालो।

तब रावण का भाई महामंत्री विभीषण हाथ जोड कर बोला, हे लंकेश! यह वानर अपने आप को दूत बतला चुका है, सो इसका बध करना नीति और धर्म के विरुद्ध है, इस के मारने से संसार में आप की निंदा होगी, तीनों लोक में आपका अपयश होगा। हे राजन्! दूत दूसरों से भेजा हुआ दूसरों से कहे हुए संदेश को सुनाता है, सो वह बध के योग्य नहीं है, जो

शब्द वह कहता है, वह उसके अपने नहीं हुआ करते। विभीषण की इस सम्मति से रावण का क्रोध शान्त हुआ और फिर कुछ सोच कर बोला, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! तू ने सत्य कहा है, दूत का बध करना उचित नहीं है, परन्तु ऐसे ढीठ दूत को विना दण्ड दिये छोड़ना भी अनुचित है, सो मै आज्ञा देता हूं, कि इस वानर की पूछ को रूई और तेल लगा शीघ्र जला डालो और यह जली हुई पूंछ के साथ अपने राजा के पास जाए। वहां इस पूंछ हीन को शेष वानर देख देख कर हंसेगे और यह भी जब तक जीता रहेगा अपने इस कर्म्म पर पश्चाताप करेगा और रोता रहेगा राजा की आज्ञा पाते ही क्रोध से पागल हुए हुए क्रूर राक्षसों ने तत्काल पुराने वस्त्रों और रूई से उस कपि की पूंछ को लपेट दिया, और फिर तेल से भिगो कर उस को अग्नि लगा दी। अपनी पूंछ को जलते हुए देख कर महावीर हनुमान रोष क्रोध और अमर्ष से भर गया और उस ने उस जलती हुई पूंछ से उन राक्षसों को जिन्हों ने रूई और वस्त्रों से उसे लपेटा था और जो इस समय उसे देख देख कर हंस रहे थे, मार मार कर पृथिवी पर गिरा दिया, परंतु बहुत से राक्षसों ने उसे फिर घेर लिया और अनेक प्रकार से उसका अपमान करते हुए लंका के बाजारों में घुमाने लगे। अब हनुमान जलती हुई पूंछ से बाज़ारों में चल रहे थे, अनेक साथ साथ सैंकड़ों

राक्षस कंधों पर मूसल रखे, ढोल पीटते, उसके अपराध की घोषणा करते चले जाते थे। लंका के सब बाजार उस वानर को देखने के लिए राक्षसों से खचाखच भरे हुए थे, घरों की छतें खिड़कियां और छज्जे उन राक्षसियों से पटी हुई थीं जो इस कौतुक को देखने के लिए खड़ी थीं। राक्षसों से घिरा हुआ वह सुग्रीव का दूत जहां जाता वहां उसका पत्थरों और ढेलों से अपमान किया जाता। तब उस घोर अपमान को न सहन करता हुआ हनुमान क्रोध से जल उठा और मन ही मन सोचने लगा कि मेरे जैसे पराक्रमी पुरुषों को इस प्रकार अपमानित होकर बाजारों में घूमना शोभा नहीं देता, सो इन अधम राक्षसों से अवश्य बदला लेना चाहिए। ऐसा विचार करके महावीर हनुमान ने एक ही झटके से अपने बंधनों को तोड़ डाला और बिजली की नांई चनक कर नगर के ऊंचे फाटक पर चढ गया उस फाटक के तोरण में से उस ने लोहे का एक बड़ा सा परिघ खैंचा और इन्द्र वज्र के समान राक्षसों पर टूट पड़ा और क्षण मात्र में सब का संहार कर डाला।

लंका दहन।

राक्षसों को मारकर अब महावीर हनुमान सोचने लगा, कि अशोक वाटिका को उजाड़ डाला, बहुत सी सेना का नाश किया, बड़े बड़े राक्षसों को यम लोक में

भेजा, अब केवल लंका का दुर्ग विध्वस्त करना शेष है, इस दुर्ग के तोड़ने से मेरा कार्य्य पूरा हो जाएगा। ऐसा सोचकर वह पवन पुत्र मेघ के समान घोर गर्जना करके बिजली के सदृश जलती हुई पूंछ के साथ लंका की अटारियों पर कूदने लगा। अधम राक्षसों से प्रतिकार लेने के लिये उस वीर वानर ने सैंकड़ों चित्र विचित्र अटारियों में आग लगा दी। पवन के तुल्य वेग वाला पवन सुत घरों को आग लगाता हुआ प्रहस्त के भवन पर चढ़ गया और वहां अग्नि देकर महापार्श्व के प्रासाद पर कूद गया, उसे आग लगाकर वज्रदंष्ट्र की अटारी को भस्मसात करता भया। फिर शुक सारण इन्द्रजित जंबु माली, शोणिताक्ष, कुम्भकरण, नरान्तक यज्ञ शत्रु ब्रह्म शत्रु आदिक मुख्य मुख्य राक्षसों के घरों को फूंक कर आकाश में विचरने लगा, इस समय बड़े मद से मतवाला हुआ हुआ वह कपि घोर गर्जना करता भया, बड़े बड़े गगन चुंबी महलों को जला चुकने के पश्चात् वह रावण के प्रासाद पर कूद गया और उसके मुख्य भवन में आग देकर फिर प्रलय काल के मेघ के समान गर्जना करता भया। अब तो लंका की बड़ी दुर्दशा हुई। बायु के झोंको से प्रचण्ड हुआ २ अग्नि भभक उठा और देखते२ सारा नगर आग उगलने लगा। उस समय मोतियों से जड़े हुए सुवर्ण के झरोखे जल रहे थे। रत्नों और मणियों से खचे हुए गगन भेदी प्रासाद

अग्निमय हो रहे थे। ऊंची ऊंची अटारियां बड़े धमाकों से टूट टूट कर गिर रही थीं। अपने अपने गृहों की रक्षा के लिये सहस्रों राक्षस हाहाकार करते हुए इधर उधर दौड़ रहे थे। चारों ओर से यही पुकार सुन पड़ती थी कि हा! यह वानर नहीं है, साक्षात् अग्नि देवता ही वानर के रूप में आ गया है। बालकों को गोद में लिये हुए स्त्रियां अटारियों पर से नीचे गिर रही थीं जैसे मेघों में से बिजलियां निकल कर पृथिवी पर आ गिरें। मोती मूंगे चांदी सोना पिघल कर घरों की दीवारों पर बह रहा था। आकाश प्रचण्ड अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था, लाल और स्याम रंग के धूएं में उड़ते हुए चिंगारे आकाश से गिर रहे थे। थोड़े ही समय में हनुमान का लगाया हुआ भयंकर अग्नि अपने ज्वाला मंडल का प्रसार करता हुआ प्रलय काल के अग्नि के समान लंका पर्वत के अग्र भाग पर पवन के सहयोग से भभक उठा और राक्षसों के शरीर से मज्जा रूप घृत का पान करके अपनी प्रचण्ड किरणों से भूमि आकाश पर्वत नदियों और सरोवरों को प्रकाशित करने लगा। जलता हुआ लंका का वह पर्वत उस समय दूर से फूला हुआ पलाश का बन देख पडता था। जब उस भयंकर अग्नि से धूएं के भभूके उठते थे तो ऐसा प्रतीत होता था। मानों नील कमल के रंग वाला मेघ छा गया है। उस

जलती हुई लंका में सहस्रों राक्षस जल गये, और वहां के निवासी हा तात ! हा माता हा बेटा ! पुकारते रो रहे थे। उस वेग वाले पवन पुत्र ने विभीषण के गृह को छोड़ कर सारी लंका को इस प्रकार दग्ध कर दिया जैसे महादेव ने त्रिपुर को दग्ध कर दिया था।

लंका को भस्म करके हनुमान फिर अशोक वाटिका में आया और उसी शीशम के वृक्ष के नीचे जानकी को देखकर प्रणाम करके बोला, हे माता ! मैं तुम को कुशल से देखकर प्रसन्न हुआ, अब तुम धीरज धरो श्रीरामचन्द्र जी शीघ्र ही किष्किन्धा पति सुग्रीव सहित कोटानुकोटि वानरों को लेकर यहां आवेंगे ! और सेना सहित रावण को मारकर तुम्हें अयोध्या ले जाएंगे। हे देवी ! तुम यहां शोक रहित होकर उनके आने तक प्रतीक्षा करो।

इस प्रकार सीता को धीरज देकर हनुमान ने उस के चरणों को स्पर्श किया और फिर श्री रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये वहां से विदा होकर जलती हुई पूंछ को समुद्र जल से शान्त करता भया।

हनुमान का समुद्र के उस पार जाना।

लंका को भस्म करके बड़े तेज वाला हनुमान मेघ के समान गर्जता हुआ आकाश मे उडा और धनुष से छूटे हुए बाण के समान वेग से समुद्र को फांद कर वहां पहुंचा जहां सब वानर और ऋक्ष उस की बाट देख रहे

थे । पवन पुत्र को अति निकट आकाश में गर्जते देख कर जांबवन्त ने प्रसन्न होकर सब वानरों को कहा, कि हे वीर कपियो ! हनुमान के इस प्रकार गर्जने से जान पडता है, कि वह अवश्य ही कृत कार्य्य होकर आया है, सो तुम शीघ्र उस की पूजा के लिए तट पर खड़े हो जाओ । तब वह सब समुद्र तीर पर खड़े होकर फलों फूलों और जयकारों से उस तेजस्वी वीर का स्वागत करते भये । हनुमान ने समुद्र तट पर उतर कर वृद्ध जांबवान और अंगद कुमार को प्रणाम किया और लंका का सब समाचार तथा सीता की भेंट का वृतान्त सुनाकर सब को प्रसन्न किया ।

सीता देखी है, इस वचन के सुनते ही वह सब वानर और भालु उछलने लगे, कूदने लगे, और श्री रामचन्द्र जी की जय के जयकारों से आकाश को गुंजाने लगे, इस के पश्चात् सब वानर हनुमान को आगे करके लंका पति रावण से प्रतिकार लेने का निश्चय रख सुग्रीव के निवास स्थान प्रवस्रण पर्वत की ओर चले । कूदते और गर्व से गर्जते हुए वह वानर मधुबन में पहुंचे जो सुग्रीव के मामा दधि मुख से रक्षित और पालित उद्यान था । मार्ग की थकान दूर करने के लिये अंगद ने वहां पड़ाव किया और सब वानरों तथा ऋक्षों को मधूक फलों के खाने की आज्ञा दी जो अत्यन्त मीठे और स्वादिष्ठ थे । उन रसीले फलों को खाकर वह

सब मस्त होगए और बडे हर्ष से नाचते कूदते प्रस्रवण पर्वत पर जाकर सुग्रीव सहित श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण का दर्शन करते भये। तब बड़े आदर के साथ दोनों हाथ जोड़कर महावीर हनुमान सीता का समाचार कहता हुआ बोला, कि हे नाथ ! सौ योजन चौड़े विशाल समुद्र को पार करके मैंने लंका में सीता के दर्शन किये। हे नाथ ! राक्षसियों के पहरे में बैठी हुई जनक नंदिनी की विपत्ति में क्या वर्णन करूं। क्रूर और कठोर हृदय वाली राक्षसियां रात दिन उसका अपमान करतीं और झिड़कियां देती हैं, यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। भूमि पर लेटी हुई, दीन मुख वाली वह सती आप के आधार पर जीती है। उसके वस्त्र मलिन हो रहे हैं, मुख फीका पड़ गया है, रोते रोते नेत्र सूज गये हैं वेणी खुली है, और रावण से अपने सतीत्व को बचाने के लिये सदा भय भीत रहती है। इतना कहकर हनुमान ने सीता से दी हुई वह दिव्य मणि जो अपने तेज से मानों जल रही थी, श्री रामचन्द्र को दी और फिर यूं वर्णन करने लगा, कि प्रभो ! मैंने उसे आप का संदेश देकर अनेक प्रकार से धीरज बंधाया और यहां का सब समाचार सुना दिया ! हनुमान के मुख से सीता का समाचार पाकर श्री रामचन्द्र जी अति प्रसन्न हुए और फिर उसे कंठ से लगाकर बोले हे अंजिनि नंदन ! सीता ने मेरे लिये क्या संदेश भेजा है सो तू विस्तार से सुना

श्री रामचन्द्र जी के ऐसा पूछने पर वह बोला, हे राघव! वह दिन रात आप के नाम को जपा करती है, आप में उसकी अनन्य भक्ति है, हे महाबाहो ! सीता ने कहा है, कि, हे राघव ! दो महीने रावण ने मुझे और दिये हैं, सो इतने दिनों के अंदर यदि आप मुझे इस दुष्ट के हाथों से न छुड़ा सके तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगी, आप तीनों लोकों के जीतने वाले हैं, आप के बाणों के सामने यह तुच्छ राक्षस तो क्या, इन्द्रादि देवता भी नहीं ठहर सकते, सो शीघ्र आकर दासी की रक्षा कीजिये ।

हनुमान के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी उस दिव्य मणि को देखकर विलाप करने लगे, उन के साथ लक्ष्मण भी रुदन करता भया । उस मणि को हृदय से लगाकर नेत्रों से आंसुओं की धारा छोड़ते हुए श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव से बोले, कि हे किष्किन्धा नरेश ! जिस प्रकार कपिला गौ बछड़े के देखने से दूध उतारती है, इसी प्रकार इस दिव्य मणि को देखकर मेरा हृदय पिघल गया है । हे सुग्रीव ! यह मणि विवाह के समय मेरे श्वशुर राजा जनक ने जानकी को दी थी, और इसे वह अपनी अलकों में बांधती थी, हा शोक ! आज मैं इस चन्द्र मुखी को नहीं देख रहा, जिस के मुख पर उस मणि की आभा पड़ती थी । हे सुग्रीव ! जानकी यदि एक मास तक जीती रही तो मैं उसे बचा लूंगा यह तू निश्चय जान ! हे वीर ! मैं उस मृग लोचनी के बिना

जीवित नहीं रहूंगा, सो शीघ्र मुझे वहां ले चल जहां मेरी प्राण प्यारी रो रही है, उस की ऐसी दुर्दशा सुनकर एक क्षण भी मैं यहां नहीं ठहर सकता, हा! वह भीरु, पतली कमर वाली चन्द्र मुखी जिस ने कभी दुख नहीं देखा, किस प्रकार उन क्रूर निठुर कराल राक्षसियों में रहती है। हे सुग्रीव! शीघ्र अपनी सेना को आज्ञा दो, अब देवता लोग मेरे बाणों से रावण को मरता देखेंगे, राक्षस लोग लंका के दुर्ग को धूलि में मिलता देखें, और जानकी मेरे बाणों से परिवार सहित दुष्ट रावण को यमलोक को जाता देखेगी।

इति श्री वाल्मीकि रामायणे
कविराज जयगोपालकृत
सुन्दर- काण्ड समाप्त

अथ लङ्का काण्ड।

पवन सुत हनुमान के मुख से सीता का सब समाचार सुनकर श्री रामचन्द्र जी अति प्रसन्न हुए और उस की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए बोले, निस्सन्देह हनुमान ने यह काम किया है, जिसे करने की इस पृथिवी पर किसी को भी सामर्थ्य न थी। गरुड़ वायु और हनुमान इन तीनों को छोड़ कर और किस की शक्ति है कि अपार समुद्र को पार कर सके। देवता, राक्षस यक्ष गंधर्व और दैत्य जिस की रक्षा करते हैं ऐसी दुर्गम लंका पुरी में अपने बल से प्रवेश करके जीते जी निकल आना हनुमान ही का काम है, इस महावीर ने अपने बल और पराक्रम से सुग्रीव की भारी सेवा की है। जो भृत्य किसी बड़े काम पर नियुक्त किया गया है, और वह उस काम को प्रेम और उत्साह से पूरा करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है, और यदि वह भृत्य उस कार्य्य को प्रेम से पूरा नहीं करता, तो वह मध्यम पुरुष है, और यदि वह आज्ञा दिया हुआ भी नहीं करता तो बड़ा अधम पुरुष है, सो हनुमान ने इस दुष्कर कार्य्य को करके अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण दिया है। हनुमान ने सीता को देखा है, इस समाचार को सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानों मैं अपनी इन आंखों से सीता को देख रहा हूं।

परन्तु शोक ! मैं इस समय ऐसी दीन अवस्था में हूं, कि इतने बड़े उपकार करने वाले के लिए भी कुछ दे नहीं सकता, यह बात मेरे हृदय में बहुत चुभती है, परन्तु क्या करूं दुर्दिनों के सामने मनुष्य की कुछ नहीं चलती । हां, इस समय प्रेम से इस पवन पुत्र को हृदय से लगाता हूं और इस प्रकार अपना सर्वस्व इस महात्मा को अर्पण करता हूं । यह कहकर श्री रामचन्द्र जी ने नेत्रों में हर्ष के आंसु भरकर पवन पुत्र हनुमान को गले से लगाया । उस के पश्चात् दशरथ सुत राघव सुग्रीव के प्रति बोले, कि वानर राज ! सीता का तो पता लग गया, और उसका दिया हुआ प्रीति चिन्ह भी पालिया परन्तु इस अगाध समुद्र को देख २ कर मेरा हृदय डिगा जाता है जो अपनी विशाल छाती पर पर्वतों के बराबर ऊंची तरंगों को उठाता हुआ भयभीत कर रहा है । हे सुग्रीव ! इतने बड़े समुद्र को किस प्रकार वानरी सेना पार करेगी, किस प्रकार इस लंका को घेर कर हम रावण का नाश करेंगे, जब कि गर्जता हुआ समुद्र मार्ग में बाधक है । तब कपिराज सुग्रीव शोक से पीडित श्री रामचन्द्र जी को बोला, हे राघव ! जब सीता का पता मिल गया, और शत्रु का स्थान मालूम हो गया, तो फिर शोक करना व्यर्थ है । हे कौशल किशोर ! मेरी यह वानर सेना अग्नि में कूद पड़ने को तैय्यार है इनके शोक बल और पराक्रम के सन्मुख इस तुच्छ सागर की क्या

गिनती है, यह वीर इस समुद्र पर पुल बांधेंगे और इसे पांओं से दबाकर लंका का विध्वंस करेंगे। सो आप शोक और निरुत्साह को छोड़ कर क्रोध का आश्रय लीजिये हे राघव! उद्योग से सब कार्य्य सिद्ध होते हैं, जो क्षत्रिय उद्योग नहीं करते, वह कायरों के समान खड़े २ देखते हैं और अन्त में गिर जाते हैं। हे राम! अपने दबे हुए क्रोध को जगाइए, प्रचण्ड अग्नि से ही संसार डरता है, सुग्रीव के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी संतुष्ट हो गए और फिर हनुमान से बोले, कि हे पवन पुत्र! पुल बांध कर इस अपार सागर को पार किया जाए, सुग्रीव की यह सम्मति अवश्य ही सराहनीय है, परंतु तुम लंका की सेना, दुर्ग, राक्षसों की युद्ध विधि इन सब बातों को मेरे सामने वर्णन करो। हे पवन पुत्र! तुम बड़े चतुर हो और लंका को तुम ने देखा है, सो तुम शत्रुओं की पूरी पूरी शक्ति वर्णन करो।

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर हनुमान लंका का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हुआ बोला, हे जानकी नाथ! लंका भोग विलास और ऐश्वर्य्य से भरी हुई है। उस राक्षस पुरी में असंख्य मतवाले हाथी झूमते हैं, रथों और घोड़ों का कोई अंत नहीं है। बड़े बड़े शूरवीर योद्धा राक्षस उस पुरी की रक्षा में सदा सावधान रहते हैं! पर्वतों के समान लंका के चार ऊंचे ऊंचे द्वार हैं, और प्रत्येक द्वार पर ऐसी २

कलें रखी हुई हैं, कि लाखों की संख्या में एकट्ठे होकर आक्रमण करने वाले शत्रु भी उन कलों द्वारा नगरी के बाहर ही रोके जा सकते हैं। प्रत्येक द्वार के ऊपर बड़ी २ शतघ्नी (तोपें) जमी हुई हैं जो विकाल मुखोंसे अग्नि उगलती हैं और ज्वालामय गोलों से क्षण मात्र में शत्रु की समुद्र समान बड़ी सेना को जलाकर राख कर डालती हैं हे नाथ! लंका चारों ओर से स्वर्ण के कोट से घिरी हुई है और प्राकार के नीचे चारों ओर खाइयां हैं जो सदा अगाध जल से भरी रहती हैं, और नक्र मकर आदि हिंसक जल जीवों से व्याप्त हैं। हे राघव! प्राकार के ऊपर थोड़ी थोड़ी दूरी पर बुर्ज बंधे हैं जिन पर ऐसी कलाएं रखी हैं कि शत्रु के चढ़ आने पर वह कलाएं सैनिकों को खाई में गिरा देती हैं। उस पुरी के पूर्व द्वार पर दस सहस्र राक्षस सदा शूल और खंडे लिये द्वार की रक्षा करते हैं। दक्षिण द्वार पर एक लाख योद्धा सदैव युद्ध के लिये खड़े रहते हैं इसी प्रकार पश्चिम और उत्तर के द्वारों पर अगणित सेनाएं खड़ी रहती हैं, परन्तु इतने बडे प्रबंध के होते हुए भी मैंने आप के बल से हे नाथ! लंका के दुर्गों को भस्म कर दिया है मोर्चों को तोड़ डाला है और बड़े २ राक्षस पतियों को यम के घर भेज दिया है, अब तो केवल सेतु बंधने की देर है पुल के बंध जाने से हे प्रभो! थोड़े ही काल में आप राक्षसों को मरते प्राकारों के टूटते हाथियों

को भागते और रथों को चूर चूर होते देखेंगे ।

तेजस्वी हनुमान के मुख से लंका का सब समाचार सुनकर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे पवन पुत्र ! जिस लंका का तूने वर्णन किया है, उस को मैं जल्दी विध्वस्त करूंगा, यह मैं प्रतिज्ञा करता हूं । हे महावीर! मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है, अब तू थोड़े ही दिनों में सेना सहित रावण को मरा हुआ देखेगा । इसके पश्चात् सीता के लिए अधीर हुए हुए दशरथ नंदन सुग्रीव के प्रति बोले हे वानर राज ! इसी समय वानरों को चलने की आज्ञा दो, अब वह दुष्ट बुद्धि रावण जीवित बचकर नहीं जा सकता । मेरी यात्रा का समाचार सुनकर निस्संदेह जनक नंदिनी धीरज पकड़ेगी ।

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर सुग्रीव ने मुख्य मुख्य वानरों और वृक्षों को कहा, कि हे योद्धाओ ! अब यात्रा का मुहूर्त आ गया है, सो रावण को मारने के लिए प्रस्थान करो । तब सुग्रीव की आज्ञा पाकर लाखों वानर पर्वतों की गुफ़ाओं से गर्जते हुए बाहर निकलने लगे । क्षण मात्र में वह पर्वत जो पहले निर्जन प्रदेश दिखाई देता था, एक विशाल सैनिक छावनी के रूप में बदल गया । लाखों और करोड़ों वानरों के दलों के दल श्री रामचन्द्र जी को घेर कर प्रस्थान करते भये । उन के साथ २ लक्ष्मण सहित सुग्रीव असंख्य वानरों की समुद्र समान विराट वहिनी को लेकर चला । इस समय वह

वानर उछलते कूदते, गंभीर गर्जना करते चलने लगे। मार्ग में आये हुए मधु वनों और दूसरे पर्वतों के फलों को खाती और वृक्षों को उखाड़ती यह विराट वानर सेना पृथिवी को कम्पायमान करती समुद्र की ओर बढ़ी चली जा रही थी। श्री रामचन्द्र जी की जय और दुष्ट रावण की क्षय " की घोषणाओं से दशो दिशाओं को घोषित करते यह कोटानुकोटि वानर एक दूसरे को गिराते और बड़े शब्द से आकाश को प्रति ध्वनित करते चले जा रहे थे। उस सेना में दो वानरों की पीठ पर चढ़े हुए दोनों भाई ऐसी शोभा पाते थे जैसे राहु और केतु दो ग्रहों से स्पर्श किये गये चन्द्रमा और सूर्य्य शोभा पाते हैं, उस समय उन वानरों के चलने से ऐसी धूलि उड़ी कि उससे दशों दिशाओं में अंधकार सा छा गया। पर्वतों बनों और मैदानों को पार करती, जय घोषणाओं से पर्वतों को शब्दायमान करती वह भयंकर वानर वाहिनी ऐसी शोभा देती थी जैसे सावन मास में गगन मंडल में बादलों की घटाएं चलती हुई शोभा देती हैं। जब यह बड़ी सेनाएं नदियों और नालों को पार करती थी तो उन के प्रवाह उल्टे बहने लगते थे। निर्मल नीर वाली झीलों, हरे२ वृक्षों वाले सुहावने पर्वतों, पटपटे मैदानों और पुष्पों व फलों से लदे हुए जंगलों में जिधर आंख उठाओ वानर ही वानर देख पड़ते थे। उमंगों से भरे हुए फलों को खाते, वृक्षों को तोड़ते मधु

के छत्तों को तोड़ २ कर मधुपान करते, दौड़ते उछलते कूदते फांदते यह वानर अपने यौवन और पराक्रम को दर्साते चले जाते थे। वह न कहीं विश्राम करते, न बैठते न सोते थे, केवल रावण को मारने और लंका को उजाड़ने के विचार को मन में लिये हुए दिन रात चले जाते थे। इस प्रकार चलते चलते रमणीक सह्य पर्वत को पार करके कमल लोचन श्रीरामचन्द्र जी महेन्द्र पर्वत पर पहुंचे। निर्मल जल वाले स्रोतों और रंग बिरंगे पुष्पों से अलंकृत उस पर्वत के शिखर पर चढ़कर दशरथ कुमार राघव ने कच्छ मच्छ और मकर नक्रों से भरे हुए समुद्र के दर्शन किये। तब वह उस महान् सह्याद्रि और मलय पर्वत को पार करके भयंकर गर्जना वाले समुद्र पर पहुंचे। समुद्र से उठी हुई जल तरगों से धोई हुई शिलओं वाले विशाल समुद्र के तट पर पहुंच कर श्रीरामचन्द्र जी सुग्रीव से बोले, हे वानरराज ! गह्वर वनों और ऊंचे ऊंचे पर्वतों का उल्लंघन करके हम समुद्र तट पर पहुंच गए हैं, यहां मैं फिर उसी बाधा को सामने देखता हूं कि किस उपाय से यह उत्ताल तरंगों वाला, नदियों का पति समुद्र पार किया जाएगा। सो यहां छावनी डालिये और वानरों को विश्राम देकर इसे पार करने की युक्ति सोचिए। हे कपीश ! अपने मुख्य मुख्य वानरों को आज्ञा देदें, कि कोई भी वानर अपनी सेना को छोड कर न जाए और गुप्त चरों को विशेष स्थानों पर लगा

कर उन्हें आज्ञा दें कि शत्रु के भयका पता देते रहें। हे वीर! अब हम लंकापति रावण से छिपे नहीं रह सकते, उसके गुप्त चर अवश्य ही अपने राजा को सब समाचार कहेंगे सो हम सबको सावधान रहना चाहिए।

श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से सुग्रीव और लक्ष्मण ने समुद्र के तट पर छावनी डालदी और वानरों को विश्राम करने की आज्ञा दी। सागर तीर पर पड़ी हुई वह वानरों की सेना ऐसी शोभा देने लगी मानों मधुके से कपिश रंग वाला दूसरा समुद्र है। बड़ा विशाल, अगाध, अपार और राक्षसों से सेवित वह समुद्र अपने फेन समूह से हंस रहा था, उत्ताल तरंगों से आकाश को बारं बार स्पर्श करता हुआ नृत्य कर रहा था, उसकी सहस्रों तरंगों में सहस्रों ही चन्द्रमा खेलते दिखाई देते थे। उस समय समुद्र आकाश के समान और आकाश समुद्र के समान देख पड़ता था। सागर का जल आकाश की छाया से कासनी रंग वाला और अकाश समुद्र की उठती हुई गगन स्पर्शी तरंगों से जल मय प्रतीत होता था। असंख्य छिटके हुए तारों से आकाश तो रत्नों से भरा हुआ समुद्र देख पड़ता था, और असंख्य प्रकाश मान तारों के प्रतिबिंब से समुद्र तारक मंडल से चमकता हुआ आकाश दिखाई देता था इस प्रकार समुद्र और आकाश दोनों ही रत्नों और तारों से भरे हुए समान रूप वाले दिखाई देते थे। जहां आकाश में मेघ

मालाएं चलती थीं, वहां समुद्र में तरंग मालाएं उछलती थीं। ऐसे विशाल समुद्र को देख कर वानरों की सेना ने श्रीरामचन्द्र जी की जय ध्वनि की और उसे पार करने के लिए तय्यार हुए।

रावण का मंत्रियों के साथ विचार करना

उधर मैथिली को मिल कर और लंका को दग्ध करके जब हनुमान सब राक्षसों के मानको तोड़ कर जीता जागता निकल गया तो राक्षसेन्द्र रावण मन ही मन में अति लज्जित हुआ। उसने अपने मुख्य मुख्य मंत्रियों और प्रधान राक्षसों को बुला कर कहा, कि हे बल बुद्धि में श्रेष्ठ मंत्रियो! तथा अधिकारियो! सुग्रीव के दूत ने जैसा भयानक कर्म किया है, वह तुम सब ने देख लिया। उसने जानकी को देख लिया, सारी लंका को दग्ध कर डाला, और बडे २ योद्धाओं का दर्प चूर्ण करके चला गया। अब राम सुग्रीव सहित कोटानुकोटि वानरों को साथ लेकर समुद्र पार खड़ा है। जिसको मैंने तुच्छ समझा था वह बड़ी चतुराई से वानर सेना के साथ मुझ पर चढ़ आया है। हे राक्षसो! देवताओं दानवों दैत्यों गंधर्वों और मनुष्यों को मैंने अपने भुज बल से जीता है, परन्तु वानरों के साथ युद्ध करना सहज काम नहीं, जिस रामने एक छोटा सा वानर भेजकर मेरी सारी नगरी को विध्वस्त कर डाला

है, वह न जाने और क्या कुछ कर डालेगा सो तुम सब विचार करके बतलाओ कि अब मुझे क्या करना चाहिये, देखो राम अब लंकामें आना ही चाहते हैं और वह इस समुद्र को पार करके अवश्य ही यहां पहुंच जाएंगे यह मुझे निश्चय है, सो अब ऐसा उपाय करो, कि राम और लक्ष्मण को मार कर सीताको मैं अपनी रानी बना सकूं।

रावण के ऐसा कहने पर मदसे मतवाले हुए२ राक्षस बोले हे राजन्! आप व्यर्थ ही भय करते हैं, तनिक अपने बलको विचारिए, आपने नागों को जीता है, कुवेर को जीत कर उसका पुष्पक विमान छीना है। मय नामक दानव ने भय से अपनी कन्या तुम्हें ब्याह दी है। कुम्भीनसी के पति मधु नामक दैत्यको आपने युद्ध में बांधा है। हे नाथ! तीनों लोकों में एक भी ऐसा देव दानव व मनुष्य नहीं है जिसे आपने न जीता हो, आपके पुत्र ने साक्षात् इन्द्र को जीत कर इन्द्रजित की उपाधि प्राप्त की है, वह अकेला ही सब वानरों का नाश कर डालेगा, जब देवता लोग भी आपके सामने न ठहर सके तो इन बेचारे वानरों की क्या बात है। हनुमान ने तो हमारे असावधान रहने से इतना उपद्रव किया था, अन्यथा उसकी क्या शक्ति है। अब आपकी आज्ञा की देर है, हम इस सारी पृथ्वी को वानर रहित कर डालेंगे, हममें से एक एक अकेला अकेला ही राक्षस वानरों का बीज नाश कर सकता है

और करेगा, फिर आपको क्या भय है। प्रभो! जिस समय लंकाकी तोपों के मुह खुलेंगे उस समय यह मुक्कों नखों और दांतों से लड़ने वाले वानर ऐसे जल जाएंगे जैसे दावानल अग्नि में बनके बांस। हे राजन्! आप मद्य पान करें और इस तुच्छ सी बातको भूल जाएं। आप ईश्वर हैं, संसार के सब ऐश्वर्य आप के चरण चूमते हैं, आप अपनी दया से भिखारी को राजा बना सकते हैं, और क्रोध की एक ही दृष्टि से राजा को कंगाल कर सकते हैं, आप से बड़ा इस पृथिवी पर कोई नहीं है, आप शत्रुओं के सिरों को तोड़ कर मैथिली के साथ विहार करो, यदि वह न माने तो कुक्कुटके समान बल से उसे अपनी शय्या पर धारण करो, आप को कौन रोक सकता है, राम और सुग्रीव को हम समझ लेंगे।

राक्षसों के मुख से यह वचन सुनकर रावण बोला, हे वीरो! किस कारण मैं जानकी से बलात्कार नहीं करता, सो सुनो, चिर काल की बात है, कि पुञ्जिक-स्थली नाम की एक अप्सरा ब्रह्मलोक को जा रही थी। अग्नि की शिखा के समान उस चमकती हुई अप्सरा को देखकर मैं मोहित होगया। और उस न चाहती हुई के साथ मैंने बल से भोग किया। वह मली हुई कमलिनी के समान ब्रह्मा के पास गई, ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया कि हे रावण! आज से यदि तू पराई स्त्री

के साथ बल से भोग करेगा तो तेरे सिर के सौ टुकड़े हो जाएंगे," हे राक्षसो! इसी कारण मैं सीता के साथ बलात्कार नहीं करता। परंतु उस बनवासी राम को मेरे बल का पता नहीं है, मैं युद्ध भूमि में उसका बध करूंगा और इस प्रकार सीता को अपनी पत्नी बनाकर रमण करूंगा।

विभीषण का रावण को सदुपदेश देना।

जब सब राक्षस अपनी अपनी सम्मति दे चुके तो विभीषण हाथ जोड़कर रावण के प्रति बोला, कि हे राजन! साम दाम दण्ड और भेद, नीति के यह चार अंग हैं, परंतु साम अर्थात् मेल मिलाप, दान अर्थात् धनादि पदार्थों का देना और भेद अर्थात् शत्रु पक्ष में फूट डाल देना इन तीनों उपायों से यदि कार्य्य सिद्ध न हो तो फिर दण्ड का विधान कहा गया है। हे तात! जिन के मन स्थिर नहीं हैं, जो दूसरे २ कार्य्यों में लगे हुए हैं और भी रोग आदिक व्याधियों में ग्रस्त हैं, उन पर बल पराक्रम से कार्य्य सिद्ध होता है, और वह भी यदि अच्छी विधि से किया जाए, परन्तु जिस राम को आप पराक्रम से जीतना चाहते हैं वह न रोगी है न चंचल मन वाला है, वह तो रण में विजय प्राप्त करने के लिये सेना सहित समुद्र तट पर आ गया है। यद्यपि उसमें क्रोध की मात्रा नहीं है, तौभी उसको जीतना अत्यन्त कठिन है,

हे तात! कौन जानता था कि इतने विशाल समुद्र को पार करके हनुमान यहां आएगा, परंतु वह आया और लंका का दर्प चूर्ण करके चला गया, इस एक ही उदाहरण से आप को राम के बल का अनुमान लगा लेना चाहिये, हनुमान के सदृश लाखों वानर उस की सेना में विद्यमान हैं और वह सब उस के लिए प्राण देने को उद्यत हैं, सो मेरी तो यह सम्मति है कि सीता को वापस दे दो और इस बड़े भय को जो सारी लंका के सामने आ रहा है दूर करो। हे तात! जब तक कोटानुकोटि वानरों की सेना लंका की ईंट से ईंट नहीं बजाती, तब तक सीता को राम के पास भेज दो, और यदि ऐसा न किया गया तो सब राक्षसों समेत लंका का सर्वनाश हो जाएगा, इस में मुझे संदेह नहीं है। हे भाई सूर्य्य की किरणों के समान स्वर्ण पुंख वाले राम के तीक्ष्ण बाणों से लंका में एक भी राक्षस जीता न बचेगा यदि आप ने सीता को न लौटाया।

विभीषण की इन बातों का रावण ने कुछ उत्तर न दिया और सब राक्षसों को विदा करके अपने भवन में चला गया और बहुत सी सुरापान करके अंतःपुर में जाकर रमण करता भया।

रावण का दर्बार लगाना और युद्ध पर विचार करना।

दूसरे दिन काम से मोहित हुआ २ रावण, सुवर्ण

की जालियों से सजे हुए मणियों से अलंकृत चार घोड़ों वाले रथ पर चढ़कर दर्बार की ओर चला। सैकड़ों वीर राक्षस नाना प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित होकर उसके आगे २ चले। उनके साथ महारथी राक्षस घोड़ों को नचाते कुदाते जय घोषणा करते चले। उस समय सहस्रों शंखों और नगाड़ों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। इस प्रकार राज पथ पर राक्षसों से स्तुति पाठ के श्लोक सुनता हुआ लंका पति रावण दर्बार में पहुंचा और हीरे तथा पन्नों से बने हुए सिंहासन पर बैठकर सब शूरवीर राक्षसों को अभिमुख करके बोला, कि हे धीर बीर विक्रमी और बुद्धिमान राक्षसो ! इस समय में अंतिम निश्चय करने के लिये तुम से सम्मति लेता हूं, कि अब हमें क्या करना चाहिए, तुम लोग राज नीति में निपुण हो सो सोच विचार कर सम्मति दो। तब सब राक्षस हाथों में शस्त्र उठा उठा कर युद्ध के लिए सम्मति देते भये। जब सब अपने अपने विचार प्रगट करके बैठ गये तो दूरदर्शी विभीषण उठकर खड़ा हुआ और नम्रता के साथ सत्य सत्य वचन कहने लगा, कि हे तात ! यह सीता रूपी भयंकर सर्प किस ने आप के गले में लपेट दिया है, जिस की उन्नत छाती ही फण है, जिस का चिंतन ही विष है, जिसका मुस्कराना ही तीक्ष्ण दाढ़ें हैं। पांचों उंगलियें ही जिस के पांच सिर हैं। हे राजन् मैं फिर कहता हूं कि वज्र के तुल्य राम के बाण राक्षसों के सिरों

को काट देंगे यदि तू सीता को न लौटायेगा ।

विभीषण के ऐसा कहने पर मंत्री प्रवर प्रहस्त बोला, हे विभीषण ! हम ने युद्ध में देवताओं दानवों और मनुष्यों को परास्त किया है सो कैसे उस तुच्छ राम से लंका को भय हो सकता है । प्रहस्त के ऐसा पूछने पर नीतिज्ञ विभीषण बोला, हे मंत्री ! राम अपना काम करने में बड़ा चतुर है, उसका वध करना ऐसे ही असम्भव है जैसे बिना नौका के समुद्र को तरना असम्भव है । हे राजन् ! उस की शक्ति को मैं जानता हूं, मैं व तुम अथवा सारे राक्षस मिलकर भी राम का वध नहीं कर सकते ! राम धर्मात्मा है महारथी है, इक्ष्वाकु की वीर कुल में उत्पन्न हुआ है, उस के सामने देवता भी मूढ हो जाते हैं । हे राजन् ! काम के वश में हुआ २ तू बिना सोचे समझे सब काम कर रहा है और यह तेरे मंत्री मित्र रूप में तेरे शत्रु हैं जो तुझे सच्ची और हितकारी बातें नहीं कहते, हे राजन् मैं तेरी और तेरे राज्य की भलाई चाहता हूं इसी कारण तुझे बारंबार कहता हूं कि सीता को अभी लौटा दे इसी में हम सबका कल्याण !

महामति विभीषण के इन वचनों को सुनकर बड़े बल वाला मेघनाद बोला, हे चचा ! आप कायरों के समान ऐसे वचन कह रहे हैं जिनका कुछ भी अर्थ नहीं है । देखो तुमने पुलस्त्य के वंश को कलंक लगा दिया है । मैं सच कहता हूं, कि इस महान कुल में एक ही पुरुष निर्बल

निस्तेज निर्वीर्य, कायर और भीरु आज तक उत्पन्न हुआ है और वह तू ही है ।

मेघनाद के मुखसे ऐसे अपमान जनक वचन सुनकर विभीषण ने उत्तर दिया, हे मेघनाद ! तू अभी बालक है, तेरी बुद्धि कच्ची है तेरे अंदर दूर दर्शिता नहीं है, इसी कारण तूने अपने और अपने कुलके नाश कर डालने वाली बात कह दी है । मैं सत्य कहता हूं कि यदि तुम सब अपना जीवन चाहते हो तो धन रत्न भूषण और कौशेय वस्त्र तथा हीरे मोती और विचित्र मणियों की भेंट ले कर रामके पास जाओ और उस रघुवंशी से क्षमा मांग कर सीता को वापस करो ।

विभीषण के इन हित से भरे हुए वचनों को सुन कर मृत्यु से प्रेरा हुआ रावण क्रुद्ध होकर बोला, कि वृद्ध लोगों ने सत्य कहा है, कि शत्रु के साथ रहे, सर्पके साथ वास करे परन्तु उस मित्र के साथ कभी वास न करे जो शत्रु सेवी हो । निस्सन्देह ज्ञाति के लोग बड़े भयानक होते हैं, ढके हुए कूए के समान यह सदा अपने हृदयों को ढांपे रखते हैं और बाहर से सदा हित दर्साते हुए समय पर प्राण ले लेते हैं । यह ज्ञातिके लोग विपत्ति पड़ने पर मुखसे सहानुभूति दिखाते हैं, आंखों से आंसु गिराते हैं, परन्तु हृदय में प्रसन्न होते हैं । पूर्व काल में पद्म बनके हाथियों ने हाथों में फांस लिये हुए मनुष्यों को देख कर यह कहा था, कि हम न

अग्नि से डरते हैं, न शस्त्रों से न फांस लिए मनुष्यों से हमें कोई भय है, किन्तु यह नीच क्रूर स्वार्थी ज्ञाति के लोग हमारे लिए बड़े भयानक हैं क्योंकि यह हमारे फांसने का उपाय बतलाएंगे। हे विभीषण ! ज्ञातियों का भय सब से बड़ा भय है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। गौओं में दूध की, स्त्रियों में चंचलता की और ब्राह्मणों में जिस प्रकार तपकी संभावना है इसी प्रकार ज्ञातियों में भय की संभावना है। हे भाई ! मुख से तो तू मेरे हितकी रट लगा रहा है, परन्तु वास्तविक बात यह है, कि तू मुझे इतना ऐश्वर्य्यवान बलवान और लोकसे पूजित देख कर हृदय में जलता है और भाई होने से ईर्षा करता है। हे भाई विभीषण ! तू सज्जन के रूप में हृदय से दुर्जन है, सो जिस प्रकार कमल पत्र पर जलके बिन्दु नहीं ठहरते इसी प्रकार दुर्जनों की मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती, जैसे शरत्काल में मेघों के गर्जने और वर्षने से कीच नहीं होती इसी प्रकार दुर्जनों की मित्रता हुआ करती है, जिस प्रकार भ्रमर काश पुष्पों पर रसकी लालसा से बैठता है, परन्तु उसमें से रस नहीं पाता, इसी प्रकार दुर्जनों की मित्रता नीरस होती है। हे भाई ! यदि तू भाई न होता तो आज तुझे प्राण दण्ड दिया जाता अथवा तेरी जिह्वा निकाल ली जाती। धिक्कार है तुझ पर, धिक्कार है तेरे देश द्रोह पर, हे शठ ! तू इसी समय यहां से चला जा और फिर कभी मुंह न दिखा।

बड़े भाई से इस प्रकार धिक्कारे जाने पर विभीषण के क्रोध का पारावार न रहा। वह गदा हाथ में लेकर अपने चार मंत्रियों सहित उठा और रावण के प्रति बोला, हे भाई! तुम मेरे बड़े भाई हो, जो इच्छा हो कहो, उसको सहन करना मेरा धर्म है। मैं जाता हूं और तुम्हारी आज्ञानुसार फिर कभी मुख न दिखाऊंगा परन्तु इतना कहे जाता हूं कि मेरे हित के वचन को तू ने नहीं माना, इस में तेरा कोई दोष नहीं क्योंकि काल से प्रेरा हुआ तू हित अहित की पहचान नहीं कर सकता। हे राजन! मीठा बोलने वाले बहुत हैं परन्तु सत्य कहने वाले दुर्लभ हैं। मृत्यु के मुख में जाते हुए तुझे बचाने के लिये ही मैंने यह बचन कहे हैं, सो तुम क्षमा करना, परमात्मा आप का भला करे और तुम्हें सुमति प्रदान करे।

विभीषण का श्री रामचन्द्र जी के साथ मिलना।

रावण से धिक्कारा हुआ विभीषण अपने चारों मंत्रियों सहित राज दर्बार से निकला और विमान पर बैठकर अगाध समुद्र को पार करके श्री रामचन्द्र जी की छावनी में आया। समुद्र के समान उस वानर सैन्य दल में पहुंच कर वह राक्षस अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सुग्रीव से बोला, हे राजन्! लंका नरेश रावण का मैं छोटा भाई हूं। मेरा नाम विभीषण है। जनक नंदिनी राक्षसियों के बश में पड़ी हुई बड़े

दुख से दिन व्यतीत कर रही है, मैंने अपने भाई को बहुत समझाया, परंतु यम की दाढ़ में आया हुआ वह मेरा कहना नहीं मानता। हे राजन्! मेरे हित के वचनों को सुनकर उसने मुझे धिक्कार दिया और अपने हां से निकाल दिया, सो अब मैं अपने स्त्री पुत्र आदि परिवार को छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी की शरण में आया हूं, आप उनसे मेरे आगमन की सूचना दीजिए। विभीषण के ऐसा कहने पर सुग्रीव जल्दी से राघव के पास गया और हाथ जोड़ कर बोला, हे दशरथ नंदन रावण का छोटा भाई अपने चार मंत्रियों सहित आप से मिलना चाहता है, सो जैसा आप की आज्ञा हो करूं यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी बोले हे वीर! तुम सब के भरोसे पर ही मैं इतने बड़े युद्ध के लिए तैय्यार हुआ हूं, सो तुम इस विषय में अपनी सम्मति दो कि मुझे क्या करना चाहिए। इस पर सुग्रीव हाथ जोड़कर बोला, हे महाबाहो! आप स्वयं सब कुछ जानते हैं जैसा उचित समझें करें परंतु मैं तो शत्रु पर विश्वास करना उचित नहीं समझता, ऐसा न हो कि यह राक्षस पहले विश्वास जमाकर अवसर पड़ते ही हमारी हानि कर डाले, हे नाथ! यह राक्षस लोग शूर वीर मायावी, कपटी और धूर्त होते हैं, और यह तो रावण का सहोदर भाई होने से किसी प्रकार भी विश्वास पात्र नहीं है। सुग्रीव के ऐसा कहने पर मुख्य मुख्य बानरों ने

अपनी अपनी सम्मतियां दीं। जब सब अपने अपने विचार दे चुके तो पवन पुत्र हनुमान बोले, हे काकुत्स्थ दूसरे के मनका भाव जानना बहुत कठिन है, परन्तु अनुभवी बुद्धिमान मनुष्य मुख की आकृति से, स्वर के भेद से और कण्ठ की ध्वनि से बोलने वाले के हृदय के भावों को जानते हैं। हे नाथ! यद्यपि मुख्य मुख्य वानरों ने इस राक्षस पर संदेह प्रगट किया है, परंतु इस की बाणी से कोई भी संदेह की बात प्रतीत नहीं होती, इस के मुख पर भी निर्भयता और प्रसन्नता देख पड़ती है जो कपटी और धूर्त पुरुषों के मुखों पर कभी नहीं हो सकती इस कारण मुझे तो पूर्ण विश्वास है, कि विभीषण का भाव बुरा नहीं है। विभीषण आप को धर्म पथ पर और रावण को पाप पथ पर देखकर आप के पास आया है, और आप ने बाली जैसे पराक्रमी का बध किया है, इसी विचार से उस ने लंका के राज्य के पाने की इच्छा से आप की शरण ली है।

श्रीरामचन्द्र जी का विभीषण को स्वीकार करना।

सब वानरों के विचार सुनकर तेज के पुञ्ज श्री रामचन्द्र जी बोले, हे शूर वीरो! जो कुछ हनुमान ने कहा है वह युक्ति संगत है। शास्त्रों के पढ़े बिना और बृद्धों की सेवा किये बिना ऐसे गंभीर और अर्थ से भरे हुए वचन नहीं कहे जा सकते। देखो, राजाओं के दो शत्रु हुआ

करते हैं । एक तो उनके ज्ञाति वाले अर्थात् उन की कुल के मनुष्य और दूसरे उनकी राज्य-सीमाओं पर राज्य करने वाले अर्थात् उन के पड़ोसी राजे । यह दोनों सदैव उस समय प्रहार किया करते हैं जब कि राजा किसी व्यसन में फंसा हुआ हो अथवा किसी विपत्ति में पड़ा हो, सो विभीषण अपने भाई को संकट में पड़ा देखकर हमारी शरण में आया है । हे वीर वानरो ! हम विभीषण के कुल के नहीं हैं, विभीषण जानता है, कि रावण के मारे जाने से वह लंका का राजा बन सकता है, हमारे विनाश से नहीं बन सकता. इस कारण वह हमारी शरण में आया है, सो उसे स्वीकार करना चाहिये । देखो कण्व ऋषि के पुत्र परमर्षि कण्डु ने कहा है, कि दीनता से दोनों हाथ जोड़ कर यदि शत्रु भी आवे तो उसे शरण देवे । शरणागत शत्रु को शरण देना चाहिए चाहे इस में अपने प्राणों का भी भय होवे। शरणागत को शरण न देना और उस की रक्षा न करना महा पाप है । हे वीरो ! मैं तेरा हूं, ऐसा कहकर जो मेरी शरण आता है उसे मैं अभय दान देता हूं और प्राण देकर भी अंगीकार करता हूं, यह मेरा व्रत है सो हे सुग्रीव ! विभीषण मेरी शरण आया है, मैं उसे अभय दान देता हूं, तू शीघ्र उसे ले आ । तब श्री रामचन्द्र जी से अभयदान दिया हुआ विभीषण सुग्रीव के साथ आकर उस महात्मा राघव के चरणों में गिर पड़ा, और फिर हाथ

जोड़कर बोला, हे अयोध्या नाथ! मैं रावण का छोटा भाई हूं। आप सारे जगत् के शरण देने वाले हैं, यही जानकर आप के चरणों में आया हूं। आप के भरोसे मैंने लंका को मित्रों को और अपने स्त्री पुत्रों को छोड़ दिया है, हे भक्त वत्सल! मेरा जीवन सुख और राज्य आप के ही अधीन है, इस दुखित अवस्था से इस दीन को उबारो, हे राघव! मेरा यह जीवन आप के अर्पण है।

दीनता से कहे हुए विभीषण के इन बचनों को सुन कर श्री रामचन्द्र जी ने उसे अभय दान दिया और फिर प्रेम से गले लगाकर बोले, हे राक्षस! मैंने तुझे अंगीकार किया, अब तुम लंका का सब समाचार मुझे सुनाओ।

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर वह राक्षस बोला हे नर नाथ! ब्रह्मा के वर से रावण का बल अप्रमेय हो गया है, उसे देवता दानव गंधर्व नाग कोई भी नहीं मार सकता रावण का छोटा भाई कुम्भ कर्ण सूर्य्य के समान तेजस्वी बड़े बल वाला, पराक्रमी तीनों लोक को जीतने में समर्थ है और युद्ध में इन्द्र को भी विजय करने की शक्ति रखता है। हे राघव! सेनापति प्रहस्त अप्रमेय बल और पराक्रम वाला है, कैलाश पर्वत पर घोर युद्ध से उसने मणि भद्र को पराहस्त किया था और रावण के ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद के बल के वर्णन करने की किस में सामर्थ्य है। वह इन्द्राजित घोर संग्राम में अदृश्य होकर राक्षसी

माया से शत्रुओं को विध्वंस करता है। मेघनाद के सहोदर महापार्श्व तथा अकंपन नामक राक्षस जो रण में बड़े दुर्धर्ष हैं और बल में लोकपालों के तुल्य हैं, उसके सेनानी हैं।

विभीषण के मुख से रावण के बल को सुनकर श्री रामचन्द्र जी बोले, हे विभीषण ! रावण की जो शक्ति तूने वर्णन की है मैं उसे भली भान्ति जानता हूं, अब मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि पुत्रों और सेना सहित रावण का बध करके तुझे लंका का राजा बनाऊंगा, यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। वह दुष्ट जिस ने मेरी प्रिया को हरण किया है चाहे पाताल में चला जाए, रसातल में भाग जाए, ब्रह्मा के पास जाए अथवा इन्द्र की शरण पकड़े, परन्तु जीता नहीं रह सकता, वह मेरे कराल बाणों से मारा जाएगा। हे विभीषण तू उसे मरा हुआ ही समझ।

श्री रामचन्द्र जी के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर महात्मा विभीषण उन के चरणों को छूकर फिर बोला हे नाथ ! रावण को मारने लंका को विध्वस्त करने और राक्षसी सेना के संहार करने में मैं प्राणपन से सहायता करूंगा यह आप के सामने प्रतिज्ञा करता हूं, और चाहे सिर चला जाए परंतु अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करूंगा। विभीषण के ऐसा कहने पर श्री रामचंद्रजी ने गद्गद प्रसन्न हो कर उसे अपने कण्ठ से लगाया और फिर

लक्ष्मण से बोले, हे बीर ! समुद्र से जल लाओ, और रावण के छोटे भाई इस महात्मा को अभी अभिषेक करो ! और सारी वानर सेना में घोषणा कर दो कि लंका का राजा आज से भक्त विभीषण हुआ ।

तब सुमित्रानंदन लक्ष्मण ने सब वानरों के मध्य में उस महात्मा को राज्याभिषेक दिया, जिस से विभीषण परम प्रीतिवान होकर श्री राम चंद्र जी की सहायता में प्राणपन से लग गया।

सेतु बंधन ।

अब अगाध समुद्र को पार करने के लिये सुग्रीव ने नल और नील को आज्ञा दी, कि हे चतुर वानरो ! शिल्प कला में तुम्हारे समान संसार में दूसरा कोई मनुष्य नहीं है तुम विश्वकर्म्मा के तुल्य बुद्धि और बल में अद्वितीय हो, सो इस समुद्र पर पुल बांध कर वानरी सेना को पार करो। तब सुग्रीव की आज्ञा पाकर करोड़ों वानर श्री रामचंद्रजी की जय घोषणा करते हुए गह्वर बनों के अंदर चले गये और पर्वतों से वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर समुद्र तट पर लाने लगे । पर्वताकार इन वानरों ने, धव, बांस, अर्जुन, कर्णिकार, आम, जामुन ओर अशोक आदि वृक्षों से समुद्र तट को भर दिया। जड़ों समेत ओर बिना जड़ों के वृक्षों को इन्द्र ध्वजा की नांई उठा उठा कर लाते हुए वह वानर

घोर गर्जना करते भए। हाथियों के तुल्य बड़ी बड़ी शिलाओं और पर्वतों को कलों से उखाड़ कर उन वानरों ने समुद्र तट पर एक नया पर्वत खड़ा कर दिया। तब पत्थरों के बड़े २ ढोंकोंके गिरने से क्षुब्ध हुआ हुआ समुद्र जल बड़े शब्द से आकाश को चूम कर फिर नीचे गिरता हुआ अति शोभा देने लगा। चारों ओर से वृक्षों और पत्थरों के गिरने से वह महासागर बड़े क्षोभ को प्राप्त हुआ। लाखों वानर पत्थरों को और वृक्षों को ढोकर समुद्र तट पर लाते थे लाखों ही समुद्र में गिराते थे लाखों ही वृक्षों को उखाड़ते थे और लाखों ही पत्थरों को खोदने में लगे हुए थे और विश्वकर्म्मा के तुल्य नल और नील उस महान सेतु को बांधते जाते थे।

उस समय एक दिव्य दृश्य था जिसे देखने के लिए आकाशचारी गंधर्व और सिद्ध लोग बड़े आश्चर्य्य और विस्मय से विमानों पर बैठे देखते थे। उन उत्साही और न थकने वाले वानरों ने पहले दिन चौदह योजन लंबा पुल बनाया दूसरे दिन इक्कीस योजन तीसरे दिन तेईस योजन और इस प्रकार बड़ी शीघ्रता से कार्य्य करते हुए उन्होंने थोड़े ही दिन में सौ योजन समुद्र पर बड़ा दृढ़ पुल बांध दिया। इस प्रकार नल और नील से बनाया हुआ दश योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा सेतु समुद्र पर ऐसा शोभा देने लगा जैसे नीले आकाश में देव पथ शोभा देता है। उस अचि-

न्त्य असह्य, रोंगटे खड़े करने वाले अद्भुत सेतु को देख कर गंधर्वों और देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की। वह विशाल, सुहावना, समतल महान् पुल समुद्र में ऐसे शोभा देता था जैसे सुकेशिनी रमणी के केशों के मध्य में मांग शोभा देती है।

उस अपार सागर पर पुल बंध जाने पर हनुमान की पीठ पर श्री रामचन्द्रजी और अंगद की पीठ पर लक्ष्मण सवार हो कर समुद्र पार करने के लिये वानरी सेना के आगे आगे चले, उन के पीछे करोड़ों वानरों की वह भयंकर सेना नाचती कूदती उछलती और अपनी गर्ज से समुद्र की गर्जना को दबाती हुई चली।

इस प्रकार वह वानर वाहिनी थोड़े दिनों में नल नील से बनाये हुए पुल पर से पार हो कर समुद्र के दक्षिण तट पर पहुंच गई। वहां पर अत्युत्तम फलों से युक्त सुन्दर और मीठे जलों वाली नदियों के किनारे श्री रामचन्द्रजी ने अपना शिविर बनाया।

श्री रामचन्द्रजी के इस अद्भुत आश्चर्य्य जनक और असंभव कार्य्य को देख कर देवता लोग सिद्धों और चारणों सहित वहां आकर उनकी स्तुति करते भये, कि हे पृथिवि पति! समुद्र सहित इस वसुंधरा पर तेरी विजय पताका फहरावे! हे नरनाथ! चिरकाल तक इस भूमण्डल की पालना कर और रावण का बध करके रसातल में जाती हुई पृथिवि का पुनरुद्धार कर।

शुक और सारण का रामकी सेना में आना ।

अगाध समुद्र पर दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु बांध कर जब श्री रामचन्द्रजी पार हुए तो रावण के मन में बड़ी चिन्ता हुई और उसने अपने शुक और सारण नामक दो मंत्रियों को कहा, कि हे चतुर अमात्यो ! राम ने अगाध समुद्र पर अद्-भुत और आश्चर्य्य जनक सेतु बांध लिया है और वह भय जो बहुत दूर था अब लंका के सिर पर आ गया है सो तुम दोनों वानरों के वेश में राम की सेना में जाओ और सैनिकों की संख्या उन में मुख्य मुख्य वानरों के नाम, तथा उन के शस्त्र बल का पता लाओ ।

तब रावण से आज्ञा पाकर वह दोनों मंत्री जो बड़े मायावी और कुटिल थे वानरों के वेश में उस समुद्र समान अथाह वानर सेना में प्रविष्ट हुए । सेना में विचरते हुए उन दोनों को महात्मा विभीषण ने पहचान लिया और तत्काल उन्हें पकड़ कर श्री राम-चन्द्रजी से बोला हे नर नाथ ! यह दोनों रावण के मंत्री शुक और सारण लंका से आए हैं और हमारे शिविर में पकड़े गये हैं ।

विभीषण के इस प्रकार कहने पर वह दोनों गुप्त-चर थर थर कांपते हुए जीवन से निराश हो कर बोले हे राजन् ! लंकापति रावण से भेजे हुए हम आपकी

शक्ति देखने आए हैं। उन के इस छल रहित स्पष्ट उत्तर को सुन कर तीनों लोकों का कल्याण चाहने वाले राघव हंस कर बोले, हे मंत्रियो! यदि तुमने हमारी सारी शक्ति देखली है तो जाओ और यदि कुछ और देखनी है तो निर्भय हो कर देखो। तुम भय मत करो शस्त्र हीन दूत पर आर्य्यों का हाथ नहीं उठेगा। हे शुक! विभीषण के मुख से सुना है कि तुम बड़े चतुर और बुद्धिमान हो, सो लंका में जाकर अपने राजा से कहना कि हे मूढ़! जिस बल के भरोसे पर तूने मेरी सीता को हरा है। वह बल अब सेना और भाई बंधुओं सहित रण क्षेत्र में दिखा, रे नीच! कल सूर्य्य उदय होते ही तू मेरे बाणों से राक्षसों को मरता लंका के कोट कंगूरों को गिरता ड्योढ़िओं तथा ऊंचे भवनों सहित सारी पुरी को धूलि में मिलता देखेगा। दया के समुद्र श्री रामचंद्र जी से यह संदेश ले कर वह राक्षस "जय हो" ऐसा वचन कह कर वहां से चले गये और लंका में पहुंच कर राक्षसेन्द्र रावण से बोले कि हे नाथ! वानर सेना में प्रवेश करते ही विभीषण ने हमें बांध लिया और प्राण लेने के लिये राम के सन्मुख उपस्थित कर दिया परंतु उस बड़े तेज वाले राघव ने हमें शस्त्र हीन दूत जान कर छोड़ दिया। हे राजन्! वानरों तथा ऋक्षों के बल के वर्णन करने की हम में सामर्थ्य नहीं, वह तो क्रोध से जल रहे हैं, न किसी की सुनते हैं और नांही उनसे कुछ

पूछा जा सकता है, उन के स्वभाव बड़े तीक्ष्ण हैं। विराध कंबंध खरदूषण ओर मरीचका मारने वाला वह आर्य्य समुद्र पर सेतु बांध कर आ पहुंचा है, और कल सूर्य उदय होते ही तेरी लंका को भस्मसात करने का संदेश भेजता है, अब जैसी तेरी इच्छा होवे सो कर।

शुक और सारण के इन वचनों को सुन कर रावण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये ओर वह पृथिवी को पाओं से ठुकरा कर बोला, हे चतुर मंत्रियो ! मैं सीता को कभी न लौटाऊंगा, चाहे सारे देवता गंधर्व यक्ष और मनुष्य मिलकर भी मुझ पर आक्रमण करें। मेरे सर्प के समान डसने वाले बाण राम और उसकी सेना का रक्त पियेंगे, यह निश्चय जानो। इस के पश्चात् क्रोध से जलते हुए राक्षसपति ने अपने चतुर धीर ओर निर्भय गुप्तचरों को बुला कर आज्ञा दी कि शीघ्र जा कर राम के बल पराक्रम का पता लो। तब रावण की आज्ञा से वह गुप्त चर छद्म वेश से वानर सेना में गए। वहां जाकर उन्हों ने राम लक्ष्मण सुग्रीव ओर विभीषण को देखा उन्हें देख कर फिर वह बड़े गुप्त रूप से सारे शिविर में विचरण करते भये, और सब भेद जानकर लंका पति रावण के पास जाकर बोले कि हे राक्षस राज ! राम ने सुवेल पर्वत पर अपनी छावनी डाली है। उनमें जाम्बवान नामक ऋक्षराज बड़ा ही धुर्धर्ष है, और हनुमान के बल को तो आप जानते ही हैं, वानरों में वह बड़ा तेजस्वी

लंका को नष्ट करने के लिये सर्वदा उद्यत रहता है, इन के अतिरिक्त सुमुख दुर्मुख और वेग दर्शी यह तीन वानरों में मुख्य हैं और साक्षात् यम के अवतार हैं नल और नील यह दोनों वानर उस बड़ी सेना के स्वामी हैं, जिन्होंने दुस्तर समुद्र पर पुल बांधा है। बालि का पुत्र अंगद अपने पिता के समान बलवान तेजस्वी और समर्थ है इन के अतिरिक्त और भी सहस्रों मुख्य मुख्य वानर हैं जो अपनी भुजाओं से पर्वत को उठा लेने की शक्ति रखते हैं उन के साथ कोटानुकोटि वानर सेना है जो चारों ओर से लंका को घेरे बैठी है। उस प्रलयकारी भयंकर सेना में दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण चंद्र और सूर्य्य के समान तेज से जगमगा रहे हैं, पराक्रम में आज उनके तुल्य पृथिवी पर कोई भी मनुष्य नहीं है। उन्हों ने जन स्थान को नष्ट करके अपने बल को दर्शा दिया है।

रावण का सीता के पास राम का छिन्न मस्तक लेकर जाना।

गुप्त चरों से वानरी सेना का समस्त समाचार सुनकर रावण ने उन को विसर्जन किया और फिर महल में जाकर मायावी विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से बोला, कि हे कार्य्य कुशल ! शीघ्र जाकर राम और लक्ष्मण के मायामय सिर बना ! आज हम इन सिरों से सीता को छलेंगे। तब रावण की आज्ञा से उस चतुर

कारीगर ने रक्त से लतपत ऐसे सिर बनाये जो ठीक राम और लक्ष्मण ही के सिरों के समान आकृति वाले थे उन मायामय सिरों को लेकर कूट बुद्धि रावण मनमें अति प्रसन्न हुआ और सीता को मोहने के लिए अशोक वाटिका को चला। बाण की नोक पर रखे हुए बनावटी सिरों समेत सीता के पास पहुंच कर वह निर्दयी ढीठ रावण बोला, हे कल्याणि! तुझे मैंने बहुत समझाया परंतु तू राम के भरोसे मेरा अपमान करती रही और मुझे ठुकराती रही, सो आज वह तेरा आश्रय नष्ट हुआ और राम छोटे भाई समेत युद्ध भूमि में मारा गया। हे मूर्खे अपने पति के मरने का समाचार सुन, मेरे मारने के लिए वह अभिमानी राघव सुग्रीव को साथ लेकर लंका पर चढ़ आया था। उस की सेना समुद्र तट पर टिकी हुई थी, सूर्य्य छिप चुका था, वानरी सेना मार्ग के परिश्रम से थककर सो रही थी। उस समय मेरा सेनापति प्रहस्त भयंकर राक्षसी सेना को लेकर राम पर आक्रमण करता भया। विकराल निशाचरों ने लोह दण्डों शूलों और बर्छों से सारी वानर सेना को मार डाला जो रात्रि होने से कुछ न देख सकती थी। तब दौड़ते हुए, रोते हुए और रक्त से भरे हुए कराहते हुए वानरों के सिरों को रौंदता हुआ प्रहस्त, राम लक्ष्मण के निकट गया और सोते हुए तेरे पति और देवर दोनों के सिर काट लाया उस के साथ विभीषण भी मारा गया। हे सुनयनि!

Bhardawaj Press Lahore.

मायामय सिरों को देखकर सीता जी का विलाप करना । (पृष्ठ ४७७)

तेरी प्राप्ति के लिए वानरों का इतना बड़ा रक्त पात हुआ सो अब तू उसका चिंतन छोड़ कर मेरी महिषी बनना स्वीकार कर! इतना कहकर उस झूठे, मायावी, बड़े क्रूर राक्षस ने उन मायामय सिरों को सीता के सामने रख दिया।

मायामय सिरों को देखकर सीता का विलाप करना।

सीता ने उन सिरों को देखा जो मुख नेत्र रंग बाल और चूड़ामनि सहित पति और देवर के चिन्हों से सर्वथा मिलते थे। उन को पहचान कर उसके दुख की कोई थाह न रही। वह कूंज के समान कुरलाती हुई विलाप करने लगी और कैकयी को कोसती हुई बोली, हा! आज कैकेयी की कामना पूरी हुई, हे! रघुकुल को मारने वाली सर्पिणि! यह कुल नंदन मारा गया है। हा! तैंने कुल को नष्ट कर दिया। इस प्रकार विलाप करती हुई वह सुकेशिनी कांपती हुई कटे हुए केले के समान पृथिवी पर गिर पड़ी। जब कुछ काल पीछे सचेत हुई तो उस सिर के निकट बैठकर वह मृग लोचनी बड़ा दुखद विलाप करने लगी, कि हा! आज मैं कहीं की न रही, हे मेरे हृदय के स्वामी! आज मैं विधवा हुई हुई तेरी ऐसी शोचनीय अवस्था को देखती हूं। हे प्राणेश! बालपन में व्याह के समय तूने मेरा हाथ पकड़ा था, परंतु आज न जाने मुझ से क्यों रूठ गये हो! हे नाथ! मैं आप के

सामने बैठी हूं, तनिक मेरी ओर देखो ! हे मेरे प्राण प्यारे आज तुम न बोलते हो न मेरी ओर देखते हो, कहो तो सही इस दासी से क्या अपराध हो गया है । हे राघव ! गृह को छोड़ते समय तूने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं तेरे साथ विचरूंगा, आज उस प्रतिज्ञा को स्मरण करो । हे सच्ची प्रतिज्ञा वाले हे दृढ़ व्रती !! मुझे छोड़ कर तू किस तरह अकेला स्वर्ग को गया है । हाय ! पुत्रों और स्नुषा की बाट देखने वाली कौशल्या सुनेगी तो क्या कहेगी, उस को कौन धीरज देगा, कौन उसके आंसु पोंछेगा ! हाय ! मुझ अनार्य्या के लिये वह सच्ची प्रतिज्ञा वाला समुद्र पार करके गोष्पद में मारा गया । हे हृदयेश्वर ! मुझ कुल नाशिनी के साथ तूने साथ ब्याह करके घोर दुख उठाया हा ! आज में ही इस आर्य्य श्रेष्ठ की मृत्यु बन गई । हे विधाता ! किस लिये तूने मुझ दुःखिनी को जन्म दिया था । हे अधम दुष्ट रावण ! अपनी तलवार से मेरा भी सिर काट और मुझे भी वहीं पहुंचा जहां मेरा जीवनाधार गया है ! हे राक्षसेन्द्र ! मैं पति के पीछे चलूंगी, तू अपनी तलवार से शीघ्र मेरे टुकड़े २ कर, अब मैं एक क्षण भी जीना नहीं चाहती ।

इस प्रकार जब दुख की मारी जनक नंदिनी विलाप कर रही थी उसी समय एक राक्षस ने आ कर रावण को कहा, हे पृथिवि नाथ ! सेनापती प्रहस्त किसी आवश्यक कार्य से आप के दर्शन चाहता है । तब उस

राक्षस के ऐसा कहने पर मायावी रावण वहां से चला गया और उस के जाते ही वह दोनों सिर भी अपने आप लोप हो गये।

सरमा राक्षसी का सीता को धीरज देना

रावण के चले जाने पर जानकी पति की मृत्यु के शोक से मूर्छित हो कर ऐसे गिर पड़ी जैसे बिजली गिरने से वृक्ष गिर जाता है। तब विभीषण की स्त्री जो बड़ी दयावती थी और सीता को हृदय से प्रेम करती थी, वहां आई ओर उस को सचेत कर के बोली, हे प्यारी! रावण ने जो कुछ तुम्हें कहा वह सिर से पाओं तक झूठ है,तुम्हारे पति ओर देवर न तो मारे गये ओर नां ही मारे जा सकते हैं! हे जानकी! तुम्हें छलने के लिये रावण ने यह दो बनावटी सिर बनाये थे, जो उस के जाते ही अपने आप लुप्त हो गए! हे सीते! यह केवल राक्षसी माया थी, सो तू शोक को छोड़ कर धीरज कर। हे मैथिलि! सदा सावधान रहने वाले राघव नींद में मारे नहीं जा सकते। रावण जिस समय यहां से घबड़ाकर बाहर निकला था, मैं उसी समय जान गई थी, कि लंका पर वानरों का भय आ पहुंचा है। अब तेरे दुर्दिन दूर हुए क्योंकि समुद्र को पार करके तेरा पति लंका के सिर पर प्रलयकाल के बादल के समान गर्ज रहा है, और थोड़े ही दिनों में तू राक्षसों सहित

रावण का मरना सुनेगी । जल्दी ही श्री रामचन्द्र जी तेरे केशों को जो धूल से भरे हुए उलझ रहे हैं अपने हाथ से संवारेंगे । हे जनक नंदिनी ! कान लगाकर सुन, उन राक्षसों के गर्जने की ध्वनि यहां तक सुनाई दे रही है, जो घोड़ों हाथियों और रथों पर सवार होकर युद्ध के लिए सज रहे हैं, इसी से तू समझ ले, कि यदि राघव मारा गया होता, वानरी सेना नष्ट हो गई होती तो यह राक्षसी सेना युद्ध के लिए क्यों तैय्यार होती हे सीते ! यह सब राक्षस राघव के सन्मुख जाते ही इस प्रकार मारे जाएंगे जैसे पतंगे दीपक पर गिरकर मर जाते हैं और तू थोड़े ही दिनों में पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान अपने पति के दर्शन करेगी।

वानर सेना का लंका को घेर लेना और अंगद का दूत बनकर रावण के दर्बार में जाना ।

जब समुद्र तट पर वानरों का भारी सैन्य दल पहुंच गया, तो लंका की परिस्थिति जानने के लिए सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी सुवेल पर्वत के शिखर पर चढ़ गए। वहां जाकर उन्होंने लंका के बाजारों कूचों ऊंचे २ भवनों, दुर्ग, नदी, नालों बनों और उपवनों को देखा । रात्रि भर उस पर्वत पर निवास करके प्रातःकाल वह सब नीचे मैदान में उतरे और अपनी असंख्य वानर सेना को साथ लेकर लंका

के कोट के निकट पहुंच गए। उस स्थान पर ठहर कर उन्हों ने दुर्भेद्य व्यूह बनाए । सब से पहले लंका के उत्तर द्वार पर जो पर्वत के समान ऊंचा था लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी स्वयं धनुष हाथ में लेकर खड़े हुए, क्योंकि यही द्वार रावण से अधिष्ठित था, और सब से बड़ा भय इसी द्वार से था। पूर्व द्वार पर बड़े बड़े पराक्रमी सेनापति नील, नल, मैंद और द्विविद खड़े हुए जो बल में अथाह और बड़े दुर्धर्ष थे। दक्षिण द्वार पर पर्वताकार बालि का पुत्र अंगद, भीमाकार ऋषभ और सूर्य्य के समान तेजस्वी गज गवाक्ष और गवय नामक वानरों के पति खड़े हुए। और पश्चिम द्वार को वज्राङ्ग हनुमान, प्रजंघ तरस आदिक वानरराज रोक कर खड़े हो गए। और उन सब के मध्य में बड़ा दुर्भेद्य व्यूह बनाकर सब वानरों का स्वामी स्वयं सुग्रीव खड़ा हुआ और जांबवत तथा सुषेण यह दोनों बड़ी सेना के साथ सुग्रीव और राघव के मध्य में खड़े हुए।

इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी ने चारों ओर से लंका को घेर लिया और फिर अपने मंत्रियों तथा विभीषण के साथ विचार करके अंगद को आज्ञा दी, कि हे बालि सुत! तू तेज और बल में पिता के तुल्य है, बड़ा दूर दर्शी और बोलने में चतुर है, सो तू मेरी ओर से रावण को जाकर कह दे, कि हे मनुष्यों में नीच! जिस बल के भरोसे पर तू मुझ को धोखा देकर एकान्त में

सीता को हर लाया है, वह बल अब दिखला । हे दुष्ट! मैथिली को लेकर दांतों में तृण और गले में आंचल डालकर यदि तू अभी मेरे पांओं नहीं पड़ता तो कल मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से सारे लोक को राक्षसों से रहित कर डालूंगा । हे नराधम ! धर्म पथ से गिर कर तू क्षण मात्र भी राज्य नहीं कर सकता, यह मैं तेरे कल्याण के लिए कहता हूं, अपना लोक और परलोक सुधार ले ।

तेज पुञ्ज श्री रामचन्द्र जी की ऐसी आज्ञा पाकर बालि पुत्र अंगद शीघ्र वहां पहुंचा जहां मदोत्कट रावण मद्यमें मतवाला होकर बैठा था । तब रावण को अपने सामने देखकर जलते हुए अग्निके समान तेजवाला अंगद बोला, हे रावण ! मैं बालि का पुत्र हूं, अंगद मेरा नाम है और अहल्या को तारनेवाले तथा खर दूषणके मारनेवाले त्रिलोकीनाथ श्री रामचन्द्र जी ने दूत रूपसे मुझे तेरे पास भेजा है, सो तू उनके संदेश को सुन जो तेरे लिए कल्याण देने वाला है । राघव ने कहा है, कि हे मनुष्यों में नीच ! स्त्रियों की तरह गृह में क्यों बैठा है अब पुरुष बन और युद्ध में उतर कर अपना वह बल दिखला जिस बल के भरोसे पर तूने सीता का हरण किया है, हे दशानन ! यदि आज ही तू मैथिली को लेकर मेरे पांओं न पड़ा तो कल प्रातःकाल मंत्रियों और पुत्रों सहित तुझे यम लोक में पहुंचा दूंगा । तू देवताओं और

ऋषियों मुनियों का भयानक शत्रु है सो तुझे मारने और उनको उद्धारने के लिए मैं आ पहुंचा हूं, इस राज्य और लंका के एश्वर्य्य को तू थोड़ी देर और भोग ले, क्योंकि तेरे स्थान पर मैंने विभीषण को सिंहासन पर बैठा दिया है।

अंगदके मुखसे इन कटु वचनोंको सुनकर क्रुद्ध हुआ २ रावण अपने मंत्रियोंको आज्ञा देता भया, कि हे वीर राक्षसो! इस ढीठ वानरको पकड़कर मार डालो, इसने मेरे सामने जो बकवाद किया है, उसका जल्दी इसे दण्ड दो, तब रावण की आज्ञा पाकर चार मंत्रियों ने उस अतुल बल वाले अंगद को पकड़ लिया, और लोह दण्डों से उस पर प्रहार करने लगे। इस पर क्रुद्ध हुए हुए सिंह के समान अंगद उन चारों को पकड़ कर उछला और पर्बतके समान एक ऊंची अटारी पर चढ़ गया। अंगद के उछलने से वह चारों राक्षस नीचे गिर कर घायल हो गए। इस प्रकार उन राक्षसों से अपना प्रतिकार लेकर अंगद मेघ के समान गर्जता हुआ आकाश पथ से श्री रामचन्द्र जी के पास आ पहुंचा।

युद्ध का आरंभ।

अंगद के चले जाने पर गुप्त चरों ने रावण को कहा, कि हे राजन्! लंका को चारों ओर से वानरों ने घेर लिया है सो शीघ्र ही जैसा उचित हो उपाय करो।

तब भय और क्रोध से दबा हुआ रावण अपने पर्वत के बराबर ऊंचे भवन पर चढ़कर वानरों की सेना को देखता भया। चारों ओर दृष्टि फैलाकर उस ने वानरों से लंका को घिरा हुआ देखा। कोटानुकोटि वानरों वाली भयानक सेना उस को दूसरे पीले समुद्र की नांई देख पड़ी।

उधर श्री रामचन्द्र जी भी ध्वजाओं पताकाओं और स्वर्ण कलशों से अलंकृत लंका को देखकर मन में सीता को याद करते भये, और सोचने लगे कि इसी राक्षस पुरी में मेरी जानकी दीनों के समान विलाप कर रही है। इस प्रकार मन में अपनी प्रिया का स्मरण करके श्री रामचन्द्र जी ने नेत्रों से प्रलय काल का अग्नि छोड़ते हुए वानरों को आज्ञा दी, कि हे वीरो ! पापी रावण के मारने का समय आ गया है, अब तुम अपने बल से लंका का विध्वंस करो, इन ऊंची ऊंची ध्वजाओं और पताकाओं को जो आकाश में लहरा रही हैं पृथिवी पर गिरा दो और राक्षसी सेना को नष्ट करके रावण का बध करो।

श्रीरामचंद्र जी के इस प्रकार आज्ञा देने पर उन वानरों ने प्रलय काल के मेघ के समान नाद किया। वह तुरंत ही बड़े २ पेड़ों और पर्वत की शिलाओं को उठा कर युद्ध के लिये खड़े हो गए, ऊंची अटारी पर खड़े हुए रावण के देखते देखते वह समुद्र समान बड़ी

सेना लहराती हुई गर्जती हुई, दशो दिशाओं को कंपाय मान करती हुई, लंका पर चढ़ गई। भयानक भूकंप के समान वह वानर वृक्षों पत्थरों मुक्कों और लातों से द्वारों की अटारियों को तोड़ने लगे, वृक्षों और मट्टी से उस बडी खाई को भरने लगे जो लंका को चारों ओर से घेरे हुई थी। क्षण मात्र में उन्हों ने पर्वतों के समान ऊंचे लंका के फाटक चूर २ कर दिये, बीसियों स्थानों से दुर्भेद्य प्राकार को तोड़ फोड़ कर बड़े २ छेद कर दिये। मस्त हाथियों के समान मतवाले हुए २ वह वानर उछलते कूदते और गर्जते हुए लंका का सर्वनाश करने लगे।

इस प्रकार लंका को विध्वस्त होते देखकर रावण भी क्रोध से राक्षसों को युद्ध के लिए नगर से बाहर भेजता भया। तब राक्षस युद्ध की आज्ञा पाकर कानों को फाड़ने वाला सिंह नाद करते भये। वह सहस्रों शंख नरसिंहे और भेरियों के शब्द से शत्रु को भयभीत करते रथों पर, घोड़ों पर, हाथियों पर और पांव प्यादे चलते हुए गर्जना करने लगे। उस समय सुवर्ण के भूषणों से चमकती हुई वह प्रबल राक्षसी सेना ऐसी शोभा देने लगी जैसे काली घटाओं में बिजली शोभा देती है। वह दूसरे समुद्र के समान अतुल बल वाली राक्षसी सेना लंका से बाहर निकलते ही बड़े वेग से वानरों पर टूट पड़ी। दो समुद्रों के समान दोनों सेनाओं के

टकरानेसे बड़ा भयानक शब्द उठा । वह दोनों एक दूसरे पर प्राणों का मोह छोड़ कर प्रहार करने लगे । रथों की घरघराहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़ें वानरों के सिंहनाद और राक्षसों के जयकारों से दशों दिशाएं गूंज उठी, तोमर मुद्गर शूल पट्टिश और तलवारों की चोटों से सहस्रों बानर पृथिवी पर गिरने लगे । उधर वृक्षों, लातों मुक्कों और दांतों तथा नखों के प्रहार से सहस्रों राक्षस मरने लगे, गिरने लगे, कटने लगे, और फाड़े जाते हुए हाहाकार करने लगे और इस प्रकार थोड़े ही समय में समुद्र तट से लेकर लंका तक की भूमि लहु से भर गई ।

मेघनाद का नाग फांस से राम लक्ष्मण को बांध लेना ।

दोनों सेनाओं को लड़ते लड़ते सूर्य्य अस्त हो गया और प्राण संहारिणी रात्रि आ गई । तब प्रगाढ़ अंधकार में रजनीचर राक्षस दुगने उत्साह से लड़ने लगे । उधर वानरों ने भी दुगने बल से आक्रमण किया । उस अंधकार में यह राक्षस है यह वानर है इस प्रकार पुकार २ कर दोनों एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । चारों ओर से 'मार डालो' 'चीर डालो' 'फाड़ डालो' का तुमुल शब्द उठने लगा । उस भयानक रात्रि में सुवर्ण के कवचों वाले राक्षस क्रोध से पागल हुए २ मानों वानरों को खा रहे थे और जलते हुए अग्नि के तुल्य तेज वाले

CALCUTTA
ART PG. WORKS.
LAHORE

अशोक वाटिका में जानकी दर्शन

(पृष्ठ ३९५)

रक्त मुख वानर पत्थरों वृक्षों और दांतों तथा नखों से उस अपार राक्षसी सेना को ध्वस्त कर रहे थे। घोड़ों के खुरों और रथों के पहियों से उड़ी हुई धूल सैनिकों के मुख नाक और आंखों को बंद कर रही थी । तब श्री रामचन्द्र जी ने मन में सीता को स्मरण करके राक्षसों के संहार के लिए धनुष को हाथ में लिया और राक्षसों पर बाणों की वृष्टि करने लगे। उन बाणों से सहस्रों राक्षस कट२ कर गिरने लगे। प्रगाढ़ अंधकार में राघव के जलते हुए बाण आकाश से गिरते हुए ऐसे प्रतीत हुए मानों प्रलय काल में तारे टूट टूट कर इस पृथिवी का क्षय कर रहे हैं। उन बाणों से पीड़ित हुए २ राक्षस मरने लगे और प्राण बचाकर भागने लगे, अपनी सेना की दुर्दशा देख कर रावण के पुत्र इन्द्रजित के नेत्र क्रोध से जलने लगे। उस भयंकर राक्षस ने नाग बाणों की फांसी से दोनों दशरथ कुमारों को फांस लिया और वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गए।

श्री रामचन्द्र जी के गिरते ही मेघनाद ने मेघके समान जय नादसे दशों दिशाओं को कंपा दिया। और अट्टहास करता हुआ बोला, कि खर और दूषण को मारने वाले, मारीच और कबन्ध का बध करने वाले, शूर्पणखाको विरूप करने वाले दशरथकुमार नाग फांस में बांध लिये गये जिनके निमित्त आज सहस्रों बानरों और राक्षसों के रक्त बह रहे हैं, वह आज नाग फांस में फंसे हुए

पृथिवी पर गिर पड़े हैं, अब देवता दानव दैत्य किसी की शक्ति नहीं जो इस नाग फांस को खोल सके। युद्ध की सच्चे अर्थों में समाप्ति हो गई और सारा अनर्थ शान्त हो गया।

इस प्रकार कहता हुआ मेघनाद बड़े हर्ष से लंका पुरी में वापस चला गया।

इधर राम लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने से वानरों के हृदय शोक से मुरझा गये, अंगद हनुमान सुग्रीव नल नील आदिक मुख्य २ वानर दशरथ कुमारों को घेर कर किं कर्तव्य विमूढ़ वत देखने लगे। तब सब को भयभीत देखकर विभीषण बोले, हे शूरवीरो! मत डरो, क्यों रोते हो, यह नागफांस राघवों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। राघव मरने वाले नहीं, देखो इन के मुखों की कान्ति इन को छोड़ नहीं रही। सो तुम शीघ्र अपने २ मोर्चों पर डट जाओ और सेना को युद्ध के लिए सज्जित करो।

उधर जयनाद करता हुआ मेघनाद रावण के पास जाकर यह शुभ सूचना देता भया, कि हे महाराज! राम लक्ष्मण नाग फांस से फांसकर गिरा दिये हैं अब उन की मृत्यु में कुछ भी संदेह नहीं रहा।

पुत्र के मुखसे यह हर्ष समाचार सुनकर रावण का मुर्झाया हुआ हृदय कमल खिल गया और वह प्रेम से पुत्र को गले लगाकर उसको आसन देता भया।

सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर पृथिवी पर गिरे हुए
राम लक्ष्मण दोनों भाइयों का दिखलाना ।

राम और लक्ष्मण का मृत्यु समाचार सुनकर रावण ने सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों को आज्ञा दी कि हे राक्षसियो सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर संग्राम भूमि में लेजाओ और उसे दोनों भाईयों को दिखाओ जो पृथिवी पर मरे पड़े हैं ।

रावण से आज्ञा दी हुई राक्षसियां तत्काल अशोक वाटिका में गईं और सीता को विमान पर बैठाकर रण भूमि में ले जाती भयीं । वहां जाकर जानकी ने देखा, कि राक्षसों की सेना बड़े हर्ष से जय नाद कर रही है। और वानरी सेना छिन्न भिन्न हो रही है। उस समय वानर दुख से रो रहे थे और पृथिवी पर गिरे हुए राम लक्ष्मण को घेरकर हाय हाय कर रहे थे। धूल से भरे हुए, टूटे हुए कवचों वाले बाणों की सेजा पर सोए हुए दोनों भाईयों को देखकर सीता के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली और वह फूट फूट कर रोने लगी, कि हाय ! आज मैं अनाथ हो गई, आज उन ज्योतिषियों के कथन झूठे होगये जो कहा करते थे, कि मैं सधवा और सपूती हूंगी, वह कहा करते थे कि मेरा पति अश्वमेध यज्ञ करेगा और मैं समस्त राज पत्नीयों से पूजी जाऊंगी, आज उनका यह कथन मिथ्या हो गया कि पति के साथ मेरा राज्याभिषेक होगा, हा दैव ! आज मैं

कहीं की न रही । जिन वीरों ने जन स्थान का नाश करके मेरी खोज निकाली और जो अगाध समुद्र को पार करके यहां आ पहुंचे, अब इस स्थान पर सदा के लिये सोए पड़े हैं । हे भगवान् ! वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र और वायव्य अस्त्रों को जानने वाले किस प्रकार मारे गए । अवश्य ही मायावी रावण ने माया से छिप कर इन्हे मार डाला है, क्योंकि तीनों लोक में कोई भी ऐसा वीर नहीं है जो सन्मुख होकर इन से युद्ध कर सके । हे त्रिजटे ! अब मैं भी इन के पीछे चलूंगी, क्योंकि सती स्त्रियों का यही धर्म है । हे सखि ! मुझे अपने पति और देवर के मरने का अब शोक नहीं और नां ही अपनी चिंता है मुझे तो इस समय उस तपस्विनी कौशल्या के लिए दुख है, जो वर्षों से वियोग के दुख को इस आशा से सहन कर रही है, कि थोड़े दिनों तक बनवास का काल समाप्त करके बधु सहित राम और लक्ष्मण आएंगे । हा कुल कलंकिनी कैकेयी ! तू ने सूर्य्य वंश का नाश कर डाला ।

जानकी को इस प्रकार विलाप करते देखकर त्रिजटा राक्षसी उसे धीरज देती हुई बोली हे जनक दुलारी ! मत रो, यह तुम्हारा पति और देवर दोनों भाई जीते हैं ! हे कमल नयनि ! यदि राम मर जाते, तो वानर सेना कभी की भाग गई होती, परंतु मैं उन को फिर मोर्चों की ओर जाते देखती हूं । हे मैथिलि ! यह देख वानरों सहित

सुग्रीव दोनों भाईयों की रक्षा कर रहे हैं, सो अवश्य ही यह मूर्छा से जागेंगे और राक्षसों का नाश करके तुझे ले जाएंगे ! मेरा अनुमान कभी झूठा नहीं होता, हे क्षीणोदरि ! मैं तुझे हृदय से प्रेम करती हूं, इस कारण कभी मिथ्या वचन नहीं कहती सो तू शोक और मोह का त्याग करके धीरज धारण कर। इस प्रकार पति के दुख से संतप्त सीता को धीरज देकर त्रिजटा विमान को फिर अशोक वाटिका में ले आई।

गरुड़ का आना और नाग फांस का काटना।

अब नागों के बंधन में फंसे हुए वह दोनों वीर लहु से भरे हुए सर्पों की नांई श्वास ले रहे थे और विभीषण सुग्रीव हनुमान अंगद आदिक वानर उन की रक्षा कर रहे थे, कि इतने में बड़े वेग से वायु चलने लगा। समुद्र में भारी क्षोभ होने लगा और एका-एक बिजली की गर्ज से गर्जना करता हुआ कज्जल समान मेघ छा गया। अकस्मात् इस भयंकर उत्पात को देखकर सब वानर और राक्षस भयभीत हो गये और मुंह उठाये आकाश की ओर देखने लगे। इतने ही में विनता का पुत्र गरुड़ आकाश मार्ग से उड़ता हुआ आया। उस की देह प्रचण्ड अग्नि के समान जाज्वल्यमान थी। उस ने आते ही श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण के शरीर को स्पर्श किया। उस के स्पर्श करते ही वह सब नाग क्षण

मात्र में भागकर पृथिवी में छिप गए। अब नागों के भाग जाने से दोनों भाईयों ने नेत्र खोल दिये, उन के पीले हुए हुए शरीर पहले की तरह फिर चमकने लगे। और उनके बल पराक्रम तथा तेज पहले से दुगने हो गए। तब इन्द्र के समान तेजस्वी राम ने गरुड़ को कंठ से लगा कर कहा, हे वैनतेय! तुम्हारी कृपा से हम दोनों मेघनाद की नागफांस से मुक्त हुए। हे पक्षिराज! आप के दर्शनों से हम ऐसे प्रसन्न हुए जैसे अपने पिता को देखकर कोई बालक प्रसन्न होता है। श्री रामचन्द्र जी के इन वचनों से परम प्रीति को प्राप्त होकर गरुड़ बोला हे राघव! मैं आप का प्रिय मित्र हूं और सदैव बनों और पर्वतों में विचरण करता हूं। हे राघव! मायावी मेघनाद की इस नागफांस को देवता दानव मनुष्य तथा राक्षस खोलने में समर्थ नहीं हैं। मैंने आप के नागफांस से बंधे जाने का समाचार सुना था, इसी कारण मैं यहां पहुंचा हूं। हे राघव! समय पर सहायता करना मित्र का धर्म है, अब मैंने इस घोर फांस से तुम्हें मुक्त कर दिया है, आगे से सदा सावधान होकर युद्ध करो! यह राक्षस बड़े क्रूर कपटी और कूट युद्ध करने वाले होते हैं, और आप बड़े सरल स्वभाव वाले हैं, सो सदा अप्रमत्त होकर रहो। यह कहकर गरुड़ विदा हुआ।

अब श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण को स्वस्थ देखकर वानरों के हर्ष का पारवार न था। वह बारंबार

सिंह नाद करते, मृदंग भेरी और नगाड़ें बजाते, ध्वजाओं को आकाश में फहराते हुए राक्षसों को भय-भीत करने लगे ।

धूम्राक्ष का युद्ध ।

हर्ष से उन्मत्त हुए हुए वानरों के सिंहनाद को सुन-कर रावण ने अपने सचिवों से कहा, कि हे मंत्रियो! इन्द्रजित ने राम लक्ष्मण को मार डाला है, यह सुनकर मैं निश्शंक हो गया था परंतु अब फिर वानरों के जय घोष और गर्जना सुनकर मेरे मन में शंका होती है, तुम शीघ्र जाकर देखो, कि कौन सी ऐसी बात हुई है जिस से वानर इतने प्रसन्न हुए हैं। तब वह राक्षस जल्दी से अटारी पर चढ़कर देखने लगे और रावण को सूचना देते भये, कि हे राजन! जिन दोनों भाईयों को इन्द्रजित ने नागफांस से बांधा था वह दोनों फांस से मुक्त हो गये हैं और युद्ध भूमि में मदमत्त गजेन्द्रों के समान गर्ज रहे हैं। यह अप्रिय बात सुनकर उस राक्षस राज का तपता हुआ मुख मंडल फीका पड़ गया परंतु अपने शोक को दबाकर उसने धूम्राक्ष को आज्ञा दी, कि हे वीर पुंगव! तुम अकेले ही सहस्रों मनुष्यों को मारने में समर्थ हो, सो बड़ी सेना लेकर युद्ध भूमि में जाओ और वानरों समेत राम लक्ष्मण का वध करो।

तब वह महाबलि, रावण की प्रदक्षिणा करके सेना

सहित लंका से बाहर निकला। रण क्षेत्र में पहुंचते ही वह विकराल सेना तुमुल गर्जना करती भयी। उस समय शूल गदा तोमर भाले पट्टिश आदि शस्त्रों से सुसज्जित राक्षसों से घिरा हुआ धूम्राक्ष प्रलय काल के मेघ के समान गर्जता हुआ वानरों के लिये बड़े भय का कारण हुआ।

धूम्राक्ष का मारा जाना।

बड़े पराक्रम वाले, काली घटा के समान राक्षसी सेना से घिरे हुए धूम्राक्ष को युद्ध क्षेत्र में उतरते देखकर वानरों की सेना में रोष और क्रोध का वार पार न रहा, वह अपने तेज से शत्रुओं को जलाते हुए भयानक सिंह नाद करते भये। तब क्रुद्ध हुए २ राक्षस कंक पत्रों वाले तीक्ष्ण बाणों से वानरों को घायल करने लगे। इधर वानर भी रामचन्द्र जी की जय, इस प्रकार बारंबार नाद करते आंधी के समान शत्रु सेना पर टूट पड़े और बड़े २ पत्थरों से राक्षसों को चूर २ करने लगे। पत्थरों वृक्षों और मुक्कों से दले हुए वह निशाचर जो दूसरों का रक्त पान करते थे स्वयं लहु की उलटीयां करने लगे। उधर राक्षसों के बाणों त्रिशूलों और मुद्गरों की चोटों से गिरे हुए सहस्रों वानर रक्त में लतपत हो गये। अनेक तो मर गये, बहुतों के सिर पिस गए, बहुतों के हाथ पाओं और कमर की हड्डीयां टूट गईं, वानरों और राक्षसों के उस तुमुल संग्राम में उस समय शस्त्रों की

झंकार, हाथियों की चिंघाड़ और घायलों के हाहाकार के सिवा और कुछ सुनाई नहीं देता था। रक्त की बहती हुई नदी में जिधर आंख उठती, चमकते हुए शस्त्र, गिरते हुए पत्थर और शिलाएं, तथा वानरों से घुमाए जाते हुए वृक्ष दिखाई देते थे। तब मदोन्मत्त धूम्राक्ष युद्ध भूमि के मस्तक पर पाओं देकर अट्टहास करता हुआ जलते हुए बाणों से बानर सेना को भस्म-सात् करने लगा। उस के बाणों की मार से पीड़ित हुए २ वानर दशों दिशाओं को भागने लगे। जो भी उसके सामने आया काल का ग्रास बन गया और फिर न उठा। वानर सेना की यह दुर्दशा देखकर हनुमान के नेत्र क्रोध से जल उठे और वह भारी शिला उठाकर धूम्राक्ष पर टूट पड़ा, और उस अनंत पराक्रम वाले ने शिला को धूम्राक्ष के रथ पर फैंका। उस भारी शिला को अपनी ओर आते देखकर गदा हाथ में लेकर बड़े वेग वाला धूम्राक्ष रथ से कूदकर पृथिवी पर आ गया और सिंह नाद करने लगा। उस शिला के गिरने से धूम्राक्ष का रथ चूर २ हो गया, घोड़े मर गए और सारथि पिस गया। यह देखकर पवन पुत्र हनुमान दांतों को कटकटाता हुआ राक्षसी सेना का भयानक संहार करने लगा। उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों ओर वेग से राक्षसों का संहार करता हुआ वह वज्र देह ऐसी शोभा देने लगा जैसे दावानल अग्नि बन को जलाता

है, उस समय वह सब राक्षस उस को साक्षात् यम के समान देखते भये और भयभीत होकर ऐसे भाग उठे जैसे पवन अपने वेग से काली घटाओं को छिन्न भिन्न कर देता है। त्राहि २ करते हुए गिरते हुए, भागते हुए और मरते हुए राक्षसों को छोड़ कर वह तेजस्वी फिर धूम्राक्ष की ओर दौड़ा। इन्द्र कुलिश समान हनुमान को अपने उपर आक्रमण करते देखकर, महाबलि धूम्राक्ष ने लोह कांटों से भरी हुई गदा को उस के सिर पर मारा। उस गदा प्रहार से हिमालय के समान अचल हनुमान तनिक भी विचलित न हुआ और एक भारी शिला उठाकर इस जोर से प्रहार किया कि धूम्राक्ष की हड्डीयां पिस गईं और वह सदा के लिये मट्टी में मिल गया धूम्राक्ष के मारे जाने पर शेष सब राक्षस दशों दिशाओं में भाग निकले।

वज्र दंष्ट्र नामक राक्षस का मारा जाना।

धूम्राक्ष के मारे जाने पर वानर हर्ष से जय घोष और सिंह नाद करते हुए लंका को कंपायमान करने लगे। रावण ने जब धूम्राक्ष के मारे जाने का समाचार सुना तो वह क्रोध से पागल हो गया और नेत्रों से अग्नि बर्साता हुआ बड़े बल वाले वज्र दंष्ट्र नामक सर्दार को आज्ञा देता भया कि हे वीर! भयंकर राक्षसी सेना लेकर तू युद्ध में जा और हनुमान

आदि वानरों सहित राम लक्ष्मण का बध कर ।

लंका पति रावण से आज्ञा दिया हुआ वह मायावी अपनी भीम कर्म वाली राक्षसी सेना को लेकर दक्षिण राक्षस द्वार से बाहर निकला। उस द्वार पर बालि का तेजस्वी पुत्र अंगद भयंकर वानर सेना सहित खड़ा था। वज्र दंष्ट्र के बाहर निकलते ही किचकिचाते हुए वानर उस पर टूट पड़े, तब दोनों ओर से सैनिक सुभट भयंकर युद्ध में प्रवृत हुए । थोड़े ही काल में वह भूमि मृतकों से, टूटे हुए हारों से, छत्रों से, शस्त्रों से और कटे हुए अंगों से भर गई । कटे हुए सिर ओलों के समान पृथिवी पर गिरने लगे और कबंध हाथों में शस्त्र गहे प्रहार करने लगे । अंगद की बारंबार गर्जना और वानरों के सिंह नाद ने राक्षसों के साहस तोड़ दिये और वह कायरों के समान भागते हुए मारे जाने लगे । अपनी सेना को मरते कटते और भय से भागते देखकर सूर्य्य के समान जलता हुआ प्रचण्ड वज्र दंष्ट्र रथ को दौड़ाता हुआ वानरी सेना के मध्य में आया और कंक पत्रों वाले तीक्ष्ण बाणों से वानरों को पीड़ित करने लगा । सर्प के समान डसने वाले उस के बाणों की मार को न सहकर वानरी सेना अपने प्राण बचाने के लिए भागने लगी इस प्रकार वानरों को काल का ग्रास होते और साहस छोड़कर भागते देखकर महाबलि अंगद क्रोध से वज्र दंष्ट्र को ललकारने लगा, कि हे राक्षस खड़ा रह, अब

तेरा काल निकट आ गया है, धूम्राक्ष को जहां भेजा है वहीं तू भी जा । यह कहकर वह वानरेन्द्र वज्र दंष्ट्र पर टूट पड़ा । तब वह दोनों बलि मदमत्त हाथियों के समान एक दूसरे से जुट गए । एक दूसरे पर प्रहार करते हुए वह दोनों रक्त से लतपत होकर फूले हुए केसुओं की नांई समर क्षेत्र में शोभा देने लगे । तब वालि पुत्र अंगद ने शरत्काल के आकाश के समान निर्मल चमकती हुई तलवार से वज्र दंष्ट्र के सिर को काट लिया । वज्र दंष्ट्र के मरते ही सहस्रों वानर जय नाद करते हुए राक्षसी सेना को फाड़ने लगे । तब सेना पति के मारे जाने से वह राक्षसी सेना अपने मृतकों और घायलों को रण भूमि में छोड़ कर भाग निकली ।

सेनापति अकंपन का वध ।

जब रावण ने सुना कि अंगद के हाथों सेनापति वज्रदंष्ट्र मारा गया है तो उस ने अकंपन को आज्ञा दी, कि हे देवताओं और मनुष्यों के जीतने वाले! जैसा तेरा नाम है वैसा ही तेरा बल है, तू राक्षसी सेना के साथ जाकर राम लक्ष्मण का वध कर । मुझे विश्वास है, कि तू रण में वानरों सहित सुग्रीव को जीत लेगा, सो हे नरशार्दूल ! शीघ्र जाकर अपने नाम को सार्थक कर ।

तब रावण की आज्ञा से मेघ की नांई काला अकंपन सुवर्ण के रथ पर चढ़कर समुद्र समान गर्जती हुई सेना को साथ लेकर लंका से बाहर निकला। उस के बल और पराक्रम के सामने मनुष्य तो क्या देवता भी ठहर नहीं सकते थे। अपनी सेना में वह सूर्य्य की नांई देदीप्यमान हो रहा था। लंका से बाहर निकलते ही राक्षसों ने ऐसा सिंहनाद किया, कि उसे सुनते ही वानर सेना भयभीत होगई और क्षण मात्र में ही दोनों सेनाएं एक दूसरे पर टूट पड़ीं। राम के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले वानर घोर युद्ध में प्रवृत हुए। बादलों के समान घोर गर्जना करते हुए बड़ी २ देहों वाले वानर और राक्षस एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। उन सब के ललकारने लड़ने दौड़ने और शस्त्र प्रहार करने से ऐसा प्रतीत होने लगा मानों आंधी से क्षुब्ध हुआ २ समुद्र गर्ज रहा हो। उस समय ऐसी धूल उठी कि सब दिशाएं अंधकार मय होगईं न तो वहां झंडे दीखते थे न हाथी न घोड़े न रथ और न कोई वानर अथवा मनुष्य ही देख पड़ता था केवल सैनिकों के गर्जने और दौड़ने के शब्द सुन पड़ते थे उस घोर अंधकार में सहस्रों ही वानर वानरों के हाथों से मारे गए और सहस्रों ही राक्षस राक्षसों द्वारा मार दिये गये। उस अंधकार से भरे हुए युद्ध क्षेत्र में वानर और राक्षस की कोई पहचान न थी, जो जिस के

सामने आया मारा गया। थोड़े ही समय में वीरों के रुधिर से धूल दब गई । रण भूमि लोथों से भर गई। तेजस्वी वानर गदा तोमर शूल और परिघों के मारे सहस्रों की संख्या में भूमि पर गिर रहे थे उधर वानर भी अपने भुज दण्डों वृक्षों पर्वतों और दांतों से सहस्रों राक्षसों को यम लोक में भेज रहे थे। इस प्रकार लड़ते लड़ते वानरों ने बडी बीरता से राक्षसों के मुंह फेर दिये। जब अकंपन ने अपनी सेना के पांओं उखड़ते देखे तो उस ने अपने सारथि को आज्ञा दी कि हे वीर ! शीघ्र मुझे वहां ले चल जहां यह वानर सेना राक्षसों का भयानक संहार कर रही है। देखो यह वानर मेरी सेना का मेरे देखते २ नाश कर रहे हैं, अब में अपने तीक्ष्ण बाणों से इन को यम लोक में भेजूंगा। तब अकंपन से आज्ञा दिया हुआ सारथी रथ को वानरों के सिर पर ले गया। वहां पहुंच कर अकंपन बादल के समान गर्जा और फिर जलते हुए बाणों से वानर सेना को दग्ध करने लगा, उन बाणों से पीड़ित हुए २ वानर चारों ओर भागने लगे । वानरों को पतंगों की नाईं मृत्यु के मुख में जाते और प्राण लेले कर भागते देखकर तेजस्वी हनुमान युद्ध के लिए आगे बढ़े। बाणों की वर्षा में छाती को उभारे हाथ में पर्वत के बड़े टीले को थामे हनुमान को आगे बढ़ते देखकर सहस्रों वीर वानर उसके पीछे २ चले। पर्वत

के तुल्य देह वाले वज्र देह को आते देखकर अकंपन बड़े वेग से बाणों को छोड़ने लगा परन्तु उस की परवा न करके हनुमान हंसता गर्जता उस की ओर ऐसे दौड़ा जैसे पूर्व काल में नमुचि पर देवराज इन्द्र दौड़ा था। राक्षसी सेना को भयभीत करते और पृथिवी को कंपाते हुए हनुमान को आक्रमण करते देखकर अकंपन ने दूर से ही अर्धचन्द्राकार बाण छोड़ा और उस पर्वत के टीले को चूर २ कर डाला। तब युद्धोन्मत्त पवन पुत्र ने कर्णिकार के एक वृक्ष को उखाड़ा और बड़े बल से उसे घुमाता हुआ अकंपन की ओर दौड़ा। उस महाबलि के दौड़ने से सैंकड़ों ही वृक्ष टूट २ कर धरणी पर गिर पड़े। तब जलते हुए अग्नि के समान उस तेज पुञ्ज हनुमान पर अकंपन ने चौदह बाण छोड़े, जिन से घायल होकर वह कपीन्द्र रक्त से रंगा गया। उस समय वह बड़े पराक्रम वाला अंजना का पुत्र गेरी के लाल पर्वत के समान शोभायमान हुआ। उन बाणों से तनिक भी विचलित न होकर महावीर हनुमान जलते हुए अग्नि के समान फिर आगे बढ़ा और बड़े बल से उस वृक्ष को अकंपन के सिर पर दे मारा। वृक्ष के सिर पर लगते ही अकंपन प्राण हीन होकर पृथिवी पर गिर गया। तब सब राक्षस थर थर कांपने और शस्त्र छोड़ २ कर भागने लगे। उन भागते हुए राक्षसों को वानरी सेना ने वृक्षों और पत्थरों से कुचल दिया। उस समय राक्षसों की घोर

दुर्गति हुई । वह गिरते पड़ते बिना पीछे देखे ही भागते गये और अपने शस्त्रों मृत्तकों तथा घायलों को रण भूमि में छोड़ कर पुरी के अंदर घुस गए ।

प्रहस्त का मारा जाना ।

शूरवीर अकंपन के वध का समाचार सुनकर रावण बड़े शोक में डूब गया और रात्रि भर अपनी अवस्था पर विचार करता रहा । प्रातःकाल उठकर वह मंत्रियों सहित लंका से बाहर निकला । वहां उस ने वानरों के नगर रोध को, उनके मोर्चों को और राम की समुद्र समान अपार सेना को देखा । सब प्रकार से शत्रु की परिस्थिति को समझ कर उस ने अपने सेना पति प्रहस्त को कहा, कि हे महाबाहो ! यह देखो, वानर सेना ने लंका को चारों ओर से घेर लिया है । चार दिन के संग्राम में मेरी बहुत सी सेना मारी गई है, इससे सब सैनिकों के हृदय चिंता से दबे हुए प्रतीत होते हैं । नगर निवासी खाने पीने की सामग्री न मिलने के कारण अत्यन्त दुखी हैं । हे शत्रुञ्जय ! इस वानरी सेना को देखकर मुझे निश्चय हो गया है । कि यह काम साधारण राक्षसों से न होगा । इस दुस्तर वानर सागर को मथने के लिए कुम्भ कर्ण को, मेघनाद को, तुम्हें अथवा मुझे ही आगे होना पड़ेगा, सो तुम राक्षसों की भयंकर सेना लेकर युद्ध में जाओ, तुम युद्ध कला में बड़े निपुण हो,

यह वानर चंचल हैं वीर हैं, प्राणों पर खेल जाने वाले हैं, परन्तु शिक्षित नहीं है, नियम मे लड़ना नहीं जानते, युद्ध नीति मे नितान्त अनभिज्ञ हैं, इस कारण नियम बद्ध और शिक्षित सैनिकों के सामने नहीं ठहर सकेंगे। हे सेनापति! शीघ्र जाकर राम लक्ष्मण सहित इस वानर दल का संहार करो, जाओ तुम्हारा कल्याण हो। रावण के ऐसा कहने पर सेनापति प्रहस्त ने म्यान मे तलवार निकाल कर उत्तर दिया, हे राजन् आज मैं आप के अन्न को सार्थक करूंगा, आज मेरे खड्ग मे रण चण्डी प्रसन्न होगी, आज वानरों के रक्त और मांस मे चील कौए और गीदड़ आदिक जंतु तृप्त होंगे, यह कहकर प्रहस्त ने रावण के चरणों को स्पर्श किया और भयानक राक्षसी सेना के साथ मेघ के समान गर्जना करता हुआ लंका मे बाहर निकला।

कज्जल समान पर्वताकार प्रहस्त को लंका से बाहर निकलते देखकर श्री रामचन्द्र जी ने विभीषण को हंसकर पूछा, कि हे लंकेश! हाथी के समान मोटी देह वाला यह कौन है, और कैसा इसका बल है? तब विभीषण ने उत्तर दिया, हे राघव प्रहस्त नामक यह राक्षस रावण का सेनापति है, लंका की सेना का तृतीयांश इसके अधिकार में है, अपनी सेना को लेकर यह युद्ध के लिए आ रहा है। यह बड़ा बलवान् अस्त्र शस्त्रों के जानने वाला शूर वीर और युद्ध कला में निपुण है।

विभीषण के मुख से प्रहस्त का बल और पराक्रम सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव से कहा, कि हे कपीन्द्र ! इस हाथी के से डील वाले राक्षस को मार कर रावण का दर्प चूर २ करो, इस के मरने पर रावण का बल टूट जाएगा। तब सुग्रीव की आज्ञा पाकर गर्जती हुई वानर सेना राक्षसों पर टूट पड़ी ! उधर राक्षस भी तोमर मुद्गर शक्ति प्राम शूल और बाणों से वानरों की हड्डियां तोड़ने लगे। देखते ही देखते संग्राम क्षेत्र लोथों से पट गया। क्रुद्ध हुए २ रक्षासों ने सहस्रों वानरों को पृथिवी पर सदा के लिए सुला दिया। उधर लाल मुखों वाले बानरों ने भी वृक्षों और पत्थरों की मार से सहस्रों राक्षसों के प्राण ले लिए। राक्षसों की तलवारों से क्षण क्षण में सैंकडों वानर कट कट कर गिरने लगे। और वानरों के वज्र तुल्य थप्पडों मुक्कों और धौलों से गिरे हुए राक्षस रक्त की उल्टीयां करने लगे। उस समय कभी तो सिंह नाद से पृथिवी कांप उठती और कभी आर्तनाद से आकाश फटने लगता। राक्षस और वानर मुंह फैलाए हुए एक दूसरे को ललकारने और रक्त की नदियां बहाने लगे। ऐसा घमसान का रण ठन रहा था और दोनों सेनाओं के सुभट योद्धाओं के समान वीर गति को प्राप्त हो रहे थे कि द्विविद नामक वानर ने प्रहस्त के मंत्री नरान्तक को जो चारों ओर दौड़ दौड़ कर वानरों के प्राण ले रहा था, भारी पत्थर से मार

डाला , दुर्मुख नामक मुख्य वानर ने समुन्नत नामक राक्षस को जो प्रहस्त का दूसरा मंत्री था और वानर सेना को अपने तीक्ष्ण बाणों से यम पुरी में भेज रहा था एक वृक्ष के प्रहार से मार डाला । उधर ऋक्षराज जांबवान ने एक भारी शिला से महानाद को पीस डाला और तार नामक वानरों के सर्दार ने कुम्भहनु नामक प्रहस्त के चौथे मंत्री को नखों से फाड़ कर प्राण हीन कर डाला । अपने चारों मंत्रियों के मारे जाने पर प्रहस्त क्रोध से जल उठा और वानरों की सेना के मध्य में रथ को खड़ा करके चारों दिशाओं को बाणों से पीड़ित करने लगा । उस की प्रत्यंचा से छूटे हुए बाणों से वानरों के अपार सैन्य दल में ऐसा क्षोभ उत्पन्न हुआ जैसे आंधी आने पर समुद्र खलबला उठता है । थोड़े ही समय में उस ने वानरों के रक्त की नदी बहा दी, वानर भी प्राणों का मोह छोड़ कर उस पर टूट पड़े और दुर्मद राक्षसी सेना में प्रलय मचाने लगे । उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानों पावस ऋतु में नदी में बाढ़ आ गई है, वानरों और राक्षसों का रुधिर ही उस का जल है, सहस्रों टूटे फूटे शस्त्र ही उस नदी में मानों वृक्ष हैं, सैनिकों के यकृत प्लीहा तथा अंतड़ियां ही उस में दलदल वा कीच है, और घायलों के आर्तनाद ही मानों जल की गर्जना है, उस महा नदी को पार करने की इच्छा से प्रहस्त अपने रथ रूपी जहाज पर सवार है । सेनापति

प्रहस्त को इस प्रकार बानरों को पीड़ित करते देखकर वानर सेनापति नील पर्वत का एक टीला हाथ में थाम कर उस की ओर दौड़ा, यमराज के समान उस वानरेन्द्र नील को अपनी ओर आते देखकर प्रहस्त सब ओर से हटकर उसी पर बाण वृष्टि करने लगा। परन्तु हिमालय के समान अचल नील अपने पत्थर के तुल्य कठोर शरीर पर बाणों को सहन करता हुआ उस पर टूट पड़ा और उस टीले को प्रहस्त पर फेंककर उस के रथ और घोड़ों को चूर २ कर देता भया। तब मेघ के समान गर्जता हुआ प्रहस्त बड़े वेग से मूसल हाथ में लेकर रथ से कूद पड़ा। तब वह दोनों सेनापति मस्त हाथियों के समान एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। इन्द्र और वृत्र की नांई—वह दोनों लड़ते हुए बड़ी शोभा को धारण करते भये। देर तक युद्ध करते २ जब दोनों में से किसी ने भी मुख न मोड़ा तो प्रहस्त ने बड़े क्रोध से नील के सिर पर मूसल का प्रहार किया। मूसल के लगने से नील का सिर फट गया और उस के सिर से रुधिर की धारा बह निकली, इस पर नील के क्रोध का अग्नि भभक उठा और उसने पास पड़ी हुई शिला को उठाया और इस वेग से उसे प्रहस्त पर पटका, कि प्रहस्त का सिर चकना चूर होगया और वह आंखों की पुतलियां घुमाता हुआ पृथिवी पर प्राण हीन होकर गिर पड़ा प्रहस्त के गिरते ही वानरों ने जय नाद से आकाश को गुंजा दिया और

भागते हुए राक्षसों को पत्थरों से पीस डाला ।

रावण का कुम्भ कर्ण को जगाना ।

प्रहस्त के मरने का समाचार सुनकर रावण का हृदय डोल गया, और वह बड़े २ योद्धाओं के होते हुए भी अपने आप को दीन दुर्बल और अस्सहाय समझने लगा । अंत में बहुत देर विचार करने के पश्चात् उस ने मंत्रियों से कहा, कि देखो जिस प्रहस्त को मैं अपनी भुजा समझता था आज वह भुजा टूट गई । अब मैं अपने आप को उस वीर से रहित पाता हूं, जिस के बल पर मैं तीनों लोकों के विजय करने का भरोसा रखता था सो अब तुम राक्षसों को लंका के द्वारों पर सावधानी से खड़ा रहने की आज्ञा दो और मेरे भाई कुम्भ कर्ण को जगाओ जो बड़ा दुर्मद और देवताओं को भी जीतने की सामर्थ्य रखता है । वह अवश्य ही वानरी सेना को नाश करेगा और युद्ध सागर में लंका की डूबती हुई नौका को पार लगाएगा ।

तब रावण की आज्ञा पाकर बडे २ राक्षसपति मांस मदिरा और फूल मालाएं लेकर वहां पहुंचे जहां कुम्भकर्ण ब्रह्मा के शाप से सो रहा था । वहां जाकर उन्हों ने रावण के भाई को फैले हुए पर्वत के समान अस्त व्यस्त सोते देखा। उस राक्षस के रोम खड़े हुए थे, और वह बड़े अजगर की नांई दुर्गंधित श्वास

छोड़ रहा था, कुम्भ कर्ण को इस प्रकार प्रगाढ निद्रा में सोते देखकर वह राक्षस उसे जगाने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने उसे ज़ोर २ से हिलाया परंतु जब वह इस प्रकार न जागा, तो लाठियों और मूसलों के प्रहार से उसे जगाने लगे,इस तरह पर भी जब वह उसकी निद्रा को न तोड़ सके तो ढोल नगाडे और तुरहियां बजाने लगे, परन्तु शाप से सोया हुआ वह इस पर भी न जागा अंत में तोपों के दाग़ने सैकड़ों ढोल पीटने और सहस्रों राक्षसों के कोलाहल करने तथा हिलाने डुलाने से उस की नींद टूट गई। नींद के उचट जाने पर कुम्भ कर्ण ने पर्वत शिखर के समान विशाल भुजाओं को फैलाकर जंभाई ली और फिर अनेक भैंसे और बहुत से पशु खाकर तथा मदिरा के कई घड़े पान करके वह स्वस्थ होकर बोला, हे राक्षसो ! कहो किस लिए तुम ने मुझे जगाया है, क्या राजा कुशल मंगल से तो है? तब राज मंत्री यूपाक्ष हाथ जोड़ कर बोला, हे राक्षसेन्द्र ! पर्वताकार वानरों ने लंका को घेर लिया है, बड़े २ योद्धाओं और सर्दारों समेत अगणित राक्षस सेना कट चुकी है, सेनापति प्रहस्त भी अब इस लोक में नहीं है, लंका जला दी गई है। हे राजन् ! सीतापति राम कोटा-नुकोटि वानर सेना लेकर चढ़ आया है और अब लंका का सूर्य्य अस्त होने वाला है, इस बड़े भय को देखकर राजा ने तुम्हें जगाया है। हे शत्रुओं के दमन करने वाले!

शत्रुओं से पीड़ित रावण को चलकर आप धीरज देवें ! राक्षसों के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर कुम्भ कर्ण शय्या से उठा और फिर स्नान आदिक से निवृत्त होकर रावण की भेंट के लिए चला। स्वर्ण भूषणों से भूषित, पर्वत के तुल्य ऊंचा, निद्रा के मद में मतवाला हुआ २ कुम्भ कर्ण सहस्रों राक्षसों को साथ लेकर शीघ्र ही राज सभा में रावण के पास पहुंचा। वहां रावण को सिंहासन पर बैठे देखकर उस ने उसके चरणों को स्पर्श करके कहा, हे राजन् ! किस लिए मुझे याद किया है ? तब भाई को देखकर रावण अति प्रसन्न हुआ और उसे कंठ से लगाकर बोला, हे महाबल ! बहुत दिनों से तुम सो रहे हो, इस लिए नहीं जानते कि आज लंका की क्या दशा है ? देखो दशरथ नंदन राम वानरों की असंख्य सेना लेकर लंका को विध्वस्त कर रहा है। हे भाई ! अपार सागर पर पुल बांधकर वानरों ने देवताओं को चकित कर दिया है, इस समय लंका के चारों ओर बन उपबन और मैदान वानरों से भरे पड़े हैं, न जाने इतने वानर कहां से आगए हैं कि समुद्र से लेकर लंका के कोटों पर्य्यन्त एक गज भर भूमि भी खाली नहीं रही। मुख्य मुख्य योद्धाओं से लेकर सेनापति प्रहस्त तक सहस्रों राक्षस संग्राम में मारे गए हैं, मेरे तो जन धन और खाने पीने की सब सामग्री भी समाप्त होगई है, परन्तु वानरों को मैं घटते नहीं देखता । हे भाई ! इस बड़े भय को

दूर करने के लिए मैंने तुम्हें याद किया है । देखो लंका के सब युवा पुरुष मारे गए हैं, अब मैं बालकों के रोने और वृद्धों तथा विधवाओं के विलाप को सुनता हुआ शोक सागर में डूब रहा हूं, सो इस डूबती हुई नौका को तुम पार लगाओ,आज तक मैं किसी के सामने इतना दीन नहीं हुआ जितना कि तेरे आगे, तुम पर मुझे भरोसा है और देवासुर संग्राम में देवताओं को खदेड़ते हुए तुम्हें मैंने अपनी आंखों से देखा है, सो तुम युद्ध में जाकर वानरों का संहार करो और लंका को बचाओ ।

रावण के मुख से लंका की ऐसी शोचनीय दशा सुनकर कुंम्भकर्ण इस प्रकार नीति से भरे हुए वचन कहता भया, कि हे भाई ! जो राजा पहले करने योग्य कामों को पीछे और पीछे करने योग्य कर्म्मों को पहले करता है, वह सदा दुख भोगा करता है, देखो,बिना संस्कार के अग्नि में डाली हुई आहुति जैसे कोई फल नहीं देती वैसे ही देश काल के विरुद्ध किए हुए कर्म भी फल नहीं देते। जो राजा नीति शास्त्र के अनुकूल मंत्रियों के साथ ठीक ठीक विचार करता है, और साम दाम दण्ड भेद आदिक का समय पर प्रयोग करता है वही राजा नीतिज्ञ है अन्यथा लाख शास्त्र और वेद पढ़ जाने पर भी वह नितान्त मूर्ख ही होता है और जो मंत्री देश और काल की जांच किए बिना राजा को मंत्रणा देता है, उसे तो तत्काल सभा से बाहर

निकाल देना ही उचित है। हे राजन! मंदोदरी और विभीषण ने जो सम्मति तुझे पहले दी थी, यदि तू उस का अनादर न करता और इन मूर्ख मंत्रियों के भरोसे पर तू व्यर्थ की डींग न मारता तो आज लंका को इस दुर्दशा में न देखता, परन्तु उन की बात को न मानकर तू ने अपने हाथों से लंका को आग लगाई है, और अब उसे जलते देखकर शोक सागर में डूब रहा है, परन्तु अब जो कुछ हो गया उस पर पश्चाताप करना व्यर्थ है, अब मैं तेरे अनुचित कर्म्मों के कारण आये हुए भय को अपने बल से दूर करूंगा, हे राक्षस पति! मेरे होते हुए तुझे राम से काहे का डर है, आज मैं राम लक्ष्मण का बध करूंगा, आज तुम देखोगे कि किस प्रकार वानरों का भक्षण करके में अपनी भूख को दूर करता हूं। हे भाई! जो राक्षस अपने प्रिय जनों के मारे जाने से रो रहे हैं आज मैं राम को सेना सहित मार कर उन के आंसु पोंछूगा। हे भाई! शोक को दूर कर, आज मैं राम का सिर लाकर तेरे चरणों में रखूंगा।

कुम्भ कर्ण का मारा जाना।

बड़े भाई को धीरज देकर कुम्भकर्ण ने उसकी प्रदक्षिणा की और फिर यम दण्ड के समान लोहे का बना हुआ भयंकर शूल उठाकर युद्ध के लिए राज सभा से निकला। उसका वह शूल बिजली की नाईं प्रकाश-

मान, इन्द्र वज्र के समान भारी और देव दानवों को भी विदीर्ण करने वाला था, उस समय सुवर्ण के बाजू बंद और अन्य भूषणों से वह बड़े २ कानों वाला राक्षस हवन के धूम के अग्नि के समान चमकने लगा। उस की पीठ पर स्वर्ण का कवच बिजली की नाईं नेत्रों को चुंधिया रहा था। उस कवच के धारण करने से कुम्भकर्ण की ऐसी शोभा हुई जैसे संध्या समय के लाल बादलों की आभा से हिमालय पर्वत शोभायमान होता है। फूलों की वर्षा और सिंह नाद करते हुए लाखों राक्षसों की सेना के साथ वह मेरु पर्वत के तुल्य ऊंचा राक्षस लंका के द्वार को फांद कर बाहर निकला। युद्ध क्षेत्र में पाओं रखते ही उस ने ऐसी गर्जना की मानों पर्वत पर बिजली गिरी हो। उस घोर गर्ज को सुनते ही सैंकडों और सहस्रों वानर मूर्छित हो गये, अनेकों के कानों के परदे फट गए और अनेक लड़खड़ा कर पृथिवी पर गिर पड़े। लंबे लंबे डग मारते हुए उस विकराल रूप पर्वताकार राक्षस को युद्ध क्षेत्र मे खड़े देखकर मारे डर के नल नील गवाक्ष और कुमुदादि सेना नायक भाग निकले। उनके पीछे सहस्रों वानर युद्ध भूमि को छोड़ कर भाग निकले। अब अपनी सेना को कायरों के समान भागते देखकर अंगद ने ललकार कर कहा हे वानरो! शत्रुओं को पीठ दिखाना वीरों का काम नहीं है सो कायरता को छोड़ कर रण में वीरों की नाईं प्राण दो, देखो! यह कुम्भकर्ण

कोई बड़ा योद्धा नहीं है, इसका पर्वताकार शरीर मद्य पी २ कर फूला हुआ है, सो सहज ही में मारे जाने योग्य है। हे वीर पुत्रो ! श्री राम जी के तेज के सन्मुख यह क्षण मात्र भी ठहर न सकेगा। वह अतुल पराक्रम वाले राघव अपने बाणों से इस के रोंएं उड़ाएंगे इस लिए लौट आओ और भाग कर संसार में निंदा के पात्र न बनों।

अब अंगद के बारंबार ऐसा कहने पर वानरों की कायरता दूर हुई और वह प्राणों का मोह छोडकर कुम्भकर्ण को मारने के लिए उस पर टूट पडे। कुम्भकर्ण भी क्षुब्ध सागर की उत्ताल तरंगों के समान वानरों को अपनी ओर आते देखकर गदा उठाये उन्हें मारने लगा। उसकी गदा के एकही प्रहार से सैंकडों वानर भूमि पर गिरने लगे, परन्तु वानर भी प्राणों का मोह छोड़ कर वृक्षों और पत्थरों से प्रहार करने लगे। इस प्रकार थोड़े ही समय में उस राक्षस राज ने युद्ध भूमि को वानरों की लोथों से भर दिया। तब द्विविद नामक वानरों के नायक ने बड़े क्रोध से पर्वत के एक टीले को उठाया और आकाश में लटकते हुए मेघ के समान कुम्भकर्ण के ऊपर गिरा दिया। परन्तु वह भारी टीला कुम्भकर्ण के सिर तक न पहुंचा और अर्ध मार्ग से ही लौटा हुआ राक्षसी सेना में जा गिरा। उससे सैंकड़ों राक्षस पिस गए रथ चूर २ हो गए और घोड़े मर गए। राक्षसों की इतनी

बड़ी क्षति को देखकर वानरों ने घोर सिंहनाद किया और फिर क्रोध से दांत कटकटाते हुए राक्षसी सेना का विध्वंस करने लगे । उस महा घोर युद्ध में इतने राक्षस मारे गए, कि उनके रुधिर से पृथिवी पर कीच हो गया । इसी अन्तर में पवन पुत्र हनुमान आकाश में खड़े होकर कुम्भकर्ण पर पत्थरों की वर्षा करने लगे परन्तु हिमाचल के समान वह राक्षस अपने स्थान से तनिक भी न डगमगाया और अपने शूल से पत्थरों को चूर २ करता भया। इसके पश्चात वह उसी शूल से वानरों का वध करने लगा। अब समय पाकर हनुमान तुरंत भूमि पर आया और एक वृक्ष घुमाकर ऐसे बल से मारा, कि कुम्भकर्ण का शरीर रुधिर से लाल हो गया। उस चोट से क्रुद्ध होकर उस राक्षस राज ने वज्र के तुल्य अपना शूल हनुमान की छाती में घोंप दिया। वह शूल पवन पुत्र की छाती को फोड़ कर इस प्रकार घुस गया जैसे स्वामी कार्तिक ने क्रौञ्च गिरि को शक्ति से फाड़ डाला था। उस चोट से हनुमान तड़प उठा और उस के मुख से रुधिर निकलने लगा। हनुमान की यह दशा देखकर राक्षसों ने जय नाद किया, और वानरी सेना भयभीत होकर भागने लगी। उस समय क्रोध से तपे हुए गंधमादन, नील, ऋषभ, शरभ और गवाक्ष यह पांचों बलि एक साथ मिलकर कुम्भकर्ण पर टूट पड़े। क्षण मात्र में उन्हों ने पत्थरों और वृक्षों से

उस की देह को ढांप दिया, परन्तु इस शिला वृष्टि से वह तनिक भी विचलित न हुआ और उसने दोनों भुजाएं फैला कर पांचों बलिष्ठ वानरों को ऐसे पीस डाला, कि वह अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़े, अपनी सेना के नायकों को गिरते देखकर सहस्रों वानर क्रोध से दांत कटकटाते हुए राक्षसेन्द्र पर टूट पडे और शिला वृक्षों और नखों से उसे फाड़ने लगे। परंतु मेघ के समान आकाश को छूते हुए उस बड़े डील वाले राक्षस ने किसी को पांओं से किसी को मुक्के से किसी को धौल से चूर २ कर दिया, और वानरों को पकड़ २ कर मानो खाने लगा। उस समय सहस्रों वानर उस पर आक्रमण करते और मरकर भूमि पर गिरते हुए ऐसे प्रतीत होने लगे मानों जलते हुए देदीप्यमान अग्नि को बुझाने के लिये पतंगे आगे बढ़ते हों और उस के ताप से दग्ध हो हो कर गिर रहे हों। तब प्रलय काल के अग्नि के समान यह राक्षसराज चारों ओर घूम २ कर वानरों को मारता भया। यम के सदृश उस रावण के भाई ने सहस्रों वानरों को पांओं से दल दिया सहस्रों को पूंछों से पकड़ २ कर पृथिवी पर ऐसे फटकार दिया जैसे धोबी वस्त्रों को फटकारता है। उस समय उस विकराल मूर्ति को देखकर वानर सेना हाहाकार करती हुई भागने लगी। हनुमान अंगद नल नील द्विविद और स्वयं सुग्रीव कोई भी उस के सामने न

ठहर सका, चारों ओर वानरों की भगिदड मच गई, रुधिर की नदी बह निकली। ग्रीष्म काल में जैसे दावानल अग्नि बन को दग्ध कर देता है, इसी प्रकार उस गदाधारी कुम्भकर्ण ने वानरी सेना का नाश कर डाला तब सब बडे २ वानर साहस हार कर त्राहि माम् त्राहि माम्, करते श्री रामचन्द्र जी की शरण में गए और हाथ जोड कर बोले, कि हे अयोध्या नाथ ! कुम्भकर्ण ने हमारी सेना को पीस डाला है। प्राणों को होम कर वानरों ने उस के साथ युद्ध किया, उस की सारी देह रुधिर से लाल होगई है कान कट कर नीचे की ओर लटक गये हैं, परन्तु फिर भी हिमाचल की सी देह वाला राक्षस युद्ध से विचलित नहीं होता और सहस्रों वानरों को अपने तीक्ष्ण से शूल यम लोक को पहुंचा रहा है, सो हे प्रभो ! अब हम निराश होकर आप की शरण आये हैं। वानरों की दुर्दशा का वृत्तान्त सुनकर लक्ष्मण का मुख मण्डल क्रोध से लाल हो गया और वह गोह के दस्ताने पहनकर कुम्भकर्ण के वध के लिए चला। उस प्रचण्ड मूर्ति के पीछे पीछे अंगद सुग्रीव आदि मुख्य वानर भी सिंहनाद करते हुए चले तब रण भूमि में अपने सामने तेजस्वी लक्ष्मण को देखकर कुम्भकर्ण ने मेघ के समान हर्ष नाद किया और फिर ललकार कर बोला, हे राघव ! तुम्हारे बल और पराक्रम को मैं जानता हूं, तुम युद्ध के लिए मेरे

सन्मुख आए हो, सो तुम्हारे इतने साहस पर ही मैं प्रसन्न हुआ, परन्तु तुम अभी बालक हो, इस कारण तुम्हें न मार कर मैं राम का ही बध करूंगा। इस प्रकार युद्ध में लक्ष्मण का निरादर करके वह राक्षसराज श्री रामचन्द्र जी की ओर अपने पाताल समान मुख को फैलाकर दौडा। तब श्री रामचन्द्र जी उसे अपनी ओर आते देखकर उस पर रौद्र अस्त्र छोडते भये, परंतु उस अस्त्र से वह तानिक भी विचलित न हुआ और उसी प्रकार मुख से अग्नि उगलता हुआ राघव पर टूट पडा। उसी समय श्री रामचन्द्र जी ने मयूर पक्षों वाले तीक्ष्ण बाणों से उस की छाती को फाड डाला। उन बाणों की चोट खाकर कुम्भकर्ण ऐसा पीडित हुआ कि उस के हाथ से गदा तथा अन्य अस्त्र छूटकर पृथिवी पर गिर गये। अब तो उस राक्षस का भयंकर क्रोध जाग उठा और वह झुंझलाकर मुक्कों लातों और थप्पडों से वानरों का नाश करने लगा। उस समय श्री रामचन्द्र जी के तीक्ष्ण बाणों से उसका शरीर भर गया और उसके अंगों से रुधिर की अनेक धाराएं बहने लगीं। बीसियों स्थानों से रक्त को बहाता हुआ वह निशाचर ऐसी शोभा देने लगा जैसे वर्षा काल में सहस्रों नालों के प्रवाहों से पर्वत शोभायमान होता है। तब क्रोध से जलते हुए कुम्भकर्ण ने एक पर्वत का भारी टीला उठाकर श्री रामचन्द्र की ओर फैंका। उस टीले को अपनी ओर

आते देखकर राघव ने सात बाणों से उसे चूर २ कर दिया और तीखी नोक वाले तीन बाणों से उसका स्वर्ण कवच काट डाला । सुमेरु पर्वत के समान प्रकाशमान जब वह कवच टूट कर पृथिवी पर गिरा तो सैंकड़ों वानर उस के नीचे दबकर मर गए । उस कवच के गिरते ही सहस्रों वानर सिंहनाद करते हुए कुम्भकर्ण पर टूट पड़े, परंतु रुधिर और मज्जा की गंधि से मतवाले हुए २ उस राक्षस ने एक झटके से उन सब को इस प्रकार पृथिवी पर गिरा दिया जैसे मतवाला हाथी अपने महावत को सूंड से पकड़ कर पृथिवी पर पटक देता है । घोर युद्ध में उन्मत्त हुए २ कुम्भकर्ण को अपने और पराये की कोई पहचान न रही और वह निर्दयता से वानरों और राक्षसों को यम पुरि में भेजने लगा । जब श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि कुम्भकर्ण क्रोध से पागल हो उठा है, तो वह प्रत्यंचा को खैंचकर क्रोध से उस की ओर दौड़े । महाबलि लक्ष्मण और बड़े २ वानर सर्दार भी उस के पीछे २ दौड़े, कुम्भकर्ण के निकट जाकर उन्हों ने देखा कि मुख से रुधिर बहाता हुआ मेघ के तुल्य काला और मंद्राचल पर्वत के आकार वाला वह राक्षस यम की नांई वानरों को खोज २ कर खा रहा है, तो उन्हों ने अपने बज्र तुल्य कठोर धनुष की टंकार से उसे ललकारा । टंकार को सुनकर कुम्भकर्ण अंधेरी से उड़ाए हुए मेघ के समान क्रोध से

श्री रामचन्द्र जी की ओर दौड़ा, और गर्जता हुआ बोला, हे राघव ! चिर काल से मैं तेरे बध की इच्छा रखता था, आज तू भाग्य से मेरे सामने आया है, हे दशरथ नंदन ! मैं विराध नहीं हूं नांही कबंध हूं, मुझ खर और दूषण भी न समझना, मैं कुम्भकर्ण हूं, सो जिस बल के भरोसे पर तू ने मेरी बहन के नाक और कान काटे हैं, आज उसे दिखा । कुम्भकर्ण के मुख से ऐसे अभिमान से भरे हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने क्रोध से जलते हुए बाण छोड़े, परन्तु वह बाण उस के अंगों को स्पर्श करके नीचे गिर पड़े और उस राक्षस को थोड़ा भी न हिला सके । उन बाणों को खाकर कुम्भकर्ण ने ऐसे जोर से गर्जना की, कि वानर लोग उसे सुनकर कांप उठे । फिर उसने यम दण्ड के समान बड़े मुद्गर को उठाया और चारों ओर घुमा घुमाकर वानरों का संहार करने लगा । यह देखकर श्री रामचन्द्र जी ने वायव्य नामक अस्त्र को छोड़ा । उस अस्त्र के लगते ही मुद्गर समेत उस की विशाल भुजा कटकर पृथिवी पर गिर पड़ा । पर्वत समान उस भुजा के गिरने से सैंकड़ों वानर दबकर मर गए । अब कटी हुई भुजा वाला कुम्भकर्ण क्रोध और पीड़ा से गर्जना करता हुआ बायें हाथ से ही वानरों का भयानक क्षय करने लगा । उस समय सब वानर मारे भय के भाग गये और त्राहि माम् त्राहि माम् करते भक्त वत्सल श्री रामचन्द्र

जी के पीछे खड़े हो गये । तब श्री रामचन्द्र जी ने ऐन्द्र नामक अस्त्र से उस की दूसरी भुजा को भी काट डाला । उस भुजा के गिरने से वानर और राक्षसों की बहुत सी सेना पिस गई । इस के अनंतर पीड़ा से चिल्लाते हुए कुम्भ कर्ण के दोनों पाओं दो अर्धचन्द्राकार बाणों से श्री रामचन्द्र जी ने काट डाले । पाओं के कट जाने पर वह पर्वताकार राक्षस बड़े धमाके से पृथिवी पर गिर पड़ा । अब पृथिवी पर गिरा हुआ कुम्भकर्ण मेघ के समान भयानक गर्जना से सारी लंका पुरी को कंपायमान करता भया । उस समय श्री रामचन्द्र जी ने बडे क्रोध से इन्द्र का दिया हुआ सूर्य्य की किरण सदृश जलता हुआ ब्रह्मदण्ड नामक बाण उस पर छोड़ा । वह बाण चारों दिशाओं को प्रकाशित करता धूंए से रहित अग्नि शिखा के तुल्य चमकता हुआ बड़े वेग से कुम्भकर्ण के कुण्डलों वाले बडे सिर को काटकर उड गया । अब वह कुण्डलों समेत कटा हुआ सिर इस प्रकार गिरा मानों आकाश से टूटा हुआ कोई बड़ा तारा पृथिवी पर गिरा है । देवताओं के शत्रु कुम्भकर्ण के मरते ही वानरों ने सिंहनाद से लंका को कंपायमान कर दिया, आकाश से देवताओं यक्षों और गंधर्वों ने जय जय कार करके पुष्पों की वर्षा की । उस समय राक्षसों की घोर दुर्दशा हुई, वानरों ने भागते हुए राक्षसों को दंतों और नखों से फाड़ डाला पत्थरों से

चूर्ण कर दिया और जय घोष से सारी लंका पुरी को थर्रा दिया।

रावण का कुम्भकर्ण के लिये विलाप करना।

कुम्भकर्ण की मृत्यु का समाचार जब रावण ने सुना तो वह मूर्छा खाकर धरणी पर गिर पड़ा। नरान्तक देवान्तक और त्रिशिरा आदि राक्षस भी अपने चचा का भयंकर बध सुनकर रोने लगे। कुछ काल पीछे जब रावण को सुधि आई, तो वह नेत्रों से अश्रु बहाता हुआ बोला, हा शोक! आज मैं भाई से रहित होगया, आज मेरी दहनी भुजा टूट गई, अहो आश्चर्य्य! जिस कुम्भकर्ण के नाम को सुनकर देव दानव थर थर कांपते थे, आज वह मनुष्यों और वानरों के हाथों से कैसे मारा गया, हा! आज मुझे विभीषण का कथन स्मरण होता है, निस्संदेह मैंने भारी भूल की जो उस की सच्ची सम्मति को न माना, आज यह राज्य मेरे किस काम का? जिन देवताओं को मेरे भाई ने अनेक बार हराया था, आज वह उस की मृत्यु को देखकर आनंद मना रहे हैं, अब इस संसार से मुझे कोई काम नहीं, बिना भाई के जीकर मैं क्या मुख उठाऊंगा, अब मुझे भी उस के पीछे २ चलना चाहिए। हाय कुम्भकर्ण! तू मुझे छोड़ कर अकेला कैसे चला गया।

इस प्रकार कुम्भकर्ण के वियोग में विलाप करता

हुआ वह फिर मूर्छित हो गया। तब रोते हुए देवान्तक और त्रिशिरा आदिक राजकुमारों ने बडे कष्ट से उसे सावधान किया। जब दुख से पीडित रावण को सुधि आई तो त्रिशिरा ने रावण को धीरज देते हुए कहा हे राजन्! निस्संदेह हमारे चचा कुम्भकर्ण युद्ध में मारे गए, परंतु उन के लिए शोक करना व्यर्थ है, देखो वीर लोग युद्ध में ही मरना पसंद करते है, सो उस ने वीरता के साथ लडते हुए प्राण दिये हैं। अब आप को शोक का परित्याग करके आगे जो करना है वह सोचना चाहिए। हे पिता! आप के पास ब्रह्मा की दी हुई शक्ति है, आप क्यों वृथा शोक करते हैं, आप रण में जाकर बानरों सहित रामका संहार कीजिये, हम सब भी अभी चलने को उद्यत हैं।

त्रिशिरा के इन वचनों से रावण को कुछ धीरज हुआ और उसने प्रसन्न होकर अपने पुत्रों को युद्ध में जाने की आज्ञा दी।

त्रिशिरा अतिकाय आदिक का युद्ध में मारा जाना।

लंका पति रावण की आज्ञा पाकर त्रिशिरा अतिकाय देवान्तक नरांतक यह राजकुमार तथा महोदर और महापार्श्व रावण के दोनों भाई बडी सजधज के साथ भयंकर राक्षसी सेना का संचालन करते हुए लंका से बाहर निकले। यह छः राक्षस बडे ही बीर दुर्मद और

युद्ध में दुर्धर्ष थे। इन के पीछे हाथियों की, घुड़ सवारों की, रथों की और पैदलों की सेनाएं आकाश में ध्वजाओं को फहराती, घोर गर्जनाओं और जयनाद से दशों दिशाओं को कंपायमान करतीं और धूलि से भूमि आकाश को अंधकार मय करतीं निकलीं। उन सेनाओं में रावण के पुत्र रत्न जटित किरीट पहरे ऐसे चमक रहे थे, जैसे आकाश में तारे चमकते हैं। यह सब मरने का निश्चय करके सिंहनाद करते हुए युद्ध क्षेत्र में उतरे। रण भूमि में पहुंचकर इन्हों ने वानरों का अपार सैन्य दल देखा जो पत्थरों और वृक्षों से सुसज्जित होकर खड़ा था। इधर वानर भी राक्षसों की सेनाओं को सामने देखकर घोर गर्जना करते भये। अब दोनों सेनाएं सिंह नाद करती हुई एक दूसरे पर टूट पड़ीं। वानर शिलाओं और वृक्षों से राक्षसों को मारने लगे और राक्षस लोह मुद्गरों बाणों तथा अन्य शस्त्रों से वानरों को विध्वंस करने लगे। उस समय ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, कि युद्ध भूमि रुधिर से भीग गई और असंख्य मरे हुए वानरों से चलने का मार्ग रुक गया। जब मारते मारते राक्षसों के शस्त्र और वानरों के पत्थर और वृक्ष समाप्त होगए तो फिर वह हाथों हाथ लड़ने लगे। राक्षस पूंछों से पकड़ पकड़ कर वानरों से वानरों को मारने लगे और वानर लोग टांगों से पकड २ कर राक्षसों से राक्षसों को मारते हुए प्राण लेने लगे। असंख्य राक्षस प्राण हीन

होकर भूमि पर गिर पडे और लाखों घायल होकर रुधिर में स्नान करने लगे। उस समय बडे २ बलवान और शूरवीर वानर निर्भय होकर रण भूमि में चारों ओर राक्षसों का नाश कर रहे थे। तब वानरों के हाथों से राक्षसी सेना का मर्दन होते देखकर रावण का पुत्र नरांतक भयानक शक्ति लिये वानरों के दल में ऐसे घुस गया जैसे समुद्र में मगर मच्छ घुस जाता है, और थोडे ही समय में सहस्रों वानरों को यम लोक में भेज दिया। उसकी हस्त लाघवता और फुर्ति देखकर सब वानर भयभीत हो रहे थे, जंगल की आग की नांई वह चारों ओर प्रलय मचा रहा था, जिधर देखो जहां देखो वानर सेना में नरान्तक इस प्रकार चमक रहा था जैसे मेघों में बिजली चारों ओर चमकती है। वर्षा ऋतु के पवन की नांई वह राक्षस घोड़े पर सवार होकर वानरों के दलका दलन कर रहा था, उस के हाथ से न खडे हुए बचे न भागते हुए बचे और नांही युद्ध करते हुए बच सक। उस अकेले ने ही अपने चमकते हुए प्राम से वानरों की अगणित सेना को काट गिराया और वानरी सेना में उस की मार से हाहाकार मच गया। तब अपनी सेना के भयंकर विनाश को देखकर अंगद का मुख क्रोध से जल उठा और वह मेघ के समान गर्जना करके नरान्तक को ललकारता भया, कि हे दुष्ट राक्षस! क्या है छोटे २ वानरों के मारने से, रे शठ! मेरे साथ द्वंद युद्ध कर

आज मैं अपने नखों से तेरे पेट को फाड़ूंगा। अंगद की ललकार से क्रुद्ध हुआ २ वह राक्षस कुमार बडे वेग से उस पर टूट पड़ा और गर्ज कर उस की छाती पर प्रास का प्रहार करता भया, परंतु जिस प्रकार गरुड़ सर्प को दो टूक कर देता है, उसी प्रकार प्रास को तोड कर अंगद ने नरान्तक के रथ पर ऐसी लात जमाई, कि वह रथ आधा पृथिवी में धंस गया और उस के चारों घोड़े मरकर गिर पडे, यह देखकर नरान्तक रथ से कूद गया और वज्र के तुल्य मुक्के से अंगद के सिर को कुचल देता भया, तब अंगद ने भी बडे बल से नरान्तक की छाती में मुक्का मारा। उस मुक्के के लगते ही नरान्तक के नेत्रों की पुतलियां फिर गईं और वह मुख से रुधिर की उल्टी करता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा और फिर न उठा।

नरान्तक के मरते ही वानरों ने सिंहनाद किया, और हर्ष से वायु मंडल में ध्वजाएं फहराईं। यह देखकर रावण का भाई महोदर हाथी पर चढ़कर अंगद की ओर दौडा, भाई का बदला लेने के लिए देवान्तक भी वालि पुत्र पर टूट पडा, और क्रोध से जलता हुआ त्रिशरा भी वेग से रथ को दौड़ाता हुआ अंगद कुमार पर झपटा। अब यह तीनों महारथी बाणों से अंगद को पीडित करने लगे, परंतु वालि पुत्र शूरवीरों के समान गर्जता हुआ तीनों के साथ युद्ध करने लगा। तीनों सेनापतियों

के प्रहारों को सहन करते हुए बालि पुत्र अंगद ने उछल कर महोदर के हाथी को ऐसी लात जमाई कि उस की दोनों आंखें निकल गईं और वह चिंघाड़ता हुआ भागने लगा। तब अंगद ने उसी हाथी के दांत को उखाड़ लिया और यमराज के समान राक्षसों का बध करने लगा। वायु पुत्र हनुमान ने जब अंगद को तीन महारथियों से घिरा हुआ देखा तो वह गंभीर गर्जना करता हुआ देवान्तक पर टूट पड़ा और उस की छाती पर वज्र के समान मुक्का मारकर उसे मार डाला। देवान्तक के मरने पर त्रिशिरा और महोदर तीक्ष्ण बाणों से अंगद नील और हनुमान को पीड़ित करने लगे। उन के जलते हुए बाणों की चोट से नील का पर्वत समान शरीर रुधिर के स्रोत बहाने लगा, अब नील के क्रोध का वार पार न रहा उस ने दांत कटकटाकर वृक्षों समेत एक पर्वत शिखर उखाड़ा और महोदर के सिर पर फेंक दिया। उस शिखर के आघात से महोदर पिस गया और वह हाथी समेत मर कर भूमि पर गिर पड़ा। चचा के मरने पर त्रिशिरा ने हनुमान पर आक्रमण किया परंतु उस समय वानरों के साहस बढ़ चुके थे और राक्षसों की सेना के पाओं उखड़ रहे थे। त्रिशिरा के सामने आते ही हनुमान ने हुंकार से युद्ध क्षेत्र को कंपा दिया और बिजली की न्याईं कूद कर त्रिशिरा का कुंडलों और किरीट वाला सिर काट लिया। अपनी

सेना के चार बड़े २ सेनापतियों के मारे जाने पर मतवाला महा पार्श्व लोहे की भारी गदा उठाकर वानरों पर टूट पड़ा। तब रुधिर से भीगी हुई उसकी गदा घूम २ कर वानरों का कचूमर निकालने लगी। गदा हाथ में लिये दौड़ता हुआ महा पार्श्व उस समय ऐसे दिखाई देने लगा मानों प्रलय का अग्नि सारे जगत् को दग्ध करने पर तुला हुआ है। उस के हाथों से सैंकडों और सहस्रों वानरों के मारे जाने पर ऋषभ नामक तेजस्वी वानर को बड़ा क्रोध आया। वह घोर गर्जना करता हुआ उस की ओर दौड़ा उस के निकट जाकर उस ने इस ज़ोर से लात मारी कि महापार्श्व लड़खड़ा कर पृथिवी पर गिर पड़ा और फिर वानरों के नखों से फाड दिया गया।

त्रिशिरा देवान्तक, महोदर, नरान्तक और महा-पार्श्व उन पांचों के मरने पर सेना पति अतिकाय क्रोध से जल उठा। उस का कुम्भकर्ण के समान लंबा चौडा शरीर मारे कोप के कांपने लगा, वह रण में देवताओं और दानवों के घमंड का नाश करने वाला था। अब वानरों का नाश करने के लिए वह अपने हज़ार घोडों वाले रथ पर सवार होकर वानर सेना पर आक्रमण करता भया। वानर सेना के मध्य में आकर उस ने मेघ के समान घोर गर्जना की, जिसे सुनकर सब वानर डर गए और त्राहि माम् त्राहिमाम् कहते श्री रामचन्द्र

जी की शरण में आए । तब पर्वताकार उस राक्षसराज को देखकर राघव ने विभीषण से पूछा कि हे लंकेश ! बादल के समान शब्द करने वाला यह राक्षस कौन है ? इसे मैं साक्षात् यम के समान आता देखता हूं । राघव के ऐसा पूछने पर विभीषण बोला, हे अयोध्यानाथ ! कुबेर के छोटे भाई रावण का यह पुत्र है, मंदोदरी इस की माता है, और बल में यह दूसरा रावण है । अपने भुज बल से इस ने तीनों लोकों में नाम पाया है, इसी के भरोसे पर लंका निर्भय रहती है । इस ने अपने तपो बल से दिव्य कवच और सूर्य्य के सदृश चमकता हुआ रथ प्राप्त किया है । धनुष विद्या में यह इन्द्र से भी बढ़कर है और सहस्रों बार इस ने देवताओं और असुरों का परास्त किया है । हे दशरथ नंदन ! इस के मारने का शीघ्र उपाय करें नहीं तो यह सारी वानर सेना का विध्वंस कर डालेगा ।

अब वानरों के अपार सैन्य दल में खड़ा होकर अतिकाय धनुष के टंकार और घोर गर्जना से सब को ललकारने लगा । उधर द्विविद मैन्द ऋषभ आदिक प्रचण्ड वानर भी पत्थरों और वृक्षों को हिला २ कर सिंहनाद करने लगे, वानरों के नाद को सुनकर क्रोध से उन्मत्त हुआ २ अतिकाय भयंकर बाण वृष्टि करने लगा । उन बाणों के लगने से वानर इस प्रकार भागने लगे जैसे आंधी के चलने से मच्छर भागते हैं । अब

भागते हुए वानरों को छोड़कर अतिकाय रथ को दौड़ाता हुआ राघव के निकट आया और क्रोध तथा गर्व से बोला हे तुच्छ मनुष्यो ! क्यों इन दीन वानरों का नाश करवाते हो, इन को मारने में न तो मेरी कीर्ति और न वीरता ही है सो यदि तुम में बल है तो आओ मेरे साथ युद्ध करो नहीं तो युद्ध भूमि छोड़ कर लौट जाओ ।

अतिकाय के इन गर्व भरे बचनों को सुनकर लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से लाल होगये और वह धनुष तानकर बोला हे राक्षस ! आज मैं अपने बाणों से तेरा सिर इस प्रकार काट गिराऊंगा जैसे आंधी पके हुए ताड़के फल को गिरा देती है, रे अधम ! आज मेरे बाण तेरी छाती का रुधिर पियेंगे । लक्ष्मण के इस उत्तर को सुनकर अतिकाय को मानों आग लग गई और उसने एक जलता हुआ बाण लक्ष्मण की ओर छोड़ा, परंतु लक्ष्मण ने उस सर्पाकार बाण को अर्धचन्द्र बाण से रास्ते ही में काट डाला, और एक जलता हुआ बाण उसके मस्तक में मारा । वह बाण उस राक्षस के मस्तक में ऐसे घुस गया जैसे सर्प बांबी में घुस जाता है । उस समय अतिकाय के मस्तक से रुधिर का फुवारा छूट पड़ा और उसका सारा शरीर रंगा गया । उस बाण से वह राक्षस थर्रा उठा । परंतु थोड़ी देर में फिर संभल गया । अब दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा । अतिकाय और

लक्ष्मण के बाणों ने दोनों सेनाओं में प्रलय का चित्र बांध दिया, लाखों वानर और राक्षस एक दूसरे से भिड़ कर घायल हो गये और मारे गये। लक्ष्मण का मुख मंडल उस समय ग्रीष्म ऋतु के प्रचंड सूर्य्य की नांई तप रहा था, और अतिकाय भी काले मेघ के समान बारंबार गर्जता हुआ लक्ष्मण को दबाना चाहता था। जब चिर काल तक युद्ध करते २ दोनों वीरों में से कोई भी परास्त न हुआ तो लक्ष्मण ने प्रलय काल के अग्नि के समान जलती हुई ब्रह्म शक्ति को धनुष पर रखा, उस के रखते ही सूर्य्य का काश मंद हो गया और पृथिवी डोलने लगी। वज्र समान उस ब्रह्म शक्ति को लक्ष्मण ने अतिकाय पर छोड़ दिया। अपने ऊपर उस शक्ति को आते देखकर अतिकाय ने अनेक प्रकार क अस्त्रों से उसे रोकने की चेष्टा की, परन्तु मृत्यु के समान न रुकने वाली शक्ति उस का सिर उड़ाकर आकाश में ले ही गई और वह कटे हुए सिर वाला पर्वताकार राक्षस पृथिवी पर गिर पड़ा। अतिकाय के मरते ही हाय हाय करते हुए राक्षस लंका की ओर भाग गये। बानरों के अपार सैन्य दल में भारी सिंह नाद उठा जो आकाश मार्ग से रावण के कर्ण कुहरों तक पहुंच गया।

मेघनाद का युद्ध क्षेत्र में माया की सीता को मारना।

नरांतक और अतिकाय आदिक पांचों राजपुत्रों के

मारे जाने का समाचार सुनकर रावण के शोक और क्रोध की थाह न रही। बारंबार ठंडी सांस लेता हुआ वह सोचने लगा कि अब क्या उपाय करना चाहिए! परन्तु जब चारों ओर उसे निराशा की घटाएं दिखाई दीं तो वह अपने पुत्र मेघनाद से बोला, कि हे पुत्र! राम ने एक एक करके मेरे सब योद्धाओं को मार डाला, अब मैं कोई भी ऐसा योद्धा नहीं देखता जो उन को मार सके, सो तू ही अब रण में जा और उन तपस्वियो को मारकर लंका की रक्षा कर। हे वीर! तू प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से लड़ सकता है, युद्ध में तू ने इन्द्र को भी परास्त किया है, सो तू ही सब मनुष्यों और वानरों को मारने में समर्थ है।

तब पिता की आज्ञा पाकर मेघनाद तुरंत ही युद्ध के लिये तय्यार हुआ और दिव्य रथ पर सवार होकर लंका से बाहर निकला। चार घोड़ों वाला, बाणों और अनेक शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ उसका देदीप्यमान रथ चलते समय अपने पहियों की घरघराहट से मेघ डंबर के समान शब्द करने लगा। उस रथ पर चढ़ा हुआ मेघनाद अपने तेज से मध्याह्न काल के सूर्य्य के समान किरणों का प्रसार करता भया। लंका से बाहर निकलते ही इन्द्रजित ने सोचा, कि यह राम और लक्ष्मण बड़े ही बलवान और दुर्धर्ष हैं, जिन्हों ने कुम्भकर्ण और अतिकाय जैसे दुर्मद राक्षसों को भी मार डाला है, इस

लिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिस से इन के साहस टूट जाएं और बल नष्ट हो जाए ।

इस प्रकार मन में विचार करके उस ने एक युक्ति सोची, और फिर तत्काल ही माया की सीता बनाकर उसे रथ में रख लिया, पश्चात् मेघ के समान भयानक नाद करता हुआ वानर सेना का नाश करने के लिए चला । उस के पीछे पीछे काली घटाओं के समान निशाचरों की भारी सेना पृथिवी को कंपाती और सिंहनाद से गगन मंडल को फाड़ती हुई चली । समुद्र के समान गर्जती हुई राक्षसी सेना को आते देखकर लाखों वानर क्रोध से दांत कटकटाते हुए हाथों में पत्थर लेकर उन पर टूट पड़े । उन सब के आगे पवन पुत्र हनुमान एक भारी टीला उठाकर मेघनाद की ओर दौड़ा । परन्तु रथ के निकट पहुंचकर उसने उसमें राम की प्रिया जानकी को देखा जिस की वेणी छूट कर जंघा को स्पर्श कर रही थी, और जिस का मुख दीन दुर्बल और कुम्हलाया हुआ था । उसे देखकर हनुमान दुख से आंसु बहाता हुआ बड़े क्रोध से इन्द्रजित पर टूट पड़ा । हनुमान को वानर सेना सहित अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर इन्द्रजित ने क्रोध से तलवार खेंच ली और माया की सीता को केशों से पकड़ कर उसे झंझोड़ने लगा । मेघनाद के हाथों राम की प्रिया की यह दुर्दशा देखकर पवन पुत्र क्रोध से संतप्त होकर

बोला, रे नीच ! ब्राह्मण का वीर्य्य होकर किस प्रकार तू स्त्री पर हाथ उठाता है, हे राक्षसाधम ! धिक्कार है तेरी बुद्धि पर, धिक्कार है तेरे बल पर, जो तू इस चण्डाल कर्म के करने को उद्यत हुआ है, रे शठ ! क्यों अबला को मारकर वीरों के नाम को कलंकित करता है, इस तपस्विनी ने तेरा क्या बिगाडा है, रे पतित ! स्मरण रख, सीता के मार देने से तू कभी भी बच न सकेगा, इतना कहकर हनुमान और वानर सेना उस पर पत्थरों की वृष्टि करती हुई आगे बढ़ी, परंतु भयंकर राक्षसों ने तीक्ष्ण बाणों लोह मुद्गरों और अनेक प्रकार के शस्त्रों से वानरों सहित हनुमान को रथ तक न पहुंचने दिया। तब घोर गर्जना से वानरों को भयभीत करता हुआ इन्द्रजित हनुमान से बोला, हे कपीश ! यद्यपि स्त्री पर हाथ उठाना धर्म के विरुद्ध है, परंतु जिस उपाय से शत्रुओं को अधिक पीडा पहुंचे वह उपाय करना नीति के विरुद्ध नहीं है, इसलिए तेरे सामने ही मैं इसका वध करता हूं, हे पवन सुत ! इस के मरने से ही लंका के सब दुख दूर होंगे क्योंकि इस युद्ध का मूल कारण यही जानकी है, यह कहकर उस राक्षस राज ने माया की सीता का तलवार से सिर काट लिया और फिर क्रोध से गर्जता हुआ वानर सेना का विध्वंस करके शीघ्र ही निकुंभिला में चला गया। सीता के मरने पर वानरों का उत्साह टूट गया और वह मेघनाद के बाणों से पीडित होकर

चारों ओर दौड़ने लगे। तब दुख से रोता हुआ हनुमान वानरों से घिरा हुआ श्री रामचन्द्र जी की शरण में आकर बोला, हे नाथ ! रावण के पुत्र इन्द्रजित ने हमारे सामने बेचारी जानकी का सिर काट लिया है और वह 'हा राम' 'हा राम' कहती हुई स्वर्ग लोक को चली गई है; इस दुखद समाचार को निवेदन करने के लिए मैं आप के पास आया हूं। हनुमान के मुख से यह शब्द सुनते ही श्री रामचन्द्र जी मूर्छा खाकर गिर पड़े, उस समय शोक से तपे हुए सब वानरों ने उन्हें घेर लिया और अनेक प्रकार के सुगंधित जलों से उनको सचेत करने लगे। भाई की यह दशा देखकर लक्ष्मण अत्यन्त शोकातुर हो उठा और राघव को भुजा की टेक देकर रोता हुआ उन को धीरज देने लगा। जब विभीषण ने यह समाचार सुना तो वह अपने चारों मंत्रियों सहित वहां आया जहां श्री रामचन्द्र जी मूर्छित पड़े थे। वहां आकर उन्हों ने देखा, श्री रामचन्द्र जी अचेत पड़े हैं, और लक्ष्मण दीनों की नांई विलाप कर रहा है, और सुग्रीव सहित मुख्य २ वानर रो रहे हैं। यह दशा देखकर विभीषण ने कौशल्या नंदन को बड़ी कठिनता सेम चेत किया और फिर उन को सान्त्वना देता हुआ बोला, कि हे अयोध्यानाथ ! जो कुछ हनुमान ने आप को कहा है, वह सर्वथा असंभव है। हे राघव ! जैसे समुद्र सूख नहीं सकता वैसे ही जानकी

का मारा जाना असंभव है रावण कभी भी उसे नहीं मारेगा और न ही किसी अन्य पुरुष को उसे स्पर्श करने देगा, चाहे उसका पुत्र ही क्यों न हो। निस्सन्देह मेघनाद ने आप को धोखा दिया है। और अब वह दुष्ट निकुम्भिला देवी के मंदिर में होम करने के लिये चला गया है। हे राघव ! उस नीचात्मा राक्षस के इस होम को पूरा न होने दो, और लक्ष्मण को सेना सहित भेजकर उसी मंदिर मे उसका वध कर डालो क्योंकि इस होम को पूर्ण कर लेने से फिर उसका मारना असंभव हो जाएगा। सो अब जल्दी ही लक्ष्मण को आज्ञा दो, मैं भी उसके साथ जाऊंगा ओर जिस प्रकार भी हो सकेगा आज इस सब से बड़े राक्षस का वध कर डालूंगा।

लक्ष्मण का निकुम्भिला में जाकर मेघनाद से युद्ध करना।

तब श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने अपना कवच पहना और धनुष हाथ में लेकर उनके चरणों को छूकर बोला, हे महाबाहो ! आज मेरी प्रत्यंचा से छूटे हुए बाण मेघनाद की देह को छेद कर इस प्रकार लंका में जा गिरेंगे जैसे हंस सरोवरों में जाते हैं, हे नाथ! मैं आज ही रावण के पुत्र को यमलोक में भेजूंगा। आज रावण के आंसुओं से आपके संताप को शान्त करूंगा। इस प्रकार कहकर और बड़े भाई की परिक्रमा करके वह शत्रुओं के नाश करने वाला लक्ष्मण मेघनाद

के वध के लिये चल पड़ा। उसके पीछे २ विभीषण सुग्रीव हनुमान और जांववंत भी सहस्रों बानरों और भालुओं की सेना लेकर चले। कई कोस चलने के पश्चात् उन्हों ने देखा, कि मेघनाद की सेना मोर्चे बांधकर खड़ी है। वह सेना हाथी घोडों रथों और प्यादों वाली सहस्रों ध्वजाओं को आकाश में फहराती हुई भयानक सिंह-नाद कर रही थी।

उस भयंकर सेना के अंदर लक्ष्मण इस प्रकार घुस गये जैसे कोई अंधकार से भरी हुई पर्वत गुफा में घुस जाता है। सेना के अंदर घुसते ही वानरों ने पत्थरों और वृक्षों की मार से राक्षसों का विध्वंस करना आरंभ किया, उधर राक्षस भी सिंहनाद करते हुए तीक्ष्ण बाणों मुद्गरों प्रासों तलवारों और बर्छों से वानरों का संहार करने लगे उस समय उस युद्ध के कोलाहल से सारी लंका पुरी भर गई। पत्थरों वृक्षों और नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से आकाश ढका गया। उधर राक्षस लोग वानरों के इस प्रकार रोएं उड़ा रहे थे जैसे धुनियां कपास को धुनता है, इधर वानर भी बन की आग की तरह चारों ओर घूम २ कर राक्षसों का संहार कर रहे थे। उस युद्ध में वानरों ने बड़ा भयंकर कर्म किया, थोड़ी ही देर में इतने राक्षस मारे गए कि उन के रुधिर से पृथिवी लाल होगई और लोथों से सारी भूमि भर गई। तब राक्षसों की भारी क्षति सुनकर रावण का पुत्र मेघनाद

होम को पूरा किये बिना ही क्रोध से उठ बैठा और घने वृक्षों के अंधकार में से लड़ने के लिये बाहर निकला।

मेघनाद के बाहर निकलते ही विभीषण लक्ष्मण को लेकर वहां पहुंचा जहां वह राक्षस कुमार युद्ध के लिए रथ पर सवार हो रहा था, तब तेजस्वी लक्ष्मण के साथ विभीषण को देखकर मेघनाद क्रोध से जलता हुआ भ्रुकुटि चढ़ाकर बोला, हे राक्षसधम तेरा जन्म राक्षसों की कुल में हुआ है, और तू मेरे पिता का छोटा भाई है, परंतु अपने कुल का साथ छोड़ कर तू ने राक्षस कुल को कलंकित कर दिया है। हे मूर्ख ! भला यह तो कहो, कि राम न तो हमारा मित्र है, न हमारी जाति का है, नांही संसार उसे प्रमाणित मानता है, और नां ही वह धर्म्मात्मा है, फिर किस लिये तू उस के हां टुकड़ा मांगने के लिये गया है, देख पराया पुरुष चाहे कितना भी अच्छा हो फिर भी वह पराया ही है और अपना मनुष्य कैसा भी बुरा हो फिर भी वह अपना ही होता है, धिक्कार है तेरी बुद्धि पर जो स्वयं दूसरों का दास बनकर सारी जाति और सारे देश को दूसरों की दासता में बांधना चाहता है। हे ढीठ राज्य प्राप्ति की कामना से यदि तू हमारा बध करान चाहता है, तो यह कामना तेरी कभी पूरी न होगी क्योंकि हमें मारकर राम तुझे भी इस विचार से मा

डालेंगे, कि यह अपने भाई का नहीं बना तो हमारा कैसे बनेगा। मेघनाद के इन वचनों को सुनकर विभीषण बोला, हे दुर्बुद्धे ! मै तेरे पिता का भाई हूं, यह समझ कर तुझे मेरा अपमान करना उचित नहीं था, परंतु मैं तुझे कहे देता हूं, कि यद्यपि मेरा जन्म राक्षसों के क्रूर कुल में हुआ है तौ भी मुझे तुम्हारी संगति अच्छी नहीं लगती देख मैंने तेरे पिता को अच्छी सम्मति दी थी, परंतु उस ने मुझे बड़े अपमान के साथ घर से निकाल दिया, क्या भाई को यह उचित था, कि वह मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार करता ? परंतु पराई स्त्री का हरना,पराये धन का छीनना और अपने मित्रों पर विश्वास न करना यह तीनों बातें मनुष्य का नाश करने वाली हैं। हे इन्द्रजित ! ऋषियों मुनियों देवताओं और सज्जन पुरुषों से वैर रखना, पर धन और पर स्त्री का हरना आदिक दुर्गुण मेरे भाई में हैं और इन्हीं दुर्गुणों से अब उसका और तेरा अन्त होने वाला है।

विभीषण के ऐसा कहने पर मेघनाद क्रोध से कूद कर रथ पर चढ़ गया और फिर मेघ के समान गर्जना करके धनुष की घोर टंकार करता भया। उस की टंकार से दशों दिशाएं भर गईं और फिर वह सर्प की नाईं फुंकारते हुए बाणों से बानरों के समुद्र के समान सैन्य में क्षोभ उत्पन्न करता भया। अब तो लक्ष्मण के क्रोध का वारपार न रहा और उस ने मेघनाद को ललकार

कर इतने बाण छोड़े, कि उस के घोड़े और रथ उन बाणों से ढक गए। उस समय वह दोनों तेजस्वी गर्ज कर इस प्रकार लड़ने लगे जैसे आकाश में दो ग्रह अथवा बन में दो सिंह लड़ रहे हों। लक्ष्मण की प्रत्यंचा से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों ने मेघनाद का साहस तोड़ दिया और वह विस्मित होकर उस अतुल पराक्रमी की ओर देखने लगा। इन्द्रजित के सुस्त हो जाने पर वानरों ने सिंहनाद किया और वायु मंडल में ध्वजाओं को फहराने लगे। यह देखकर इन्द्रजित प्रलय काल के मेघ के समान गर्जा और अपने बाणों से सारी वानर सेना को भर देता भया। तब लक्ष्मण ने तीक्ष्ण नोक वाले सात बाणों से उस राक्षस के दुर्भेद्य कवच को तोड़ डाला। वह कवच टुकड़े होकर इस प्रकार गिर पड़ा मानों तारों के समूह भूमि पर गिर पड़े हों। कवच के टूट जाने पर उस की देह में सैंकड़ों बाण घुस गए और रक्त की अनेक धाराएं वह निकलीं। उस समय वह तेजस्वी रुधिर से रंगा हुआ अस्त काल के सूर्य्य के समान शोभायमान हुआ। कवच के कट जाने पर इन्द्रजित ने एक हज़ार बाणों से लक्ष्मण का भी कवच टुकड़े २ कर डाला। उस समय एक दूसरे को मार डालने की इच्छा वाले रक्त से रंगे हुए वह दोनों वीर युद्ध में मतवाले हुए २ दो बादलों के समान परस्पर टकरा रहे थे। उन के बाण आपस में टकराते हुए अग्नि के चिंगारे

छोड कर पृथिवी पर गिर रहे थे। वह दोनों गर्ज २ कर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। स्वर्ण पंखों वाले बाणों से दोनों के शरीर रुधिर बहा रहे थे। उस समय उनके शरीर ऐसी शोभा दे रहे थे मानों बन में टेसू और सेमर फूल रहे हों। वह दोनों घोर युद्ध में लगे हुए न हटते थे और न थकते थे।

उन दोनों को युद्ध में उन्मत्त देखकर विभीषण को प्रचण्ड क्रोध उत्पन्न हुआ और वह अग्नि के समान जलते हुए बाणों से राक्षसों के रोएं उडाने लगा इधर हनुमान आदि वानर भी पत्थरों और वृक्षों से राक्षसों को यम लोक में भेजने लगे। अब दोनों सेनाओं में महा घोर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मण और मेघनाद का ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, कि देव दानव सब कांप उठे। चारों दिशाएं बाणों से ढक गई, सूर्य्य छिप गया, अंधकार हो गया, रुधिर की सहस्रों नदीयां बडे वेग से बहने लगीं और वायु का प्रवाह रुक गया।

उस घोर युद्ध में मतवाले हुए २ सुमित्रा नंदन ने मानों क्रोध से आग बर्साते हुए मेघनाद के चारों घोडों को मार डाला, और सारथी का सिर काट लिया। यह देखकर राक्षसों के मुख पीले हो गये और वानरों ने हर्ष नाद से सारी लंका को भर दिया। तब मेघनाद तुरंत ही दूसरे रथ पर सवार हे कर गर्जा और पैने बाणों से वानरों को दग्ध करने लगा। तब रावण के

छोटे भाई विभीषण ने यमराज के समान अपनी गदा उठाई और एक ही प्रहार से मेघनाद के सारथी और घोड़ों को पीस डाला। इस पर मेघनाद के नेत्र क्रोध से जल उठे और वह कूदकर पृथिवी पर आ गया और दश बाण अपने चचा की ओर छोड़े। परंतु लक्ष्मण ने फुर्ति से उन को रास्ते ही में काट डाला। अब तो मेघनाद क्रोध से पागल हो गया और विभीषण को मारने के लिए उस ने वह बाण धनुष पर जोड़ा जिसे उस ने यमराज से प्राप्त किया था। यह बाण इन्द्रादि देवताओं से भी न रोका जा सकता था और तीनों लोकों में कोई भी इसका सहन न कर सकता था। इस यम बाण को देखकर लक्ष्मण ने भी तुरंत ही कुबेर का दिया बाण भत्थे से निकाला। दोनों वीरों ने हाथियों की शुंडों के समान अपनी भुजाओं से जब इन बाणों को जोड़ कर धनुषों को कानों तक खेंचा तो उस समय क्रौञ्च पक्षियों के समान वह बाण बोलने लगे। जब वह बाण प्रत्यंचा से छूटे तो सारा आकाश प्रकाश जगमगा उठा और वह एक दूसरे से टकराकर भयानक अग्नि को छोड़ते हुए पृथिवी पर गिर पड़े। उन के टकराने से धूएं और चिंगारों से आकाश भर गया और वह दोनों बाण दुकड़े २ हो गए। तब शेषनाग के समान क्रोध से फुफकारते हुए लक्ष्मण ने मेघनाद पर वारुणास्त्र छोड़ा। उस प्रलयकारी अस्त्र को आते देखकर

इन्द्रजित ने आग्नेय अस्त्र से उसका विध्वंस कर डाला और फिर वह राघव के प्राण लेने के लिये न रुकने वाला आसुरास्त्र छोड़ता भया ! उस अस्त्र के छूटते ही भूमि आकाश अंधकार से भर गया उस समय एक दूसरे के देखने में सब असमर्थ हो गये, चारों दिशाओं में अंधकार करके मेघनाद प्रलयकाल के मेघ के समान गर्जना करता भया। तब सुमित्रा नंदन ने सौर्य्यास्त्र छोड़कर तुरंत ही अंधकार को दूर कर दिया और दशों दिशाएं निर्मल प्रकाश से चमक उठीं। अब दोनों सेनाओं में फिर भयंकर युद्ध मच गया,राक्षस और वानर सिंहनाद करते हुए प्रलयकारी हत्या कांड करने लगे। तब लक्ष्मण ने एक ऐसा बाण धनुष में जोड़ा जो अग्नि के समान चमकने वाला शत्रु की छाती को फाड़ने वाला, तीनों लोकों का क्षय करने वाला और देवता तथा असुरों से भी अजेय था। उस बाण को प्रत्यंचा पर रख कर लक्ष्मण ने कहा, कि यदि महात्मा राम सत्यवादी दृढ़ ब्रती और परम पराक्रमी हैं तो हे बाण तू ! शीघ्र जाकर शत्रु को यम लोक में पहुंचा, यह कहकर और वेद मंत्रों से उस की पूजा करके उसे छोड़ दिया। प्रत्यंचा से छूटा हुआ वह बाण आकाश को प्रकाशित करता हुआ, महा विषधर सर्प के समान वायु मंडल में फुफकारता हुआ मेघनाद की ओर उड़ा और उसका किरीट और कुंडलों वाला सिर उड़ाकर आकाश में

ले गया। सिर के कट जाने पर मेघनाद का पर्वाताकार धड बडे धमाके से पृथिवी पर गिर पड़ा। मेघनाद के मरने पर वानरों के हर्ष की कोई थाह न रही, वह सिंहनाद करते हुए राक्षसों के दल पर टूट पड़े और क्षण मात्र में प्रलयका समां बांध दिया, सहस्रों राक्षस पत्थरों से कुचले गये, नखों और दांतों से फाड़े गए और शेष सब हाहाकार करते हुए भाग निकले। देवताओं और तपस्वियों के इस बड़े वैरी के मरने पर आकाश में दुंदुभियां बजने लगीं, देवताओं सिद्धों और गंधर्वों ने विमानों से फूलों की ऐसी वर्षा की कि युद्ध भूमि फूलों से भर गई।

रावण का विलाप करना और युद्ध के लिये चलना।

इन्द्रजित के मारे जाने पर लंका पुरी पर शोक की घटाएं छा गईं। सहस्रों राक्षसियां जिन के पति पुत्र और भाई युद्ध में मारे गए थे केशों को नोचतीं छातियां पीटतीं और हाहाकार करती हुईं लंका पति रावण के भवन में गईं और आंसुओं की नदीयां बहाती हुईं रावण से बोलीं, कि हे राजन्! आज हमारा सर्वस्व नष्ट हो गया है, पतियों और पुत्रों से विहीन हुईं २ हम शोक के समुद्र में डूब गई हैं, हाय! न जाने वह कौनसी अशुभ घड़ी थी, जब वृद्धा शूर्पणखाने काल के समान राम को छेड़ा था। निस्सन्देह यह नकटी

सारी लंका को खाने के लिए उत्पन्न हुई है। हे नाथ ! युद्ध से पहले विभीषण ने तुम को अच्छी सम्मति दी थी, परंतु काल के वश में हुए २ तुम ने उसे दुत्कार दिया। अशोक वनिका में सीता के रूप में तुम ने मृत्यु को ला रखा है, हाय ! आज हम अनाथ हो गईं, लंका में कोई भी राम रूपी काल के ग्रास से बच नहीं सकेगा। इस प्रकार रोती पीटती हुई वह सब सारी लंका पुरी को शोकमय बना देती भयीं। राक्षसियों के रुदन को सुनकर रावण ने ठंडी सांस भरी और फिर पुत्र वियोग से दुखी हुआ २ अपने मंत्रियों से बोला कि सेना को तय्यार करो, आज मैं अपने अग्नि के समान प्रचण्ड बाणों से राम और लक्ष्मण के प्राण लूंगा। आज मेरे बाण खरदूषण प्रहस्त महाकाय कुम्भकर्ण और मेघनाद का बदला लेंगे। आज मेरे बाणों से समस्त वानर सेना ऐसे दग्ध होगी जैसे दावानल अग्नि से बन के वृक्ष राख होते हैं। आज मैं अपने बाणों से आकाश पाताल समुद्र अन्तरिक्ष तीनों लोक और चौदह भुवनों को भर दूंगा। हे मंत्रियो ! कमल के केशर के समान जिन के रंग हैं और लाल २ मुख रूपी वानर कमलों से भरे हुए युद्ध रूपी सरोवर को आज मैं ऐरावत हाथी के समान मथ डालूंगा। आज हनुमान अंगद नल नील और सुग्रीव आदिक वानरों के सेनापति मेरे बाणों से विंधे

हुए अपने मुखों से युद्ध भूमि को ऐसे सुशोभित करेंगे जैसे नाल सहित कमल तड़ागों को सुशोभित करते हैं, जिन राक्षसियों के पति पुत्र और भाई मारे गए हैं आज मै राम लक्ष्मण का बध करके उनका बदला लूंगा जो वानर वृक्षों और पत्थरों से लड़ने में बड़े तेज़ हैं आज वह युद्ध भूमि में सदा के लिए सो जाएंगे। इतना कहकर यम के समान क्रोध से जलता हुआ रावण अपने सूर्य्य के समान रथ पर सवार हुआ और लाखों राक्षसों को साथ लेकर उस द्वार से लंका के बाहर आया जिधर राम और लक्ष्मण विभीषण के साथ खड़े थे।

लंका से बाहर निकल कर रावण ने अपने सारथी से कहा, कि हे वीर! मेरे रथ को वहां ले चल जहां दशरथ के दोनों पुत्र मृत्यु की राह देख रहे हैं। आज मैं उस राम रूपी पेड़ को जड़ से काट दूंगा जो सीता रूपी पुष्प से फल प्राप्त करना चाहता है और हनुमान नल नील सुग्रीव आदिक जिस पेड़ की शाखाएं हैं। यह कह कर राक्षसेन्द्र घर घराते हुए रथ पर आगे बढ़ता हुआ भयानक गर्जना करता भया। उस की गर्जना से लंका के पर्वतों सहित पृथिवी कांप उठी। सिंह व्याघ्र हाथी आदिक बन के जन्तु भयभीत हो कर भागने लगे। वानर सेना के मध्य में खड़े हो कर उस राक्षसराज ने क्रोध से तामस अस्त्र को छोड़ा। उस

एक ही अस्त्र से सहस्रों वानर भट्टी में दानों के समान भुन गए। अब तो मारे डर के सब वानर भाग उठे। सारी वानर सेना में एक भी वीर ब्रह्मा के दिए हुए उस अस्त्र का सहन करने वाला न निकला। सब सेना के भाग जाने पर रावण ने सूर्य्य के समान तेजस्वी दशरथ पुत्रों को देखा। उन्हें देखते ही रावण अन्धेरी से उड़ाए मेघ के समान इन की ओर बढ़ा। तब अपने प्रधान शत्रु को अपनी ओर आते देख कर श्री रामचन्द्रजी ने क्रोध से धनुष को हाथ में लिया और उस की टंकार से दशों दिशाओं को भर दिया। उधर लक्ष्मण ने भी धनुष की कठोर ध्वनि से राक्षसी सेना को कंपायमान कर दिया।

अब दोनों सेनाओं में घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। उधर भाईयों पुत्रों और बन्धुओं के मारे जाने से रावण दांत पीस रहा था और इधर श्री रामचन्द्रजी अपनी प्रिया के हरने वाले को सन्मुख देख उस को मार डालने पर तुले हुए थे। दोनों ओर से बाणों की वृष्टि होने लगी। दोनों ही एक दूसरे के बाणों को काट कर निष्फल कर रहे थे। राम और लक्ष्मण के बाणों के बीच में खड़ा हुआ रावण उस समय ऐसा शोभायमान हुआ मानों सूर्य्य और चन्द्रमा के मध्य में राहु खड़ा हो। दोनों राजकुमारों के साथ युद्ध करते हुए उसने वानर सेना को भी बहुत पीड़ित किया।

उस समय उसके युद्ध को देख कर देवता भी चकित हो गए और उस के मरने की भगवान से प्रार्थना करते भये। उधर रावण लक्ष्मण को छोड़ कर घोर गर्जना करता हुआ श्री रामचन्द्रजी पर आक्रमण करता भया। उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से राघव को ऐसे ढक दिया जैसे बादल सूर्य्य को ढक देता है। तब श्री रामचन्द्रजी ने भल्लाकार बाणों से रावण के सब बाण काट दिए जो अग्नि के समान चमकने वाले और शत्रु को जला डालने वाले थे। उन दोनों के भीषण युद्ध को देख कर सब जीव जन्तु डर गए। थोड़े ही समय में दोनों ओर से इतने बाण छोड़े गये कि सारा आकाश छा गया और अन्धकार हो गया। आकाश में बाणों की ऐसी छत्त सी बन गई जिस में जहां तहां सहस्रों झरोखे दिखाई देते थे। उस युद्ध को देखकर देवताओं को इन्द्र और वृत्त का युद्ध याद आगया दाएं बाएं आगे पीछे जिधर जिधर वह दोनों पैंतरे बदल बदल कर बाण छोडते थे उधर उधर ही बाणों की तरंगे ऐसी देख पड़ती थीं, मानों वायु के झकोलों से समुद्र में तरंगे चल रही हों।

तब राघव के बाणों से अपने बाणों को कटते देख कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह विस्मित सा हो कर सोचने लगा, कि जिन बाणों को युद्ध में देवता भी सहन न कर सके आज वह एक तुच्छ मनुष्य के

हाथों मे कटे जा रहे हैं, यह बड़ा आश्चर्य्य है । इस प्रकार विचार करके उस ने राम के मारने के लिए रौद्र अस्त्र उठाया और उसे भयंकर गर्जना कर के छोड़ दिया । उस अस्त्र के छूटते ही उस में से सहस्रों शूल गदा मूसल आदिक निकल कर चारों ओर वेग से ऐसे फैल गए मानों संसार को विध्वस्त करने के लिए प्रलय काल का वायु चलता हो परन्तु श्री रामचन्द्रजी ने गंधर्वास्त्र से उस के टुकड़े टुकड़े कर दिए रौद्रास्त्र के नष्ट हो जाने पर लंकेश ने भयंकर सौरास्त्र छोड़ा । उस अस्त्र के छूटते ही सहस्रों टुकडे हो गए और वह टुकडे जलते हुए अग्नि के चक्र बन कर आकाश में हाथियों के समान चिंघाडते हुए वेग से घूमने लगे उस समय ऐसे जान पडा मानों सहस्रों सूर्य्य गगन मण्डल में दौड़ रहे हैं और पृथिवी को जला कर राख कर डालना चाहते हैं परन्तु इन सब चक्रों को राघव ने क्षण मात्र में काट डाला और वह सब भी टुकडे २ हो कर पृथिवी पर गिर पडे । उस समय वानरों ने सिंहनाद किया और श्री रामचन्द्रजी का जय घोषणा से आकाश को गुञ्जा दिया ।

लक्ष्मण का बर्छी लगने से मूर्च्छित होना ।

सौरास्त्र के नष्ट हो जाने पर रावण क्रोध से कांपने लगा और नेत्रोंसे अग्नि छोडते हुए उसने राघव पर दस बाण छोडे जो मर्म स्थलों को तोडने वाले थे । यह देख

कर लक्ष्मण ने क्रोध से अनेक बाण छोड़े, जिन से रावण की ध्वजा कट कर गिर पड़ी, धनुष टूट गया सारथि मारा गया और रथ के आठों घोड़े मर कर भूमि पर लोट गए। सारथि और घोड़ों के मरने पर रावण कूदकर भूमि पर आ गया और लक्ष्मण को मारने के लिए बर्छी उठाई। कभी निष्फल न जाने वाली वह बर्छी काल के समान प्राण लेने वाली थी। बिजली के समान चमकती हुई उस बर्छी को लेकर रावण कड़क कर बोला, हे लक्ष्मण! अब तू इस संसार को अच्छी तरह देख ले, यह बर्छी तेरे हृदय का रुधिर पियेगी और तुझे यम लोक में लेजाएगी। इस बर्छी को यम नामक दैत्य ने बनाया था और देवताओं असुरों और मनुष्यों मे असह्य है। यह कहकर उस ने लक्ष्मण का लक्ष्य बांधा और फिर घोर गर्जना करके उसे छोड़ दिया। रावण के हाथ मे छूटी हुई वह बर्छी काल दण्ड के समान वेगसे चली और निर्भय खड़े हुए सुमित्रा नंदन के हृदय में ऐसे घुस गई जैसे विषधर सर्प बांबी में घुस जाता है। बर्छी के लगते ही लक्ष्मण मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। उस समय राक्षसों ने हर्ष से सिंह नाद किया, वायु मंडल में ध्वजाओं को फहराया उन की सारी सेना में शंख नगाड़े और दुंदुभियां बजने लगीं। भाई के गिरने पर श्री रामचन्द्र जी ने उसे दौड़कर टेक दी और उस बर्छी के निकालने का

यत्न करने लगे परन्तु वज्र के समान कठिन बर्छी बाहर न निकली और खींचते ही खींचते टूट गई। उस समय राघव के नेत्र क्रोध से लाल हो गए और वह सुग्रीव से बोले, हे कपीन्द्र ! आज रावण ने मेरे सोए हुए क्रोध को जगा दिया है, अब थोड़े दिनों में तुम इस संसार को मुझ से अथवा रावण से रहित देखोगे इस पापी रावण के सिर पर काल गर्ज रहा है। जैसे चातक मेघ के दर्शनों का प्यासा होता है, इसी प्रकार मैं रावण को देखने के लिये तड़प रहा था। आज यह मेरे हाथ से जीता न बचेगा। हे सुग्रीव ! जिस रावण को मारने के लिए मैंने बालि का बध किया, समुद्र पर सेतु बांधा आज वह पापात्मा मेरे नेत्रों के सामने आया है, जैसे गरुड के निकट आकर सांप जीता नहीं रह सकता इसी प्रकार रावण आज जीता नहीं रहेगा। हे वानरो ! तुम बड़े योद्धा पराक्रमी और वीर हो, परन्तु इस समय तुम सब पर्वत पर जाकर बैठ जाओ और हम दोनों का द्वंद्व युद्ध देखो, आज मैं वह काम करने वाला हूं जिसे जब तक सूर्य्य और चन्द्रमा हैं लोग याद करते रहेंगे।

इतना कहकर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण का सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गए और रोते हुए सुषेण के के प्रति बोले, हे वैद्य प्रवर ! मेरा प्राणों से भी प्यारा भाई रावण की शक्ति से मूर्छित होकर गिर पड़ा है अब

यदि यह सचेत न हुआ तो मेरी भी यहीं मृत्यु होगी क्योंकि भाई के बिना मैं अयोध्या तो क्या तीनों लोक का राज्य भी नहीं चाहता। देख मेरे सब अंग ढीले हो रहे हैं, धनुष हाथ से छुटा जाता है। अब मुझमें युद्ध करने की शक्ति नहीं रही। हे सुषेण! यदि सुमित्रा की आंखों का तारा और मेरा जीवनाधार लक्ष्मण सचेत न हुआ तो मै भी यहीं प्राण देदूंगा। हा लक्ष्मण! बन में आते समय जिस प्रकार तुम मेरे साथ आये थे उसी प्रकार मुझे भी यम लोक में अपने साथ लेचलो। हे सुषेण! सब संबंधी इस संसार में मिल सकते हैं, परन्तु भाई दोबारा नहीं मिलता। हा! अयोध्या जाने पर जब भरत शत्रुघ्न पूछेंगे, कि लक्ष्मण कहां है तो उस समय मैं क्या उत्तर दूंगा, निस्संदेह बन्धुओं की निंदा सुनने की अपेक्षा मेरे लिये यहां मर जाना कहीं अच्छा है। हे भगवन् मैंने पूर्व जन्म में कौनसा ऐसा पाप किया था, कि मेरा छोटा भाई मुझ से पहले चल बसा है। हे लक्ष्मण! तू मुझ से क्यों रूठ गया है, पहले की तरह आज क्यों नहीं मुझ से बोलता। हे भाई! मैं दुख के समुद्र में डूब रहा हूं, क्यों नहीं उठकर मुझे धीरज देता। इस प्रकार विलाप करते हुए राघव के नेत्रों से आंसुओं की धारा फूट निकली और वह शोक के अगाध समुद्र में डूब गए।

श्री रामचन्द्र के इन कातर बचनों को सुनकर

सुषेण बोला हे राघव ! काल दण्ड के समान रावण की शक्ति अमोघ है, इस के लगने पर देवता असुर मनुष्य राक्षस कोई भी बच नहीं सकता, परन्तु लक्ष्मण के बल पराक्रम को देखकर मुझे बडा आश्चर्य्य हुआ है जो अभी तक जीता है और मृत्यु के चिन्हों से रहित कमल पत्र के समान खिले हुए मुख वाला अचेत पडा है। हे प्रभो ! यदि संजीवनी नाम की बूटी सूर्य्य उदय होने से पहले २ यहां आ जाए तो लक्ष्मण के प्राण बच सकते हैं। परन्तु दक्षिण दिशा में कई सहस्र योजन दूर हिमालय पर्वत के शिखर पर होने वाली उस संजीवनी को इतनी जल्दी लाने वाला मैं किसी को नहीं देखता हूं।

सुषेण के मुख से यह वचन सुनकर पवन पुत्र हनुमान का मुख खिल गया और वह खंभ ठोककर बोला, हे सुषेण ! उस संजीवनी को मैं लाऊंगा और श्री रामचन्द्र जी के चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूं, कि यदि मैं सूर्य्योदय से पहले न ला सका तो अपने प्राण दे दूंगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के हनुमान ने राघव के चरणों को स्पर्श किया और मेघ के समान गर्जना करता हुआ आकाश में उड गया। बिजली की नाईं आकाश को चीरता और मानों मार्ग को खाता हुआ वह शीघ्र उस पर्वत पर पहुंच गया जिसका पता सुषेण

ने दिया। अब वहां पहुंच कर उस ने अनेक बूटीयों को रात्रि के अन्धकार में अग्नि के समान जलते हुए देखा। तब उस ने सोचा कि किस बूटी को ले जाऊं, और किस को न ले जाऊं, यदि यहां से ली हुई बूटी वास्तव में संजीवनी न हुई तो फिर लक्ष्मण का बचना असम्भव हो जाएगा। इस प्रकार मन में अनेक प्रकार के तर्क वितर्क करके उसने उस पर्वत शिखर को ज़ोर से झंझोडा और सहस्रों जलती हुई बूटीयों सहित पर्वत शिखर को उखाड लिया तथा पहले की तरह पवन मे भी शीघ्र उडता हुआ शिखर सहित लंका में पहुंच गया। श्री रामचन्द्रजी ने देवताओं से भी न हो सकने वाले हनुमान के इस कर्म को देख कर प्रेम से उसे गले लगाया और रोते हुए बोले हे पवन पुत्र! तुम मेरे भरत के समान प्यारे भाई हो, आज तूने डूबते हुए मेरी रक्षा कर ली है। इस के पश्चात् सुषेण ने संजीवनी बूटी को लक्ष्मण के नाक के साथ लगाया। उसके सूंघते ही लक्ष्मण ने नेत्र खोल दिये और पूर्व [illegible] उठकर खडा हो गया। लक्ष्मण के सचेत होने पर राघव के आनंद का पारावार न रहा। मरी हुई वानर सेना में फिर प्राण आ गए। वानरों और रीछों ने सिंहनाद से आकाश को गुंजा दिया, देवताओं ने आकाश से फूलों की वृष्टि की और राहस्रों के मुख सफेद होगए।

राम रावण युद्ध।

लक्ष्मण को फिर धनुष हाथ में गहे युद्ध के लिए ललकारते देख रावण ने फिर क्रोध से बाणों की वृष्टि आरंभ की। इधर श्री रामचन्द्र जी ने भी काल के समान धनुष हाथ में लेकर रावण और उस की सेना का संहार करना आरंभ किया। उन दोनों का घोर युद्ध देखकर देवराज इन्द्र तत्काल अपना सूर्य्य की नांई जगमगाता हुआ रथ लेकर वहां उपस्थित हुआ और उसे राघव के श्री चरणों में भेंट करता भया। उस दिव्य रथ पर चढ़कर श्री रामचन्द्र जी इस प्रकार बाणों की बर्षा करने लगे जैसे प्रलय काल का मेघ जल बर्साता है। उन दोनों का युद्ध देखकर राक्षसी और वानरी सेना शस्त्र छोड़कर एक ओर खड़ी होगई राक्षस और वानर युद्ध छोड़कर एक टक अपने अपने स्वामियों के भयंकर संग्राम को देखने लगे। दोनों ही वीर निर्भय होकर मतवाले हाथियों के समान एक दूसरे के बध पर तुले हुए थे। चिर काल तक बाणों की वृष्टि करके राघव ने क्रोध में एक अर्ध चन्द्राकार बाण छोडा। उस बाण से रावण के रथ की ध्वजा कटकर पृथिवी पर गिर पडी। ध्वजा के गिर जाने पर रावण ने क्रोध से राघव के रथ को बाणों से भर दिया और घोडों को बींध डाला। परन्तु इन्द्र के घोडे उन बाणों को फूलों के समान सहन करते भये। अपने बाणों

के निष्फल जाने पर रावण क्रोध से गर्जना करके बडे भयंकर शब्द करने वाले सहस्त्रों बाण छोड़ता भया। उन बाणों से एक भी वानर बिना घाव के न रहा। केवल राघव के अंगों को वह बाण स्पर्श न कर सके। इस पर श्री रामचंद्र जी ने भी बाणों की झडी बांध दी। उस समय आकाश और पृथिवी बाणों से भर गई। युद्ध भूमि में घूमते और बाणों की वृष्टि करते हुए दोनों के रथ दो गर्जते हुए बादलों के समान दिखाई देने लगे दोनों ही युद्ध कला में चतुर बलवान, बुद्धिमान, बीर और पराक्रमी थे। दोनों ही बाणों की चोट से एक दूसरे को पीड़ित कर रहे थे। अब संग्राम क्षेत्र में लड़ते २ उन दोनों के रथ इतने निकट हो गए, कि घोड़ों के मुखों से घोड़ों के मुख मिल गए, पताकाओं से पताकाएं, दोनों रथों से उड़ाई हुई धूल एक हो गई। तब राघव ने जलते हुए चार बाणों से रथ समेत रावण को बहुत पीछे धकेल दिया। तब रावण क्रोध से जल उठा और धनुष छोडकर गदा परिघ और मूसलों से राघव पर प्रहार करता भया यह देखकर दशरथ नंदन राम भी उस पर गदाओं से आक्रमण करते भये। उस समय उन की भयंकर चोटों के शब्द से भूमि आकाश और समुद्र क्षुब्ध हो गया। उस भयानक संग्राम को देखकर देव दानव राक्षस और वानर भयभीत हो गए, परन्तु वह दोनों

वीर न थकते थे और न युद्ध से विमुख होते थे । तब रावण ने राघव के बध के लिए प्रचण्ड शब्द किया और संसार को क्षुब्ध कर देने वाला और समुद्र को सुखा देने वाला आग्नेय अस्त्र छोड़ा । उस अस्त्र के छूटते ही आकाश लाल हो गया, पर्वत जलने लगा और सारी वानरी सेना के रोएं धूआं छोड़ने लगे, यह देख कर श्री रामचन्द्र जी ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया जिससे क्षणमात्र में सब अग्नि शान्त हो गया और सारी रण भूमि जल मग्न होगई । आग्नेयास्त्र को निष्फल जाते देखकर लंकेश ने रौद्रास्त्र छोड़ा जो प्रलय काल के समय भगवान् रुद्र के तीसरे नेत्र के समान जलता हुआ संसार को विध्वस्त करने वाला था। परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने ऐन्द्रास्त से उस के टुकड़े २ कर डाले और फिर वायव्य अस्त्र छोड़ा उस समय आकाश मंडल तथा पृथिवी में भयानक क्षोभ उत्पन्न हुआ, प्रबल वायु से पर्वत समेत सारी लंका कांप उठी, और सहस्रों ऊंचे २ प्रासाद टूट कर पृथिवी पर गिर पड़े । इस पर रावण बड़े गर्व के साथ गर्जता भया और दिव्य अस्त्रों से पवन वेग को दूर करता भया।

उस समय अपने स्वामियों के प्रहारों को देख २ कर वानर और राक्षस बारंबार सिंह नाद करते और आकाश में ध्वजाओं को फहराते थे । तब रावण ने अपनी राक्षसी सेना को लड़ने की आज्ञा दी । आज्ञा

पाते ही लाखों राक्षस मारो मारो करते हुए गदा शूल और परिघों से वानरों पर टूट पड़े। इधर वानर भी सिंह नाद करते हुए वृक्षों और पत्थरों से राक्षसों को चूर्ण करने लगे। क्षण मात्र में प्रलय का समा बंध गया। बाणों से आकाश छा गया और पत्थरों तथा अन्य शस्त्रों से भूमि पट गई। मतवाले हुए हुए राक्षस और वानर गर्ज गर्ज कर एक दूसरे को मारने लग गए। उस समय ऐसा घोर युद्ध हुआ कि रक्त की नदीयां बहने लगीं और उस में सहस्रों लोथें सिर धड़ भुजाएं और जंघाएं तैरती दिखाई देने लगीं आकाशचारी गृध्र और कौए चक्कर लगा लगा कर लोथों पर झपटने लगे। ऐसा भयानक युद्ध इस पृथिवी पर किसी ने इस से पहले न देखा था। उस युद्ध भूमि में मानों मृत्यु नृत्य कर रही थी, क्षण क्षण में सहस्रों सिर कट कट कर उस रक्त की नदी में गिरते थे, हाय हाय और पकड़ो मारो के शब्द से कानों के पर्दे फटे जाते थे, किसी को अपने जीवन की आशा न रही थी। वह भयानक युद्ध क्षेत्र हवन कुण्ड के समान था, जिस में वानरों और राक्षसों की अनगिणत आहुतियां मिल रही थीं और युद्ध अग्नि क्षण २ में प्रचण्ड होता जाता था। तोपों की गर्ज बाणों की सांय सांय धनुषों के टंकार और गदाओं की चोटों से युद्ध की भीषणता बढ़ती चली जाती थी, किसी के लिये कहीं भागने को

भी अवसर न था। ऐसी मार काट को देख कर इन्द्र के रथ पर चढ़े हुए श्री रामचन्द्रजी के प्रति सारथि मातलि बोला, हे राघव ! देखिए यह राक्षस किस निर्दयता से वानरों को संहार कर रहा है। हे अयोध्या नाथ ! ब्रह्मास्त्र छोड़ कर शीघ्र इस का वध कीजिए अन्यथा एक भी वानर यह जीता न छोड़ेगा।

लंकापति रावण का वध।

मातलि के मुख से ब्रह्मास्त्र का नाम सुन कर श्री रामचन्द्रजी ने कहा, हे सारथे ! तूने समय पर ही मुझे याद दिलाया है। जिस घड़ी की मैं प्रतीक्षा कर रहा था वह आ पहुंची है। देखो सूर्य्य अब अस्त होने वाला है और यही क्षण इस राक्षसराज के मरने का है। यह कह कर परम पराक्रमी श्री रामचन्द्रजी ने वह बाण धनुष पर जोडा जो उन्होंने महामुनि अगस्त्य से लिया था और अगस्त्य ने ब्रह्मा से प्राप्त किया था। सारे विश्व को विजय करने के लिए ब्रह्मा ने वह बाण इन्द्र के लिए सृजा था। उस भयंकर बाण के जो सदा विषधर सर्प की नाईं फुंकारता हुआ चलता था, पंखों में पवन भरी हुई थी और उस के फलों में सूर्य्य और अग्नि का निवास था। सुमेरु पर्वत के तुल्य भारी उस बाण को राघव ने धनुष पर रखा।

वह अपने एक ही प्रहार से दीवारों दरवाजों और पर्वतों को तोड़ फोड़ कर परमाणु परमाणु कर देने वाला था। अग्नि और सूर्य्य के समान उस बाण की ओर कोई आंख भर कर देखने को भी समर्थ न था। बिजली की गर्ज से भी बढ़ कर उसका दारुण शब्द अपने शब्द मात्र से ही लाखों मनुष्यों के हृदय खींच कर उन्हे मरणासन्न कर देता था। देवता दानव यक्ष गंधर्व किन्नर विद्याधर असुर राक्षस मनुष्य कोई भी उस बाण को सहन करने में समर्थ न था। उस बाण को धनुष से जोड़ कर श्री रामचन्द्रजी ने वेद मन्त्रों से अभिमंत्रित किया और प्रत्यञ्चा को खेंच कर कान तक ले गये। उस समय पृथिवी कांपने लगी, समुद्र में क्षोभ आगया, संसार के प्राणि डर गए देवताओं असुरों ने अपने हृदयों को थाम लिया और दोनों दलों के वानर और राक्षस कानों में उंगलियां देकर आंखें बंद कर औंधे मुख भूमि पर लेट गए। उस समय श्री रामचन्द्रजी ने मन में जानकी को याद किया और फिर उस के हरने वाले पापी नीचात्मा दुष्ट रावण को जलते हुए नेत्रों से देख कर बाण को छोड़ दिया। वह बाण सूर्य्य समान अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ इन्द्र वज्र से भी अधिक कठोर शब्द करता हुआ वायुमंडल में भारी क्षोभ उत्पन्न करता हुआ रावण के हृदय को फोड़ कर पृथिवी में

प्रवेश कर गया । बाण के लगते ही रावण के प्राण पखेरू उड गए और वह बडे धमाके के साथ पृथिवी पर गिर पडा । उस के गिरते ही वानरों के दल राक्षसों को पत्थरों से पीसने लगे । क्षण मात्र में वानरों के पत्थरों वृक्षों नखों और दांतों से घायल किए हुए मरे हुए और छट पटाते हुए राक्षसों से युद्ध भूमि पट गई । इस प्रकार इस घोर युद्ध का अंत हुआ । उस समय देवताओं ने आकाश को दुन्दुभियों के शब्द से भर दिया और फूलों की वृष्टि से पृथिवी को मानों फूलों की शय्या बना दिया । वानरों के हर्ष का तो कोई पारावार न रहा । वह मतवाले होकर जयनाद से आकाश को गुंजाने लगे, वायु मंडल में विजय पताकाएं उड़ाने लगे । राक्षसों की खोपडियां आकाश में उछालने लगे और कूद २ कर नाच २ कर एक दूसरे के गले मिल २ कर आनंद मनाने लगे ।

राक्षसियों का विलाप और रावण का अन्त्येष्टि संस्कार ।

रावण के मर जाने पर लंका पर दुख का पहाड टूट पडा, और महाराणी मंदोदरी करुणा विलाप करती हुई सहस्रों राक्षसियों को साथ लेकर लंका के उत्तर द्वार से बाहर निकली । वह सब केशों को नोचतीं छातीयां पीटतीं और पत्थरों को भी पिघला देने वाले करुणा क्रंदन से नेत्रों से नीर बहाती हुई वहां आईं जहां

अगणित राक्षसों सहित तेजस्वी रावण गिरा पड़ा था। मंदोदरी अपने पति को देख दौड़ कर उसके साथ लिपट गई और फिर बड़ी दीनता के साथ विलाप करने लगी, हे नाथ ! हे इन्द्र सहित सब देवताओं को जीतने वाले !! किस प्रकार आज तू इन दो मनुष्यों से मारा गया है, अहो आश्चर्य्य ! आज मैं असंभव बात को संभव हुई २ देखती हूं, निस्सन्देह यम राज स्वयं राम के रूपमें आए हैं और सब देवता वानरों के रूपमें आकर तुम्हारी मृत्यु का कारण बने हैं, हे नाथ ! तुम ने अपनी भुजाओं से तीनों लोकों को जीता है, परन्तु आज तुम्हारी मृत्यु को देखकर मुझे विश्वास होगया है, कि पतिव्रता स्त्री का तेज त्रिभुवन की शक्ति से भी बढ़कर है, जिस ने तुम्हें भी दग्ध कर डाला है। हे प्राणनाथ ! तुम ने मेरे साथ अगाध प्रेम किया है, तुमने मुझे प्रसन्न करने के लिए पुष्पक विमान पर बैठाकर कैलाश सुमेरु मंदराचल और देवताओं के बाग़ीचों का विहार कराया है, परन्तु वही मैं आज दीनों के समान तुम्हें बुला रही हूं, और तुम नहीं बोलते, अहो आश्चर्य्य ! एक क्षण पहले मैं तीनों लोकों की स्वामिनी थी, परन्तु अब धूल से भी हल्की हो गई हूं। हाय मैं विधवा होगई ! मेरा पिता दानवों का राजा है, पति मेरा त्रिभुवन पति राक्षस राज है, और मेरा पुत्र इन्द्रजित है, इन बातों को मन में लाकर मैं फूली नहीं समाती

थी और संसार को तुच्छ समझती थी परंतु आज मेरा गर्व टूट गया, आज मैं तिनकों से भी हल्की होगई। इस प्रकार विलाप करती हुई मंदोदरी मूर्छित होकर रावण की लोथ पर गिर पड़ी। तब राक्षसियां रोतीं पीटतीं अपने भाईयों पुत्रों और पतियों की लोथों को युद्ध में ढूंढने लगीं, राक्षसियों की यह दशा और भाई को रण भूमि में गिरा हुआ देखकर विभीषण का सोया हुआ भ्रातृ स्नेह जाग उठा और वह ढाढें मार २ कर रोने लना, परंतु श्री रामचन्द्र जी ने उस को अनेक प्रकार से धीरज देते हुए कहा, हे विभीषण! इन स्त्रियों को समझाओ और अपने भाई की प्रेत क्रिया करो।"

राघव के ऐसा कहने पर विभीषण लंका में गया और वहां से उसने भाई का अग्नि होत्र बाहर निकलवाया। फिर रावण को रेशमी वस्त्र में लपेट कर स्वर्ण की पालकी में उसके शरीर को रखा। पालकी को मुख्य मुख्य राक्षसों ने नेत्रों से आंसु गिराते हुए उठाया और समुद्र तट पर जाकर चंदन पद्मक आदिक लकड़ियों की चिता में उसका अंत्येष्टि संस्कार कर दिया।

विभीषण को राज्य देना और सीता को लंका से बाहर मंगवाना।

रावण का दाह संस्कार करके श्री रामचंद्र जी

लक्ष्मण के प्रति बोले, कि महा बाहो! विभीषण की सहायता से ही मैंने लंका को जीता है, सो तू शीघ्र इसे राजतिलक दे" तब श्री रामचन्द्रजी की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने स्वर्ण के घड़ों में समुद्र का जल मंगवाया और फिर सब वानरों तथा राक्षसों को एकत्र करके विभीषण को अभिषेक किया और सारी प्रजा में "लंका का स्वामी आज से विभीषण होगया" ऐसी घोषणा करादी, इस घोषणा को सुनकर सब नगर निवासी बड़े प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार के रत्न और उपहार लेले कर विभीषण के लिये भेंट देते भये।

विभीषण का राज्याभिषेक हो चुकने के पश्चात् श्री रामचन्द्रजी ने हनुमान के प्रति कहा, कि हे पवन पुत्र! महाराज विभीषण से आज्ञा ले कर तुम शीघ्र लंका पुरी के अन्दर जाओ और जानकी को मेरी विजय का समाचार दो और लक्ष्मण तथा सुग्रीव की कुशलता कहो। तब विभीषण से आज्ञा पाकर महावीर पवन पुत्र लंका के अन्दर गया और अशोक-वाटिका में पहुंच कर जानकी जी को साष्टांग दण्डवत करता भया, और फिर दोनों हाथ जोड़ कर बोला, हे मातः! रावण ने अपने कर्मों का फल पाया और वह अपनी सेना सहित मारा गया, श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण और सुग्रीव सब कुशल हैं और उन्होंने तुम्हारे पास मुझे कुशल समाचार कहने के लिए भेजा है। हनुमान

के मुख से यह समाचार सुन कर सीता के हर्ष का पारावार न रहा । सूखी हुई खेती पर जैसे पावस ऋतु को नयी वृष्टि बर्स जाय उसी प्रकार उस का मुर्झाया हुआ हृदय कमल खिल उठा, वह मानों मरी हुई जी उठी । उस के नेत्र आनंद के आंसु गिराने लगे, और वह गद्गद कण्ठ से बोली, हे कपिराज ! जो शुभ समाचार तूने मुझे सुनाया है, उस के बदले में मैं तुझे क्या पारितोपक दूं, सारे संसार के पदार्थों में एक भी ऐसी वस्तु मुझे दिखाई नहीं देती जो तुम्हारे काम के अनुरूप समझी जाए । हे हनुमान ! स्वर्ण रत्न तो क्या तीनों लोकों का राज्य भी इस संदेश के सामने तुच्छ है । तब हनुमान हाथ जोड कर बोला, हे पति की प्यारी ! तुम्हारे यह प्रेम भरे हुए प्यारे प्यारे वचन तीनों लोकों की सम्पति से बढ कर हैं इन्हें सुन कर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आज मैं तीन लोक चौदह भुवन का राजा हो गया हूं । तब जानकी प्रेम से आंसु बहाती हुई बोली, हे शत्रुओं के मारने वाले! जिसके वियोग में मैं इतने दिनों से मर रही हूं उस कमल नयन राघव के मैं कब दर्शन करूंगी ? यह सुन कर पवन पुत्र ने कहा, हे पति परायणे ! बादलों से निकले हुए चन्द्र के समान हत शत्रु राघव का तू शीघ्र दर्शन करेगी । यह कह कर हनुमान ने जानकी को प्रणाम किया और वहां से चल कर राघव के पास

पहुंचा और हाथ जोड कर बोला, कि हे नाथ ! वियोग से पीडित हुई २ सीता आप के दर्शनो को इस प्रकार तरस रही है जैसे चातक मेघ को तरसता है। यह सुन कर श्री रामचन्द्रजी विभीषण के प्रति बोले, हे लंकेश ! शीघ्र ही उस चिरकाल वियोगिनी को स्नान करा कर वस्त्रों और भूषणों से अलंकृत कर के यहां ले आओ। राघव की ऐसी आज्ञा पाकर विभीषण लंका में गया। और राक्षसियों द्वारा उसे स्नान वस्त्र तथा भूषणों से भूषित कर के पालकी में बैठा कर वहां लाया जहां सेना सहित श्री रामचन्द्रजी उस की बाट देख रहे थे। दूर ही से पालकी को देख कर श्री रामचन्द्र जी विभीषण के पास जाकर बोले, हे महाबाहो ! स्त्रियों का पतिव्रत धर्म ही एक मात्र उनका पर्दा है और विशेष कर विवाह युद्ध उत्सव और यज्ञ में तो कुछ भी पर्दा नहीं होता इस कारण पालकी से उतार कर सीता को पैदल ले चलो, सब वानर राक्षस और भालु इसे देखें, इसमें कुछ भी हानि नहीं है। तब राघव की आज्ञा से विभीषण ने सीता को पालकी से उतारा और बडी सावधानी से स्वयं उस के पीछे पीछे चला। उस समय वानरों के हर्ष की थाह न रही वह श्री रामचन्द्रजी की जय के नाद करते हुए आकाश में ध्वजाओं को फहराने लगे, दुन्दुभियां बजने लगीं और लंका के बाजों की ध्वनि से आकाश गूंजने लगा। सारी सेना को पार कर के

जानकी वहां पहुंची जहां उस के प्यारे, उसके हृदय के स्वामी, उस के प्राणेश्वर श्री रामचन्द्रजी उस की राह देख रहे थे। स्वामी के पास पहुंच कर उस का कण्ठ प्रेम जल से भर गया, बडी कठिनता से उस के मुख से "आर्य्यपुत्र" यह शब्द निकला। उस की आंखे पथरा गईं और वह मूर्छित सी हो कर पति के चरणों में गिर पडी।

पुष्पक विमान में चढ़ कर सब का अयोध्या में जाना।

सीता के मिलाप से श्री रामचन्द्रजी का शोक दुख और वियोग की पीडा दूर हुई और वह रात्रि उन्हों ने वहीं पर सुख से व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ही विभीषण बहुत सुन्दर स्त्रियां साथ लेकर राघव के पास आया और हाथ जोड़ कर बोला, हे अयोध्या नाथ! आप स्नान कर के वस्त्र पहरें यह सब स्त्रियां आप के शृंगार करने के लिए आई हैं। तब श्री रामचन्द्रजी ने मुस्करा कर उत्तर दिया, हे लंकापते! मुझे तो कैकेयी के धर्मात्मा पुत्र भरत के सिवा दूसरा पुरुष शृंगार नहीं करा सकता सो उस के दर्शनों के लिए मैं शीघ्र ही अयोध्या जाऊंगा, जो चौदह वर्ष से मेरे वियोग में तड़प रहा है, हां तुम मेरी यात्रा के लिए तय्यारी करवाओ क्योंकि रास्ता बहुत दूर और दुर्गम है।

श्री रामचन्द्रजी की यह आज्ञा पाते ही उसने कुवेरसे छीना हुआ पुष्पक विमान मंगवाया जो, जिस की वेदी पन्ने की और शेष सब स्वर्ण का बना हुआ था, जिस की चांदी और सोने की बहुत सी अटारियां थीं और सैकड़ों झरोखों से शोभायमान था। विमान को देखकर राघव अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, हे विभीषण ! और हे वानर लोगो !! तुम्हारी भुजाओं के बल से ही मैंने विजय प्राप्त की है, तुम ने मित्रता को सच्चे अर्थों में निभाया है, अब तुम मुझे विदा करो मैं अपनी राजधानी में जाकर शीघ्र उस तपस्वी भरत के दर्शन करना चाहता हूं जिसे मेरे बिना एक एक क्षण एक एक युग के बराबर बीत रहा है।

यह सुनकर विभीषण को आगे करके सब वानर बोले, हे स्वामिन् ! आप के बिना हम कैसे जियेंगे, थोड़े ही दिनों में आप ने हमें अपने प्रेम की पाश में ऐसे बांध लिया है, कि आप के जाने का नाम सुनकर ही हमारे प्राण निकला चाहते हैं, सो हम को भी अयोध्या में ले चलो, वहां हम आप के चरणों की सेवा करेंगे, और आपका अभिषेक देखकर अपने अपने घरों को लौट जाएंगे। यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी बडे प्रसन्न हुए और वानरों सहित विभीषण को साथ बैठाकर पुष्पक विमान पर सवार हुए और अयोध्या की ओर उडने लगे।

भरत मिलाप ।

अब वह विमान गरुड के समान वेग से उडता हुआ अयोध्या की ओर चला । श्री रामचन्द्र जी रास्ते में सीता को युद्ध का स्थान, रावण की तथा अन्य राक्षसों की लोथें, लंका के पर्वत, समुद्र पर बंधा हुआ पुल, किष्किन्धा पुरी, पंपासर तथा दण्डक बन पञ्चवटी आदिक स्थान दिखाते हुए भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुंचे, वहां जाकर वह सब विमान से उतरे और महामुनि भरद्वाज के आश्रम में जाकर उनका दर्शन करते भये। उस दिन वहां चौदह वर्ष समाप्त होगये थे और पंचमी का दिन था। मुनि के दर्शन कर के श्री राघव बड़े प्रेम से हनुमान के प्रति बोले, हे वीर ! तुम अयोध्या में शीघ्र जाओ और भरत को मेरा जानकी का और लक्ष्मण का कुशल समाचार दो और उसे वानरों की सहायता से रावण के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहो। तुम बोलने में और आकार विकार तथा चेष्टा से दूसरों के मन के भाव जान लेने में बड़े चतुर हो सो भरत के मन के भाव को भी अच्छी तरह जांचो क्योंकि राज्य और सम्पत्ति को पाकर बड़े बड़े महात्माओं के हृदय भी कलुषित हो जाया करते हैं । हे वीर ! मेरा संदेश कह कर और उन की भावना को देख कर शीघ्र लौटो हम तुम्हें मार्ग में ही मिलेंगे ।

राघव की आज्ञा पाकर हनुमान वायुवेग से अयोध्या के निकट नंदी ग्राम में पहुंचे। वहां उसने चीर और मृगचर्म धारण किए तपस्वी भरत को देखा। भाई के वियोग में उनका मुख दीन और मलीन हो रहा था। राघव की खड़ाओं आगे रख कर बैठे हुए जटाधारी भरत के पास जाकर हनुमान ने उन के चरणों को स्पर्श किया और फिर हाथ जोड़ कर बोला हे अयोध्या नरेश ! जिन चीर धारी तपस्वी बनवासी के वियोग में आप रात दिन दुखी रहते हैं उन्होंने आपके पास अपना कुशल समाचार भेजा है। आप शोक का परित्याग करें थोडी ही देर में आप कौशल्या नंदन राम का लक्ष्मण तथा जानकी सहित दर्शन करेंगे। हे नाथ ! रावण को मार कर आप के बड़े भाई सीता सहित आ रहे हैं।

हनुमान के मुख से उस समाचार के सुनते ही भरत को इतना हर्ष हुआ कि वह उस को सहन न कर सके और मूर्छित हो कर पृथिवी पर गिर पड़े। जब थोड़ी देर के बाद उनको सुधि आई तो उन्हों ने हनुमान को गले से लगा लिया और इतना रोए कि दोनों शरीर नहा गए। जब रोकर मन कुछ हल्का हुआ तो बोले,अहो ! चौदह वर्ष के पश्चात् आज मैं अपने नाथ का आगमन सुनता हूं सच है जीते हुए मनुष्य को सौ वर्ष के पश्चात् भी सुख की प्राप्ति होती है इसके

पश्चात् भरत जी ने बनवास का सब वृतान्त पूछा और हनुमान ने सीता हरण से लेकर रावण वध तक की एक एक घटना उन्हें कह सुनाई ।

हनुमान के मुख से विस्तार पूर्वक सारी कथा सुन कर भरत ने मन्त्रियों को आज्ञा दी, कि शीघ्र ही अयोध्या को सजावें । आज्ञा पाते ही शत्रुघ्न मंत्रियों सहित नगर में गया । दशरथ नंदन राम के आने का समाचार क्षण मात्र में बन की अग्नि के समान सारे नगर में फैल गया । लोग अपने घरों दुकानों और बाज़ारों को सजाने लगे । देखते ही देखते अयोध्या नगरी नवोढ़ा स्त्री के समान सज गई । लाखों मनुष्य सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहन कर राघव के दर्शनों के लिए नगर के बाहर चले । नंदी ग्राम से ले कर अयोध्या तक सारी भूमि गुलाब और केवड़े के जल से सींची गई, बाजारों में इतने फूल बिछाए गए कि सारी अयोध्या नगरी पुष्पमयी हो गई । गलियें और बाजार पताकाओं से सुशोभित हो गए और सोने चांदी तथा मणियों से नगर के मुख्य मुख्य स्थान सजाए गए । इस के पश्चात सब मंत्री और दर्बारी लोग सजे हुए हाथियों पर सवार हो कर नगर के बाहर निकले उन के पीछे ध्वजाओं और झूलों तथा स्वर्ण के होदों से सजे हुए हजारों हाथी चले । उन के पीछे हजारों घुड़सवार जय नाद करते हुए चले । फिर

असंख्य पैदल सेना चली। उन के पीछे कौशल्या सुमित्रा और कैकेयी दासियों सहित पालकियों में बैठ कर चलीं। उन सब के पीछे पीछे तपस्वी भरत हाथ में माला लिए हुए पैदल चले। इतने में हनुमान भी राघव के पास पहुंच कर और भरत का सब वृत्तान्त सुना कर फिर लौट आया। इसी अन्तर में निर्मल आकाश में पुष्पक विमान दिखाई दिया। उसे देखते ही सब लोग सवारियों से उतर खड़े हुए और जय नाद से आकाश को गुंजाते हुए इस प्रकार विमान की ओर मुँह उठा कर देखने लगे जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है। थोडी ही देर में वह विमान नीचे आया और श्री रामचन्द्रजी उस में से उतर कर अपने चिर वियोगी भाई को कण्ठ से लगाते भये। उस समय उन दोनों के नेत्रों से आंसुओं की धारा वह निकली। भाईयों को मिल कर राम लक्ष्मण कैकेयी सहित अपनी माताओं के चरणों को स्पर्श करते भये जो चिरकाल तक रो रो कर दीन दुखिया और बहुत दुबली हो गई थीं। नगर निवासियों सहित सब लोग जब दोनों कुमारों के दर्शन कर चुके तो भरत ने खड़ाओं को राम के पांओं में पहना दिया और नेत्रों से नीर बहाता हुआ दोनों हाथ जोड़ कर बोला, हे नाथ! यह राज्य जो चौदह वर्ष तक आपने मेरे पास धरोहर रक्खा था, इसे अब संभालिये, आज

मैं परमात्मा की दया से कृतार्थ हुआ ।

रामचन्द्र जी का सिंहासन पर बैठना ।

नंदी ग्राम से चलकर श्री रामचंद्र जी अयोध्या में आए और सब लोगों को दर्शन देते हुए महल में पहुंच गये । अब दो एक दिन व्यतीत हो जाने पर भरत सब मंत्रियों को साथ लेकर श्री रामचन्द्र जी के पास गये और हाथ जोड़कर बोले, हे अयोध्यानाथ ! बैल के योग्य भार को बछड़ा नहीं उठा सकता, इस बड़े राज्य को मैं संभालने में अशक्त हूं, चौदह वर्ष समाप्त होगये, आप ने पिता के वचन को पूरा कर दिया अब अपने अभिषेक से इस दास को कृतार्थ कीजिये । भरत की इस प्रार्थना को श्री रामचन्द्र जी ने स्वीकार किया और उसे प्रेम से गोदी में बैठा लिया । उसी समय सब देशों में दूत भेजे गए जो समाचार पाते ही अयोध्या में पहुंच गए, अभिषेक की सब तैय्यारी बड़े समारोह के साथ होगई । इस के पश्चात् चारों भाईयों ने जटाओं को विसर्जन कराकर स्नान किया और चित्र विचित्र मालाएं पहनकर सुन्दर वस्त्रों से विभूषित होकर उज्वल कान्ति को प्राप्त किया । सीता के अंगों को कौशल्या ने सुगंधित द्रव्यों तथा अनेक दिव्य रत्नों से अलंकृत किया । सब कार्य्य पूर्ण हो जाने पर महामुनि वसिष्ठ ने ब्राह्मणों को साथ लेकर

श्री रामचन्द्र जी को जानकी के साथ रत्न जटित आसन पर बैठाया और फिर आठों मत्रियों ने श्री रामचन्द्र जी को अभिषेक तिलक दिया । उस समय पितृ क्रमागत रत्न जटित मुकट पहनकर सिंहासन पर बैठे हुए श्री रामचन्द्र जी इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त करते भये। उन के सिर पर श्वेत छत्र लगाए शत्रुघ्न और चंवर झुलाता हुआ विभीषण भी अत्यन्त शोभायमान हुआ। तब आकाश से देवताओं ने फूलों की वृष्टि की और ब्राह्मणों ने वेद मंत्रों की ध्वनि से सारे दर्बार को भर दिया। इस अवसर पर महाराज रामचन्द्र ने इतना दान दिया कि ब्राह्मण तथा अन्य भिक्षुक कुवेर के समान धनवान होगए । फिर अपने पास बैठे सुग्रीव हनुमान् विभीषण आदिक को हाथी घोडे स्वर्ण रत्न आदिक अनेक उपहार देकर बडे प्रेम से विदा किया।

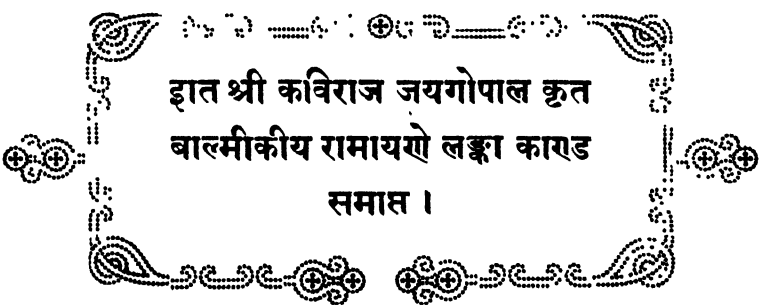

उत्तर काण्ड ।

रावण की जन्म कथा ।

विशाल मस्तक वाले और सूर्य्य के समान तेजस्वी दशरथ नंदन श्री रामचन्द्र जी राज्य को प्राप्त करके सुख पूर्वक शासन करने लगे । उन की कीर्ति दशो दिशाओं में फैल गई, देश धन धान्य से पूर्ण होगए और राक्षसों के मारे जाने पर ऋषि मुनि बनों में निश्शंक होकर ईश्वर भक्ति में लीन हुए, इस अनंत सुख को प्राप्त करके मुनि जन अत्यंत प्रसन्न हुए और एक दिन सब मिलकर महाराज रामचन्द्र जी को बधाई देने के लिये उनके पास पहुंचे, और उन की स्तुति करते हुए बोले हे राजन् ! कुम्भकर्ण इन्द्रजित और रावण जैसे त्रिभुवन को जीतने वाले राक्षसों को मारकर आप ने पृथिवी का भार हलका कर दिया है सो हम 'सब आप को बधाई देते हैं । तब सब मुनियों को प्रणाम करके श्री रामचन्द्र जी ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य मुनि के प्रति बोले, हे महामुने ! यह रावण चारों वेदों का जानने वाला पंडित तत्व दर्शी होकर भी इन्द्रियों के वश में होकर मारा गया, यह बड़ा आश्चर्य्य है, इस रहस्य को मैं अभी तक नहीं समझ सका, सो आप कृपा करके बतलाईये चारों वेदों के जानते हुए भी उस की बुद्धि के भ्रष्ट होने का क्या कारण है ?

यह सुनकर महामुनि अगस्त्य बोले, हे राघव! सतयुग में ब्रह्मा के हां पुलस्त्य नामक ऋषि का जन्म हुआ। वह ब्रह्मा के सदृष ही गुणवान तपस्वी और इन्द्रियजित था। पुलस्त्य के गृह में विश्रवा नामक पुत्र हुआ जो अपने गुणों से तीनों लोक में विख्यात था। विश्रवा का पुत्र वैश्रवण हुआ जो अपने तप और बुद्धि से पिता के समान था। उसने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से कुवेर की पदवी प्राप्त की और निवास करने के लिये दक्षिण समुद्र के तट पर त्रिकूट पर्वत पर लंका नाम की नगरी प्राप्त की। वह पुरी स्वर्ण की बनी हुई थी। इसके पश्चात् सुमाली नामक राक्षस की कन्या के साथ विश्रवा का विवाह हुआ और उसके हां क्रूरकर्मा दशग्रीव रावण और कुम्भकर्ण तथा विभीषण का जन्म हुआ। यह रावण और कुम्भकर्ण देवताओं और ऋषियों के शत्रु थे। इन्हों ने अपने बड़े भाई कुवेर को निकाल कर लंका पर अधिकार जमा लिया और अपने बल से इन्द्रादि देवताओं को भी जीत लिया एक बार वह दिग्विजय करता अनेक राजों महाराजों देवताओं असुरों और राक्षसों को जीतता हुआ मद से मतवाला हुआ २ हिमालय पर्वत पर पहुंचा, वहां उस ने एक सुंदर कन्या देखी, जो मृग छाला ओड़े, जटा बांधे तपस्विनियों के भेष में थी। उस की सुन्दरता को देखकर रावण मोहित हो गया

और काम से पीड़ित होकर हंसता हुआ बोला, हे कल्याणि ! तुम्हारा सौन्दर्य्य देखकर मैं मुग्ध हो गया हूं, देख तेरा यौवन जा रहा है और तू राज प्रसाद के योग्य होकर इस प्रकार तपस्विनियों के समान तप में लगी है, इस वेश को छोड़ और मुझे वरकर संसार की राणी बन, यह तप तो वृद्धों के लिए होते हैं तेरे तो रूप में ही तपस्या का सारा फल भरा हुआ है तू किसकी लड़की है और क्यों इस अनुचित कार्य्य में लगी है ? रावण के इस प्रकार पूछने पर उस कन्या ने कहा, हे दशग्रीव ! मेरे पिता का नाम महर्षि कुशध्वज था और मेरा नाम वेदवती है। मेरे प्राप्त करने की इच्छा से बहुत से देवता नाग और यक्ष मेरे पिता के पास आए परन्तु उसने किसी की बात को न माना क्योंकि वह मेरा विवाह विष्णु के साथ करना चाहता था। एक शुम्भ नामक दैत्य मेरे पिता के पास आया और मेरी प्राप्ति की प्रार्थना करता भया। उसे भी मेरे पिता ने अंगीकार न किया। तब उस दैत्य ने क्रोध से मेरे पिता का सिर काट लिया और चला गया, उसी के वियोग में मेरी माता भी मर गई। तब से मैंने यह संकल्प किया है, कि मैं विष्णु ही को वरूंगी, और इस प्रकार अपने मृत पिता के संकल्प को पूरा करूंगी हे दशग्रीव ! विष्णु को प्रसन्न करने के लिए मैं तप कर रही हूं। इस लिये और किसी का चिन्तन भी

नहीं कर सकती, सो तू मेरी कामना छोड़ कर चला जा। हे राम! वेदवती के यह वचन सुन कर काम से अंधे हुए हुए रावण ने उस को बल से पकड़ कर ले जाने की इच्छा की और उस को जटाओं से पकड कर घसीटने लगा। तब उस तेजस्विनी कन्या ने तत्काल तलवार से अपने केशों को काट डाला। और अग्नि जला कर बोली, हे रावण! तूने एक सती कन्या का अपमान किया है और मेरे केशों को अपने कलंकित हाथों से स्पर्श किया है सो अब मैं जीना नहीं चाहती और अग्नि में प्रवेश कर के इस शरीर को भस्म करती हूं, परन्तु इस अपमान का बदला लेनेके लिए अब मैं किसी महात्मा के घर में जन्म लूंगी और तेरा नाश करूंगी इस प्रकार शाप देकर वह कन्या अग्नि में कूद पडी। हे राम! उसी वेदवती ने जनक के हां सीताके रूपमें जन्म लिया है और इस प्रकार तुम्हारा आश्रय लेकर उस पापी रावण से बदला लिया है। महामुनि के मुख से रावण के शाप की यह कथा सुन कर श्री रामचन्द्रजी अति प्रसन्न हुए और उन की अनेक प्रकार से पूजा कर के उन्हें विदा करते भये।

इस के अनन्तर महाराज ने सब राजों महाराजों को हाथी घोडे रथ मणि मुक्ता आदिक उपहार दे कर विदा किया। जब सारे राजे महाराजे विदा हो गए तो प्रभु ने सब राक्षसों और वानरों को स्वर्ण और

रत्नों के भूषण दिए । उन भूषणों को धारण करके वह अति प्रसन्न हुए । इसके पश्चात् उन्होंने बालि के पुत्र अंगद को और पवन पुत्र हनुमान को अपनी गोद में बैठाया और अपने हाथों से उन्हें रत्न जटित भूषण पहराये जब सब वानरों तथा राक्षसों का यथोचित सत्कार हो चुका तो नल नील गन्धमादन आदि सेनापतियों को एकट्ठा कर के इस प्रकार प्रेम से भरे हुए वचन बोले कि, हे वीरो ! आप ने मुझ पर भारी उपकार किया है आप मेरे मित्र और भाई हैं, तुम ही ने मुझे विपात्त के पहाड के नीचे से निकाला है । जिस रावण और इन्द्राजित को देवता भी न दबा सके उसे तुमने अपनी भुजाओं के बल से मारा है, धन्य है राजा सुग्रीव जिस के पास आप सरीखे मित्र बन्धु और मन्त्री हैं ।

सब वानरों को इन प्रीति युक्त वचनों से प्रसन्न करके फिर सुग्रीव के प्रति बोले, हे राजन् ! अब तुम किष्किन्धा में जाकर सुख पूर्वक राज्य करो, देखो, बालि के पुत्र को अपना ही पुत्र समझ कर इस पर कृपा दृष्टि रखना और सब मन्त्रियों की सम्मति पर चलते हुए प्रजा का पालन करना । हे मित्र ! इन्हों ने अपने प्राणों को होम कर युद्ध में मेरे लिए विजय दिलाई है, सो यह वीर सुभट तुम्हारे राज्य के प्रासाद को खडा रखने के लिए स्तम्भ के समान हैं और प्रीति के पात्र हैं । यह कह कर उन्हों ने सुग्रीव को प्रेम से गले लगाया और

फिर विभीषण के प्रति स्नेह दृष्टि से देखते हुए बोले, हे मित्र! तुम्हारी सहायता से ही मैं सीता को प्राप्त कर सका हूं तुम धर्मात्मा और नीति को जानने वाले हो अब लंका में जाकर राज्य प्रबन्ध करो, देखो कुबेर तुम्हारा बडा भाई है उस में सदा प्रीति रखना और यह पुष्पक विमान उस को लौटा देना और मुझे भूल न जाना। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी जब सब को कह चुके तो पवन पुत्र हनुमान हाथ जोड कर बोला, हे नाथ! मैं इन भूषणों और रत्नों को नहीं चाहता, यह तो सब अनित्य पदार्थ हैं, मैं तो आप से यह वर मांगता हूं, कि मुझे आप अपनी अटल भक्ति दीजिए और जब तक आप की कथा संसार में होती रहे मैं जीवित रहकर आप के पुण्य चरित्र को सुनता रहूं, यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा, हे वीर "तथास्तु" मैं तुझे भक्ति देता हूं और तू अमर होगा"। यह कहकर प्रभु ने अपने कंठ का हार हनुमान के गले में डाल दिया। चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हरित मणियों वाले उस हार से हनुमान ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुमेरू पर्वत चंद्रमा के साथ शोभायमान होता है। तब सब वानर और राक्षस भगवान् रामचन्द्र जी को प्रणाम करके विदा हुए। विदा होते समय सब के नेत्र प्रेम के आंसुओं से भर गए, और वह व्याकुल हृदयों से अपने अपने घरों को चले गये।

सीता बनवास ।

प्रजा पर धर्मानुसार शासन करते हुए भगवान् रामचन्द्र जी को दश सहस्र वर्ष व्यतीत हो गए, उनके राज्य में सारी प्रजा सुखी थी, समय २ पर वर्षा होती थी, देश धन धान्य से भरपूर था, गौएं आनंद से बनों में विचरती थीं और भारत वर्ष में दूध की नदीयां बहती थीं। घर २ अग्नि होत्र होते थे, रोग का कहीं चिन्ह भी न था, माता पिता के बैठे पुत्र नहीं मरते थे। चोर जुआड़ी मिथ्या वादी पर स्त्री गमन करने वाले, धूर्त पाखंडी उन के राज्य में ढूंढने से भी न मिलते थे। प्रजा अपने धर्म कर्म में प्रवृत थी और सारा देश एक सुखी परिवार के समान बसता था। इस बड़े अवसर में महाराज ने जानकी को सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन कराए और स्वर्ग से भी बढ़कर सुखका उपभोग कराया। एक दिन महाराज ने सीता की देह पर गर्भ के चिन्ह देखे। यह देखकर उन्हों ने बड़े प्यार के साथ सीता को कहा हे वरानने! तुम्हारी क्या कामना है बताओ, जो कुछ तुम कहोगी मैं उसे पूरा करूंगा। राघव के ऐसा कहने पर जानकी बोली, हे नाथ! तुम्हारी छाया में कौन सा ऐसा सुख है जिसका मैंने उपभोग नहीं किया। तीनों लोकों का सुख आप के चरणों में है, संसार के सब ऐश्वर्य्य भोग २ कर अब इन से मेरा चित्त उपराम हो गया है, सो हे नाथ! अब तो यह चित्त चाहता है कि

कुछ दिन जगत के इन झमेलों से अलग होकर पतित पावनी गंगा के तीर पर निवास करूं और ऋषियों वा मुनियों के चरणों की सेवा करूं। यह सुनकर श्री रामचंद्र जी ने कहा, हे चन्द्र मुखी! मैं तेरी इस इच्छा को पूरा करूंगा और तू शीघ्र ही ऋषियों के दर्शन करेगी। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज राज भवन में बैठे हुए मंत्रियों तथा अन्य सभासदों से हास्य रस की बातें कर रहे थे, कि महाराज ने उन से पूछा, हे सभासदो! भला यह तो बतलाओ, कि प्रजा के लोग मेरे, कैकेयी के, जानकी के, भरत के तथा शत्रुघ्न के विषय में क्या सम्मति रखते हैं, देखो इसका मुझे ठीक २ उन्हीं के वचनों में परिचय दो, क्योंकि प्रजा जनों को मैं पुत्र के समान प्रेम करता हूं, और उनके विचारों का सदैव पता रखना चाहता हूं। तब उन में से एक ने हाथ जोड़ कर कहा, हे राजन्! प्रजा प्रातःकाल उठकर आप को आशीर्वाद देती है, परंतु एक बात मैं प्रायः लोगों के मुखों से सुनता हूं और वह यह है, कि जिस सीता को रावण अपनी गोद में उठाकर ले गया और जो इतने दिन तक उस क्रूरकर्मा राक्षस के वश में रही उस सीता को रामचन्द्र अपने महल में रखते हैं और उससे तनिक भी घृणा नहीं करते, अब तो प्रजा की जो भी स्त्री दूसरे के गृह में रहकर आयेगी उसे फिर अपने घर में स्वामी को रखना ही पड़ेगा।

सभासदों के मुख से यह वचन सुनकर श्री रामचंद्र जी का हृदय बडा दुखी हुआ और वह उन सब को विसर्जन करके द्वारपाल को आज्ञा देते भए, कि शीघ्र जाकर भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण को बुला लाओ।

तब प्रभु की आज्ञा पाकर द्वारपाल तीनों भाईयों को रथ पर बैठाकर ले आया। उन्हों ने अंदर जाकर देखा कि राम का मुख उदास हो रहा है और नेत्रों में आंसु भरे हुए है, यह देखकर वह उन के चरणों को स्पर्श करके बैठ गये। तब बडे भाई ने उन को कंठ में लगाकर कहा, हे भाईयो, तुम्हारा कल्याण हो, जिस काम के लिये मैंने तुम्हें यहां बुलाया है वह अत्यन्त आवश्यक है, सो तुम ध्यान देकर सुनो। देखो नगर निवासी लोग इस बात पर मेरी घोर निंदा कर रहे हैं कि मैंने रावण के घर में रही हुई सीता को अंगीकार कर लिया है, हे भाईयो ! जब से मैंने पुरवासियों के मुख से यह बात सुनी है, मेरा हृदय जल रहा है और मैं शोक सागर में डूब रहा हूं। मैं जानता हूं कि सीता निर्दोष, निष्कलंक सच्चरित्रा और पार्वती के समान पतिव्रता है, परन्तु फिर भी मैं लोकनिंदा को सहन नहीं कर सकता क्योंकि संसार में जिस की निंदा होती है वह अधर्म के लोक में गिरता है, इस विषय पर मैंने बहुत विचार किया है ओर अन्त में इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि सीता को त्याग दूं। इस विषय में तुम अपनी कोई भी

सम्मति न देना। मैं तुम्हें अपने चरणों और प्राणों की शपथ देकर कहता हूं कि जो कुछ मैं कहता हूं तुम वैसा ही करो। इस प्रकार सब भाईयों को अपनी बात कह कर वह लक्ष्मण के प्रति बोले हे वीर! कल प्रातः काल सीता को रथ पर चढ़ा कर उसे गंगा पार महर्षि वाल्मीक के आश्रम पर छोड़ आओ, इस विषय में मुझे तुम कुछ न कहना क्योंकि मेरा यह विचार अटल है, कल सीता ने मुझे मुनियों के दर्शनों के लिये कहा भी था सो उस की भी कामना पूरी हो जाएगी।

यह कह कर श्री रामचन्द्रजी नेत्रों से जल की धारा बहाते हुए अपने भवन में चले गये। दूसरे दिन सूर्य्य उदय होते ही लक्ष्मण सुमंत्र से रथ जुतवा कर सीता के पास गया और हाथ जोड़ कर बोला हे जनक नंदिनि! तुमने महाराज को ऋषियों के दर्शनों के लिए कहा था, सो मैं उनकी आज्ञा से रथ ले आया हूं चलिए। लक्ष्मण के मुखसे यह सुन कर जानकी बहुत प्रसन्न हुई, और बड़े चावसे अनेक प्रकार के सुंदर सुंदर वस्त्र ऋषि कन्याओं में बांटने के लिये लेकर रथ पर सवार हुई, रथके पीछे लक्ष्मण भी खड़ा हो गया और सुमंत्र ने उसे चला दिया। अयोध्या से निकल कर वह गोमती नदी के तट पर पहुंचे। वह रात्रि उन्हों ने वहीं व्यतीत की। प्रभात होने पर वह वहां से आगे चले।

जब गंगा के तट पर पहुंचे तो लक्ष्मण का हृदय व्याकुल हो गया, वह अपने आप को संभाल न सका। उस के नेत्रों से आंसु फूट पड़े और वह बिलख बिलख कर रोने लगा। लक्ष्मण की यह दशा देख कर सीता बोली, हे वीर ! तुम क्यों रोते हो, देखो मेरी चिर काल से पतित पावनी गंगाके दर्शनों की इच्छा थी, सो आज पूरी हुई, अब गंगा के पार चल कर मुझे मुनियों के दर्शन कराओ मैं उन्हें सुंदर सुंदर वस्त्र और भूषण दूंगी और उन्हें प्रणाम करके अपने हृदय को शान्त करूंगी। घबराओ नहीं, हे वीर ! एक रात्रि वहां रह कर फिर हम अयोध्या में लौट चलेंगे। कदाचिन् तुम भाई के वियोग में रो रहे हो, देखो मुझे भी वह अत्यन्त प्यारे हैं, सो हम अधिक समय तक बन में नहीं रहेंगे।

वैदेही के यह वचन सुन कर लक्ष्मण ने बड़ी कठिनता से अपने हृदय के दुःखको रोका और नाव पर बैठ कर पार हुए। अब नावसे उतर कर लक्ष्मण दोनों हाथ जोड कर रुद्ध कण्ठ से बोला, हे मैथिलि ! महाराज ने मुझे इस काम पर नियुक्त करके संसार में मेरी घोर निंदा कराई, और मुझे शोकके अथाह समुद्र में डुबा दिया है। हे वैदेहि ! इस काम पर नियुक्त करने की अपेक्षा यदि भाई मुझे मार डालते तो अच्छा था, परंतु क्या करूं, भाई की आज्ञाका उल्लंघन नहीं सकता, हे मात ! ईश्वर तुम्हें प्रसन्न रखे, मेरा इसमें कुछ दोष

नहीं है। यह कह कर लक्ष्मण मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

देवर की यह दशा देख कर सीता को बड़ा दुख हुआ और वह लक्ष्मण को सचेत करके बोली, हे वीर! तुमको क्या हो गया है, यह तुम क्या कह रहे हो, जिस की मुझे कुछ समझ नहीं आती, साफ साफ कहो, तुम्हें क्या हो रहा है, क्या महाराज कुशल तो हैं? तुम्हें मेरी सौगन्ध है किस लिए तुम रोते हो?

सीता के इस प्रकार सौगन्ध देकर पूछने पर लक्ष्मण आंसु पोंछ कर बोला, हे मैथिलि! राम तुझे पवित्र सच्चरित्रा, सती और निष्कलंक समझते हैं, परन्तु पुरवासियों में यह अपवाद फैल रहा है, कि रावण के गृह में रही हुई जानकी को राम ने स्वीकार कर लिया है, यह बड़ा अन्धेर है। हे सीते! यद्यपि वह तुम को सच्चरित्रा समझते हैं परन्तु लोकापवाद के भय से उन्हों ने तुम को त्याग दिया है। मैं आपको निष्कंलक देखता हूं परन्तु क्या करूं, राम ने आज्ञा दी है, कि आश्रम के निकट तुम्हे छोड़ आऊं। हे वरानने! यहां से निकट ही महामुनि बाल्मीक का आश्रम है, वह मेरे पिता के परम मित्र हैं। उन्हीं के चरणों में रह कर अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत कर, अब मैं जाता हूं और राघव को जाकर धीरज देता हूं जो लोकापवाद के भय से बलात् तुम से अलग किए गए हैं और जिन्हें

तुम्हारे वियोग में एक एक क्षण एक एक कल्प के बराबर व्यतीत हो रहा है।

लक्ष्मण के मुख से निकले हुए यह शब्द बिजली के समान सीता के हृदय पर गिरे और वह कटे हुए वृक्ष की नांई मूर्छित हो कर धरणी पर गिर पड़ी। थोड़ी देर पश्चात् जब उसे सुधि आई तो वह नेत्रों से जल बहाती हुई बोली, हे वीर! विधाता ने मुझे दुख सहने के लिये ही रचा है। हाय! न जाने मैंने पूर्व जन्म में कौनसा ऐसा घोर पाप किया था और किस स्त्री को पति से वियुक्त किया था, जो इस प्रकार मुझे पति का विछोड़ा मिला है, अब मैं अपने प्यारे पति के मुख को कैसे देखूंगी, अपने दुखों को किसे सुनाऊंगी, और मुनियों के सामने किस मुंह से जाऊंगी, और कौनसा अपराध अपने त्याग का बतलाऊंगी। हा! विधाता! तूने मेरे सुख को सहन न किया। हे लक्ष्मण! यदि मैं गर्भ से न होती तो गंगा में डूब कर मर जाती परन्तु अब ऐसा करने से यह राज वंश नष्ट हो जाएगा। अच्छा वीर! तुम अपना कार्य्य कर चुके अब जाओ और मेरी ओर से मेरे पति को और सासों को प्रणाम करो, और हे सुमित्रा नंदन! मेरी ओर से महाराज को कहना कि तुम तो मेरे घट घट की बात जानते हो और मुझे शुद्ध सच्चरित्र समझते हो पर लोकनिंदा के भय से मुझे त्यागते हो, भगवान तुम्हारा कल्याण करें,

यदि मेरे त्याग देने से तुम्हारी निंदा दूर हो जाय तो मुझे यह बनवास तो क्या मृत्यु भी स्वीकार है। मैं अपने प्राण देकर भी पति को कलंक से छुड़ाऊंगी, यही शिक्षा विवाह समय में मेरी माता ने मुझे दी थी और यही शिक्षा मेरी सास कौशल्या मुझे अब तक देती रही है, हे सुमित्रा नंदन! अब तू जा और अच्छी तरह देख ले, मैं इस समय गर्भवती हूं।

सीता से इस प्रकार कहा हुआ लक्ष्मण रोता हुआ उसकी प्रदक्षिणा कर के वहां से लौटा और गंगा पार कर के बड़े शोक में डूबा हुआ रथ पर चढ़ गया।

जानकी का महामुनि वाल्मीकि के आश्रम में जाना।

जब लक्ष्मण का रथ दूर निकल गया तो जानकी के नेत्रों के सामने अन्धेरा छा गया। उस घोर बन में अपने आप को अकेली और निराधार देख कर वह हिरनी की तरह सहम गई और फूट फूट कर रोने लगी उस स्थान से थोड़ी ही दूर पर ऋषियों के बालक खेल रहे थे। जानकी के रुदन को सुन कर वह वहां आये और उस के करुणा जनक विलाप को सुन कर महा-मुनि वाल्मीकि के पास जाकर बोले, हे मुनिराज! गंगा तीर पर एक स्त्री रो रही है, आप चल कर उसे देखें। बालकों की बात सुन कर बाल्मीकि जी ने अपने योगबल से सब कुछ समझ लिया और तत्काल सीता

के निकट जाकर बोले, हे मैथिलि ! हे बेटी !! तेरा स्वागत हो ! मैंने अपनी योग दृष्टि से देख लिया है, कि तू दोष से रहित है, अब तू इस शोक और दुख का त्याग कर और मेरे आश्रम में निवास कर, वहां ऋषियों की स्त्रियां और कन्याएं तेरी सेवा करेंगी, तू भी वहां रह कर अपनी तपस्या से उस ब्रह्म का साक्षात्कार कर जिस ब्रह्मानंद के सामने संसार के सब सुख तुच्छ हैं। महामुनि बाल्मीकि के इन शब्दों ने सीता को बहुत कुछ धीरज दिया और वह प्रणाम कर के उन के पीछे पीछे चल पड़ी ! आश्रम में पहुंच कर बाल्मीकिजी ने सब तापसियों को बुला कर कहा हे ऋषि पुत्रियो ! अयोध्यापति राम की धर्मपत्नी दशरथ की स्नुषा और और महराज जनक की पुत्री यह सीता शुभ चरित्रों वाली और पतिव्रताओं में श्रेष्ठ है, अब इस का पालन मैं करूंगा, तुम सब बडे आदर और सत्कार के साथ इसे तपस्वि धर्म की शिक्षा दो । इस प्रकार उन सब तापसियों को आदेश देकर और सीता को उन्हें सौंप कर महामुनि बाल्मीकि जी आश्रम में चले गए।

लक्ष्मण का अयोध्या में जाना और महाराज को सीता के वन में छोड़ने की सूचना देना।

गंगा पार सीता को छोड़ कर लक्ष्मण बड़े शोक में डूबा हुआ और बारंबार ठंडी सांस लेता हुआ अयो-

ध्या में पहुंचा। राज प्रासाद के निकट पहुंच कर वह रथ से उतरा और सीधा महाराज के पास गया। वहां जाकर उस ने देखा, कि राम का मुख उदासीन है और उन के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह रही है लक्ष्मण ने वहां जाकर उन के चरणों को स्पर्श किया और बडी दीनता से रोते हुए बोला, हे नाथ! आप की आज्ञानुसार मैं उस पाप रहित सीता को गंगा पार छोड़ आया हूं। हे नरसिंह! आप शोक का त्याग कीजिए जो कुछ दैव का लिखा होता है वह अवश्य ही होता है, संसार में सदा सुख नहीं है और सदा दुख भी नहीं है। जो बनते हैं वह बिगडते भी हैं, जिन का संयोग होता है उनका वियोग भी होता है। हे नाथ! सीता ने कहा है, कि "मैं" निर्दोष हूं यह आप जानते हैं, परन्तु आप को कलंक न लगे, इस विचार से मैं बनवास क्या मृत्यु का भी सहन कर सकती हूं, और यही सती स्त्रियों का धर्म है" हे प्रभो! अब आप अधिक शोक न करें, क्योंकि ऐसा करने से प्रजा के लोग हंसेगे और कहेंगे, कि देखो राजा ने पहले जिसका अपने आप त्याग किया है अब उसी के लिए शोक करता है"

राजा नृग की कथा।

लक्ष्मण के तत्व से भरे हुए इन शब्दों को सुनकर महाराज को धीरज हुआ और वह प्रसन्न होकर बोले हे

भाई ! तेरे जैसा धर्मात्मा वीर और मेधावी भाई संसार में मिलना कठिन है, अब मैं सीता के दुख को भूल जाता हूं और इस बात को प्रारब्ध पर छोड़ता हूं। हे लक्ष्मण तुम भी अब शोक से रहित होवो और जैसा मैं कहता हूं वैसा करो, देखो कई दिन से मैंने दर्बार नहीं किया है, न जाने पुर वासियों की इतने दिन में क्या दशा हो रही होगी, सो शीघ्र जाकर मंत्रियों और पुरोहितों को बुलाओ, क्योंकि जो नरेश प्रजा जनों के काम करने में देर करता है अथवा प्रजा के लोग राज द्वार पर प्रार्थनाओं के लिए खड़े रहते हैं और राजा उनको दर्शन नहीं देता वह ऐसे भयंकर नरक में गिरता है जहां घोर अंधकार होता है और जहां वायु की भी गति नहीं होती । सुमित्रा नंदन ! सुनो मैं तुम्हें राजा नृग की कथा सुनाता हूं जो बड़ा धर्मात्मा होने पर भी आज तक गिरगट की योनि में नरक यातना भोग रहा है । हे महा बाहो ! राजा नृग बड़ा धर्मात्मा दानी वीर और सत्यवादी था। एक दिन पुष्कर नामक पुण्य तीर्थ पर उस ने बछड़ों सहित एक करोड़ गौएं ब्राह्मणों के लिए दान दीं। उन गौओं में बछड़े समेत एक गौ उस राजा ने ऐसी दान दे दी जो राजा की नहीं थी और भूल से गौओं के अन्दर मिल गई थी। वह गौ एक निर्धन ब्राह्मण की थी। वह ब्राह्मण उसी गौ के दूध से अपना और अपने परिवार का निर्वाह चलाता था। अब वह ब्राह्मण

अपनी गौ को ढूंढने लगा, परंतु ढूंढने पर भी वह उसको न पा सका। दैव योग से वह ब्राह्मण हरिद्वार के निकट दक्षकी राजधानी कनखल में पहुंचा, वहां उसने एक ब्राह्मण के द्वार पर अपनी गौ को बछड़े समेत खड़े देखा, उसे देखते ही उसने "शबला" कहकर पुकारा। अपने पहले स्वामी के स्वर को पहचानते ही शबला गौ दौड कर उस के पास आई और बछडे समेत उसके पीछे पीछे चल पडी। जिस ब्राह्मण ने उसे दान में प्राप्त किया था वह भी उस के पीछे दौड कर पहुंचा। अब दोनों ब्राह्मण आपस में झगडने लगे। एक कहता था यह मेरी है और दूसरा कहता था यह मेरी है। उस झगडे को निवटाने के लिए वह दोनों राजा नृग की पुरी में पहुंचे। परन्तु कई दिन तक लगातार जाने पर भी द्वारपालों ने उन्हें अन्दर न जाने दिया क्योंकि राजा नृग भोग विलास में लिप्त हुआ हुआ दर्बार में नहीं आता था। जब बहुत दिन तक प्रतीक्षा करने पर भी उन को राजा के दर्शन नहीं हुए तो उन दोनों ब्राह्मणों ने क्रोध से शाप दिया, हे नरेश! तू कार्य्य वालों को दर्शन नहीं देता और महल के अन्दर ही बैठा रहता है जा तू गिरगट हो जा और ऐसे स्थान पर तेरा निवास होवे जहां तुझे कोई न देख सके और द्वापर के अंत में जब कृष्णावतार होंगे तब तू फिर मनुष्य देह को प्राप्त करेगा। हे लक्ष्मण! कई सहस्र वर्षों

से वह राजा एक अन्धेरे कूप में गिरगट के रूप में निवास करता है। यह कथा लक्ष्मण को सुना कर महाराज ने सब मंत्रियों को बुलाया और फिर प्रति दिन प्रजा जनों के हित के लिए दर्बार करने लगे।

अश्वमेध यज्ञ के लिए विचार।

विष्णु के समान प्रजा का पालन करते हुए महाराज श्री रामचन्द्रजी को अनेक वर्ष व्यतीत हो गए अब एक दिन उन्हों नें भरत और लक्ष्मण को बुला कर कहा, हे वीरो ! चिरकाल तक सांसारिक सुखों का भोग करते हो गया। अब मैं भवसागर को तरने के लिये कोई धर्म का सेतु बनाना चाहता हूं और कोई ऐसा यज्ञ करना चाहता हूं जिस से संसार में अक्षय यश को प्राप्त करूं। तब लक्ष्मण हाथ जोड कर बोला, हे लोकनाथ ! अश्वमेध यज्ञ ही सब पापों का नाश करने वाला है। जब इन्द्र को ब्रह्म हत्या लगी थी तब उसने अश्वमेध यज्ञ से ही उस से निस्तारा पाया था, सो आप भी वैसा ही यज्ञ करें। और अनंत सुख तथा अखण्ड कीर्ति को प्राप्त करें। लक्ष्मण की यह सम्मति सुन कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उसे गले से लगा कर बोले, हे महाबाहो ! वसिष्ठ वामदेव जाबालि आदिक मंत्रियों को और अश्वमेध यज्ञ कराने में प्रवीण पंडितों और विद्वानों को बुलओ, उन के साथ विचार कर के

में शुभ लक्षणों वाला श्याम कर्ण घोड़ा छोड़ दूंगा तब महाराज की आज्ञा से लक्ष्मण उसी समय नगर के विद्वान ब्राह्मणों और मित्रयों को बुला लाया। उन के आने पर दशरथ नंदन श्री रामचन्द्रजी खड़े हो कर उन की पाद्य और अर्घ्य से पूजा करते भये और फिर हाथ जोड़ कर बोले, हे विप्र गण ! लोक और परलोक से तरने के लिए मैं अश्वमेध नामक यज्ञ करना चाहता हूं, इसी कार्य्य के लिए आप को बुलाया है सो आप भली प्रकार विचार कर के जो जो करने के योग्य कार्य्य है कीजिये। महाराज के इस विचार को स्वीकार कर के ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, हे राजन्! आप का कल्याण हो, हम आप की इच्छा पूर्ण करेंगे, आप शीघ्र ही दूतों को देश देशान्तरों के राजों के पास भेजिये और यज्ञ की तय्यारी कीजिए। ब्राह्मणों के स्वीकार करने पर महाराज ने लक्ष्मण को आज्ञा दी, कि हे वीर! देश देशान्तर के राजों के पास दूतों को भेज दे, जाम्बवंत सुग्रीव और विभीषण को भी संदेश भेज दो, कि वह सब भालुओं वानरों और राक्षसों को साथ ले कर यज्ञ में सम्मिलित होवें। देश देशान्तरों के नटों नर्तकों और गाने वालों को भी निमंत्रण भेजो और महामुनि बाल्मीकि जी तथा अन्य ऋषि मुनि और तपस्वियों को भी संदेश भेज देवें। हे भरत! यह यज्ञ गोमती नदी के पवित्र तट पर होगा तुम वहां स्वर्ण और चांदी का रत्न जटित

मण्डप बनवाओ और सौ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं और इतने ही चांदी के रुपये कोष से ले कर सेना सहित वहां जाओ। तुम्हारे साथ विश्वकर्मा के समान चतुर कारीगर भी जावें जो मण्डप को पक्का और अत्यन्त सुन्दर बनावें। देखो इस कार्य्य में विलम्ब न होने पावे और खान पान की सामग्री घी चावल नमक तेल दाल आटा फल फूल में किसी प्रकार की त्रुटि न रहने पावे।

महाराज की आज्ञा पाते ही लक्ष्मण और भरत ने सब कार्य्य ऐसी सुन्दर रीति से पूरा किया, कि दर्शक लोग देख २ कर चकित रह गये। स्वर्ण मण्डप बन गया और देश देशान्तर के राजे महाराजे सजे हुए भवनों में विश्राम पाने लगे। महर्षियों के लिए अलग अलग सुन्दर आश्रम बनाए गए। सब राजों ने महाराज को अद्भुत बहुमूल्य और विचित्र उपहार भेंट दिए। इस के पश्चात् हवन कर के शुभ लक्षणों वाला घोड़ा छोड़ दिया गया और लक्ष्मण को सेना सहित उस की रखवाली के लिए नियुक्त कर दिया गया। इस के अनंतर अश्वमेध यज्ञ होने लगा। ऋषि मुनि तपस्वी और ब्राह्मण लोग वेद मन्त्रों की ध्वनि से गगन मण्डल को प्रतिध्वनित करने लगे। उस समय महाराज ने याचकों के लिए मुंह मांगा पदार्थ दान दिया। स्वर्ण चांदी और खान पान के पदार्थ इस बाहुल्यता से दान दिये गये, कि

बूढ़े बूढ़े तपस्वी यही कहते थे, कि आज तक हम ने अनेक अश्वमेध यज्ञ देखे परन्तु इतना दान होते हमने कहीं नहीं देखा। जिधर देखो सहस्रों वानर और राक्षस हाथों में स्वर्ण चांदी रत्न और वस्त्र लिये याचकों को दे रहे थे। कोई भी याचक मनों वांछित पदार्थ की प्राप्ति से वंचित न रहा।

महामुनि वाल्मीकि का यज्ञ में पधारना।

महाराज के दूतों से संदेश पाकर महा मुनि बाल्मीकि जी भी उस यज्ञ में पधारे उन के साथ सीता के दोनों पुत्र लव और कुश भी थे, जिन का जन्म उन के आश्रम में ही हुआ था! महामुनि ने उन दोनों को कहा, कि हे पुत्रो! जो रामायण मैंने तुम को सिखाई है उसे यज्ञ में जाकर सुनाओ। ऋषियों के आश्रमों में, राजाओं के खेमों में, गलियों में बाजारों में, चौकों में जहां जाओ इसे गाओ ओर विशेष कर के वहां गाओ जहां यज्ञ मण्डप का द्वार बना हुआ है। हे पुत्रो! यदि महाराज रामचन्द्रजी तुम्हें अपने पास बुलावें तो चले जाना और पूरे बीस सर्ग मीठे स्वर के साथ गा कर उन्हें प्रसन्न करना, और ऋषि मुनि वहां जो बैठे होंगे उन का आदर करना। इतना कह कर महामुनि ने उन्हें एक बनस्पति दी और कहा, कि इसे खालो, इस के खाने से तुम्हारा कंठ बहुत ही सुरीला हो जाएगा

और कभी न थकेगा। हे बेटा! यदि महाराज प्रसन्न हो कर कुछ धन द्रव्य देवें तो अंगीकार न करना, क्योंकि आश्रम वासियों को धन की आवश्यता नहीं हम लोग तो बन के कंद मूल फल खाकर निर्वाह कर लेते हैं, और यदि महाराज तुम्हें पूंछें, कि तुम किस के पुत्र हो, तो कह देना कि बाल्मीकि के शिष्य हैं, इस से अधिक हम कुछ नहीं जानते। यह लो वीणा, और खड़तालें, भली भांति स्वर मिला कर रामायण को आदि से अन्त तक गाना। इतना कह कर महर्षि ने उन्हें वीणा और खड़तालें दीं और फिर पीठ पर थपकी दे कर विदा किया।

लव और कुश का जाना और रामायण गाकर सुनाना।

महामुनि बाल्मीकि की आज्ञा पाकर लव और कुश यज्ञ मंडप की ओर चले। वहां पहुंचकर वह ऋषियों के आश्रमों, गलियों बाजारों और यज्ञ मंडप के आस पास रामायण का गान करने लगे। वह दोनों बालक वीणा की झंकार के साथ अपने मधुर कंठ को मिलाकर जब गाते थे तो देखने वाले चकित रह जाते थे। शनैःशनैः उन के गाने की धूम इतनी फैली कि महाराज रामचन्द्र जी तक भी यह समाचार पहुंच गया। उन्हों ने यज्ञ से अवकाश पाकर उन दोनों बालकों को बुलाया और गाना सुनाने की आज्ञा दी। उस समय यज्ञ मंडप में

सब मंत्री 'पुरोहित' सामगान करने वाले, देश देशान्तर के संगीताचार्य्य नर्तक आदिक तथा राजे महाराजे सहस्रों की संख्या में बैठे हुए थे। मनुष्यों से खचा खच भरे हुए स्वर्ण और रत्नों से चमकते हुए उस विशाल मंडप के मध्य में खड़े होकर वह दोनों बालक राम चरित्र गाने लगे। उस गाने को सुनकर सब लोग मुग्ध होगए। गाना क्या था, एक स्वर्गीय संगीत लहरी थी, उनके कोमल और सुरीले स्वरों से सुनने वाले अपने आप को भूल गए। जहां वीणा की झंकार के साथ उनके सिर हिलते थे साथ ही सहस्रों सिर हिल जाते थे। उनके कंठ की तान और मूर्छना ने लोगों को संगीत समुद्र में डुबा दिया, और वह मूर्छित से हुए २ मानों स्वर तरंगों में हिचकोले खाने लगे। यदि लव कुश के नेत्रों से आंसु गिरते तो सुनने वाले फूट २ कर रोने लगते थे, यदि वह वीरता का भाव प्रगट करते थे तो अनायास राजा लोगों के नेत्र जल उठते और म्यानों से तलवारें निकलने लगती थीं। उस समय वह दोनों बालक जो अपने रूप और तेज में अद्वितीय थे, जिन के समान सुन्दर मनुष्य संसार भर में और कोई नहीं था, गाते हुए ऐसे देख पड़ते मानों जादुगर ने अपने मंत्र द्वारा सारी सभा को वश में कर लिया हो। जब वह गा चुके तो सारी सभा आश्चर्य्य से उन की ओर देखने लगी, एक टक उनकी ओर देखकर लोग परस्पर बातें करने लगे, कि देखो इन बालकों

का रूप रंग आकार विकार महाराज राम के समान कितना मिलता है, सचमुच यदि इनके सिरों पर जटा भार न हों तो इन में और रामचन्द्र जी में रत्ती भर भी अंतर नहीं है। उनका गाना सुनकर श्री रामचन्द्र भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और भरत के प्रति आज्ञा देते भये, कि हे वत्स ! इन बालकों को अठारह सहस्र स्वर्ण मुद्राएं दो, इन्होंने बहुत अच्छा गाया है, यदि यह कुछ और भी मांगे तो दे दो मैं इन पर बहुत प्रसन्न हूं। महाराज की आज्ञा से भरत ने तत्काल ही अठारह सहस्र स्वर्ण मुद्राएं उनके आगे ढेर कर दीं। परंतु इस धन को अस्वीकार करते हुए वह दोनों बोले, महाराज ! यह धन हमारे किस काम का ! हम तो बनवासी हैं और कंद मूल खाकर निर्वाह कर लेते हैं, बनवासी लोग धन के लोभ में नहीं फंसा करते। उनके इस उत्तर को सुनकर महाराज रामचन्द्र जी आश्चर्य्य रह गये, और चारों ओर से धन्य हो धन्य हो की ध्वनि उठने लगी, तब महाराज ने पूछा हे तपस्वियो ! यह काव्य तुम को किस ने सिखाया है ! कौन तुम्हार गुरु है ? किस के तुम पुत्र हो कहां तुम्हारा निवास है ? तब वह बड़ी नम्रता से बोले हे महाराज ! महामुनि बाल्मीकि जी के हम शिष्य हैं, उन्हीं ने हम को यह सिखाया है, उन्हीं के आश्रम में हम रहते हैं, हमारी माता भी वहीं रहती है, इस से अधिक हम कुछ नहीं जानते, जो काव्य हम ने गाया

है उस के ५४००० श्लोक हैं, आप अवकाश के समय इसे आदि से अंत तक सुन सकते हैं।

उन बालकों की बातों से श्री रामचन्द्र जी ने जान लिया, कि निस्संदेह यह मेरे ही पुत्र हैं। उस समय उन को जानकी की वह अवस्था याद आ गई जब वह गर्भ से थी और रथ पर बैठाकर गंगापार छोड़ दी गई। उस समय उनके सोए हुए प्रेम के समुद्र में क्षोभ सा उठा और नयनों से नीर बह निकला।

श्री रामचन्द्रजी का बाल्मीकि के पास दूत भेजना और सीता का यज्ञ मण्डप में आना और पृथिवी में समा जाना।

महाराज रामचन्द्रजी ने अपने पुत्रों को पहचान कर महामुनि बाल्मीकि के पास दूतों द्वारा संदेश भेजा कि हे मुनिराज ! यदि सीता का चरित्र शुद्ध और निष्कलंक है तो वह इस का प्रमाण देवे और यज्ञ मण्डप में आकर सब लोगों के सामने इस बात का विश्वास कराये। दूतों के मुख से यह संदेश पाकर मुनि प्रसन्न हो कर बोले, हे दूतो ! अपने महाराज से कह दो, कि जैसा आप चाहते हैं सीता वैसा ही करेगी कल वह यज्ञ मण्डप में आएगी और सब के सामने आप को अपने सच्चरित्र का विश्वास दिलाएगी।

कल प्रातः काल सीता यज्ञ मण्डप में आकर

अपने शुद्ध चरित्र होने का प्रमाण देगी । यह समाचार सब लोगों ने सुना । दूसरे दिन प्रातः काल ही सब ऋषि मुनि तपस्वी राजे महाराजे और नगर के सहस्रों लोग इस दृष्य को देखने के लिए यज्ञ मण्डप में पहुंच गए । उस समय सारा मण्डप सहस्रों मनुष्यों की भीड़ से भर गया, कहीं तिल मात्र भी भूमि खाली न रही, परन्तु वह इस प्रकार चुप चाप बैठे थे, मानों वहां कोई है ही नहीं, सब की आंखे द्वार पर लगी हुई थीं और लोग बडी उत्सुकता के साथ पल पल गिन रहे थे, कि महामुनि बाल्मीकि के पाछे पीछे सीता ने मण्डप में प्रवेश किया । उस के अन्दर आते ही बड़ा भारी कोलाहल उठा मानों शान्त सागर में क्षोभ आ गया हो । सीता का शरीर घोर तपस्या और व्रतों से यद्यपि अत्यन्त दुर्बल और कृश हो रहा था परन्तु उस के मुख पर पातिव्रत धर्म और सच्चरित्रता की ज्योति चमक रही थी । मुनि के पीछे पीछे चलती हुई वह उस समय ऐसी प्रतीत होती थी मानों ब्रह्मा के पीछे श्रुति चल रही हो । उस के नेत्रों में आंसु भरे हुए थे और वह मन में राम का चिंतन करती नीचे मुख किये सभा के मध्य में आकर खड़ी हो गई ।

सीता को खड़े देख कर श्री रामचन्द्रजी बाल्मीकि मुनि के प्रति बोले, हे महामुने ! सीता सच्चरित्रा और निष्कलंक है यह मेरा निश्चय है, परन्तु संसार की

निंदा के भय से मैंने इसे त्याग दिया था, अब मैं चाहता हूं कि यह सब के सामने अपने सच्चरित्र का प्रमाण देवे।

यह सुन कर मुनि ने उत्तर दिया हे राजन्! मैंने अपनी योग दृष्टि से देख लिया है, सीता पतिव्रता और शुद्ध चरित्रा है, परन्तु अब यह सब के सामने आप को विश्वास दिलावेगी और इस प्रकार आप को लोकापवाद से रहित करेगी। तब गेरुवे वस्त्र पहरे हुए तपास्विनी सीता भरी सभा में इस प्रकार बोली—हे वसुंधरे! हे सारे विश्व को धारण करने वाली मातः! इस समय मेरी लाज तेरे हाथ में है यदि मैंने अपने पति के सिवा अन्य पुरुष को कभी मन से भी चिंतन नहीं किया और मेरा चरित्र शुद्ध है तो तू अपने गर्भ में मुझे स्थान दे। हे देवी! मैंने सारे जीवन में यदि राम के सिवा और किसी का ध्यान नहीं किया तो तू फट जा और मुझे अपनी गोद में ले ले।

जब सीता यह शब्द बड़ी दीनता के साथ कह चुकी तो उसी समय भारी धमाका हुआ, पृथिवी कांप ने लगी और क्षण मात्र में भूमि फट गई और उस के अन्दर से एक रत्न जटित सिंहासन निकला, जिस को नागों और दानवों ने उठाया हुआ था। उस सिंहासन पर विराजमान वसुंधरा माता ने सीता को अपनी गोद में बैठा लिया और वह सिंहासन सहित शनैः २ पृथिवी के

अन्दर धंस गयी। यह दृष्य देखकर सब लोग आश्चर्य्य चकित रह गए, सब के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली, राम उस समय मूर्छित हो कर गिर पड़े, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न फूट फूट कर रोने लगे, लव और कुश माता माता कहते उसे पकड़ने के लिए दौड़े, परन्तु माता कहां थी फटा हुआ स्थान पहले की तरह ऊपर से मिल चुका था। जगज्जननी, पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, पति की प्यारी सतवंती सीता अपनी जन्म भूमि पृथिवी में समा चुकी थी ।

श्री रामचद्र जी का व्याकुल होना ।

सतवंती सीता के पृथिवी में समा जाने पर श्री रामचन्द्र जी के शोक और क्रोध का पारावार न रहा। उनके नेत्र कोप से प्रलय काल की अग्नि बर्साने लगे। उस समय उन्हों ने अपने धनुष को पकड़ा और बिजली के समान गर्जते हुए बोले, हे दैव! मेरी प्राणों से भी प्यारी सीता को तू ने मुझ से छीन लिया है, जिस के लिये मैंने समुद्र पर सेतु बांधा और लाखों राक्षसों का रक्त बहा दिया आज उसे इस डायन पृथिवी ने मेरे देखते देखते निगल लिया। अहो! वसुंधरे! तू मेरे बल को नहीं जानती आज मैं अपने बाणों से पर्वतों और समुद्रों सहित तुझे विध्वस्त कर डालूंगा, आज मेरे बाण प्रलय का समां बांधेगे और यह पृथिवी टुकड़े २ होकर परमाणु रूप से आकाश

में मिल जाएगी। ब्रह्माण्डकी कोई भी शक्ति मुझे मेरी प्राण प्रिया से वियुक्त नहीं कर सकती। इस प्रकार कहते २ उनका आकार रुद्र के समान अत्यन्त भयानक हो उठा। उन के इस क्रोधमय रूप को देख कर सब राजे महाराजे और ऋषि मुनि कांपने लगे। पृथिवी डोलने लगी और देवता लोग ब्रह्मा को आगे करके उनकी स्तुति करने लगे। साक्षात् ब्रह्मा हाथ जोड़ कर उनके सन्मुख खड़े हो गये और दीनता से प्रार्थना करने लगे, हे देवाधिदेव ! आप शोक और मोह का त्याग करें, यह काल अटल है, सीता तो स्वभाव से ही शुद्ध है, आप स्वर्ग में उसका दर्शन करेंगे।

तब ब्रह्मा के कथन से राघव का क्रोध शान्त हुआ और वह सीता के नाम पर असंख्य स्वर्ण मुद्रकाएं अगणित गौएं और अनंत वस्त्र दान करते भये। यज्ञ की समाप्ति के अनंतर उन्हों ने तक्ष और पुष्कल नाम के भरत के दोनों पुत्रों को गंधार की सीमा के देशों का राजा बनाया, उन दोनों देशों का नाम तक्ष और पुष्कल देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर अंगद और चन्द्र केतु नामक लक्ष्मण के दोनो पुत्रों को कारूपथ और चंद्रकान्त नामक दो देशों का अधिपति बनाया। इसके पश्चात् सुबाहु और शत्रुघाती नामक शत्रुघ्न के दोनों पुत्रों को मथुरा और वैदिश नगरी का राज तिलक दिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध करके महाराज ने सब अतिथियों

को बड़े सत्कार से विदा करके अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण किया।

यमराज का आना और लक्ष्मण का त्याग।

यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् महाराज ने चिरकाल तक सुख से प्रजा का शासन किया। उन्हों ने दूसरा विवाह नहीं किया और सीता की सुवर्ण की मूर्ति बनवाई। सैकड़ों सहस्रों बड़े बड़े यज्ञ किये, जिन में सीता की मूर्ति को ही पत्नी के स्थान पर बैठाया। इस दीर्घ अवसर में उन्हों ने अनंत द्रव्य का दान किया इस सुख भोग को भोगते हुए कौशल्या कैकेयी और सुमित्रा तीनों माताएं काल धर्म को प्राप्त हुईं। सब प्रजा उन के राज्य में निष्कंटक सुख को प्राप्त करती भयी।

इस प्रकार सारी पृथिवी पर शासन करते २ जब बहुत वर्ष बीत गए तो एक दिन मुनि का रूप धारण करके साक्षात् यमराज उन के द्वार पर आए। वहां उन्हों ने लक्ष्मण को द्वार पर खड़े देख कर कहा, हे महाबाहो महाराज को अन्दर जाकर कहो, कि महामुनि अतिबल का दूत आप के दर्शन चाहता है। यह सुन कर लक्ष्मण महाराज के पास जाकर बोला, हे त्रिलोकि नाथ! एक मुनि आप के दर्शनों के लिए बाहर खडा है यदि आप की आज्ञा हो तो उसे आऊं।

श्री रामचन्द्रजी ने कहा, हे लक्ष्मण! ब्राह्मणों तप-

रामचंद्र जी का धनुष तोड़ना। (पृष्ठ ६४)

Bharadwaj Press Lahore.

स्त्रिओं और मुनियों के लिए मेरा दर्बार सदैव खुला रहता है आदर से उन्हें ले आओ। महाराज की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने मुनि को कहा, कि जाईए महाराज ने आप के लिए स्वागत कहा है। तब सूर्य्य के समान तेजवाला वह दूत अन्दर गया और प्रणाम कर के बोला, राजन् आपका कल्याण हो। महाराज ने उसे स्वर्ण का आसन दिया और फिर बडी नम्रता के साथ बोले, हे महामुने ! आप के दर्शनों से मैं कृत्तार्थ हुआ, कहिए महर्षि अतिबल ने मेरे लिए क्या संदेश दिया है ? तब दूत मधुर मधुर वाणी से बोला, हे राजन् ! महर्षि अतिबल का संदेश मैं आप को उस स्थान पर कह सकता हूं जहां तुम्हारे और हमारे सिवा तीसरा कोई मनुष्य न हो और यदि कोई हमारी बात सुन ले तो वह मार डाला जाय, यदि आप को यह स्वीकार हो तो मैं सुनाऊ। यह सुन कर महाराज ने उत्तर दिया, कि हे दूत ! "ऐसा ही होगा" और फिर लक्ष्मण से बोले, हे महाबाहो ! तुम द्वारपाल को हटा कर स्वयं द्वार पर खडे रहो और चाहे कितना भी आवश्यक कार्य्य क्यों न हो, किसी को अन्दर न आने दो और नांही स्वयं आओ, देखो यदि कोई इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो वह मार डाला जाएगा। महाराज की आज्ञा पाकर लक्ष्मण द्वार पर खडा हो गया तब वह दूत एकान्त देख कर बोला, हे त्रिलोकि नाथ ! सारे जगत

का नाश करने वाला मैं यमराज हूं, सब देवताओं के पति प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है, कि पृथिवी का भार उतारने के लिए आप ने जो मनुष्य रूप धारण किया था, वह पूरा हो चुका है और आप की आयु भी पूरी हो चुकी है सो अब इस मानव देह का त्याग कीजिए वैकुण्ठ में आकर सब देवताओं को और सीता को दर्शन दीजिए जो आप की चिरकाल से राह देख रहे हैं ।

यमराज के मुख से ब्रह्मा का यह संदेश सुनकर महाराज रामचन्द्र जी प्रसन्न होकर बोले, हे यमराज ! मेरा कार्य्य हो चुका मैं भी काल के नियम को तोड़ नहीं सकता, मैं पहले ही से तेरी बाट देख रहा था, अब तुम जाओ और ब्रह्मा को कह दो, कि मैं आ रहा हूं।

जिस समय यमराज और श्री रामचन्द्र जी इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय दैव योग से दुर्वासा ऋषि द्वार पर आ गए और लक्ष्मण के प्रति बोले, हे सुमित्रा नंदन ! शीघ्र मुझे राघव के पास ले चलो, मुझे एक आवश्यक कार्य्य है, देखो देर न करो, नहीं तो मेरा प्रयोजन नष्ट हो जाएगा। यह सुनकर लक्ष्मण हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से बोला हे महामुने ! महाराज इस समय अत्यन्त आवश्यक कार्य्य में लगे हुए हैं, थोड़ी देर ठहरिए मैं आप को उनके पास ले चलूंगा और यदि अनुचित न हो तो मुझे ही बतलाइए मैं आप

का काम कर दूंगा । लक्ष्मण के मुख से यह उत्तर सुनकर दुर्वासा के तन में मानों आग लग गई और वह क्रोध से भ्रुकुटि चढ़ाकर बोला, अहो राज्याभिमान ! हे लक्ष्मण ! तुम इसी समय राम को मेरे आने की सूचना दो, नहीं तो मैं शाप देदूंगा, और फिर नां यह राज्य रहेगा न राम रहेगा और न तुम्हारे पुत्र स्त्री आदिक परिवार ही रहेंगे, मेरे क्रोध को कदाचित तुम नहीं जानते ।

दुर्वासा के इतने प्रबल हठ को देखकर और मन में यह सोचकर, कि सब के नष्ट हो जाने से मेरा अपना मर जाना अच्छा है, लक्ष्मण मरने के लिये तैय्यार होगया और वहां चला गया जहां यम और राम बात चीत कर रहे थे । महाराज के सामने जाकर वह प्रणाम करके बोला हे नाथ ! दुर्वासा ऋषि आप के दर्शन के लिए आए हैं और इसी समय महाराज से मिलना चाहते है । दुर्वासा के आगमन की सूचना पाकर महाराज ने यमराज को सादर विदा किया और फिर ऋषि को अंदर बुलाकर बोले हे महामुने ! कार्य्यवश आप को बाहर खड़ा होना पड़ा, सो क्षमा करें, कहिए क्या काम है ? तब मुनि प्रसन्न होकर बोला, हे राम ! एक सहस्र वर्ष से मैं घोर तपस्या कर रहा हूं, इस सुदीर्घ काल में मैंने कुछ नहीं खाया आज मेरा व्रत पूरा होता है, सो मुझे खाने के लिए कुछ दीजिए, यदि मैंने आज कुछ न

खाया तो फिर एक सहस्र वर्ष तक और निराहार व्रत रखना पड़ेगा।

यह सुनकर राघव ने तुरंत ही अनेक प्रकार के भोजन मंगवाये, जिन्हें खाकर दुर्वासा अति प्रसन्न हुआ और आशीर्वाद देकर चला गया।

दुर्वासा ऋषि के चले जाने पर महाराज ने यम से की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण किया और फिर अगाध शोक में डूबे हुए सोचने लगे, कि अब अन्त समय आ गया, लक्ष्मण की मृत्यु अटल है, सीता पहले ही चली गई है अब मैं भी इस लोक से परलोक की यात्रा करूंगा भाई के बिना मैं इस संसार में रहना नहीं चाहता। इस प्रकार महाशोक में मग्न हुए २ राघव सोच रहे थे, कि लक्ष्मण अन्दर आया और उन्हें इस दशा में देख कर बोला, हे नाथ! मेरे लिए आप शोक न करें, काल का नियम अटल है सब प्राणि काल के ग्रास हैं, आप अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करें और मेरा वध करें। लक्ष्मण के मुख से यह वचन सुन कर श्री रामचन्द्रजी व्याकुल हो उठे और सब मंत्रियों को बुला कर विचार करते भये। तब महामुनि वसिष्ठ बोले, हे राघव! जो कुछ होना होता है वह हो कर रहता है, आप के बड़े भारी क्षय का समय आ पहुंचा है आप प्रतिज्ञा को न तोड़ें, क्योंकि इस से धर्म का नाश हो जाता है, सो लक्ष्मण त्याग दीजिए, हे राघव! उत्तम पुरुषों का त्याग मरण

के समान ही समझा जाता है ।

धर्म और नीति से युक्त वसिष्ठ जी का यह वचन सुनकर महाराज रामचंद्र जी लक्ष्मण से बोले, हे सुमित्रा नंदन ! धर्म की रक्षा के लिये मैं तेरा त्याग करता हूं, अब तुम चले जाओ और शेष आयु हरि कीर्तन में व्यतीत करो।

महाराज की यह आज्ञा शिर पर धारण करके लक्ष्मण नेत्रों से नीर बहाता हुआ दर्बार से बाहर निकला, उसका हृदय भाई के वियोग से तड़प रहा था उस समय उसकी दशा मणि विहीन सर्प की सी हो रही थी वह महल में जाकर अपनी स्त्री से भी न मिला और सीधा सरयु नदी की ओर चला गया।

श्री रामचन्द्र जी का महा प्रस्थान ।

लक्ष्मण के चले जाने पर राघव शोक और दुःख से व्याकुल हो गए और सब मंत्रियों को एकट्ठा करके भरत से बोले, हे भाई ! अब संसार से मेरा संबंध छूट गया है, लक्ष्मण के बिना यह संसार मुझे ऐसा देख पड़ता है, जैसे प्राणों के बिना देह सूनी होती है, सो अब मैं वैकुंठ लोक की यात्रा करूंगा, तुम इस देशको और इस राज्य को संभालो ।

राघव के मुख से यह वचन सुन कर भरत मूर्छित हो कर गिर पड़े और फिर थोडी देर बाद सुधि आने पर बोले, हे भाई ! मैं सत्य की शपथ खा कर कहता हूं, कि

तुम्हारे विना मैं एक क्षण भर भी जीता नहीं रह सकता, सो मुझे भी आप अपने साथ ले चलें और लव और कुश को राज्य देकर इस दास को कृतार्थ करें ।

महाराज रामचन्द्र के महा प्रस्थान का यह समाचार क्षण मात्र में सारी अयोध्यापुरी में फैल गया और सब पुरवासी लोग नंगे सिर नंगे पांव नेत्रों से नीर बहाते हुए महाराज के दर्बार में उपस्थित हुए । उन सब की यह दशा देख कर करुणा निधान राम बोले, हे पुरवासियो ! मैं तुम सबको अपने पुत्रों के समान समझता हूं, कहो मैं तुम्हारे लिए क्या करूं, मैं तुम्हारी कामना पूरी करूंगा ।

महाराज के इन वचनों ने अमृत का काम किया और वह आंसु पोंछ कर बोले, हे नाथ ! आपने हमारी कामना पूरी करने की प्रतिज्ञा की है, सो हम सब यह चाहते हैं, कि जहां आप जा रहे हैं हमें भी साथ ले जाएं, बस यही वर हम आपसे मांगते हैं ।

पुरवासियों की इस प्रकार दृढ़ भक्ति और सच्ची प्रीति देख कर श्री रामचन्द्र जी ने कहा, हे पुरवासियो ! 'तथास्तु' तुम सब वैकुण्ठ की तय्यारी करो मैं तुम सब को वैकुंठपुरी में ले चलूंगा ।

यह वरदान देकर उन्होंने लव और कुश को बुलाया और फिर सबके सामने उनका अभिषेक करके कुश को कोशल देश और लव को उत्तर कोशल देशका

स्वामी बनाया और बड़े प्रेम से उनको हृदय से लगा कर बोले, हे सूर्य्यकुल प्रदीपो ! अब मैं तुमसे विदा होता हूं। देखो इस संसार का यही धर्म है जो जन्मता है वह अवश्य मरता है, जिसका संयोग होता है उसका अंत में अवश्य वियोग होता है, देखो रघु दिलीप और अज तथा मेरे पिता दशरथ भी स्वर्गलोक को चले गये हैं उन्हीं के मार्ग पर मैं जा रहा हूं, सो तुम धर्मानुसार राज्य करना।

दूसरे दिन प्रातः काल ही सब पुरवासियों सहित महाराज रामचन्द्र जी भरत और शत्रुघ्न को साथ लेकर महाप्रस्थान के लिए नगर से बाहर निकले। सारी अयोध्या उस समय सूनी हो गई। सबके आगे २ अग्निहोत्र लिये हुए ब्राह्मण वेद मंत्र उच्चारण करते चले और पीछे पीछे स्त्रियां मधुर संगीत गान करती हुई ब्रह्मानंद में मग्न हुई हुई चलीं। उनके पीछे बालक हंसते खेलते जय नाद करते हुए चले। उस अपूर्व दृष्य को देखने के लिये और श्री रामचन्द्र जी को प्रजा सहित वैकुण्ठ में लाने के लिये सब देवता लोग सहस्रों विमान ले कर सरयु तट पर आ गए। इस प्रकार बड़े आनन्द के साथ जब श्री रामचन्द्र जी सरयु के तीर पर पहुंचे तो लक्ष्मण भी उनके साथ परलोक यात्रा के लिए तय्यार हो गया। इसी अंतर में सुग्रीव भी अपने बंधुओं स्त्रियों और मंत्रियों सहित वहां आ पहुंचा और बैकुण्ठ यात्रा के

लिये महाराज से अनुज्ञा प्राप्त करता भया ।

अब सुगन्धित पवन बहने लगा, आकाश में दिव्य तेज चमकने लगा, और फूलों की वृष्टि होने लगी । तब महाराज ने हनुमान को प्रेम से गले लगाया और उसे भक्ति दान देकर सरयु के पवित्र जल में सब पुरवासियों सहित स्नान किया । उस समय उनका मुख मंडल वैष्णव तेज से चमकने लगा । जब सब स्नान कर चुके तो वह गायत्री का जप करते हुए देवताओं के लाए हुए विमानों में बैठ गये और वह विमान जो सूर्य्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश मान थे शनैः शनैः मेघ मण्डल को पार करके स्वर्ग लोक में प्रवेश करते भये ।

इति श्री कविराज जयगोपाल कृत
बाल्मीकि रामायणे उत्तरकाण्ड
समाप्त

सर्व प्रकार की संस्कृत हिन्दी गुरुमुखी पुस्तकें मिलने का पता—
भाई गेलाराम सोमनाथ, भारती भण्डार पुस्तकालय—मुलतान ।
पं० बल्लालाल फतेचंद पुस्तकालय—मुलतान ।
पं० रामसहाय जगदीश पुस्तकालय, मु० सिरसा जि० हिसार ।